बाल कहानियां

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

बाल कहानियाँ

(अध्यात्म व नैतिक शिक्षा से अनुप्राणित कहानियां)

मुनि कन्हैयालाल

स्वर्गीय श्री धनराजजी सिपानी की पुण्य-स्मृति में उनके सुपुत्र
श्री मोतीलाल सिपानी, रतनगढ़ (राजस्थान) के
अर्थ-सौजन्य से प्रकाशित

मूल्य : तीस रुपये / प्रथम संस्करण, १९८७ / प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी,
प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राज०) / मुद्रक : पंकज प्रिण्टर्स, दिल्ली-५३

भूमिका

मनुष्य ने पारिवारिक जीवन प्रारंभ किया, तभी से कहानियों का सिलसिला भी प्रारंभ हुआ। दादियों और नानियों ने इस क्रम को बनाये रखने में शायद सबसे अधिक योगदान किया। मनुष्य ने अपने जीवन-क्रम में जो-जो परिवर्तन किये वे सब कहानियों में भी उभरे। क्वचित् परिवर्तनों की पहल कहानी में हुई और क्वचित् मनुष्य में। कहानी ने मनुष्य को बदला और मनुष्य ने कहानी को।

कहानी-जगत् व्यवहार-जगत् से क्वचित् भिन्न भी होता है। व्यवहार-जगत् मे पशु-पक्षी न बातें करते हैं और न नीति आदि के संबंध में कोई ज्ञान ही रखते हैं, परन्तु कहानी-जगत् में यह सब होता है। बाल-कहानियों में तो बहुधा ऐसा होता ही है। इसलिए कहा जा सकता है कि कहानी की सत्यता-असत्यता—घटना की दृष्टि से नहीं, किन्तु उसमें प्रतिपादित तथ्य की दृष्टि से ही आंकी जाती है। वस्तुतः कहानी का तथ्य ही उसका सत्य एवं शाश्वत तत्त्व होता है।

कहानी बालकों को ही नही, युवकों और वृद्धों को भी उतनी ही प्रिय होती है। हर कोई उससे प्रेरणा प्राप्त करता है। उसके विभिन्न पात्र, विभिन्न प्रकृति के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसीलिए हर प्रकार का व्यक्ति उसके किसी-न-किसी पात्र को अपनी मनोदशा या आदर्श के अनुरूप पा लेता है। मनुष्य सहज रूप मे उच्चता या आदर्श को पसंद करता है। अतः रामायण के श्रोता या पाठक के मन मे अनायास ही यह प्रेरणा जागती है कि उसे राम जैसा बनना चाहिए, रावण जैसा नहीं। जो कहानी अपने श्रोता या पाठक के मन में ऐसी सत् प्रेरणा जगाने में सफल होती है, वही वस्तुतः सफल कहानी कही जा सकती है। कहानी की सफलता ही उस लेखक की सफलता होती है।

मुनि कन्हैयालालजी कर्मशील व्यक्ति हैं और साथ ही अपनी धुन के पक्के भी। वे अभी आसाम (पूर्वांचल) में विहरण करते हुए धर्मसंघ की अच्छी प्रभावना कर रहे हैं। उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक 'बाल-कहानियां' में कुछ लोक-प्रचलित कहानियों को सरल शब्द-परिधान में प्रस्तुत किया है। एतद् विषयक उनका प्रयास और उत्साह प्रशंसनीय है। इससे मनोरंजन के साथ-साथ बालक-बालिकाओं का मन आदर्श की ओर उन्मुख होगा। भले-बुरे की पहचान में उनकी बुद्धि पटुतर बनेगी एवं उदात्त संस्कारों के बीज उनके हृदय की उर्वरा में अंकुरित होंगे। मैं आशा करता हूं कि बाल-जनों की सरल बुद्धि के लिए ये कहानियां प्रेरक सिद्ध होंगी।

—मुनि बुद्धमल

मन की बात

जन-मानस की सुप्त चेतना को जागृत करने के लिए कथा-साहित्य एक बहुत बड़ा माध्यम है। नीरस विषय में भी सरसता संचारित करने वाला है। जटिल एवं गहनतम विषयों को सरल करने के लिए एक प्रशस्त मार्ग है। जीवन का पाथेय है। संमूर्च्छित उपवन के लिए सलिल की धारा है। वक्ताओं का शृंगार है।

आधुनिक जगत् में कथा-साहित्य का वैशिष्ट्य अपने आप में अद्वितीय है। अनेक चिन्तकों व प्रतिभाशाली मनीषियों की लेखनी इस ओर अग्रसर हुई है और समय-समय पर होती रहती है। जनता जनार्दन ने इसका सर्वत्र स्वागत किया है। जन-साधारण के लिए तो बहुत ही उपभोग्य सिद्ध हुआ है। अन्यान्य साहित्य की अपेक्षा कथा-साहित्य पढ़ने में हर व्यक्ति की अभिरुचि बनी रहती है। आध्यात्मिक व शिक्षात्मक कहानियों से लोग अपने जीवन को समुज्ज्वल बनाने का उत्कट प्रयत्न करते हैं।

बच्चे स्वभावतः ही कहानियों के प्रेमी होते हैं। कहानियों से उनकी स्मरण-शक्ति व विचार-शक्ति की वृद्धि होती है। आध्यात्मिक संस्कारों का संचार होता है। बालक-बालिकाओं का जितना आकर्षण कथा-साहित्य के प्रति रहता है, उतना अन्यत्र नहीं। जब उन्हें कहानी सुनाई जाती है, तब वे बड़े ध्यान से सुनते हैं और उसके लिए लालायित रहते हैं। खेलकूद, खानपान, स्नान, अध्ययन आदि समग्र क्रियाओं को भी वे गौण समझते हैं, तब, जबकि उन्हें कहानियों की खुराक मिलती हो। सुनाने वाले थक सकते हैं पर वे सुनते-सुनते नहीं थकते और न उनका मनोयोग ही अन्यत्र जाता है।

कथाओं के माध्यम से बालकों में अच्छे-अच्छे संस्कार जागृत किये जा सकते हैं। बच्चे अगर आध्यात्मिक व नैतिक विचारों को महत्त्व देने लग जायेंगे तो आने वाली पीढ़ी सदाचार, ईमान एवं प्रामाणिकता से ओतप्रोत हो जायेगी और भारतीय संस्कृति में निखार आ जाएगा। हाथों से खोयी हुई निधि को पुनः बटोरने में सबकी चेतना जागृत हो उठेगी। मनीषियों की दृष्टि में शिक्षात्मक कथाएं सर्वोत्तम विद्यालय हैं। सुलभता से जो तत्त्व वहां उपलब्ध हो सकेगा, वह अन्यत्र असम्भव है।

श्रद्धास्पद आचार्य श्री तुलसी के निर्देश से मेरे जीवन का बहुत बड़ा भाग मुनिश्री गणेशमलजी के सान्निध्य में बीता है। इसे मैं आचार्यप्रवर का आशीर्वाद मानता हूं। आचार्यदेव का स्नेहभरा वात्सल्य ही मेरे जीवन-निर्माण में जहां साधक बना, वहां मुनिश्री का ४१ वर्षीय सतत सान्निध्य भी कथा-साहित्य, संगीत

साहित्य, दोहा साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में बढ़ने का निमित्त बना है। मुनिश्री का सहवास हर दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत कृति उसी का प्रतिफल मानना चाहिए।

'बाल कहानियां' भाग-१ से ६ तक का यह संवर्धित एवं संशोधित संयुक्त संस्करण है। इसमें बालोपयोगी, आध्यात्मिक, शिक्षात्मक एवं नैतिक लघु कथाएं हैं। प्रत्येक कथा के उपसंहार में दोहा दिया गया है। सरल व सीधी भाषा में लिखी गयी ये कथाएं मानव-समाज को नयी दिशा में गतिशील बनाने में सहायक सिद्ध होंगी और विद्यार्थियों के तिमिर-संव्याप्त मानस में प्रदीप का कार्य करेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मुनि कन्हैयालाल

शुभकामना

युगप्रधान तुलसी-गणी, जिन शासन सिरमौर।
जिनके वर नेतृत्व मे, उन्नति चारों ओर॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्र हैं, वृद्धिगत दिन-रात।
साध्वी-साधु समाज है, चरित-धनी साक्षात्॥

वक्ता लेखक शास्त्रविद्, संगीतज्ञ महान्।
उपदेशक अवधान-कर, नैयायिक विद्वान॥

शिक्षाप्रद साहित्य के, स्रष्टा संत अनेक।
जिनका विद्वज्जगत् मे, है प्रभाव अतिरेक॥

रुचिकर श्रेष्ठ कहानियां, होती हैं अविवाद।
बच्चे भी पढ़कर उन्हें, रख लेते हैं याद॥

मुनि कन्हैयालाल का, है इस ओर प्रयास।
जनता को शिक्षा मिले, जिससे चरित-विकास॥

हैं ये बाल कहानिया, सरस-सरल शिशु-गम्य।
जिनके माध्यम से मिले, अन्तर-ज्ञान सुरम्य॥

शिक्षाप्रद साहित्य का, है यह क्षेत्र विशाल।
आगे बढ़ते ही रहो, संत कन्हैयालाल॥

—मुनि गणेश

अनुक्रम

गुरु और शिष्य

वर्षा ऋतु का समय था। चारों तरफ बादल उमड़ रहे थे। किसान लोग खेतों में जा रहे थे। स्थान-स्थान पर गड्ढों में पानी भर रहा था। मेंढक टर्र-टर्र कर रहे थे। कहीं-कहीं पानी में से निकलकर छोटे-छोटे मेंढक कूद-फांद रहे थे। उस समय किसी कार्य से गुरु और शिष्य कहीं जा रहे थे। अचानक असावधानी से गुरु के पैरों तले मेंढक आ गया और वह मर गया। शिष्य ने हाथ जोड़कर गुरु से निवेदन किया और प्रायश्चित्त लेने के लिए प्रार्थना की। गुरु ने सुना-अनसुना कर दिया। कुछ भी बोले नहीं। दोनों अपने स्थान पर पहुंच गए। शिष्य आया। नमस्कार कर बोला—गुरुदेव ! उसका प्रायश्चित करना है। यह सुनते ही गुरु क्रोध में लाल हो गये, रोषपूर्ण वक्र-दृष्टि से शिष्य को देखने लगे। शिष्य ने सोचा, अभी कहना उपयुक्त नही था क्योंकि गुरुजी कार्य में व्यस्त हैं। सायंकाल प्रतिक्रमण के समय याद दिलाना उपयुक्त होगा। वह उठा और अपने स्थान पर चला गया।

सूर्य अस्त हुआ। प्रतिक्रमण करने के लिए सभी संतगण उद्यत हुए। आलोचना लेने के लिए गुरु के समक्ष वह शिष्य आया। दिवस सम्बन्धी अपने दोष-कार्य की आलोचना करके बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर वह बोला—पूज्यवर ! आज मार्ग में आपके पैरों से मेंढक की हत्या हो गयी थी। उसकी आप भी आलोचना कर लें। गुरुजी अब अपने कर्तव्य को भूल गये। गुस्से में विवेकहीन बन गये और अपना डण्डा लेकर शिष्य के पीछे झपटे। उसे पकड़ने के लिए दौड़े और बोले—जरा इधर आ, तुझे बताऊं मेंढक की हत्या कैसे हुई और कैसे होती है। शिष्य आगे और गुरु पीछे-पीछे उपाश्रय में दौड़ने लगे। गुरु को इस तरह आवेश में देखकर शिष्य कहीं छिप गया। उपाश्रय में गहरा अंधेरा था। खम्भे भी बहुत थे। अचानक एक खम्भे से गुरुजी टकरा गये और गिरते ही उनका देहान्त हो गया। उनकी वह आत्मा शरीर को छोड़कर चण्डकौशिक सर्प के रूप में उत्पन्न हुई।

क्रोध के कारण उनकी संयम-साधना सफल न हो सकी और उनको तिर्यञ्च-गति में जन्म धारण करना पड़ा। अत: किसी भी स्थिति में क्रोध करना श्रेयस्कर नहीं है।

क्रोध भयंकर आग से, होते तप-जप नष्ट।
गुरु के इस आख्यान से, दीख रहा है स्पष्ट ॥

चण्डकौशिक

भगवान महावीर जब श्वेताम्बिका नगरी की ओर प्रस्थान कर रहे थे तब मार्गस्थ लोगों ने कहा—भगवन् ! आप इधर न पधारें। मार्ग में एक भयंकर जहरीला चण्डकौशिक सर्प रहता है। जो भी व्यक्ति इस मार्ग से गुजरता है, उसे वह डस जाता है। सैकड़ों व्यक्ति परलोकगामी बन गये। अब इस मार्ग से कोई भी व्यक्ति आना-जाना नहीं चाहता है। अतः आप भी इस पथ से न पधारें। किन्तु भगवान महावीर उपसर्गों से कब विचलित होने वाले थे ! भय और डर से कब वे पराजित होने वाले थे ! उन्होंने अपना पूर्व निश्चित मार्ग न बदला, मन्द गति से चलते रहे। चण्डकौशिक सर्प की बांबी आयी। भगवान ध्यानस्थ खड़े हो गए। उसने विष छोड़ा। भगवान के पैर के अंगूठे को डसा। उसके जहर का उनके शरीर पर कोई प्रभाव न हुआ। तब फिर उसने उनके कंधों पर चढ़कर कंधों को डसा। फिर भी कोई असर नहीं। भगवान ज्यों के त्यों मेरु की भांति ध्यान-मुद्रा में लीन रहे। उसे उनका रुधिर बहुत स्वादिष्ट लगा। वह उसे पीने लगा। मन-ही-मन जिज्ञासा जागृत हुई कि क्या कारण है, मेरे विष का इन पर कोई असर नहीं हुआ ? चिंतन, मनन, ऊहापोह करते ही उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

'ये तो चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर हैं।' झट उनके शरीर से नीचे उतरा। उनके चरणों में लोटने लगा। पूर्वभव देखते ही वह दुःख करने लगा, हाय ! साधु जीवन में मैंने गुस्सा किया जिससे मुझे तिर्यञ्चगति में आना पड़ा। अब उसे उन क्रोधजनित कुत्सित कार्यों का भी स्मरण हुआ। उनकी आलोचना व गर्हा करता हुआ शरीर की ममता छोड़कर अनशनपूर्वक वह बांबी में रहने लगा। भगवान महावीर वहां से चले। लोगों ने देखा। आश्चर्य हुआ। यह क्या बात, सर्प ने इन्हें डसा नहीं। कुछ नजदीक आकर देखा तो सर्प बिल्कुल शान्त होकर बैठा है। सारे शहर में यह बात प्रसिद्ध हो जाने से सैकड़ों व्यक्ति उसकी पूजा व अर्चा के लिए आने लगे। दूध, खाण्ड, मेवे-मिष्ठान आदि चढ़ने लगे। उन पदार्थों की गन्ध से अनेक चींटियां जमा हो गईं। सर्प के शरीर को चूंटने लगीं। उसने इस असह्य वेदना को समभाव से सहा। क्रोध नहीं किया। समता व क्षमा के प्रभाव से वह देव योनि में उत्पन्न हुआ।

जिस व्यक्ति ने क्रोधावेश में साधु जीवन को बिगाड़ा था, उसी जीव ने तिर्यञ्चगति में समता के झूले में झूलकर अपने जीवन को सुधारा, यह है समता का साकार सुफल।

समता के सद्भाव से, शत्रु मित्र साकार।
'मुनि कन्हैया' क्रोध से, निश्चित अमित बिगाड़ ॥

एकता का महत्त्व

एक करोड़पति सेठ था। उसके परिवार में छोटे-बड़े सब पचासों व्यक्ति थे। एक साथ ही खाना बनता था और एक-साथ ही निवास एवं व्यवसाय था। अपने कुटुम्बीजनों से सेठ का वत्सलतापूर्वक व्यवहार था। घर के सदस्यों की भी सेठ के प्रति अटूट श्रद्धा थी। एक दिन ऐसा आया कि सेठ का व्यापार चौपट हो गया। आय के साधन बन्द हो गये। उदरपूर्ति भी एक समस्या बन गई। सेठ ने अपने सभी सदस्यों को एकत्रित किया और कहा—अब सबको श्रम करना पड़ेगा अन्यथा जीवन-निर्वाह होना बहुत मुश्किल है। सभी सदस्यों ने कहा—आप जैसा आदेश देंगे उसी के अनुसार कार्य करने को तैयार हैं। सूर्योदय होते ही सभी छोटे-बड़े तैयार हो गये। सेठ के आदेशानुसार कसी, कुदाल आदि सामान कंधों पर उठाये उसके साथ ही चल पड़े। स्त्री, पुरुष व बच्चे सभी एक-दूसरे से आगे-आगे बढ़ने लगे। जंगल मे पहुंचे। एक सघन वटवृक्ष को देखकर सेठ ने कहा—आज का पड़ाव यहां डाला जाये। सब रुक गये। सबका ऐक्य व संगठन देखकर सेठ बहुत खुश हुआ। सबको अलग-अलग काम सौंपा गया। कई सरकण्डे काटते हैं, कई उनके छिलके उतारते हैं, कई पीटने का काम करते हैं। एक ओर कंटाई-छंटाई होने लगी तो दूसरी ओर मूंज बनने लगी, चरखे चलने लगे, धड़ाधड़ रस्सियां तैयार होने लगी।

इतना बड़ा जमघट देखकर वटवासी यक्ष घबराया और उनको ललकारते हुए कहा—चले जाइये यहां से, यह मेरा निवासस्थान है। महिलाओं ने, युवकों ने, बच्चों ने एक ही उत्तर दिया—हमको कहने से कुछ नही होगा। सेठ से कहिए। यक्ष सेठ के पास गया और बोला—सेठ ! इन रस्सियों का क्या करोगे ? सेठ ने ओज भरे शब्दों में उत्तर दिया—मैं इससे तुझे बाँधूंगा। यक्ष उन सबके संगठन को जानता था। घबराकर बोला—सेठ ! यहां यह खटपट मत करो, मैं इससे बहुत परेशान हूं। सेठ ने कहा—यह तो हमारे जीवन-निर्वाह का साधन है, कल भी आयेंगे और परसों भी आने का विचार है। यक्ष बोला—इसकी अगर मैं दूसरी व्यवस्था कर दूं तो यहां के दरख्तों को नहीं काटोगे ?

सेठ—फिर हमें यहां आने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

यक्ष ने अपना धन-भण्डार खोल दिया। सेठ के आदेशानुसार सभी परिवार वालों ने धन के गट्ठर बांध लिये। लाखों रुपयों की सम्पत्ति लेकर सेठ अपने परिजनों सहित घर चले गये।

सेठ के पड़ोस में एक दूसरा सेठ रहता था। उसने उसकी अचानक समृद्धि को देखकर पूछा—रे मित्र सेठ ! एक साथ इतना धन किस व्यापार से मिला ?

सेठ ने बताने से इनकार कर दिया। आखिर महिलाएं महिलाओं से मिली। सारा भेद खुला। धन-कुबेर बनने की लालसा से वह भी उस सेठ की भांति अपने सब पारिवारिक सदस्यो को समझा-बुझाकर अवश्य उस वटवृक्ष के नीचे ले गया। किन्तु सब मे एकता नही थी। कार्य प्रारम्भ हुआ। यक्ष आया और बोला इन रस्सियो से किसको बांधोगे? पारिवारिकों ने कहा—सेठ को बांधेंगे। यक्ष ने फिर ललकार की तो कसी, कुदाल, हंसिया वही जंगल मे छोड़कर सब भाग गये। यक्ष ने कहा—सेठ! तेरे में और उस सेठ में केवल इतना ही अन्तर है कि उन सब में संगठन था और तुम सबमें फूट। सेठ हताश हो गया और उसे खाली हाथों लौटना पड़ा।

एकता में जो शक्ति है वह अनेकता में नहीं है। एकता जीवन की उन्नति का अमोघ साधन है। इससे इंसान को हर क्षेत्र में सफलता मिलती है।

नही जहां पर एकता, सफल नही वह तन्त्र।
'मुनि कन्हैया' एकता, सही सफलता मन्त्र॥

सबमें श्रेष्ठ कौन?

एक बार सब देवताओं के आपस मे यह विवाद खड़ा हो गया कि सबसे पहले किस देवता की पूजा होनी चाहिए। पारस्परिक विवाद बढ़ा। सब मिलकर विष्णुजी के पास पहुचे। हृदयस्थ विचारो को रखते हुए सबने कहा कि आप जो भी फैसला देंगे हमे स्वीकार है। देवताओ की बातें सुनकर विष्णु ने कहा कि अब मैं तुम सबकी परीक्षा लेता हूं। जो उसमें प्रथम आये, वही सबसे पहले पूजा जायेगा। अतः तुम सब यहा से दौडो, जो देवता सारे संसार का चक्कर काटकर सबसे पहले मेरे पास पहुंचेगा वही सब देवताओं मे श्रेष्ठ माना जायेगा। सब देवता अपने-अपने वाहनो पर चढ़कर दुनिया का भ्रमण करने के लिए रवाना हुए। किन्तु गणेशजी ने मन-ही-मन सोचा कि मेरा वाहन चूहा बहुत छोटा है, कैसे होगी मेरी विजय। आखिर वे भी चले। कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां शंकर और पार्वती तपस्या कर रहे थे। गणेशजी ने अपने माता-पिता को नमस्कार करके पांच परिक्रमा दी। वहां से रवाना हुए। कुछ ही समय में चूहा अपने सवार गणेशजी सहित विष्णु के पास पहुंच गया।

विष्णु भगवान ने साश्चर्य पूछा—सारे संसार का चक्कर लगाकर बहुत जल्दी आ गये। गणेशजी बोले—भगवन्! मेरे माता-पिता मेरे लिए नही, सारे संसार के लिए तीनों लोको के समान हैं। मैं उनकी पांच परिक्रमा देकर उनका

आशीर्वाद लेकर आया हूं। जिन्होंने माता-पिता की आराधना कर लिया है, उन्होंने सारे संसार की आराधना कर लिया है। यह सुनकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। थोड़ी देर बाद एक-एक करके देवता वहां पहुंचने लगे। शिवजी ने सब देवताओं के सामने अपना निर्णय न्याय सुनाते हुए कहा कि गणेशजी सबसे श्रेष्ठ व प्रथम पूजनीय हैं। यह सुनते ही सबके चेहरे उतर गये। सबने पूछा, 'यह कैसे ?' वे बोले—'संसार में माता-पिता एक अमूल्य निधि हैं। जो बच्चा माता-पिता के आदेशानुसार चलता है वह सारे संसार को पा लेता है। सबसे पहले मेरे पास गणेश पहुंचा। इसने माता-पिता की परिक्रमा दी, सारे संसार की परिक्रमा हो गई। यह सुनकर देवताओं ने गणेशजी को प्रथम पूज्य माना।

संसार में माता-पिता का स्थान बहुत ऊंचा माना जाता है। उनके कथनानुसार चलने वाला पुत्र ही अपने जीवन का विकास कर सकता है और वह जन-जन के लिए श्रद्धा का पात्र बनता है।

मात-पिता के कथन में, चलता है जो पुत्र।
उसका जीवन रह सके, नैतिक निष्ठ पवित्र॥

श्रीकृष्ण और पाण्डव

पाण्डवो ने श्रीकृष्ण से कहा कि अब हम तीर्थस्नान करने के लिए जाना चाहते हैं, कृपया आज्ञा प्रदान कीजिए; क्योंकि युद्ध के भयंकर पाप से हमारी आत्मा मलिन हो रही है, तीर्थस्नान से मलिनता दूर हो जायेगी। श्रीकृष्ण ने उनको अनुमति देते हुए कहा कि साथ में यह मेरी एक तुम्बी भी ले जाओ, जहां तुम एक बार स्नान करो वहां मेरी तुम्बी को दो बार स्नान कराना। पाण्डव बड़ी खुशी से चले। क्रमशः उन्होंने सभी तीर्थों मे स्नान किया और साथ-साथ तुम्बी को भी दो-दो बार स्नान करवाया। अन्त में श्रीकृष्ण के दरबार मे वे आ पहुंचे। कुशल संवाद के अनन्तर उन्होंने वह तुम्बी श्रीकृष्ण को भेंट की। श्रीकृष्ण ने पूछा—तुम्बी को दो-दो बार स्नान करवाया? उन्होंने कहा—हां, महाराज। जिस नदी मे हमने एक बार स्नान किया इसे हमने दो-दो बार करवाया। श्रीकृष्ण ने तुम्बी के छोटे-छोटे पांच टुकड़े किये और प्रत्येक पाण्डव के हाथ में देते हुए कहा—तीर्थस्नान के इस प्रसाद को जरा देखो तो? पाण्डवों ने उसे मुंह में डाला तो सारा मुंह खारा हो गया। श्रीकृष्ण ने पूछा—क्यों, स्वाद कैसा है? पाण्डवों ने कहा—बिलकुल खारा।

श्रीकृष्ण ने आक्षेप की भाषा में कहा—यह कैसे हो सकता है? इतने तीर्थों

में स्नान कर लेने के बाद तो तुम्बी खारी नहीं रहनी चाहिए। तुमने इसको अच्छी तरह स्नान नहीं करवाया? पाण्डव बोले—राजन्! तीर्थस्नान कर लेने मात्र से क्या तुम्बी का खारापन दूर हो सकता है? तब श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा—तो फिर तुम्हारी आत्मा के पापकल्मष इस बाहरी स्नान से कैसे दूर हो सकते हैं? पाण्डवों के दिल में श्रीकृष्ण की बात जंच गई। उन्होंने कहा—महाराज! आप हमें पहले ही इस तत्त्व से सावधान कर देते तो हम इतना भ्रमण क्यों करते? श्रीकृष्ण बोले—उस समय यदि समझाता तो यह बात हृदयंगम नहीं हो सकती थी। यदि तुमको आत्मस्थ पापों से दूर करना है तो—

आत्मा नदी संयम-तोयपूर्णा, सत्यावहा शीलदया तटोर्मी।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

—आत्मा नदी संयम जल से पूर्ण हो, सत्य का उसमें प्रवाह व दया तथा शील के दोनों तट हो, ऐसे स्थान पर हे पाण्डुपुत्रो! तुम स्नान करो। तुम्हारी आत्मा पवित्र होगी। बाह्य स्नान से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होने वाली है।

बाह्य स्नान से ना कभी, आत्मा होती शुद्ध।
आभ्यन्तर तप स्नान से, बने अनेकों बुद्ध॥

मनुष्य का व्यवहार

बन्दर, मोर, कबूतर, तोता, मैना, कौआ आदि पक्षी एक ही बड़े वृक्ष पर बैठा करते थे। एक दिन सबकी गोष्ठी हुई। सब में श्रेष्ठ कौन? इसका उत्तर देते हुए बन्दर ने कहा—साथियो! समस्त जीव योनि में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। सभी पक्षियों ने बन्दर के प्रस्ताव को पास करते हुए एक स्वर से कहा कि मनुष्य जैसा बुद्धिमान इस दुनिया में दूसरा कोई नहीं है। कौवे को मौन देखकर बन्दर ने कहा—मित्र! अपना मत प्रकट करने का सबको अधिकार है। कौआ बोला—मेरी ऐसी मान्यता है कि मनुष्य संसार में सबसे अधम प्राणी है। यह सुनकर सभी पक्षी बौखलाये, बोले—तुम अधम हो, इसलिए तुमको मनुष्य भी अधम प्रतीत होता है।

कुछ ही दिनों बाद एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आ रहा है। उसके पीछे एक व्याघ्र लगा हुआ है। बन्दर के आह्वान पर वह वृक्ष पर उसके समीप जा बैठा। व्याघ्र ने बन्दर से कहा—भाई बन्दर! हम दोनों जंगल के प्राणी हैं, यह नगर का प्राणी है, इससे क्या सरोकार है? कृपया तू इसे नीचे ढकेल दे, मुझे भूख लग रही है। बन्दर बोला—जो मनुष्य मेरी शरण में आया है, उसे कैसे नीचे ढकेल

तू ? व्याघ्र बोला—मनुष्य बड़ा मतलबी होता है, समय आने पर वह तुझे भी धोखा देगा। बन्दर बोला—मैं तेरे माया-जाल में फंसने वाला नहीं हूं। मैं मनुष्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता हूं। व्याघ्र निराश हो गया। बन्दर की नींद आ गई। व्याघ्र ने मनुष्य से कहा कि मुझे तो अपना पेट भरना है। तू इस बन्दर को नीचे धकेल दे। फिर तू अपने घर चले जाना। मनुष्य बोला—छी ! छी ! इसने मुझे शरण दी और मैं इसे नीचे धकेलूं, ऐसी कृतघ्नता मैं नहीं कर सकता। व्याघ्र बोला—जब तक मुझे भक्ष्य नहीं मिलेगा, तब तक मैं यहां से जाऊंगा नहीं। नुकसान तेरा है, तेरे परिवार वालों की क्या गति होगी ? दुकान का क्या हाल होगा ? तू कितने दिन तक वृक्ष पर बैठा रहेगा ?

स्वार्थभरी बातों से मनुष्य का मन पलट गया। उसने बन्दर को नीचे धकेल दिया। बन्दर की नींद टूटी। गिरते-गिरते उसने नीचे की शाखा पकड़ ली। व्याघ्र ने सोचा, मेरा प्रयास सफल नहीं हुआ। अब फिर वह बन्दर को कहने लगा—बन्दर ! देख मनुष्य ने तेरे साथ कैसा व्यवहार किया ? अब भी मौका है, यदि बदला लेना हो तो मनुष्य को नीचे धकेल दे। बन्दर बोला—इतना अधम व निकृष्ट कार्य मनुष्य ही कर सकता है, पशु नहीं। मैं इसे नीचे नहीं धकेलूंगा। किन्तु अब मैं शीघ्र ही गोष्ठी बुलाऊंगा और कौवे को धन्यवाद दूंगा कि तेरी वाणी अक्षरशः सत्य है।

मनुष्य स्वार्थ-सिद्धि के लिए नीच से नीच कार्य भी करने के लिए तैयार हो जाता है। उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का भान नहीं रहता है। किन्तु महामानव वही है जो अपने कर्तव्य पर अटल रहता है।

> जो मानव निज-स्वार्थ हित, करता दुष्कृत काम।
> नहीं कभी वह बन सके, महापुरुष अभिराम ॥

शिक्षा का पात्र कौन ?

सर्दी का समय था। आकाश में बादल मंडरा रहे थे। झिरमिर-झिरमिर बूंदें गिर रही थीं। बिजलियां चमक रही थी। हवा का वेग बढ़ रहा था। ऐसे खराब मौसम में कोई भी मनुष्य घर से बाहर निकलना नहीं चाहता था। पशु भी अपने-अपने स्थान पर सिकुड़े हुए बैठे हुए थे। एक बैया अपने घोंसले में बैठा था। उस समय एक बन्दर सर्दी से ठिठुरता हुआ इधर-उधर दौड़ रहा था। किसी शरण की खोज में था। बैया ने सर्दी से पीड़ित बन्दर को देखा और मुसकराता हुआ बोला—

तव कला विपुला, प्रतिवर्तते, तव मनुष्य जनेन समं कपे !
मनसि विस्मयमेषमिहास्ति मे, किमु न यत् कुरुषे निजमन्दिरम् ॥

—हे बन्दर ! मनुष्य के समान तेरी आकृति है। तू बड़ा होशियार भी है। तथापि तू अपने रहने के लिए कोई सुरक्षित स्थान क्यों नहीं बना रहा है, इस बात का मुझे बड़ा आश्चर्य है। मैं एक छोटा-सा अज्ञानी प्राणी हूं, फिर भी थोड़ा-सा ज्ञान तो अवश्य ही रखता हूं। मैं अपना घर बनाकर बड़े आनन्द से बैठा हूं। यदि तू भी घर बना लेता तो आज इस कड़कड़ाती सर्दी में क्यों इधर-उधर भटकना पड़ता, क्यों शरीर ठिठुरता।

बैया की यह हित-शिक्षा बन्दर को रुचिकर नहीं लगी। मन ही मन कुड़कुड़ाने लगा—हाय ! यह छोटा तुच्छ प्राणी मुझे उपदेश दे रहा है। शिक्षा सुना रहा है। इसने मेरा अपमान किया है। इस अपमान को मैं सह नहीं सकता। बैया के घोंसले को देखा और वह उछला। एक क्षण में बैया के घर को तोड़कर वृक्ष पर जा बैठा। अभिमानपूर्वक वह बोला—बैया ! तूने मेरी करतूत देखी ! मैं कितना कला-निपुण और शक्तिशाली बन्दर हूं। मेरे सामने तेरी क्या शक्ति है ? बैया बेचारा आंखें मलता हुआ बोला—कुपात्र को कभी भी हितशिक्षा नहीं देनी चाहिए। अगर मैं मौन रहता तो आज यह दुष्परिणाम क्यों भोगना पड़ता !

विवेकशील व्यक्ति पात्र-अपात्र का देखकर ही उपदेश देते हैं। अपात्र को दिया हुआ उपदेश नुकसान करता है। अतः योग्यायोग्य की परीक्षा अवश्य ही करनी चाहिए।

शिक्षा देना योग्य को, करके हृदय विचार।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, होगा अमित बिगाड़ ॥

मायाजाल

एक शरारती चालाक लड़का था। उसके पिता का देहान्त हो जाने के कारण वह अति स्वतंत्र हो गया। बाल्य-अवस्था से ही वह दुर्गुणों का दास बन गया था। जुआ खेलता था। शराब के नशे में चूर रहता था। एक दिन उसे रुपयों की आवश्यकता थी। उसने सोचा, कहां से लाऊं, चोरी करना जानता नहीं हूं। आखिर उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क ने एक रास्ता खोज निकाला—किसी एक-दूसरे गांव में एक बुड्ढे को औरत की जरूरत थी। वह लड़का वहां जा पहुंचा। बुड्ढे से बातें करने लगा। उसने कहा—सेठ साहब ! औरत बिना घर बरबाद हो जाता है।

श्मशान जैसी वीरानगी रहती है। आपकी यदि इच्छा हो तो पन्द्रह सौ रुपया दो, मैं अपनी विधवा बहन का नाता आपके साथ कर दूंगा।

बुड्ढे के पास धन बहुत था। वह बोला—तुम जो कहते हो सब स्वीकार है। लड़का घर पहुंचा। मां के साथ मीठी-मीठी बात बनाता हुआ बोला—मां ! चलो कुछ दिन के लिए तुम्हें मौसी के यहां छोड़ आऊं। मां ने पुत्र का कहना मान लिया। ऊंट पर चढ़ाकर वह कोसों दूर उस गांव में अपनी मां को ले गया। उस बुड्ढे के घर जाकर उसने उसे उतार दिया और पन्द्रह सौ रुपये गिनने लगा। उसकी मां ने सोचा, यहां कहां ले आया। सन्देह उत्पन्न हुआ। जांच-पड़ताल करने से सही स्थिति का ज्ञान हुआ। उसने जोर से हल्ला मचाया। अड़ोसी-पड़ोसी अनेक लोग एकत्र हो गये। दोनों तरफ की जानकारी करने से सब लोग समझ गये कि दोनों ओर से धोखा हुआ है। वह मां ऐसा कुकृत्य करना नहीं चाहती थी। बड़ी कठिनता से वह उस मायाजाल से निकलकर घर पहुंची। मन ही मन दुःख करने लगी — हाय ! ऐसा पुत्र···

यह कलियुग की एक घटित घटना है। कुछ ही समय पहले अखबार में इसका उल्लेख था। स्वार्थ-सिद्धि के लिए मानव मानवता को भूल जाता है और एक-दूसरे को धोखा देने के लिए क्रूर बन जाता है। किन्तु जब तक नैतिकता की लौ नहीं जलेगी, तब तक देश में अंधेरा ही अंधेरा छाया रहेगा।

लोभी फंसकर लोभ में, करता मायाजाल।
मां को भी सुत ने दिया, धोखा अति विकराल॥

आत्म-स्वरूप का ज्ञान

एक गर्भवती सिंहनी थी। वह अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए शिकार की खोज में जंगल में इधर-उधर भटक रही थी। उसने दूर से भेड़ों के एक झुण्ड को चरते देखा। उन पर आक्रमण किया। ज्यूं ही छलांग मारी त्यों ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये। मातृविहीन बच्चे का जन्म हुआ। भेड़ें उस बच्चे की सार-संभाल में जुट गयीं। भेड़ों के बच्चों के साथ वह सिंह-शिशु बड़ा होने लगा। हर क्रिया भेड़ों की भांति करने लगा। घास-पात खाकर रहने लगा। भेड़ों से 'मैं-मैं' करना भी सीख लिया। कुछ ही समय पश्चात् वह एक बलिष्ठ सिंह जैसा बलवान बन गया, फिर भी वह अपने आपको भेड़ ही समझता था और उन सब में ही अपना जीवन यापन कर रहा था।

उसी जंगल में एक दिन एक सिंह शिकार हेतु आ पहुंचा। उसने उस भेड़-सिंह को देखा। आश्चर्य हुआ— भेड़ों के बीच यह सिंह कहां से आ गया। उसे यह 'तू भेड़ नहीं, सिंह है' समझाने के लिए ज्यों ही वह आगे बढ़ा त्यों ही भेड़ों का झुण्ड दौड़ने लगा और साथ-साथ वह भेड़-सिंह भी। परन्तु उस सिंह ने उस भेड़-सिंह को अपने यथार्थ स्वरूप का भान कराने के लिए प्रयास नहीं छोड़ा। वह सब कुछ देखता रहा कि यह भेड़-सिंह कहां रहता है, कहां सोता है, क्या करता है। एक दिन उसे अकेला देखकर वह छलांग मारकर उसके पास आ पहुंचा और बोला—'अरे! तू भेड़ों के साथ रहकर अपने यथार्थ स्वरूप को कैसे भूल गया? तू भेड़ नहीं है, तू तो सिंह है। इन भेड़ों के बीच रहकर अपने जीवन को क्यों नष्ट कर रहा है? भेड़-सिंह ने कहा—मैं तो भेड़ हूं, सिंह कैसे कहला सकता हूं? मैं आपका कहना कभी भी मानने वाला नहीं हूं, चाहे आप कितना भी प्रयत्न करें। यों कहकर वह भेड़ों की भांति मिमियाने लगा। कुछ ही देर बाद उस सिंह ने भेड़-सिंह को उठाकर किसी तालाब के किनारे ले जाकर कहा, 'अब देख पानी में, जैसा प्रतिबिम्ब मेरा पड़ रहा है वैसा ही प्रतिबिम्ब तेरा है। तेरा और मेरा आकार समान है। तू अपने सही रूप को भूल रहा है।' अब वह अपने प्रतिबिम्ब को देखने लगा। स्वयं के आकार का सही आभास होते ही वह सिंह की तरह गरजने लगा।

हर इन्सान में अनन्त शक्ति है। उस शक्ति का दर्शन ही आत्म-दर्शन है। जब तक मानव उसका दर्शन नहीं कर पाता तब तक वह अपने आपको भेड़-सिंह की भांति कमजोर और निर्बल समझता है। पर ज्यों ही उसे आत्म-रूप का ज्ञान हो जायेगा, वह सहजानन्द में रमण करने लग जायेगा।

जब तक आत्मा को नहीं, आत्म-रूप का भान।
तब तक वह पर-द्रव्य में, करती रमण महान॥

श्रद्धा

सेठ अमरचन्द ने निजी नौकर राजेन्द्र से कहा—जाओ, बाजार से घी ले आओ। राजेन्द्र बोला—सेठ साहब! अभी मैं जा नहीं सकता, क्योंकि चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है। गलियों में कहीं भी रोशनी की व्यवस्था नहीं है। मुझे अंधेरे में डर लगता है। सेठ बोला—तुम झूठा वहम कर रहे हो। तुम दिल में यह मानकर जाओ कि डर कुछ भी नहीं है। बेचारा चला। सीढ़ियों से ही वापस लौट आया। सेठ ने पूछा—क्या घी ले आया? उसका वही उत्तर था—मैं नहीं जा सकता, मुझे अंधेरे में डर लगता है।

सेठ ने फिर वही उपाय बताया। वह फिर चला और बीच में से ही लौट आया। तीसरी बार फिर सेठ ने कहा—दुनिया में हिम्मत की कीमत है। साहसी व्यक्ति हर कार्य में सफल होता है। जाओ, घी ले आओ। वह चला, सीढ़ियों से नीचे उतरा और दो ही क्षणों में घी से भरा बर्तन सेठ साहब के सामने रख दिया। सेठ ने पूछा—क्या घी ले आए? राजेन्द्र बोला—हां, ले आया। सेठ ने सूंघकर कहा—अरे मूर्ख! घी कहां? यह तो गधे का मूत्र है। राजेन्द्र बोला—मैं कहता हूं आपको, यह घी ही है। आप इसे घी मानने में क्यों संकोच कर रहे हैं? सेठ बोला—जो घी नहीं, उसे मैं घी कैसे मान लूं? राजेन्द्र बोला—मुझे डर लगता है, तब मैं कैसे मान लूं कि डर कुछ भी नहीं है? आखिर सेठ ने सोचा—तर्क में कुछ भी उपलब्धि नहीं है। श्रद्धा ही जीवन का सारभूत तत्त्व है।

हर क्षेत्र में श्रद्धावान् ही सफल होता है। जब तक किसी एक के प्रति श्रद्धा नहीं टिकेगी, तर्क के प्रति तर्क और तर्क से तर्क करते रहोगे तो लक्ष्य से भटक जाओगे, मिलेगा कुछ भी नहीं।

नहीं कभी भी तर्क से, मिल सकता नवनीत।
श्रद्धा रखने से तुरत, मिलता तत्त्व पुनीत॥

मलाई की लड़ाई

एक किसान ने अपनी पत्नी से कहा—कल मुझे किसी गांव जाना है। घर का ध्यान रखना। वह बोली—किसलिए जाते हो? क्या काम है? किसान बोला—भैंस लाने के लिए जाता हूं। वह बोली—आप अच्छी तरह जाइये, क्योंकि परिवारवाले घर में भैंस होने से कई तरह के लाभ हैं। पर एक बात मेरी माननी पड़ेगी। दूध की मलाई मैं अपनी मां को खिलाऊंगी। किसान बोला—'यह कैसे हो सकता है? भैंस लाऊं मैं और मलाई खाए तुम्हारी मां!' इस बात पर विवाद बढ़ा। गाली-गलौज की नौबत भी आ गई। झगड़ा होने लगा। कोलाहल से मकान गूंजने लगा। तनातनी और खींचातानी से वातावरण दूषित बन गया।

पड़ोसी आया। झगड़े का कारण समझा। लाठी को घुमाकर घड़े फोड़ने लगा। किसान झल्लाता हुआ बोला—अरे! मेरे घर का नुकसान क्यों कर रहे हो? ऐसे घड़ों को फोड़ने से क्या लाभ है? पड़ोसी बोला—तेरी भैंस ने मेरा बहुत नुकसान कर दिया, सारा खेत चर गई। किसान बोला क्यों ऐसी झूठी बातें बनाते हो? मेरे घर भैंस है ही नहीं, फिर तुम्हारा खेत कैसे चर गई? बिना नींव महल झुकाना चाहते हो! पड़ोसी बोला—दूसरों को शिक्षा देना सरल है, अपने

आप को टटोलना बड़ा मुश्किल है । जरा अपने आप को देखो, अभी भैंस ही नहीं है तो फिर मलाई की लड़ाई करना क्या बुद्धिमत्ता है ?

पड़ोसी की बात सुनते ही किसान की आंखें खुलीं । हृदय में प्रकाश हुआ । विवेक जगा । अपने कृत कार्य से लज्जित हुआ । लड़ाई शान्त हुई । घर में प्रेम की गंगा बहने लगी । प्रेम ही जीवन का शृंगार है । स्वयं की गलती का आभास होते ही किसी भी प्रकार का तनाव नहीं रहता । खींचातानी नहीं रहती । वैमनस्य दूर होते ही शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है ।

नहीं लड़ाई टिक सके, बिना सही बुनियाद ।
'मुनि कन्हैया' नहीं टिके, बिना नींव प्रासाद ।।

क्षमा वीरों का भूषण

यूनान देश के बहुत बड़े विचारक 'सुकरात' का नाम आज भी दुनिया में सुप्रसिद्ध है । वे कभी-कभी अपने विचारों में इतना डूबे रहते थे कि उन्हें खान-पान आदि का भी भान नहीं रहता था । घर पहुंचते-पहुंचते उन्हें देर हो ही जाती थी । उनकी पत्नी घर बैठी-बैठी उनकी प्रतीक्षा में थक जाती थी । जब वे आते तो उनकी पत्नी कहा करती, 'आप समय पर आ जायें तो भोजन आदि से समय पर निवृत्त हो जायें ।' सुकरात कहते, 'अच्छा, मैं ध्यान रखूंगा, समय पर आने का प्रयत्न करूंगा ।'

एक दिन की बात है, वे अपनी मित्र मण्डली के साथ चिन्तन-मनन में इतने लीन हो गये कि घर बहुत देरी से पहुंचे । उनकी पत्नी कलहकारिणी थी । बात-बात पर झगड़ा करती थी । जब उसे गुस्सा आता तो वह विवेक-भ्रष्टा बन जाती थी । छोटे-बड़े का उसे भान नहीं रहता था । सुकरात को देरी से आये देखकर उसकी आंखों में खून प्रवाहित हुआ । अधरावली में कम्पन बढ़ा । जोर-जोर से गरजने लगी । खरी-खोटी सुनाने लगी । सुकरात मौन रहकर उसकी झिड़कियां सुनते रहे और रोटी खाते रहे । भोजन करने के बाद उन्होंने शान्त भाव से पत्नी की ओर देखा । इससे उसका गुस्सा दुगुना हो गया, मानो तप्त तवे पर पानी डाला हो । मुंह से फिर अनर्गल शब्दों का प्रयोग करने लगी । कृत्य-अकृत्य का भान भूल गई ।

सुकरात ने सोचा—इसका गुस्सा शान्त नहीं हो रहा है, अब यहां रहना उचित नहीं । घर से चले । ज्यों ही बाहर जाने लगे त्यों ही उसकी पत्नी हारकर

और भी झल्लाई। मन का वेग बढ़ने लगा। बरबराने लगी। अपने वश में न रह सकी। झट उठी, रसोई के बाहर आयी। सफेदी करने के लिए घड़े में पड़े हुए चूने के घोल को उन पर उंडेल दिया। फिर भी सुकरात ने क्षमा को नहीं छोड़ा। उस पर तनिक भी गुस्सा नहीं किया। प्रत्युत शान्त-भाव से हंसकर कहा—'मैंने सुना था, पहले बादल गरजते हैं और फिर बरसते हैं। तुम जिस समय गरज रही थीं तब मैं सोच रहा था कि अब बरसोगी भी। और इतने में ही काम बन गया। बिजली तो नहीं गिरी।' सुकरात का यह रहस्य-भरा उत्तर सुनकर वह पानी-पानी हो गई, सुकरात के चरणों में पड़ गई, गुस्सा शान्त हो गया और अपने दुष्कृत्य पर पछताने लगी।

क्षमा वीरों का भूषण है। क्षमावान के आगे दुश्मन भी झुक जाता है। अतः हर व्यक्ति को अपने जीवन में अधिक से अधिक क्षमाधर्म अपनाना चाहिए।

वीरों का भूषण क्षमा, क्षमा हृदय का हार।
क्षमावान के सामने, अनवत है संसार॥

सहिष्णुता का फल

स्वामी विवेकानन्दजी के रहन-सहन में बहुत सादगी थी। उनकी सीधी वेश-भूषा से किसी को पता नहीं लग सकता था कि ये विद्वान हैं। एक बार वे किसी यात्रा पर जा रहे थे। जिस रेल-डिब्बे में वे बैठे थे, उसी में दो अंग्रेज भी थे। वे अंग्रेज साधु-संतों से बड़ी घृणा करते थे। इसी कारण वे रास्ते भर साधुओं की निन्दा करते रहे। उन्होंने सोचा—यहां के साधु लोग पढ़े-लिखे नहीं होते हैं, वे अपनी भाषा को नहीं समझते हैं। दिल खोलकर कुत्सित शब्दों का प्रयोग करते रहे साधुओं के प्रति। खासकर वे बुराई कर रहे थे स्वामी विवेकानन्द की। आखिर उन दोनों को प्यास लग गई। अंग्रेजी में ही परस्पर बातचीत की। गला सूख रहा है। अगले स्टेशन पर पानी पीना है। स्वामीजी उन दोनों की बातें चुपचाप सुन रहे थे।

स्टेशन आया। गाड़ी रुकी। स्वामीजी दरवाजे पर खड़े हुए। पानी पिलाने वाले आदमी को पुकारा। जब वह निकट पहुंचा तो उन्होंने अंग्रेजों की ओर संकेत करते हुए कहा, 'इन्हें प्यास लग रही है, पानी पिलाओ।' अंग्रेजों ने जब ऐसा सद्व्यवहार देखा तो लज्जा से उनके सिर झुक गये। मन में सोचा, यह व्यक्ति कौन है? इसके दिल में तो बड़ी सहृदयता है। यह तो अंग्रेजी भी जानता है। अपनी सब बातों को यह समझ रहा था, ऐसा प्रतीत होता है। कुछ ही समय

पश्चात् उन्हें यह भी पता लग गया कि यह स्वामी विवेकानन्दजी ही हैं। तब तो और भी अधिक शरमाये और उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे—ये महात्मा कितने उदार हैं। कितने सहनशील हैं। हमने इन्हें इतनी गालियां दीं। पर ये बिलकुल भी तप्त नहीं हुए, नाराज नहीं हुए, प्रत्युत हमारे लिए पानी की व्यवस्था की। धन्य है इनकी सहिष्णुता और उदारता को। ऐसे महापुरुष ही विश्व का कल्याण करेंगे। दोनों ही व्यक्ति अपनी गलती पर बहुत पछताए।

अप्रिय वचन और गालियों को सुनकर जो गुस्सा नहीं करता है, वही मानव विश्व का ताज बन सकता है। गालियों को समभाव से सहन करने वाले के सामने दुश्मन भी मित्र बन जाता है।

सुन करके अप्रिय वचन, रखता जो समभाव।
जग में उसका अन्य पर, पड़ता अमित प्रभाव॥

सहानुभूति

शहर के निकट एक छोटा-सा गांव था। मार्ग में नदी होने के कारण गांव वालों को आने-जाने में काफी दिक्कत उठानी पड़ती थी। आखिर सबने मिल-जुलकर श्रमदान से एक छोटा-सा पुल बनाया। वह बहुत ही सकरा था। उस पर से एक ही व्यक्ति आ-जा सकता था। एक बार की बात है कि दो मनुष्य, एक पूर्व दिशा से और एक पश्चिम दिशा से उस पर आ पहुंचे। दोनों पुल को पार करना चाहते थे। पुल के मध्य में दोनों का मिलाप हुआ। बात ही बात में दोनों भिड़ गये। कोई भी मुड़ना नहीं चाहता था। न एक-दूसरे को मार्ग देने के लिए तैयार था। आपस में तनाव बढ़ा। गाली-गलौज की नौबत आ गई। वचनयुद्ध के बाद हाथापाई भी शुरू हो गई। लड़ते-लड़ते कुछ ही क्षणों में दोनों पुल के नीचे गिर पड़े और दोनों ने ही सदा के लिए आंखें मीच लीं। नदी पर स्नान करने वाले लोगों ने यह दृश्य देखा तो सबके मुंह से सहज आवाज निकली 'हाय! मनुष्य-मनुष्य का भी सहयोग करना नहीं चाहता।'

कुछ दिनों बाद दो बकरियां उसी पुल पर पहुंची। एक पूर्व दिशा से आ रही थीं और दूसरी पश्चिम दिशा से। पुल के मध्य भाग में दोनों का मिलन हुआ। दोनों पुल को पार करना चाहती थीं। कुछ क्षणों तक दोनों एक-दूसरे के मुंह की तरफ झांकने लगी। पश्चिम दिशा से आने वाली बकरी पुल पर झट लेट गई। उसकी यह सहानुभूति देखकर पूर्व दिशा से आने वाली बकरी बहुत ही खुश हुई और धीरे-धीरे उस पर पैर रखकर आगे बढ़ गई। दोनों बकरियां पुल को पार करके

अपने इच्छित स्थान पर पहुंच गई। यहां हर स्नान करके नावों से यह दृश्य भी देखा। सबके मुंह से एक ही स्वर निकला कि पारस्परिक सहयोग के अभाव में मनुष्यों ने तो अपना जीवन खो दिया और बकरियों (पशुओं) ने आपसी समझौते और सहयोग से निर्बाध गति से पुल को पार कर अपना स्थान प्राप्त कर लिया, धन्य है इनकी सहानुभूति को !

सहयोग और सहानुभूति सफलता का महामन्त्र है। इसमें टूटे दिल को जोड़ने की अगम्य शक्ति होती है। अतः हर व्यक्ति को सहयोग और समझौते की भावना का विकास करना चाहिए।

आपस का सहयोग ही, सफल सफलता मन्त्र।
भिन्नभाव बिन क्या कभी, चल सकता जन-तन्त्र ॥

धार्मिक कौन ?

विद्वद्जनों की सभा जुड़ रही थी। विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर हो रहे थे। नगर के गणमान्य व्यक्ति भी वहां उपस्थित थे। अचानक एक मानव नया रूप धारण करता हुआ वहां आ पहुंचा। किसी गोष्ठी सदस्य ने उससे जिज्ञासा-भरी भाषा में पूछा—बन्धुवर ! तुम्हारे जीवन की विशेषता क्या है ? वह बोला—हर व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य होती है। मेरे जीवन की विशेषता यह है कि मैं अपने धर्म को कभी भी नहीं छोड़ता। सभी विद्वानों ने उसे आश्चर्य भरी दृष्टि से निहारा। सभी के कान उसकी बात सुनने को उत्कंधर हो रहे थे। वह बोला—मैंने जरूरत पड़ने पर शराब पी ली, जुआ खेल लिया, पर धर्म को नहीं छोड़ा। भूख की समस्या बड़ी जटिल होती है। क्षुधातुर को सब कुछ करना पड़ता है। जीवन-निर्वाह हेतु कभी-कभी चोरी भी करता हूं। डाका भी डाल देता हूं। किन्तु धर्म को नहीं छोड़ा।

मन की दुर्बलता हर आदमी में होती है। युवावस्था में इन्द्रियां अन्धी बन जाती हैं। काम-वासना की ओर मन-वानर दौड़ता रहता है। इन्द्रिय-अधीन बनकर वेश्यागमन भी कर लेता हूं, पर मैंने धर्म नहीं छोड़ा। प्रतिकूल अवस्था में क्रोध भी कर लेता हूं। कभी-कभी तो पारा इतना गरम हो जाता है कि क्रोधान्ध बनकर मैंने खून भी कर डाला, पर धर्म नहीं छोड़ा। वह आंख मूंदकर स्वप्रशंसा के गीत गाता चला गया। किसी एक सदस्य से रहा नहीं गया तो उसने सादर पूछा—महाशय ! आपका कथन विचित्र-सा लगा, बताइये तो सही, आपका धर्म क्या है ?

वह अपनी गर्व की भाषा में बोल पड़ा—'मैंने अछूत के हाथ का नहीं खाया।

अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा, फिर भी मैंने अपने इस धर्म पर अटल रहा।'

ऐसे धार्मिकों से समाज का कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। धार्मिक कहलाना जितना सरल है उतना ही धर्म को आचार और व्यवहार में लाना कठिनतम माना जाता है। सच्चा धार्मिक वही है जिसका आचार पवित्र हो।

सच्चा धार्मिक है वही, जिसका हृदय पवित्र।
'मुनि कन्हैया' मानता, दुश्मन को भी मित्र॥

अभय कौन ?

एक चूहे ने तपस्या करके शंकर से वरदान मांगा कि हे प्रभो ! मुझे रात-दिन बिल्ली का भय रहता है। मैं सुख से नींद नही ले सकता। न सुख से खाना ही खा सकता हूं। अतः आप मुझे बिल्ली बना दीजिए। शंकर ने वैसा ही किया। बिल्ली बन जाने के बाद अब उसे कुत्ते का भय सताने लगा। इसी दुविधा को लेकर वह शंकर के पास गया और बोला—मैं तो कुत्ते के भय से आक्रान्त हूं। हृदय हरदम कांपता रहता है कि कही कुत्ता निगल न जाये। अतः कृपा करके आप मुझे चीता बना दीजिए। शंकरजी उस पर सन्तुष्ट थे। अतः उसकी बात कैसे टाल सकते थे ! वह चीता बन गया। अब भी वह अभय कहां था। हर समय उसे अरण्य के स्वामी सिंह का भय कुरेदने लगा। मन में अशान्ति का स्रोत बहने लगा। दौड़ा-दौड़ा फिर शंकर की छत्रछाया में पहुंचा और हाथ जोड़कर बोला—देव ! क्या करूं, मन मे स्वस्थता नही है, शान्ति नहीं है। कहीं सिंह आकर मुझे कुचल न दे। क्योंकि वह मेरे से बलिष्ठ है। शंकर ने उसे चीते से सिंह और सिंह से आखिर मनुष्य बना दिया।

शंकर ने उससे एक दिन पूछा—क्यों ? अब तो कोई डर नही सता रहा है ? सर्वश्रेष्ठ योनि में पहुंच गया। उसने कहा—देव ! मैंने तो सोचा था कि मनुष्य होने के बाद कोई समस्या रहेगी ही नही। किसी का भय सतायेगा ही नही। किन्तु यह बात नही है। अब भी मेरे मन में समाधि नहीं है। हरदम मैं चिंतित रहता हूं। मौत का डर आज भी सता रहा है। मनुष्य होने पर भी मेरी समस्या सुलझ नहीं पायी है। मैं चाहता हूं कि मुझे फिर चूहा बना दिया जाये। शंकर ने वर दिया और चूहा अपने मूल रूप में आ गया।

मृत्यु-विजेता ही अभय बनता है। अभय बने बिना जीवन में सुख शान्ति का

संचार नहीं है। अतः अभय की साधना का विकास परम आवश्यक है।

मृत्यु-विजेता बन सके, जग में अभय महान।
अभय बने बिन क्या कभी, मिल सकता निर्वाण॥

सच्चा मित्र कौन ?

एक सेठ था। उसके तीन मित्र थे। पहले मित्र का नाम 'नित्य-मित्र', दूसरे मित्र का नाम 'पर्व-मित्र' और तीसरे का नाम 'नमस्कार-मित्र' था। नित्य-मित्र प्रति-दिन सेठ के घर आता-जाता था। सेठ उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। सहयोग देता था। खान-पान भी साथ चलता था। गुप्त से गुप्त बात के लिए भी कोई पर्दा नहीं था। पर्व-मित्र विशेष पर्वों के दिन सेठ से मिलने आता। भोजन कर वापस चला जाता। नमस्कार-मित्र जब कभी मार्ग में मुलाकात हो जाती तो सेठजी से नमस्कार कर लेता था। एक समय का किस्सा है, सेठ पर राजा क्रुद्ध हो हो गया। उसने देश से निकल जाने का आदेश दे दिया। सेठ ने सोचा, इस विषम स्थिति में मेरा रक्षक और कोई भी नहीं हो सकता, हो सकता है तो मेरा 'नित्य-मित्र'। वहां जाऊं। अवश्य ही मुझे वहां छिपने के लिए स्थान मिल जायेगा।

सेठ आशाभरी दृष्टि से नित्य-मित्र के घर जा पहुंचा और आत्मव्यथा सुनाते हुए उसने कहा—मैं तुझे अपना उत्कृष्टतम साथी समझता हूं, तू मुझे शरण दे। नित्य-मित्र ने कहा—तू राजा द्वारा अपराधी घोषित हो चुका है, ऐसी स्थिति में मैं तुझे आश्रय नहीं दे सकता। इस उत्तर से उसके दुःख का पार नहीं रहा। लज्जित होकर वहां से चल पड़ा। पर्व-मित्र के पास पहुंचा। उसे अपनी कहानी सुनाई। आश्रय के लिए याचना की। किन्तु उसके द्वारा भी न उसे सहयोग मिला, न सहानुभूति के कोई शब्द ही निकले। सेठ की आशा निराशा में परिणत हो गई। आकृति पर उदासी छा गई। संकल्प-विकल्पों का जाल बुनता हुआ चला जा रहा था, मार्ग में अचानक नमस्कार मित्र का मिलन हो गया। उसने सेठ को उदासीन देखकर कहा, 'बन्धुवर! आज ऐसी कौन-सी चिन्ता सता रही है? इतने खिन्न क्यों बन रहे हो?' सेठ ने प्रारम्भ से अन्त तक अपनी दुःखभरी कहानी सुनाते हुए कहा—'अब मैं तेरी शरण में हूं।' नमस्कार मित्र बोला, 'घबराने की जरूरत नहीं है, धीरज रखो, घर चलो।' मित्र के ऐसे ढाढसपूर्ण शब्द सुनकर सेठ बहुत खुश हुआ। आखिर सेठ मित्र के घर चला गया। सेठ की आत्मकथा पुनः सुनी और उसका समाधान भी नमस्कार-मित्र ने ढूंढ निकाला जिससे सेठ सुखी बन गया।

सन्त पुरुषों ने इस शरीर को नित्य-मित्र, परिवार को पर्व-मित्र और धर्म को नमस्कार-मित्र कहा है। दुःख में सच्चा सहयोगी धर्म ही है। अतः हर व्यक्ति को धर्म—नमस्कार-मित्र पर ही विश्वास रखना चाहिए, यही सच्चा मित्र है।

जिनवरभाषित धर्म को, समझो सच्चा मित्र।
'मुनि कन्हैया' धर्म से, मिलता स्थान पवित्र ॥

सच्चा ज्ञान

चार मूर्ख मित्र थे। आपस में अच्छा प्रेम था। लकड़ियां बेच-बेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। एक दिन लकड़ियां बीनने के लिए चारों सघन जंगल में जा पहुंचे। सूर्य की प्रखर किरणों से धरातल तप्त हो रहा था। चारों के शरीर से पसीना टपक रहा था। भूख और तृषा से व्याकुल हो रहे थे। लकड़ियां इकट्ठी करने की चिन्ता भी सता रही थी। चारों ने आपस में सलाह करके एक को खाना बनाने का काम सौंपा और तीनों लकड़ियां बीनने के लिए चल पड़े। जाते समय तीनों ने अपने साथी को सूचित कर दिया था कि भोजन बनाने के लिए आग की आवश्यकता पड़ेगी, इसलिए अरणी की लकड़ी पड़ी है, इसमें से निकाल लेना।

पीछे रहा लकड़हारा खाना बनाने के लिए बैठा। आग के लिए अरणी को ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह देख लिया, पर आग नहीं मिली। फिर उसने सोच-विचारकर उसके दो टुकड़े कर डाले, किन्तु आग नही जली। गुस्से में आकर लकड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, फिर भी आग न निकली। आग के अभाव में खाना बन ही नहीं सकता था। वह बहुत परेशान हुआ। साथियों की प्रतीक्षा करते-करते वह लेट गया। नींद आ गई। इधर तीनों लकड़हारे चार गट्ठर लेकर वहां पहुंचे। साथी को ऊंघते हुए देखा तो वे तीनों आग-बबूला हो उठे। साथी को जगाकर आक्रोश-भरी भाषा में बोले—क्या अभी तक खाना बनाया ही नही?

वह साथी बोला—आप लोग मुझे कैसी लकड़ी दे गये, मैंने तो लकड़ी को ऊपर से नीचे तक देख लिया, टुकड़े-टुकड़े कर दिये, फिर भी मुझे आग नहीं मिली। आग के अभाव में खाना कैसे बनाया जाये? तीनों साथी बोले—लकड़ी काट डालने से आग नहीं निकलती। लकड़ी से आग निकालने का भी सच्चा ज्ञान चाहिए। उन्होंने अरणी को रगड़कर आग पैदा कर ली। खाना बनाया। भूख को शान्त कर अपने गांव जा पहुंचे।

ज्ञान के अभाव में मानव भटक जाता है, इसीलिए भगवान् महावीर ने

कहा—'पढमं नाणं तओ दया'—पहले ज्ञान, पीछे दया। अतः हर व्यक्ति सम्यक्-ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

सही ज्ञान बिन मनुज का, पूर्ण न होता लक्ष।
'मुनि कन्हैया' है सुखद, जिन-वाणी प्रत्यक्ष॥

राजा और बन्दर

एक शिक्षक था। वह बन्दरों को प्रशिक्षण देने में बड़ा निपुण था। बन्दरों को पढ़ाकर बेचना उसने अपना व्यवसाय बना रखा था। एक दिन वह राज-सभा में पहुंचा। साथ में एक बन्दर था। राजा ने पूछा—क्या यह बन्दर प्रशिक्षित है? वह बोला—हां, इसे प्रशिक्षण देते पांच वर्ष हो गये। प्रत्येक कला में यह दक्ष है। राजा ने उस बन्दर की कुछ परीक्षा ली। आखिर उसके प्रशिक्षण से राजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसको खरीद लिया। राजा कहीं भी जाता है तो बन्दर को वह हर समय साथ रखता है। कभी-कभी उसके साथ मनोरंजन भी कर लेता है। कुछ ही वर्षों में राजा और बन्दर में परस्पर आत्मीयता हो गई। वे एक दूसरे के लिए प्राण देने को तैयार रहते थे। वह बन्दर तन-मन से राजा की परिचर्या भी करता था। उससे राजा को यह विश्वास हो गया कि यह वास्तव मे स्वामभक्त है।

एक दिन राजा सो रहा था। बन्दर हाथ में नंगी तलवार लेकर राजा की सुरक्षा मे बैठा पहरा दे रहा था। राजा के गले पर मक्खी बैठ गई। बन्दर ने उसे भगाने के लिए काफी प्रयत्न किया, पर मक्खी नहीं उड़ी, जिससे बन्दर ने क्रोध में आकर मक्खी को उड़ाने के लिए उस पर तलवार चला दी। राजा के प्राण-पखेरू उड़ गये।

बन्दर प्रशिक्षित अवश्य था। किन्तु उसमें मनन व चिन्तन नहीं था। जिसका दुष्परिणाम राजा को भोगना ही पड़ा। प्रशिक्षण के साथ-साथ चिन्तन-मनन व अनुभव की परम अपेक्षा है। अनुभव के अभाव में शिक्षा व विद्या भी घातक सिद्ध होती है।

विद्या भी अनुभव बिना, बने विनाशक हेतु।
है अनुभव सबसे बड़ा, दुखसागर में सेतु॥

पुरुषार्थ

एक चोर किसी के घर चोरी करने गया। घर के सदस्यगण सब निद्रित अवस्था में थे। किन्तु चोर ज्यों ही दरवाजों को तोड़ने लगा, घर वाले जाग गये। हल्ला किया। अड़ोसी-पड़ोसी भी सब जाग गये। चोर भागा। उसे पकड़ने के लिए पीछे-पीछे लोग भी दौड़े। पुलिस ने भी उसका पीछा किया। वह चोर दौड़ता-दौड़ता थक गया। सोचा—अब तो किसी मकान में छिपना ही अच्छा होगा। आगे जाते-जाते जंगल मे एक देवी का मन्दिर आया। वह उस मन्दिर में चला गया। आस-पास के क्षेत्र में वह देवी-मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध था। सैकड़ों व्यक्ति उसकी उपासना के लिए दूर-दूर से आते थे। 'वहां आकर कोई निराश नहीं लौटता'—ऐसा जन-जन में विश्वास जम गया था। चोर भी अपनी मनोकामना को पूर्ण करने मन्दिर के प्रांगण में पहुंचा। देवी को नमस्कार किया। हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से करुण स्वर में बोला—हे देवी! आज मैं तेरी शरण में आया हूं। तू सबकी संरक्षिका है। मेरी भी रक्षा कर। उसकी करुण पुकार से देवी बहुत ही प्रसन्न हुई और बोली—बेटे! जब तुझे पकड़ने के लिए कोई आये तब तू जोर से हुंकार कर देना, उससे सब डरकर भाग जायेंगे।

चोर बोला—हे देवी मां! तेरा कहना बिलकुल ठीक है। किन्तु करूं क्या, भय के कारण मेरा गला रुंध गया है, इस स्थिति में मैं हुंकार नही कर सकता।

देवी बोली—जो तुझे पकड़ने के लिए आये, उसके सामने आंख उठाकर देखना, तेरी आंखों की ज्योति के आगे कोई भी नही ठहर सकेगा और न तुझे कोई पकड़ ही सकेगा।

चोर बोला—देवी! डर के मारे मेरी आंखें पथरा गई हैं, आंखों पर जाला छा गया है। अतः मैं आंख उठाकर किसी को भी नही देख सकता।

देवी बोली—अच्छा, इतना तू कायर है तो कम से कम मन्दिर के किवाड़ बन्द कर लेना, फिर तुझे कोई भी नहीं पकड़ सकेगा।

चोर बोला—मातेश्वरी! मेरे पर तेरी बहुत कृपा है, पर मेरे हाथों में तो बहुत शिथिलता आ रही है। डर के कारण ये इतने सठिया गये हैं, मैं किवाड़ बन्द नही कर सकता।

देवी ने विनोद-भरी भाषा मे कहा—रे आलसी! तू तो बिलकुल निष्क्रिय बन रहा है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में फलवान नही बन पाता। जा, मेरी प्रतिमा के पीछे तो छिप जा।

वह बोला—मां! दुःख-निवारक तू है, हृदय-प्रकाशक तू है। जन-जीवन-विकासक तू है। पथ-प्रदर्शक तू है। किन्तु भय के कारण मेरे पैर स्तब्ध हो गये हैं,

मैं चल नहीं सकता।

देवी की आकृति पर क्रोध का आवरण छा गया। अधरावलि को कंपाती हुई दुत्कार की भाषा में उसने कहा—चला जा यहां से, ऐसे पुरुषार्थहीन, निर्वीर्य, निकम्मे व्यक्ति की सुरक्षा कभी नहीं हो सकती।

दुख से छुटकारा पाने के लिए पुरुषार्थ की परम आवश्यकता है। 'उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः'—उद्यम से प्रत्येक कार्य सिद्ध हो सकता है।

पुरुषार्थी नर कर सके, कठिन कठिनतम काम।
नही आलसी पा सके, अपना लक्ष्य ललाम॥

अपना दोष

एक महाजन था। उसके घी और तम्बाकू का बहुत बड़ा व्यवसाय था। वह अपने व्यापार मे कभी भी अनीति नही करता था। सरल-स्वभावी व मधुरभाषी होने के कारण वह आस-पास के क्षेत्र मे जनप्रिय था। उसके एक भोला-भाला लड़का था। सेठ को एक दिन किसी कार्यवश बाहर जाना था, किन्तु मन मे चिन्ता थी कि दुकान पर कौन बैठेगा। लड़के ने कहा—पिताजी! चिन्ता करने की जरूरत नही है, दुकान को मैं सम्भाल लूंगा। आप मुझे वस्तुओं के भाव बता दें।

पिता ने कहा—पुत्र! अपनी दुकान पर घी और तम्बाकू दो ही चीज हैं। दोनों के एक भाव हैं। पर एक बात विशेष याद रखना, जब तक खुले हुए टीन खत्म न हो जायें, दूसरे टीन मत खोलना। पुत्र को शिक्षा देकर पिता गांव चला गया। पुत्र दुकान पर आया। चारों तरफ नजर दौड़ाई। एक तरफ घी के टीन पड़े थे और एक तरफ तम्बाकू के टीन। दोनों ओर एक-एक टीन आधे खाली थे। उसने सोचा—पिताजी कितने मूर्ख हैं, एक भाव की वस्तु के लिए दो टीन रोक रखे हैं। उसने घी का टीन उठाया और तम्बाकू वाले टीन में उसे उड़ेल दिया। इतने में घी का ग्राहक आया। उसने उसमें से घी दिखाया। ग्राहक ने कहा—घी में तम्बाकू कैसे? हमें असली घी चाहिए। वह गुस्से में आकर बोला—यह तो असली घी है, लेना हो तो लीजिए, वरना चले जाइये यहां से!

थोड़ी देर बाद तम्बाकू का ग्राहक आया और पूछा—सेठ साहब कहां हैं? वह बोला—सेठ की क्या आवश्यकता है, मैं बैठा हूं उनका लड़का। क्या चाहिए? ग्राहक बोला—तम्बाकू लेने आया हूं। उसने उसी टीन में से लाकर दिखा दी। ग्राहक ने कहा—मूर्ख! यह क्या तम्बाकू है? वह बोला—मूर्ख मैं क्यों, मूर्ख तुम

हो, लेना हो तो लो वरना आगे चलो। यहां अंट-संट बोलने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार अनेक ग्राहक आये। उनको वही दिखाया जाता था सब। खाली हाथ लौट गये। दूसरे दिन पिता आया। पुत्र से दुकान का हाल पूछा तो वह गरज पड़ा—पिताजी! आपने सब ग्राहकों को बिगाड़ रखा है। जो भी आता है मुझे मूर्ख व गधा कहता है। मैं आपका पुत्र मूर्ख क्यों? मूर्ख वे हैं। पिता ने कहा—पुत्र! तूने ग्राहकों को माल अच्छी तरह नहीं दिखाया होगा। चलो दुकान पर चलें।

पुत्र ने कहा—पिताजी! एक समझदारी तो आपकी भी मुझे अच्छी नहीं लगी। घी और तम्बाकू दोनों का एक भाव है, फिर भी आपने अलग-अलग टीन रोक रखे थे। मैंने उनको मिलाकर एक टीन खाली कर रख दिया। पिता ने हंसते हुए लाड़ले बेटे से कहा—बेटे! आओ, उस एक टीन को भी कूड़ा-खाना में डालकर खाली कर आओ और तुम अपना दोष देखो। वास्तव में ग्राहक मूर्ख नही हैं, मूर्ख तुम हो।

जो व्यक्ति स्वयं की त्रुटि को नही देखता है उसका कभी भी सुधार नही हो सकता। अतः सब आत्मदोषदर्शी बनें—इसी में सबका भला है।

अपनी त्रुटि का है नहीं, जिसे ज्ञान तिल मात्र।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, बने नहीं गुण-पात्र ॥

असत्य निर्णय

राजा वसु सत्यवादी था। जहां भी जाता वहां उसे अपूर्व सम्मान मिलता था। यहां तक कहा जाता है कि सत्य के प्रभाव से उसका सिंहासन आकाश में अधर रहता था। किसी में परस्पर विवाद हो जाता तो राजा वसु से न्याय कराया जाता था। एक बार ब्राह्मणों व नारद में किसी विषय को लेकर विवाद छिड़ गया। न्याय कराने के लिए राजा वसु के पास आये। ब्राह्मणों ने कहा—'राजन्! 'अजैर्यष्टव्यं'—इस वेद-वाक्य के आधार से हमारा कहना है कि यज्ञ में बकरों की बलि दी जानी चाहिए।' नारदजी बोले—राजन्! इस उक्ति का यह अर्थ नितान्त गलत है। इसका सही अर्थ है कि 'न जायन्ते इति अजाः व्रीहयः, अर्थात् स्वतः निष्पन्न धान्य की ही यज्ञ में आहुति दी जानी चाहिए। आप सत्यवादी हैं, जो निर्णय दे दें, वही मान्य और वही सत्य होगा।

राजा वसु ने दोनों पक्षों की बात सुनी, जो कि तर्क बल से अपने-अपने अभिमत की पुष्टि कर रहे थे। राजा वसु ने सोचा—नारदजी का पक्ष सत्य है और

ब्राह्मणों का असत्य। किन्तु ऐसा निर्णय देने से मेरे कौटुम्बिक ब्राह्मण नाराज हो जायेंगे, इसी पारिवारिक मोह और आग्रह ने उसे सत्य से विचलित कर दिया। जीवन में उसने कभी भी सत्य का परित्याग नहीं किया था, किन्तु इस अवसर पर अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—ब्राह्मणों का कथन सत्य है और नारदजी का असत्य। ब्राह्मणों की खुशी का पार न रहा। बांसों उछलने लगे। अपने विजय पर अकड़ते हुए नारदजी की हार पर खिलखिलाने लगे। नारदजी को यह बुरा लगा, किन्तु करते क्या? झूठ की कभी जय नहीं होती और सत्य की पराजय नहीं होती। वसु के उस असत्य निर्णय का साक्षात् फल मिलना ही था, उसका आकाश में अधर रहने वाला सिंहासन डोल उठा और धड़ाम से नीचे आ गिरा। इससे राजा वसु को बड़ा दुःख हुआ और वह मन ही मन पछताने लगा—हाय! असत्य निर्णय नहीं देता तो···

सत्य विजय है। असत्य पराजय है। सत्य में शक्ति है। असत्य में कमजोरी है। किसी भी स्थिति में सत्य को नहीं छोड़ना चाहिए।

सुनकर वसु भूपाल का, निर्णय सर्व असत्य।
अधर रहा ना जगत में, सिंहासन यह तथ्य॥

श्रद्धा से लाभ

एक योगी वन में साधना करता था। अचानक वहां नारदजी पहुंच गये। योगी ने पूछा—हे नारद ऋषि! आप कहां जा रहे हैं? नारद ने कहा—मैं ब्रह्माजी के पास जा रहा हूं। योगी ने कहा—'मुझे मुक्ति कब मिलेगी, मेरे इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्माजी से अवश्य लेकर पधारें।'

नारदजी आगे चले। मार्ग में फिर एक योगी मिला। उसने भी वही प्रश्न नारदजी के सामने रखा—'मुझे मुक्ति कब मिलेगी, इसका उत्तर चाहिए।' दोनों के प्रश्न लेकर नारदजी ब्रह्माजी के पास पहुंचे। वंदन-नमस्कार किया। दोनों हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी से उन दोनों का उत्तर लेकर नारदजी चले। वे पहले योगी के पास पहुंचे। बोले—योगिन्! ब्रह्माजी ने आपके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि दस हजार वर्षों पश्चात् आपको मोक्ष मिलेगा।

यह सुनते ही वह योगी विचलित हो गया। इतने वर्ष हो गये साधना करते-करते, अभी तक कुछ भी लाभ नहीं मिला। क्या सार है साधना में? कितने कष्ट सहे! कष्ट सहते-सहते थक गया। ऐसे सोचकर वह अपने घर चला गया।

दूसरे योगी के पास नारदजी पहुंचे और बोले—योगिन् ! आप जिस वट-वृक्ष के नीचे साधना कर रहे हैं, उस वृक्ष के जितने पत्ते हैं, उतने ही वर्षों के बाद आपको मोक्ष मिलेगा। यह सुनते ही वह योगी अवाक् रह गया। फिर भी उसने साधना नही छोड़ी। स्थिर रहा। घबराया नहीं। श्रद्धा से साधना करते-करते मोक्ष पहुंच गया।

जो व्यक्ति श्रद्धा से साधना करता है उसकी साधना अवश्य ही फलित होती है। जो विचलित हो जाता है, साधना मे श्रद्धा नही रखता है, वह मानव उस योगी की तरह संसार मे भटकता रहता है। वास्तव में श्रद्धा से ही लाभ मिलता है।

उस योगी को झट मिला, श्रद्धा से शुभ लाभ।
'मुनि कन्हैया' जगत में, श्रद्धा से ही आब ॥

परिग्रह पाप का मूल

दो भाई थे। आपस में अच्छा प्रेम था। परस्पर चिन्तन चला। यहां किसी भी प्रकार का व्यापार नही है इसलिए दोनों ही परदेश चले गये। कपड़े का व्यापार किया। कुछ ही समय मे लाख रुपये कमा लिये। घर की याद आते ही दोनों अपने गांव की ओर रवाना हो गये। चलते-चलते मार्ग में बड़े भाई का मन बिगड़ गया। उसने सोचा, मेरे हिस्से में धन आधा आयेगा। छोटे भाई को मार दू तो सारा धन मेरे पास रह जायेगा।

इधर छोटे भाई के दिल में भी विकृति उत्पन्न हो गई--यदि मैं बड़े भाई का कत्ल कर दूं तो लाख रुपयों का मालिक मैं ही बन जाऊंगा। क्या है, कौन देखता है ? मार दूं बड़े भाई को। तैयारी कर ही रहा था। इतने में उसके विचारो ने मोड़ खाया। सद्‌बुद्धि का अभिसंचार हुआ। धन के लिए भाई की हत्या करूं ? धिक्कार है मेरे जीवन को ! यह परिग्रह पाप का मूल है। परिग्रह को रखने में लाभ नहीं है। बड़ा भाई सो रहा था। छोटे भाई ने रुपयों की झोली पानी में बहा दी।

रुपयों की आवाज होते ही वह चौंककर उठा और बोला—अरे भैया ! अभी यह शब्द किसका हुआ ?

छोटे भाई ने विनम्र शब्दों में कहा—भाई साहब ! क्या कहूं ? बात कहने जैसी नही है। यह धन अनर्थ का मूल है। इस धन के लिए मैं आपकी हत्या करने

के लिए तैयार हो गया, किन्तु आखिर सद्बुद्धि जागृत होते ही मैंने धन की झोली नदी में बहा दी। बड़े भाई ने कहा—बहुत अच्छा किया। मेरे मन में भी ऐसी निकृष्ट विचारधारा उत्पन्न हुई थी कि मैं छोटे भाई को मार दूं। भैया! अब कभी भी अपने को धन का संग्रह नहीं करना है। दोनों भाई अपने-अपने घर पहुंचे और प्रेम से रहने लगे।

गिरकर लालच गर्त में, हुआ बन्धु विकराल।
ज्येष्ठ बन्धु को मार दूं, उमड़े कुत्स विचार॥

तब मैं खुदा के साथ

सन्त खैयाम अपने शिष्य के साथ वन में जा रहे थे। नमाज का समय हुआ। झरने के पानी से वजू करके दोनों ने चद्दर बिछाई। नमाज का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। इतने में तर्जारव करता हुआ अचानक एक सिंह दूर से दिखाई दिया। उसे देखकर शिष्य भयभीत होने लगा, वह दौड़कर वृक्ष पर चढ़ गया। ज्यों-ज्यों सिंह नजदीक आता गया, शिष्य के मन में घबराहट बढ़ती गयी। शरीर थर-थर कांपने लगा। सिंह आया और चला गया। सन्त खैयाम नमाज में इतने लीन हो रहे थे कि उन्होंने सिंह की ओर देखा तक नहीं। सिंह ने भी उन्हें नहीं देखा। शिष्य वापस वृक्ष से नीचे उतरा। नमाज पढ़ी। नमाज सम्पूर्ण होते ही चद्दर उठाकर वे आगे जाने लगे।

अचानक एक मच्छर सन्त खैयाम की नाक पर आ बैठा, उसने काटा। सन्त चीख उठे। वे उस वेदना को सहन नहीं कर सके। शिष्य बोला—संतवर! यह क्या? सिंह पास में से चला गया, तब तो आपने नजर उठाकर देखा तक नहीं और इस तुच्छ मच्छर ने थोड़ा-सा काटा तो इस वेदना को सहन नहीं कर सके, चीख उठे। यह अन्तर क्यों?

सन्त खैयाम ने बहुत ही गहरा उत्तर देते हुए कहा—शिष्य! उस समय मैं खुदा के साथ था और इस समय मनुष्य के साथ हूं।

बाह्य रमण को छोड़कर, रहो खुदा के साथ।
'मुनि कन्हैया' लीनता, फलती हाथोंहाथ॥

बिल पेमेंट करो

एक महिला थी। डॉक्टर की कोठी पर पहुंची। वह बोली—"डॉक्टर साहब ! मेरे पतिदेव का दिमाग खराब हो गया है। हरदम बकवास करते रहते हैं कि 'बिल पेमेंट करो', 'बिल पेमेंट करो'। बस, इसी दिमागी रोग से संग्रस्त हैं। इलाज प्रारम्भ कर दीजिये। यह लीजिए एडवांस के रूप में तीन सौ रुपये। आपकी इच्छा हो तो घर चलिये, अन्यथा यहां ले आऊं आपकी मोटर में।" डाक्टर साहब की नजर तो नोटों पर थी। वह बोला—"हां, मोटर ले जाइए। रोगी को यही पर ले आइये।"

वह महिला वहां से चली और जौहरी बाजार में पहुंची। किसी जौहरी के दुकान पर वह पहुंची और सोलह हजार के मोती खरीदकर उसने सेठजी से कहा—"ये लीजिए तीन हजार रुपये नकद। बाकी तेरह हजार का बिल बना दीजिए और मेरे साथ आप अपने मुनीम को भेज दीजिए। मेरे पतिदेव से बिल पेमेंट करा लेंगे।" सेठ साहब की नजर उन तीन हजार के नोटों पर थी। आदेश मिलते ही मुनीम उस औरत का बिल लेकर रवाना हो गया। उसने कहा—मेरे पतिदेव बहुत बड़े डाक्टर हैं। उनके सामने और कुछ भी मत कहना, बस केवल इतना ही कहते रहना—बिल पेमेंट करो, बिल पेमेंट करो। आपका काम हो जायेगा।

मोटर डाक्टर साहब की कोठी पर पहुंची। अंगुली से इशारा करते हुए उसने कहा—वे बैठे हैं डॉक्टर साहब मेरे पतिदेव, उनसे बिल पेमेंट करवा लेना, मैं उन्हें संकेत करते हुए आऊंगी। बड़ी द्रुतगति से वह डॉक्टर के पास पहुंची और बोली—डॉक्टर साहब ! मेरे पतिदेव आ रहे हैं। आप इलाज प्रारम्भ करें। डॉक्टर साहब तो नोटों के नशे में चूर थे। वह महिला वहां से चली, मोटर में बैठकर नो-दो-ग्यारह हो गई।

वह मुनीम वहां पहुंचते ही जोर से बोला—बिल पेमेंट करो। डॉक्टर साहब ने कहा—आप बैठ जाइए, थोड़ी देर बाद आपका पेमेंट करूंगा। थोड़ी देर बाद उसने तीन-चार बार दोहराते हुए कहा—बिल पेमेंट करो, देर हो रही है। रोगियों की भीड़ मिटते ही डॉक्टर साहब ने उसकी जांच शुरू की। मुनीम बोला—मैं बीमार नही हूं। मेरी क्या जांच कर रहे हो ?

डॉक्टर—हां, मुझे पता है आपके दिमाग में खराबी है, इसलिए आप पुनः-पुनः बोल रहे हैं कि बिल पेमेंट करो।

मुनीम—मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हूं। आपकी धर्मपत्नी अभी सोलह हजार के मोती लेकर आयी है, मैं उसका पेमेंट लेने आया हूं। इसलिए पुनः-पुनः कहना पड़ता है कि बिल पेमेंट करो।

डॉक्टर चौंका और बोला— वह मेरी नहीं, आपकी पत्नी है। उसने कहा—मेरी नहीं, वह तो आपकी घरवाली है। आखिर सारा भेद खुला। वह औरत, गायब, मोटर भी गायब, किसी का भी पता नहीं लगा। डॉक्टर साहब का चेहरा सफेद। हाय, ऐसी धूर्त नारी कि मेरी मोटर भी ले गई। मुनीम के समाचारों से सेठ भी हक्का-बक्का हो गया और उस महिला की धूर्तता पर आश्चर्य और खेद प्रकट करने लगा।

उस महिला ने दिवस में, धोखा दिया अपार।
हाथ मसलते रह गये, डॉक्टर जी साकार ॥

स्थायी पता क्या है ?

सुकरात के शिष्य को किसी ने पूछा—धर्म की व्याख्या क्या है। डायोजनीस ने कहा—इसका उत्तर आज नहीं दूंगा, फिर कभी···किन्तु आप अपना पता तो बतला दीजिये। उसने अपना परिचय-पत्र निकालकर दे दिया।

डायोजनीस क्या यह स्थायी पता है ?

उसने कहा— हां, यह मेरा स्थायी पता है ?

डायोजनीस—तो क्या इससे पहले भी यहीं थे ?

वह असमंजस में पड़ा। कुछ चिन्तन चला। समझ में नहीं आ रहा है। यह व्यक्ति अजीब-सा प्रतीत हो रहा है। कैसे प्रश्न पूछ रहा है ? आखिर उसे एक विकल्प सूझा और बोला— मैं स्थाई रूप से अपनी आत्मा में निवास करता हूं, इसलिए स्थायी पता मेरी 'आत्मा' है।

डायोजनीस— बन्धुवर ! आपने पहले पूछा था कि धर्म की व्याख्या क्या है ? बस, धर्म की परिभाषा यही है—'अपनी आत्मा में रमण करना'। आत्म-मर्यादा का उल्लंघन करना अधर्म है।

डायोजनीस के कलापूर्ण उत्तर से वह व्यक्ति बहुत खुश हुआ और बोला—मैं आपके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हूं। वास्तव में आत्मा में निवास करना ही धर्म है।

जग में सच्चा धर्म है, करना आत्म-निवास।
'मुनि कन्हैया' धर्म से, मिलता शिव-आवास ॥

मेरे दिल में राम

राजस्थान में कहते हैं—'इणरो राम निकल ग्यो'। अर्थात् यह विवेकशून्य है। रामायण का प्रसंग है—सीता ने हनुमान को हीरों का हार दिया। हार तोड़ा और उसमे कुछ देखने लगे।

सीता हंसती हुई बोली—क्या खोज रहे हो?

हनुमान बोला—इसमे राम हैं? यदि इसमे राम नही हैं तो मेरे काम का नही है।

सीता ने कहा—अरे वीर हनुमान! राम तेरे हृदय में तो हैं ही?

हनुमान—माताजी! इसमें क्या संशय है? मेरे अणु-अणु में राम का नाम लिखा हुआ मिलेगा।

यों कहते हुए वीर हनुमान ने अपना कलेजा चीरा तो अन्दर राम नाम लिखा पड़ा था, ऐसा कहा जाता है!

राम बिना हार भी बेकार है। राम (विवेक) बिना मनुष्य का क्या मूल्य है? भगवान महावीर ने कहा—'विवेगे धम्ममाहियं'—विवेक में ही धर्म है। जैन रामायण मे आता है—

> रा उच्चरता मुख थकी, पाप विलाई जाय।
> मति फिर आवै तेहथी, 'म' मो किमाड़ी थाय॥

हर दृष्टि से राम शब्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। सुबह उठते ही कई लोग राम की माला फेरते हैं।

> राम भक्त हनुमान सम, रहो समर्पित सव्य।
> 'मुनि कन्हैया' नित रटो, राम नाम है भव्य॥

लक्ष्य के प्रति श्रद्धा

एकदा मौलाना रूम अपने शिष्यों को लेकर एक खेत में गये। खेत के मालिक किसान ने पानी के लिए पचास-पचास हाथ गहरे चार गड्ढे खुदवाये, किन्तु पानी नही निकलने से उन चार गड्ढों के पास मे ही पांचवां गड्ढा खुदवा रहा था।

शिष्यो ने जिज्ञासा जागृत करते हुए कहा—यह खेत का मालिक जमीन को जगह-जगह से क्यो खोद रहा है? इसके पीछे क्या रहस्य है?

मौलाना रूम ने समाधान देते हुए कहा—शिष्यो इस खेत के मालिक ने खेत में पानी देने के लिए पचास-पचास हाथ गहरे चार कुएं खोदे हैं, एक के बाद एक। मगर चारों में पानी नहीं निकला। अब पांचवां कुआं फिर खोद रहा है। कितना अनभिज्ञ है, कितना मूर्ख है यह ! अगर अपना धन और श्रम वह चारों के बजाय एक ही सौ हाथ गहरा कुआं खोदने में लगाता, तो खेत भी नहीं बिगड़ता और पानी भी मिल जाता। लक्ष्य भी पूरा हो जाता। लेकिन जिस व्यक्ति के दिल में लक्ष्य के प्रति श्रद्धा नहीं होती उस व्यक्ति को सफलता आलिंगन नहीं कर सकती।

जिज्ञासु शिष्यो ! इससे सबक लो ! जिसके हृदय में लक्ष्य के प्रति श्रद्धा नहीं है, जो बार-बार बदलते रहते हैं, उनकी वही गति होती है, जो किसान की हुई। सफलता के इच्छुक मनुष्य को लक्ष्य के प्रति श्रद्धाशील रहना चाहिए। श्रद्धा के अभाव में किसी व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता। सांसारिक, सामाजिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में वही उन्नति कर सकता है जिसके दिल में गहरी श्रद्धा है श्रद्धाहीन का तनिक भी मूल्य नहीं है।

सबको अपने लक्ष्य प्रति, रहना श्रद्धावान्।
बिन श्रद्धा कृषिकार ज्यों, होगा दुःख महान ॥

सोऽहम्

एक गुरु के दो शिष्य थे। एक विनीत था और एक अविनीत। गुरु ने दोनों को 'सोऽहम्' का पाठ पढ़ाया। अविनीत ने साधना तो की नहीं। बाजार में लोगों को कहता फिरता है कि 'मैं ईश्वर हूं', 'मैं ईश्वर हूं'। कुछ विवेकशील लोगों ने कहा—क्यों वृथा बकवास करता है ? ईश्वर बनना कोई सरल कार्य नहीं। मौन में ही फायदा है।

लेकिन वह अविनीत कहां मानने वाला था ! वह तो अपनी धुन में ही मस्त। उसी बात का प्रचार—मैं ईश्वर हूं। लोगों ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके मुख पर चांटा मारा, हाथ पर अंगारे रखे। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—हाय ! मेरा हाथ जल गया। हाय ! मेरा हाथ जल गया। लोगों ने कहा—मूर्ख ! क्यों चिल्लाता है, तू तो ईश्वर है। ईश्वर का हाथ क्या कभी जलता है ? ईश्वर के चांटा लगता है ?

उस विनीत शिष्य ने साधना प्रारम्भ की। क्या पांच इन्द्रियां सोऽहं हैं ?

नहीं। गुरु ने कहा – शिष्य ! साधना कर। क्या मन सोऽहम् है ? नहीं है। क्या बुद्धि सोऽहं है ? नहीं है। साधना करते-करते आखिर उसको नवनीत मिला— 'आत्मा ही सोऽहं है'। आत्मा के सिवाय अन्य सब जो बाह्य पदार्थ हैं, वे सब नाशवान हैं, अस्थिर हैं। आत्मा अजर है, अमर है, अटल है, शाश्वत है। सोऽहं आत्मा है, आत्मा !

गुरु ने कहा—शिष्य ! तेरी विद्या फलित हुई है। तूने विनय से ज्ञानार्जन किया, उसी का शुभ परिणाम सबके सामने है। वह अविनीत था, उसका ज्ञान उसके ही अपमान का हेतु बना, यह सर्वविदित ही है।

सोऽहं आत्मा अटल नित, अजर अमर अविकार।
विनयशील उस शिष्य को, हुआ ज्ञान सुखकार ॥

भोजन का प्रभाव

एक महात्मा था। वह प्रायः जंगल में वृक्ष के नीचे रहता था। वहां उसे जो आनन्दानुभूति होती थी, वैसी शहर में नहीं होती थी। एक दिन राजा ने महात्मा से निवेदन करते हुए कहा—महात्मन् ! आप मेरे महलों में पधार जाइये। यहां जंगलों में आपको विभिन्न प्रकार की दुविधाओं का सामना करना पड़ता होगा।

महात्मा, राजा के आग्रह को टाल न सका। वह राजमहल में पहुंच गया। वहां रहने लगा। तीन महीने बीत गये। एक दिन का किस्सा है कि महारानी गुसलखाने में स्नान करके वापस लौट गई, किन्तु हार वहां भूल गई। तत्पश्चात् महात्मा स्नान करने हेतु वहां पहुंच गया। हार को देखते ही महात्मा का दिल बदल गया। हार को चुराकर जंगल में चला गया। भूख लगी हुई थी। उसने ऐसे फल खाये, जिससे जुलाब होने लगा। पेट साफ हो गया। विचारों में परिवर्तन होने लगा। मन ही मन सोचने लगा—अरे ! महात्मा, क्या तू महात्मा है, चोरी करके हार ले आया, अब तू महात्मा नही है, तू चोर है। धिक्कार है तेरे जीवन को ! ऐसा अकृत्य तेरे लिए उचित नहीं था।

वह दौड़ा-दौड़ राजमहल में आया। रात्रि का समय था। सब सोये हुए थे। जोर से बोलने लगा – राजन् ! यह लीजिये आपका हार। राजा की आंखें खुलीं। बोला—क्या बात है ? महात्मा बोला—मैं आपका हार चुराकर ले गया था। उसे वापस देने के लिए आया हूं। राजा ने कहा—वापस देना ही था तो लेकर तू गया ही क्यों ?

महात्मा ने कहा—राजन् ! तीन महीने तक आपके घर का अन्न खाया, जिससे मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। विचारों में विकृति पैदा हो गई। हार चुराकर ले गया। जंगल में पहुंचा। फल खाये। जुलाब होने लगा। पेट साफ हुआ। विचारों में सद्बुद्धि जागृत हुई। तब मुझे ज्ञान हुआ कि विचारों पर भोजन का इतना प्रभाव पड़ता है। यह उक्ति भी सिद्ध हुई—'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन'।

देखो योगीराज ने, जैसा खाया अन्न।
'मुनि कन्हैया' हो गया, वैसा उसका मन॥

पापी रो धन परले जाय

एक लोभी वैद्य था। वह लोगों को ठग-ठगकर धन इकट्ठा करता था। एक दिन एक बुढ़िया आयी और बोली—वैद्यराज जी ! मेरा लड़का बहुत बीमार है। उसको स्वस्थ कर दीजिये। मैं आपका उपकार नहीं भूलूंगी। कृपया घर चलिये। वैद्य ने कहा—पचीस रुपये लूंगा। बुढ़िया—गरीब निवाज ! मैं गरीब हूं। इतने रुपये मेरे पास कहां हैं ? वैद्य—रुपये बिना इलाज नहीं होगा, यहां से चली जाओ। आखिर बुढ़िया घर के कुछ बर्तन बेचकर, कुछ कपड़े बेचकर पचीस रुपये लेकर वैद्यजी के पास पहुंची और बोली—ये लीजिए पचीस रुपये।

उपचार प्रारम्भ हुआ। कुछ ही दिनों में बुढ़िया का पुत्र स्वस्थ हो गया। एक दिन वैद्यजी की धर्मपत्नी ने कहा—पतिदेव ! आप अधिक लोभ न करें। संतोषी सदा सुखी होता है। लेकिन स्त्री की शिक्षा पर कौन ध्यान देता है ! उसने अन्याय से धनार्जन करना नहीं छोड़ा। रात्रि में उनके घर पर चोर आये और सारा धन चुराकर ले गये। वैद्यजी के पास कुछ भी न रहा। आखिर वे परदेश गये और नीति से दवाइयों का काम करने लगे। कमाई अच्छी हुई। कुछ ही महीनों पश्चात् अपने गांव के लिए रवाना हुए। मार्ग में एक रोगी को ठीक किया। उसने खुश होकर पांच अनार वैद्यजी को दिये। वह अपने नगर में पहुंचा। नगर का राजा रोग से ग्रस्त हो गया। डॉक्टरों ने कहा—राजा को अनार के रस के सिवाय कुछ भी नहीं देना है। बाजार में अनार कहीं भी नहीं मिला। उस वैद्य के पास मिला। राजा बहुत खुश हुआ। उसको पचीस हजार का इनाम मिला। वैद्यजी घर आये। एक अनार को चीरा तो मोती निकले।

स्त्री ने कहा—यह सब देवमाया से हुआ है, पतिदेव ! आपने परदेश में नीति

को महत्त्व दिया है, ऐसा मेरा मत है। न्याय-नीति रखने से सब काम ठीक होता है। नीति का धन टिकता है और अनीति का धन यों ही चला जाता है। राजस्थानी कहावत है—

'पापी रो धन परले जाय।'

वैद्यजी बोले—हे प्राणप्रिये ! अक्षरशः सत्य है। नीति से कमाया हुआ धन वास्तव में टिकाऊ होता है। अब मैं किसी को भी धोखा नहीं दूंगा। किसी के भी साथ ठगी नही करूंगा और जीवन में अधिक से अधिक सन्तोष को महत्त्व दूंगा।

जीवन क्षणभंगुर है। लक्ष्मी भी चंचल है। किसी के साथ नहीं जाती है। सब यहां रह जाते हैं। इसलिए अधिक से अधिक नीति को महत्त्व मिलना चाहिए। नीति से सुयश बढ़ता है और अनीति से अपयश।

पैसा जो अन्याय का, नही टिके अति काल।
'मुनि कन्हैया' नीति का, टिकता वित्त विशाल ॥

अपनी विद्या अपने को खा गई

चार भाई थे। परस्पर में बड़ा प्रेम था। तीन भाइयों संजीवनी ने विद्या पढ़ी। एक दिन धन कमाने के लिए चारों ही भाई परदेश के लिए रवाना हुए। चलते-चलते मार्ग मे भयंकर जंगल आ जाता है। एक वृक्ष के नीचे उन्होने किसी अस्थि-पंजर को देखा। परस्पर चिन्तन चला। एक ने कहा—अपने पास विद्या है, प्रयोग अवश्य करना चाहिए। अगर समय पर भी प्रयोग नहीं करते हैं तो विद्या केवल भारभूत होकर ही रह जायेगी। अतः मेरा तो सिद्धान्त है कि पास में जो कुछ भी हो उसका अवश्य ही उपयोग होना चाहिए।

दूसरे और तीसरे भाई ने भी यही सलाह दी।

चौथे ने कहा—ये अस्थिपंजर शेर के हैं, विद्या का प्रयोग नही करना चाहिए, जीवित होकर कहीं हमें खा न जाए। 'अपना ही सिर और अपना ही जूता' इस कहावत को चरितार्थ मत कर देना। तीनों हंसे और बोले—तू तो डरपोक है, कायर है। हमारे साथ तू आया ही क्यो ? घर पर रहना ही अच्छा था। अगर अवसर पर विद्या को काम में नही लाते हैं तो विद्यार्जन का क्या लाभ ? हम तो विद्या का प्रयोग करके देखेंगे कि हमारी विद्या फलवती है या नही।

चौथा भाई वृक्ष पर चढ़ गया। तीनों ने संजीवनी विद्या का प्रयोग किया। उस विद्या के प्रभाव से शेर जीवित हो गया। भूख लगी हुई थी। शेर तीनों को खा गया। चौथा भाई ऊपर बैठा-बैठा सारा दृश्य देख ही रहा था। उससे रहा नही

गया, वह बड़ी गम्भीर वाणी में बोलने लगा—'विद्या का प्रयोग करना सीखा, सुरक्षा करनी नहीं सीखी, अपनी संजीवनी विद्या अपने को खा गई।'

ज्ञानार्जन करना बुरा नहीं है किन्तु ज्ञान-शक्ति पर धर्म का अंकुश अवश्य रहना चाहिए। अंकुश के अभाव में स्वयं का ज्ञान स्वयं के लिए घातक सिद्ध होता है।

ज्ञान शक्ति पर धर्म का, अंकुश है सुखकार।
'मुनि कन्हैया' अंकुश बिना, होती मृत्यु अकाल।।

स्त्री की नटखट

एक बूढ़ा था। उसके एक लड़का था। उस लड़के की धर्मपत्नी व्यभिचारिणी थी। वह किसी पर-पुरुष के साथ लगी हुई थी। बूढ़े ने सोचा—यह घर का नाश कर देगी। पुत्र को स्त्री का दुराचार बताने के लिए एकदा पर-पुरुष के साथ सोयी हुई का वह जेवर ले आया। उस स्त्री की नींद उड़ी। वह पति के साथ आकर सो गई। स्त्री बोली—पतिदेव! आज गरमी बहुत है, बाहर सोना अच्छा रहेगा। पर-पुरुष वाली जगह पर आकर सो गये। पति को नींद आ गई। वह स्त्री उठी और जोर-जोर से चिल्लाने लगी—हाय रे! गजब हो गया। बाड़ भी खेत को खाने लग गई। पति की आंखें खुलीं और बोला—क्यों हल्ला कर रही है? क्या बात है? उसने कहा—'थांरो बाप बड़ो व्यभिचारी है। म्हारा गैहणा खोल ले गयो।'

यह सुनते ही लड़का क्रोधाकुल हो गया। उठा, बाप के पास आया और पैरों से पूजा करता हुआ जोर से बोला—बुड्ढा कहीं का! निकल मेरे घर से, मेरी स्त्री के साथ बुरा बरताव करता है। इतने में वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी—हरे राम! मैं तो कुएं में गिरकर मरूंगी। मेरे पर झूठा कलंक लगा गया। या तो बूढ़ा जिंदा रहेगा या मैं···

पति भोंदू था। स्त्री की नटखट को समझ नहीं सका। पुलिस को इत्तला मिलते ही पुलिस उसके घर पहुंच गई। पुत्र ने बूढ़े का सारा दुराचार बतला दिया। सही हकीकत सुनाने पर भी बूढ़े की कौन सुने! पुलिस वालो ने हथकड़ी पहनाकर जेल में बैठा दिया। स्त्री ने अपना मन इच्छित काम करवा लिया।

दुनिया में स्त्री-चरित्र का पार नहीं है। स्त्रियों की नटखट के आगे पुरुष भी हार जाते हैं। स्त्री पुरुष को अपने पंजे में ऐसा फंसाती है कि जैसा वह कई

वैसा करना ही पड़ता है। स्त्री के चक्कर में किसी को भी नहीं आना चाहिए।

नारी नटखट को कभी, नहीं समझे इन्सान।
दिया वृद्ध को जेल में, कैसा यह अज्ञान॥

ईर्ष्या से नुकसान

एक सिद्ध पुरुष थे। उनके पास एक सेठ पहुंचा। सेठ ने कहा—मैं आपकी शरण में आया हूं, मुझे कुछ दीजिए। सिद्ध पुरुष बोले—मैं तुझे एक शंख देता हूं। उससे तू जितना मांगेगा तुझे तो उतना ही मिलेगा, किन्तु पड़ोसी को तेरे से दुगुना मिलेगा। तू जलना मत। ईर्ष्या भी मत करना।

सेठ सिद्ध पुरुष से शंख लेकर घर पहुंचा। वह हजार मांगता है तो पड़ोसी को दो हजार मिलता है। वह लाख मांगता है तो उसके पड़ोसी को दो लाख मिलता है। यह कब सेठ को सह्य था। यह तो मेरे से ही बड़ा वैभवशाली बन जायेगा। इसके सामने मैं सदा निस्तेज ही रहूंगा। इसकी उन्नति होगी। उसने सोचा—ऐसा कोई मार्ग निकालूं, जिससे इसका नुकसान हो जाये। ईर्ष्या का वेग बढ़ा, जलन ने धावा बोला—उसने अपने घर में चार कुएं खुदवाये, पड़ोसी के घर में आठ कुएं हो गये। अब क्या करूं? आखिर उसने शंख से कहा—मेरी एक आंख फोड़ दो। बस, देरी क्या थी! उसकी आंख फूटते ही पड़ोसी की दोनों आंखें फूट गईं। वह अन्धा हो गया। घर में जगह-जगह कुएं थे, कुएं में पड़कर पड़ोसी मर गया।

ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी-भी दूसरों की उन्नति को सह नहीं सकता है। 'पर का बुरा कैसे हो' इसी विचारधारा में वह डूबता रहता है। जलन-जलन से वह स्वयं का बिगाड़ भी करता है तथा औरों का भी।

ईर्ष्या से खुद का बुरा, पर का भी नुकसान।
'मुनि कन्हैया' छोड़ दो, यदि चाहो उत्थान॥

परोपकार

एक बुढ़िया थी। उसके लड़के का नाम राजेन्द्र था। घर में बड़ी गरीबी थी। बुढ़िया ने कहा—पुत्र! बाजार में जाओ, पूछकर आओ कि अपनी गरीबी दूर कैसे हो? राजेन्द्र गया। दुकानदारों से पूछने लगा। एक व्यापारी ने कहा—यहां

से पचास कोस पर एक महात्मा रहता है, वह इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है। घर आया और बोला—मां, मुझे आशीर्वाद दो, मैं जाता हूं महात्माजी के पास उस प्रश्न का उत्तर लेने। मां ने खुशी-खुशी विदाई दी। वह चला। चलते-चलते एक गांव आ गया। रात हो गई। उसने सेठ की हवेली में विश्राम लिया। सुबह जाने लगा तो सेठानी ने जानकारी ली। वह बोली—मेरे भी एक प्रश्न का उत्तर ले आना—'मेरी लड़की कब बोलेगी?' राजेन्द्र आगे बढ़ा। जंगल में मुनि मिल गये। बातचीत हुई। मुनि ने कहा—'मुझे साधु हुए पचास वर्ष हो गये किन्तु अभी तक साधुत्व का स्वाद क्यों नहीं आया?' इस प्रश्न का भी उत्तर लाना। वह आगे चला। मार्ग में माली मिला। उसने कहा—'इस अनार के चारों तरफ कोई भी वृक्ष जड़ क्यों नहीं पकड़ रहा है, इसका उत्तर अवश्य लाना। राजेन्द्र महात्माजी के पास पहुंचा। नमस्कार किया और बोला—मैं कुछ प्रश्नों का उत्तर लेने आया हूं। कृपा कीजिए। महात्मा ने कहा—इस समय एक साथ तीन प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूं, चाहे सो पूछ सकता है। राजेन्द्र विषम समस्या में पड़ गया। प्रश्न चार हैं। आखिर अपना प्रश्न छोड़कर उन तीनों प्रश्नों का उत्तर लेकर वापस चला। माली मिला। राजेन्द्र ने कहा—माली! इस वृक्ष के चारों तरफ मोहरों से भरे हुए चार कलश हैं। जब तक कलश रहेंगे, तब तक कोई भी दूसरा वृक्ष जड़ नहीं पकड़ेगा। माली ने कशी से खोदा। चार कलश मिल गये। माली ने आभार प्रदर्शित करते हुए कहा—राजेन्द्र! मोहरों का यह कलश देता हूं। कलश लेकर वह आगे चला। मुनि मिले। उसने कहा—महाराज! आपकी जटा में रत्न हैं। जब तक यह रहेगा, साधुत्व का स्वाद नहीं आयेगा। मुनि ने कहा—तुम उपकारी हो, यह लो रत्न। राजेन्द्र सेठानी के घर पहुंचा। उसने कहा—आपकी लड़की जब अपने पति का मुंह देखेगी, वह बोलने लग जायेगी।

अचानक वह लड़की वहां आ गई। राजेन्द्र को देखते ही बोलने लगी। सेठानी ने कहा—इसके पतिदेव आप ही हैं। राजेन्द्र की शादी हो गई। लाखों का धन लेकर रथ में धर्मपत्नी सहित घर पहुंचा। मां ने पूछा—पुत्र! गरीबी कैसे दूर होगी, उत्तर ले आया? पुत्र बोला—माताजी! आपके आशीर्वाद से लाखों का धन मिल गया और मेरी शादी हो गई। उसने आदि से अन्त तक की कहानी सुनाई। वह अब ठाठ-बाट से रहने लग गया। गरीबी दूर हो गई।

जो व्यक्ति दूसरों का उपकार करते हैं, दूसरों का भला करते हैं, उनका भला अपने आप ही हो जाता है। किन्तु परोपकारी संसार में विरले मिलते हैं। महापुरुष पर-उपकार के लिए जीवन लगा देते हैं।

भला अन्य का जो करे, करे अन्य उपकार।
'मुनि कन्हैया' स्वयं का, होगा भला अपार॥

अक्ल से छुटकारा

एक चौधरी था। उसके एक ही लड़का था। अच्छा घर देखकर लड़के की शादी कर दी। बहू घर पर आयी। सास की प्रकृति कर्कश थी। सास-बहू में झगड़ा प्रारम्भ हो गया। एक दिन भयंकर लड़ाई हुई। बहू ने सोचा, अब जीना बेकार है। रात्रि में उठकर कुएं में गिरकर मर गई। सूर्योदय हुआ। पता लगते ही अड़ोसी-पड़ोसी पचासों व्यक्ति इकट्ठे हो गये। कुएं में से लाश निकाली गई। कइयों ने कहा—लाश को जला देना चाहिए।

कइयों ने कहा—लाश को नही जलाना चाहिए। आखिर में कई चालाक व्यक्तियों ने जला दी। इतने मे पुलिस आ गई। थानेदार ने केस की तहकीकात की।

शाम को ससुरजी आये। सारी जानकारी ली। कहा—'बयान में मैं कहूं जैसे बोलना।' कचहरी में उपस्थित हुए। थानेदार ने कहा—उस लाश को जलाया क्यों? कई रांगड़ बोले—मरने के बाद क्या करें? चाहे कुएं में गिरकर मरो, चाहे मौत से मरो। वह भी बिना मौत नहीं मरी थी। यदि बिना मौत मरती तो आप तो नही मरे। दो दिन पहले एक सेठ मर गया था। उसको भी जलाया था। मरने के बाद शव को हम एक दिन भी नही रखते हैं। अब आप कहें तो जितने भी मरेंगे उन सबको आपके पास भेज देंगे, जलायेंगे नही। आप उन सबको सुरक्षित रखना।

थानेदार ने सोचा—ये सब मूर्ख हैं। इनके सामने बोलना राख मे घृत डालना है। मूर्ख से बात करने मे भी नुकसान है। थानेदार ने उन सबको छोड़ दिया। सब अपने-अपने घर चले गये।

कभी-कभी मूर्खों की अक्ल भी काम आ जाती है। अक्ल से सब बरी हो गये। कचहरी से छुटकारा मिला। दुनिया मे अक्ल का बहुत बड़ा महत्त्व है।

मूरख गण भी अक्ल से, सहसा बचे तमाम।
'मनि कन्हैया' अक्ल से, होते इच्छित काम ॥

शब्दों का सही अर्थ

बादशाह अकबर और बीरबल घूमने के लिए चल पड़े। चलते-चलते यमुना नदी के तीर पर पहुंच गये। उन्होंने वहां एक मच्छीमार को देखा। उसे देखकर बादशाह का भी जी ललचाने लगा। वे मछलियों को मारने के लिए बैठ गये।

बेगम ने बीरबल को बुलाकर पूछा—बादशाह नहीं आये ? घूमने के लिए साथ ही गये थे। कहां रह गये ?

बीरबल बोला—सच बताऊं या झूठ ?

बेगम—बीरबल ! सात गुनाह तुझे माफ हैं। सही-सही बताना पड़ेगा। बोल, जल्दी बोल, बादशाह कहां पर ठहरे हैं ?

बीरबल ने कहा—बादशाह झख मार रहा है।

यह सुनते ही बेगम का चेहरा बदल गया और मन ही मन सोचने लगी—आज बादशाह किसकी संगत में हैं, अभी तक नहीं आये। क्या बात है ? इस प्रकार उनके दिल में विकल्प उठने लगे।

इतने में ही बादशाह आ पहुंचा। बेगम ने रोष-भरे शब्दों में पूछा—'इतनी देर कहां थे ? प्रतीक्षा करती-करती थक गई। आपने बीरबल को सिर पर चढ़ा रखा है। वह यों कहता है कि बादशाह झख मार रहा है।'

यह सुनते ही बादशाह गुस्से से लाल हो गया। बीरबल को बुलाकर सारी बात कही।

बीरबल बोला—शब्दों का सही अर्थ नहीं समझने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। आखिर में सही अर्थ का पता लगते ही बादशाह और बेगम का गुस्सा शान्त हो गया।

हर शब्द का अर्थ सोच-समझकर करना चाहिए। एक ही शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं। सही अर्थ के अभाव में बहुत बड़ा अन्याय हो सकता है।

अर्थ न लेने से सही, होता बड़ा अनर्थ।
'मुनि कन्हैया' शब्द का, करो सही शुभ अर्थ॥

बुद्धि का चमत्कार

एक सेठ था। उसके घर में चोर घुस गये। सेठजी की आंखें खुलते ही उन्होंने सेठानी से पूछा—तेरे आभूषण कहां हैं ? सेठानी बोली—पीहर में भूल गई। सेठ बोला—कल ले आना। यह बात सुनकर चोर वहां से चले गये। सेठ ने दूसरे दिन चार सर्प मंगवाये। और चार घड़ों में डालकर कमरे के चारों कोनों में घड़ों को रख दिया। रात्रि में चारों चोर आये। कमरे में पहुंचे। चारों ने एक साथ घड़ों में हाथ डाले। सर्पों ने डंक मारा। चोर जोर से चिल्लाये। सेठ ने सोचा काम बन गया। कुछ ही क्षणों में चारों चोर यमदूत के मेहमान बन गये। सुबह

होते ही देखा, चार लाशें पड़ी हैं। इतने मे ही एक बाबा आ गया। उसने गांजा मागा। सेठ ने कहा मेरा नौकर मर गया है। इसे दफनाओ तो दस का नोट मिल जायेगा। यदि वह मुर्दा वापस आ गया तो एक भी पैसा नही दूंगा।

उसने सब स्वीकार कर मुर्दे को कंधे पर उठाकर जगल मे गड्ढा खोदकर गाड दिया। दौडा-दौडा आकर वह बाबा बोला—सेठ साहब ! दीजिए दस रुपये। सेठ बोला – वह मुर्दा तो वापस आ गया, पहले इसको दफनाओ, तब नोट मिलेगा। उसने वैसे ही दूसरी बार और तीसरी बार दफनाया। सेठ ने कहा—वापस आ गया। बाबा ने सोचा, इस बार दफनाऊंगा नहीं। अब इस मुर्दे की लाश को कुएं मे डालूगा। चौथी बार जब कुएं मे डाला तो बहुत जोर का धमाका हुआ। पास मे मस्जिद थी। मियाजी नमाज पढ रहे थे। वह धमाका सुनते ही वे घबराये और दौडे। मियाजी के पीछे-पीछे वह बाबा दौडा, उसने सोचा—वही मुर्दा है जिसको मैंने कुए मे डाला था। सेठ ने दौडते हुए मियांजी से कहा—क्या बात है, घबराये कैसे ? मियाजी ने सारी स्थिति की जानकारी दी। सेठ ने उनको अपने घर पर सुला दिया। बाबा पहुचा और बोला—दीजिए दस रुपये का नोट। सेठ ने कहा—वह मुर्दा वापस आ गया। खटिया पर सोया हुआ है। बाबा बोला—दफनाता-दफनाता मैं तो थक गया। मेरे से अब काम नही होता है। नही चाहिए मुझे दस का नोट। नमस्ते ! हाथ घिसता-घिसता यो ही चला गया।

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बुद्धि से हर काम कर लेते हैं। इसलिए दुनिया मे बुद्धि और अक्ल का सर्वत्र महत्त्व है। बुद्धिहीन कही पर भी सफल नही होता है।

तीक्ष्ण बुद्धि से सेठ ने, बचा लिया निज माल।
'मुनि कन्हैया' हो गया, बाबा का बेहाल ॥

नारी की करामात

एक पडितजी प्रतिदिन कथा करते थे। कथा मे वे स्त्रियो के चरित्र की अपनिन्दा करते थे। एक दिन रानी की दासी ने उनके घर पर मोहरें डाली। पंडितजी बोले—क्या बात है ? दासी ने कहा—पंडितजी महाराज, राजा की महारानी आपकी वाणी से बहुत प्रभाहित हुई हैं। आप रानीजी को दर्शन दें। आपको रानी नवलखा हार उपहार देंगी। पडितजी का मन ललचा गया। रानीजी के महलों में पहुंचे। भेंट हुई। अचानक राजाजी का आना हो गया। पंडितजी कांपने लगे—मेरी प्रतिष्ठा रेत मे मिल जायेगी। अब क्या करूं ? रानी ने उपाय सोचकर पंडितजी को सन्दूक

में घुसेड़कर बन्द कर दिया। दरवाजा खोला। राजा आया और बोला—दरवाजा इतनी देर से क्यों खोला? रानी बोली—कपड़े तो ठीक करने पड़ते हैं। नृप ने कहा—रानी! अपनी होशियारी बता रही है। मुझे लगता है यहां कोई आदमी आया था, इसलिए देर हुई है।

रानी गुस्से में लाल-पीली होकर बोली—आदमी? आदमी है। इस सन्दूक में। क्रोधाकुल होकर राजा ने पेटी को ठोकर मारी। तलवार निकाली। हुंकार सुनते ही पंडितजी को पेशाब आ गया। रानी कुछ मुस्कराती हुई बोली—हद हो गई। आप तो मैं कहती हूं वही मान लेते हैं। पेटी मे गंगाजली थी। लात से फूट गई। देखिये पानी बाहर निकल रहा है। पेटी में क्या आदमी समा सकता है?

यह सुनते ही राजा तत्काल बदल गया। पश्चाताप करने लगा—हाय! मेरे योग से गंगाजली फूट गई। राजा राज्यसभा मे आ गया। पंडितजी पेटी में से निकले। रानी ने कहा—पंडितजी! क्या आप कथा में स्त्रियो की निन्दा करते हैं? पंडितजी बोले—अब स्त्रियो की निन्दा भूल-चूककर भी कभी नहीं करूंगा। मैंने देख ली नारी की करामात! आपने अपनी करामात से ही मुझे उबारा है, अन्यथा मैं तो यमनगरी का पथिक बन जाता।

स्त्री के चरित्र का कोई पार नही है। स्त्रियां अपने चरित्र के माध्यम से पुरुषों को भी चकमा दे देती हैं। 'स्त्रीणां चरित्रं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः'—स्त्रियों के चरित्र को देवता भी नही जान सकते, मनुष्य तो जान ही कैसे सकता है!

जग मे नारी चरित का, क्या पा सकते पार?
उनके सन्मुख हो रही, पुरुषो की भी हार।

तृष्णा के दास

एक अद्भुत योगी था। उसकी वचनसिद्धि अनुपम थी। तपोनुष्ठान से कई शक्तियां उत्पन्न हो गईं। एक दिन एक सेठ योगी के पास आया। योगी ने कहा—सेठ! धर्म किया कर, प्रभु के नाम की माला फेरा कर। सेठ बोला—योगिराज! आपका कथन अक्षरशः सत्य है। किन्तु क्या करूं? जीवन-निर्वाह समस्या बन रही है। कमाई एक पैसे की नहीं। मुझे यदि प्रतिदिन एक रुपया मिलने लग जाये तो फिर धर्म-ध्यान करूंगा। योगी ने उसके हाथ पर एकांएक लिख दिया। अब उसके प्रतिदिन एक रुपये की कमाई आरम्भ हो गई। कुछ

ही दिनों के पश्चात् सेठ ने योगी से कहा—महाराज ! खर्चा बढ़ गया । एक रुपये से काम नहीं चलता, सारे दिन मजदूरी करता हूं । धर्म के लिए समय मिलता ही नहीं है । अतः आप एक के पास बिन्दी लगा दीजिये, फिर धर्म करूंगा ।

योगी ने वैसा ही किया । दस रुपये मिलने प्रारम्भ हो गये । योगी ने कहा, अब तो प्रवचन सुना कर । उसने कहा – समय मिलने पर सुनूंगा । उसके दिल में तृष्णा बढ़ी । उसने सोचा—दस के आगे एक बिन्दी और लगा दे तो सौ रुपये प्रतिदिन प्राप्त हो जाने से सब ठीक हो जायेगा । वह दौड़ा-दौड़ा फिर योगी के पास आया और बड़ी विनम्रता से बोला—महाराज बड़ी भाग-दौड़ करता हूं । जीवन-निर्वाह सुचारु रूप से नहीं हो रहा है । अब आप दस के आगे एक बिन्दी और लिख दीजिए । प्रतिदिन सौ रुपयों की कमाई हो जाने से मुझे किसी की परवाह नहीं रहेगी और खूब धर्म-ध्यान करूंगा ।

योगी ने सोचा—यह तृष्णा का दास है । इसकी भूख कभी भी मिटने वाली नहीं, यह पैसे के पीछे पागल हो रहा है । यह सोचकर योगी ने एक के पीछे बिन्दी लगा दी । अब उसकी सारी कमाई बन्द हो गई । वह पुनः गरीब हो गया । दुःख करने लगा—हाय ! ऐसा पता होता तो…

जो व्यक्ति तृष्णा के दास हैं, उनको कहीं भी चैन नहीं है । लोभी मनुष्य शान्ति से नहीं खा सकता, सो नहीं सकता, जी नहीं सकता । अतः तृष्णा को दूर करो, संतोषी बनो, जिससे सच्चे सुख की उपलब्धि हो सके ।

सेठ बना वह लालची, था तृष्णा का दास ।
'मुनि कन्हैया' अन्त में, क्रमशः उनका ह्रास ।।

आत्म निन्दा

एक अध्यापक था । वृद्धावस्था में उसकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया । किन्तु मास्टर साहब का मन बूढ़ा नहीं हुआ था । किसी दूध बेचने वाली लड़की से उसका प्रेम हो गया । उससे शादी कर ली । लड़की ने सोचा—मैं कहां आ गई । इस बुड्ढे से मेरी इच्छा पूर्ण होने वाली नहीं है । जब तक यह जीवित रहेगा । तब तक अपनी इच्छा मैं पूरी नहीं कर सकती । किसी उपाय से इसको परलोक पहुंचा दूं तो मेरा इच्छित हो सकता है ।

दूसरे ही दिन उसने मालपुओं में जहर मिला दिया । मास्टरजी ने भोजन किया । मालपुए खाये । थोड़ी देर बाद शरीर में जहर फैला और प्राण-पखेरू उड़

गये। वह लड़की पति की लाश को पेटी में बन्द कर नदी में बहाने हेतु चल पड़ी। उसी समय एक व्यंतर देवता (जो कि उसी मास्टर का चेला था।) ने ज्ञान से देखा कि ये तो मेरे गुरु हैं। इस औरत (पतिव्रता) ने मेरे गुरु को जहर देकर मारा। अब इसको भी सजा मिलनी चाहिए। उसने वह पेटी उसके माथे पर चेप दी। वह नदी के किनारे पहुंची। पेटी सिर से अलग नहीं हो रही थी। उसने सोचा—अब मैं आत्महत्या कर लूं। क्योंकि पेटी चिपक गई है। इतने में कुछ साध्वियों का योग मिल गया। उन्होंने समझाया कि आत्महत्या करना भयंकर पाप है, वह उनके साथ शहर में आई। लोगों ने पूछा—यह पेटी सिर पर क्यों रखती है? सबके सामने आत्म-निंदा करती हुई उसने अपना सारा रहस्य बतला दिया। आत्म-निंदा से पेटी माथे से दूर हो गई। और संयम लेकर उसने अपना कल्याण कर लिया।

भगवान् महावीर ने आत्म-निंदा का बहुत महत्त्व बताया है। पर-निन्दा करने में सब अग्रणी हैं। किन्तु स्वयं की निन्दा करने वाले व्यक्ति कम मिलते हैं। आत्म-निंदा वही कर सकता है जिसके हृदय में साहस हो, आत्मिक बल हो।

अपनी निंदा जो करे, वह मानव मतिमान।
उस महिला ने कर लिया, आत्मा का कल्याण।

जिसका काम उसी को छाजे

जाट और बनिये में परस्पर अच्छी दोस्ती थी। जाट खेती करता था। बनिया अपने व्यापार में मस्त रहता था। वर्षा नहीं होने से जाट बड़ा चिंतित रहने लगा। खेती हुए बिना परिवार का पालन-पोषण कैसे होगा? एक दिन वह अपने मित्र बनिये के पास गया और बोला—मित्र! तेरे तो कमाई प्रतिदिन होती है, मैं आज-कल बिलकुल खाली बैठा हूं, कोई रोजगार नहीं है। कमाई का कोई साधन हो तो अवश्य बताना। सेठ बोला—मेरा खास व्यापार है बबूल के गोंद का। यहां गोंद काफी मिलता है। सस्ता है। दूसरी जगह का भाव तेज है। कमाई अच्छी होगी।

जाट ने सौ रुपयों का गोंद लेकर रख लिया। उसने सोचा, कोई थोक का ग्राहक आयेगा तो बेच दूंगा। इधर वह बनिया ज्यों ही गोंद लेता त्यों ही बेच देता। कुछ ही दिनों पश्चात् जोर से वर्षा हुई, जिससे गोंद खराब हो गया। इधर भाव भी उतर गये। गोंद का बाजार बिलकुल मन्दा हो गया। जाट दौड़ा-दौड़ा बनिये के पास आया और बोला—भाई साहब! गजब हो गया। आखिर बनिये ने सारा

माल ले लिया और सौ के तीस रुपये दिये। बनिये ने जाट को ठग लिया। जाट बेचारा हाथ मलता ही रह गया।

जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में दक्ष होता है, उसी में सफल होता है। जिसका जिसे अनुभव नहीं होता वह काम करने से आखिर पछताना पड़ता है।

बनिज करेंगे बानिए, और करेंगे रीस।
बनिज किया था जाट ने, रह गये सौ के तीस॥

त्याग से लक्ष्मी

एक वैभवशाली सेठ था। वह स्वर्ण के पीकदान मे थूकता था। सेठजी के पास अचानक एक भोला ब्राह्मण आया। उससे रहा नही गया। वह मुसकराते हुए बोला—सेठ साहब! मैं निरन्तर लक्ष्मीजी की पूजा करता हूं। ध्यान धरता हूं। उपासना करता हूं। फिर भी लक्ष्मी मेरे से दूर रहती है। मैं आंखे फाड़ता ही रहता हू कि लक्ष्मीजी का मेरे घर पर कब पदार्पण होगा। प्रतीक्षा करते-करते थक गया, किन्तु अभी तक लक्ष्मीजी ने दर्शन नही दिये। क्रोधाकुल हो गया और उसने लात मारी। बोला—निःशर्म लक्ष्मी! यह क्या बात है? तेरा जो तिरस्कार करते है, तेरे पर थूकते है, उनके पास तू दौड़ी-दौड़ी जाती है, वहा तू निवास करती है। बड़ी विचित्र गति है तेरी!

यह सब सुनकर सेठ ने कहा—अरे भोले ब्राह्मण! तू अभी तक अज्ञान अवस्था मे है। लक्ष्मी की उपासना करने से लक्ष्मी नही मिलती है। लक्ष्मी को ठुकरा देने से पीछे-पीछे दौड़ती है। जो लक्ष्मीदास है, वह सारे संसार का दास है। जिसने लक्ष्मी को अपनी दासी बना लिया। सारा संसार उसका दास है।

'मुनि कन्हैया' त्याग से, लक्ष्मी हरदम पास।
तृष्णा रखने से अमित, उसका दूर निवास॥

श्रद्धा का महत्त्व

एक बुढ़िया अपने गांव से मार्ग में पड़ने वाली नदी को नौका के द्वारा पारकर निरन्तर महात्माजी का व्याख्यान सुनने आती थी। एक दिन महात्मा ने अपने भाषण में कहा—'राम के नाम से मनुष्य भवसागर को तर सकते हैं।' व्याख्यान समाप्त होते ही बुढ़िया घर के लिए रवाना हो गई। नदी के तीर पर आयी, तो उसने सोचा—आज पैसे खर्च नहीं करूंगी क्योंकि गुरुजी ने कहा था कि राम के नाम से मनुष्य समुद्र को पार कर सकता है, पर यह तो छोटी-सी नदी है। नौका का सहारा लिये बिना ही उस पार पहुंच जाऊंगी। बुढ़िया राम-राम कहती हुई नदी मे कूद गई। मछली की तरह तैरकर अपने घर चली गई। बुढ़िया निरन्तर इसी क्रम से आती-जाती थी। एक दिन बुढ़िया ने महात्मा से कहा—'आज आप मेरे घर भोजनार्थ पधारें।' उसकी अति भक्ति देखकर महात्मा उसके साथ चल पड़े। नदी आते ही महात्मा बोले—'अब कैसे जायेंगे ?' बुढ़िया बोली, 'राम का नाम लेकर कूद जाइये, उस पार पहुंच जायेंगे।'

महात्मा—'बुढ़िया ! ऐसे कैसे बोलती हो ? आगे कहीं अधिक पानी होने से डूब जाऊंगा तो ?' बुढ़िया बोली—'आपने जिस दिन कहा था कि राम के नाम से मनुष्य समुद्र को तैर सकता है, मैं तो उसी दिन से राम के नाम पर श्रद्धा रखती हुई नदी में कूदकर उस पार पहुंच जाती हूं। समुद्र की अपेक्षा नदी तो बहुत छोटी है, आप डरते क्यों हैं ?'

महात्मा के दिल में श्रद्धा का अभाव था, वे घबराते हुए बोले—'मैंने तो संसार-रूपी समुद्र के लिए कहा था। इसके लिए थोड़े ही कहा था ?' बुढ़िया बोली—'मैं तो इसको भी तैर जाती हूं।' इस प्रकार कहकर वह कूद गई और उस पार पहुंच गयी। महात्मा देखते ही रह गये।

हर क्षेत्र मे श्रद्धा का महत्त्व है। श्रद्धा के अभाव में कोई भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः हर एक को अपने जीवन में अधिक-से-अधिक श्रद्धा को स्थान देना चाहिए।

सफल वही हर क्षेत्र में, जो है श्रद्धावान।
बुढ़िया की ज्यों तर सके, सरिता को अम्लान ॥

वचन का प्रभाव

मानसिंह नाम का एक ठाकुर था। नौकरी की तलाश में वह सेठ मालकचन्द जौहरी की दुकान पर जा पहुंचा। सेठ ने कहा—'किसलिए आये हो?' ठाकुर ने कहा—'नौकरी के लिए।' परस्पर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। सेठ को नौकर की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी उसने उसको नीतिज्ञ समझकर नौकरी पर रख लिया, किन्तु उसे कुछ भी काम नहीं संभलाया गया। ठाकुर बोला—'सेठ साहब! मैं मुफ्त में रोटी खाने वाला नहीं हूं। मुझे कोई काम सौंपा जाये।' सेठ ने कहा—'मुझे पानी पिलाया करो और जहां कहीं बाहर जाना पड़े तो पानी की झारी हमेशा साथ रखा करो। बस, इस काम का पूरा-पूरा ध्यान रखना।'

एक दिन सेठजी किसी यात्रा के लिए रवाना हुए। साथ में अनेक मुनीम थे। मानसिंह भी पानी की झारी लिये सेठ के पीछे-पीछे चल पड़ा। पानी पिलाने के लिए वह प्रतिक्षण तैयार रहता था। मार्ग लम्बा होने के कारण पानी की झारी खाली हो गयी। मानसिंह विचार में पड़ गया कि अब क्या करूं? सेठ साहब अवश्य प्यासे हैं किन्तु झारी खाली होने से पानी नहीं मांग रहे हैं। हाय! धिक्कार है मेरे जीवन को कि जो एक कार्य मुझे सौंपा गया वह भी पूरा नहीं कर सका। हराम का नमक खाना ठीक नहीं है। इतने में एक छोटा-सा गांव दिखाई दिया। मानसिंह पानी लेने के लिए बड़ी तेज गति से वहां पहुंचा और पानी के विषय में पूछा। गांव के लोगों ने कहा—'ठाकुर साहब! यहां दूध मिलना तो सरल है पर पानी मिलना बड़ा कठिन है।'

ठाकुर—'क्या यहां पर कोई कुआं या बावड़ी नहीं है?' लोगों ने कहा—'बावड़ी है तो सही, पानी भी उसका मीठा है, किन्तु वहां जाने वाला वापस नहीं आता है। बावड़ी का संरक्षक राक्षस सब को मार देता है। इस गांव में जल की पूरी तंगी है। किसी का भी जीवन आराम में नहीं है।'

ठाकुर मानसिंह बड़ी हिम्मत करके बावड़ी की ओर रवाना हुआ। बावड़ी निर्मल जल से लबालब भरी थी। ऊपर कमल छाए हुए थे। पानी अमृत जैसा मीठा था। वह बावड़ी में गया, पानी पिया। झारी भरकर ज्यों ही बाहर आने लगा, त्योंही विकराल रूप धारण किए हुए राक्षस ने उसे ललकारा—'अरे, ठहरना, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे, फिर पानी लेकर जाना।' हाथ में एक लम्बी हड्डी लटकाकर बोला—'देख, यह शस्त्र मेरे हाथ में कैसा सुन्दर लगता है?' मानसिंह ने मधुर स्वर में कहा, राक्षसदेव! यह शस्त्र आपके हाथ में बहुत ही अच्छा लगता है। इस शस्त्र को मैं इन्द्रदेव का वज्र कहूं या वासुदेव के चक्र की उपमा से अलंकृत करूं, इसके लिए मेरे पास कोई उपमा भी नहीं है।' ठाकुर का उत्तर सुनकर

राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुआ और बोला—'मैं तुम्हारे मीठे वचन से प्रभावित हूं, वरदान मांगो।'

ठाकुर ने कहा—'यहां पानी के बिना लोग क्यों तरस रहे हैं?'

राक्षस—'मैं सबसे यही प्रश्न करता हूं जो तुमसे किया है, पर यहां के लोग जबान के बहुत कठोर और कड़वे हैं, उत्तर ऐसा अश्लील देते हैं कि मेरा दिल खट्टा हो जाता है।'

ठाकुर—'आप मेरे निवेदन को मान किसी को भी पानी के लिए न तरसाएं, बस यही वरदान मांगता हूं।'

ठाकुर की अमृतमयी वाणी सुनकर राक्षस बोला—'अच्छा जाओ, तुमको यह वर देता हूं।' गांव में आकर ठाकुर ने समग्र घटना-चक्र से लोगों को अवगत किया और कहा—'आप लोगों का संकट टल गया है किन्तु अपशब्दों का प्रयोग किसी के भी प्रति नहीं होना चाहिए।' स्थानीय लोगों ने ठाकुर साहब का बहुत-बहुत सम्मान किया। भोजन के लिए निवेदन और आग्रह करने लगे, किन्तु ठाकुर कहां मानने वाला था, वह तो शीघ्र झारी लेकर सेठजी के पास जा पहुंचा।

हर व्यक्ति पर मिष्ट वचन का प्रभाव पड़ता है। दुनिया को वश में करने के लिए मिष्ट वचन एक महामन्त्र है। मिष्ट वचन से शत्रु भी मित्र बन जाता है और मिष्ट वचन के अभाव में मित्र भी शत्रु बन जाता है। अतः कर्कश शब्दों का परित्याग करके मधुर वचन का प्रयोग परम अपेक्षा रखता है।

मधुर वचन से शत्रु भी, बन जाता है मित्र।
वश में करने जगत् को, है यह मन्त्र पवित्र॥

विनीत का सच्चा ज्ञान

दो ब्राह्मण विद्यार्थी थे। बारह वर्ष तक काशी में अध्ययन करके वे घर जाने के लिए रवाना हुए। दोनों में एक विनीत था और एक अविनीत। मार्ग में जाते-जाते दोनों ने एक पैर का निशान देखा। इस पर विनीत बोला—'बताओ भाई! यह पैर किसका है?' अविनीत बिना विचारे ही शीघ्र बोला—'यह पैर हाथी का होना चाहिए।' विनीत चिन्तनपूर्वक बोला—'मित्र! यह पैर हथिनी का होना चाहिए, फिर वह दाहिनी आंख से कानी है, उसके ऊपर राजा की गर्भवती रानी है और अभी-अभी वह शहर गयी है।' अविनीत क्रुद्ध होकर बोला—'मेरे वचन में कभी फर्क नहीं पड़ सकता। यह पैर हथिनी का नहीं हो सकता! हाथी का है।'

दोनों वाद-विवाद करते हुए शहर में गए। वहां सर्वत्र खुशी का वातावरण छाया हुआ था। मोहल्ले-मोहल्ले मे बधाइयां बांटी जा रही थीं। उत्सव का कारण पूछने पर दोनों को पता चला कि महारानी के आज कुंवर हुआ है। दोनों राजभवन में गए और पूछताछ करने पर विनीत की कही हुई सभी बातें मिल गई। दोनों ने वहां भोजन किया। फिर आगे चले। रास्ते में तालाब के घाट पर विश्राम लिया। दोनों वहां बैठे-बैठे बातें कर रहे थे।

इतने मे एक बुढ़िया वहां पर आ पहुंची। सिर पर पानी का घड़ा था। उन दोनों के तिलक-छापे देखकर बुढ़िया बोली—'पंडितजी महाराज आप ज्योतिष विद्या के जानकार हैं, कृपया बताइए, मेरा पुत्र परदेश से कब आएगा? उसको गए हुए तीन वर्ष हो गए।' बुढ़िया का तो इतना कहना हुआ कि अचानक सिर से घड़ा गिर गया। अविनीत शिष्य से रहा नही गया, वह अभिमानपूर्वक बोला—'घड़ा फूट गया, तेरा बेटा भी मर गया।' बुढ़िया के क्रोध का पार न रहा। हाय-हाय करती हुई आक्रन्दन करने लगी। विनीत विद्यार्थी ने आश्वासन देते हुए कहा—'मांजी! दुःख करने की जरूरत नही है। आप घर जाइये, आपका पुत्र आपको घर पर ही मिलेगा।' बुढ़िया दौड़ी-दौड़ी घर गयी। पुत्र उसी समय परदेश से आया था। बुढ़िया बोली—'बेटा! तेरे से फिर बात करूंगी, पहले पंडितजी को बुलाकर लाती हूं।' बुढ़िया गयी और हाथ जोड़कर बोली—'पंडितजी महाराज! धन्य है आपके ज्ञान को, ज्योतिष शास्त्र को! आपकी बात अक्षरशः मिल गयी। कृपया मेरे घर पधारिए, किन्तु इसे साथ न लाएं।' आखिर दोनों ही उसके घर गये। बुढ़िया ने विनीत विद्यार्थी का काफी आदर-सत्कार किया और दक्षिणा के रूप मे उसका एक सौ एक रुपये दिये।

अविनीत ने सोचा—यह क्या? मैं जो बात बताता हूं वह तो सब झूठ निकलती है। इसकी सब बातें सच मिलती हैं। गुरु ने विद्याध्ययन कराने में अवश्य ही पक्षपात किया है। दोनो लड़ते-झगड़ते वापस गुरु के पास आये और सारे वृत्तान्त मे गुरु को अवगत कराया। दोनों से पूछताछ कर गुरु बोले—'भाई! मैंने अध्ययन कराने मे बिलकुल पक्षपात नहीं किया है, किन्तु यह सब विनय और अविनय से विद्या प्राप्त करने का फल है। विनयवान् की विद्या ही वास्तव में फलीभूत होती है।'

हरेक विद्यार्थी को विनय से विद्याध्ययन करना चाहिए। विनयवान् की विद्या ही फलवती होती है, अविनीत का ज्ञान उसके लिए प्रत्युत भारभूत सिद्ध होता है, अतः गुरुजनों का विनय करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

विनयवान का ज्ञान ही, हो सकता फलवान।
विद्यार्थी अविनीत वह, कर न सका उत्थान ॥

स्वार्थ का संसार

एक सेठ था। उसके चार पुत्र थे। सेठ ने पुत्रों को विवेकशील समझकर समस्त व्यापार तथा घर की सारी सम्पत्ति उनको सौंप दी। सेठानी का अचानक देहावसान हो गया। सेठ की शारीरिक शक्ति क्षीण हो गयी और आंखों की ज्योति में भी फर्क पड़ गया। घुटने में दर्द का प्राबल्य होने के कारण सेठ प्रायः आंगन में ही लेटा रहता था।

एक दिन सेठ की चारों पुत्र-वधुओं ने अपने-अपने पति को कहा—'पतिदेव ! हम तो श्वसुर की सेवा-चाकरी करती-करती ऊब गईं। यह बूढ़ा सारे दिन आंगन में थूकता रहता है, सफाई करने के लिए हमें समय नहीं है। हमें अपने बाल-बच्चों की सार-सम्भाल करनी पड़ती है और घरेलू कार्य भी बहुत रहता है, अतः आप जानें और आपका बाप जाने, हमारा यह बूढ़ा क्या लगता है ?'

चारों ही भाई पिता के पास आये और बोले—'पिताजी, आप सारे दिन आंगन को बिगाड़ते हैं, यह अच्छा नहीं है।' पिता ने कहा—'पुत्रो ! बाहर जाने की मुझमें शक्ति नहीं है और थूके बिना रहा नहीं जाता क्या करूं ?'

आखिर चारों पुत्रों ने पलंग सहित पिता को उठाकर बाहर नोहरे में डाल दिया और कहा—'पिताजी ! अब खूब आनन्द से थूका करें, कुछ भी रोकथाम नही है।'

सेठ बड़ा दुःखी हो गया। समय पर खाना मिलना भी कठिन हो गया। जो मिलता, वह भी तीन दिन का रूखा-सूखा। सेठ ने सोचा—हाय ! यदि मैं सारा वैभव पुत्रों को नहीं सौंपता तो आज मेरी ऐसी दशा क्यों होती ? अब सेठ का एक-एक दिन एक-एक वर्ष के समान व्यतीत होने लगा। एक दिन सेठ का पुराना मित्र सुनार सेठ से मिलने के लिए आया। उसने दुःख-सुख की बातें पूछते हुए कहा—'सेठ साहब ! आजकल तो आप काफी कमजोर रहने लग गये। शरीर भी काला पड़ गया, केश भी लम्बे-लम्बे बढ़ रहे हैं, इसका क्या कारण है ?'

सेठ ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा—'मित्र ! इधर तो बुढ़ापे में सेठानी का स्वर्गवास हो गया, उधर चारों ही पुत्र बड़े स्वार्थी निकले। सेवा-चाकरी की तो बात दूर रही, रोटी की भी समस्या हो रही है। मेरा एक-एक दिन बड़ा दुःख में जा रहा है। क्या करूं ?' सुनार बड़ा चतुर था। उसने कहा—'कल मैं आपके पास छोटे-छोटे गोल पत्थरों से भरकर एक पेटी भेजूंगा। उसके दो ताले लगाये हुये होंगे, आप अपने पलंग के नीचे रखना। अगर कोई आपसे पूछे कि इसमें क्या है, तो आप उत्तर देना कि इसमें सोने के आभूषण हैं। इतने दिन तो यह पेटी मेरे मित्र के घर था, अब मैं मरणासन्न स्थिति में हूं, इसलिए मैंने आज ही मंगाई है।

आपके पुत्रों को इतना मालूम होते ही सब दौड़े-दौड़े आयेंगे और आपकी सेवा-भक्ति में जुट जायेंगे।' सुनार अपने घर गया और उसने वैसे ही किया। पेटी आ गयी। सेठ ने पलंग के नीचे रख दी। कुछ ही समय बाद चारों बहुओं को यह पता लगा कि सेठ के पास अभी तक काफी माल-ताल है। चारों ही दौड़ी-दौड़ी आयीं और पूछा—'श्वसुरजी! इस पेटी में क्या है?' श्वसुर ने कहा—'इसमें तरह-तरह के स्वर्ण-आभूषण है। इतने दिन मित्र के घर थी, आज ही आयी है।'

यह सुनते ही चारों बहुएं सेठ की सेवा-भक्ति में जुट गयी। कोई बादाम का हलुआ बनाकर खिलाती, कोई गर्म-दूध पिलाती तो कोई ठंडा-ठंडा पानी लाकर हाजिर होती। इधर चारों पुत्रों को भी यह पता लगा कि बुड्ढे के पास अभी तक काफी सम्पत्ति है तो चारों ही पिताजी की सेवा में पहुंचे। पेटी को वजनदार देख चारों ने हाथ जोड़कर विनय से कहा—'पिताजी! आपको यहां मच्छर काटते होंगे, सुख की नींद भी नही आती होगी। कृपया ऊपर वाले कमरे में पधारें।'

पिता ने कहा—'पुत्रो! मुझे बार-बार थूकना पड़ता है, अतः मेरे लिए यही स्थान उपयुक्त है।' पुत्रों ने कहा, 'पिताजी! इसकी आप चिन्ता न करें। हमारे पास सब व्यवस्था है।' पुत्र सेठ को ऊपर ले गये और तन, मन, धन से उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लग गये।

सेठ बोला—'पुत्रो! मेरी पेटी मेरे पास ही रखना। जो अधिक सेवा करेगा, उसी को पेटी दूंगा।' सेठ सुखी हो गया। दुःख की घड़ियां उसकी समाप्त हो गयीं। कुछ वर्षों बाद सेठ का स्वर्गवास हो गया।

चारों ही भाइयों ने सोचा—लाओ! अब तो उस पेटी को खोलें, उसमें क्या-क्या माल निकलता है। चारो देवरानी-जिठानी भी मन मे अनेक कल्पनाएं संजोती हुई आ गयीं। सभी एकत्रित हो धन की आशा में आंखें फाड़ रहे थे। आखिर पेटी को खोला गया। अन्दर निकले गोल-गोल पत्थर। सब दंग रह गये। सेठ को गालियां देने लगे—'हाय! बुड्ढे ने कैसा जाल रचा? पहले पता होता तो क्यों इतनी सेवा-चाकरी करते और क्यों घर का माल गंवाते, किन्तु अब क्या?'

सारा संसार स्वार्थ से भरा पड़ा है। जब तक स्वार्थ होता है तब तक सब दौड़-दौड़ कर आते हैं, किन्तु स्वार्थ के अभाव में कोई किसी को नहीं पूछता है, अतः इस स्वार्थ भरे संसार में धर्म ही सबका संरक्षक है।

कहलाते जो निकट के, वही बदलते अन्त।
'मुनि कन्हैया' स्वार्थ की, पूजा है सर्वत्र॥

बुराई का बदला

सेठजी परदेश गये हुए थे। सेठानी निरन्तर प्रतीक्षा किया करती थी कि पतिदेव अब आएं। सेठानी का पीहर निकट के गांव में ही होने के कारण वह चक्कर लगाया ही करती थी। एक दिन पीहर से घर आ रही थी। मार्ग में अचानक मूसलाधार पानी बरसने लगा। रात्रि का समय था। बिजली चमक रही थी। उसने सोचा—ऐसी विषम स्थिति में तो रात-भर कहीं रुकना ही अच्छा होगा। मठ निकट ही था। वह उस मठ में गई और बोली—'बाबाजी महाराज ! रात-भर विश्राम यहीं लेना चाहती हूं क्योंकि बरसात ओर से होने लग गई है। चारों तरफ रास्ते में पानी भर गया है, जिससे घर जाना कठिन है।

बाबा बोला—'बेटी, घबराने की कोई बात नहीं है। इस पास वाले कमरे में ठहर जाओ, सुबह चली जाना।'

सेठानी कमरे में आकर लेट गई किन्तु उसके मन में विकार उत्पन्न हो गया, शीघ्र उठी और बाबा के पास आयी, कुचेष्टाएं करने लगी। हाव-भाव से बाबा को रिझाते हुए बोली—'आप अकेले हैं। मैं भी अकेली हूं मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए।' बाबा बड़ा सच्चा था। उसे फटकारते हुए कहा—'निर्लज्ज ! चली जा चुपचाप, ऐसी बात मेरे सामने करने की जरूरत नहीं है।' वह कमरे में आकर सो गयी और मन ही मन विचार करने लगी—'हाय ! हाथ भी बाल्या, पुवा भी नहीं खाया।' बाबा कहीं मेरी बदनामी न कर दे। अब तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे बाबा मर जाए।

सुबह जाते-जाते वह बोली—'बाबाजी महाराज ! आज आप भोजन मेरे घर का ग्रहण करें।' घर जा शक्कर के मालपुओं में विष मिला, भोजन तैयार किया और अपने नौकर के साथ बाबाजी के यहां भेज दिया। बाबा ने कहा—'आज तो मैंने भोजन कर लिया है, तुम वापस ले जाओ।' तब सेठानी स्वयं गयी और हाथ जोड़कर बोली—'बाबाजी ! मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है जो आप मेरे छोटे से आग्रह को भी ठुकरा रहे हैं। आज आपको थोड़ा-सा भोजन तो मेरे घर का करना ही पड़ेगा।'

सेठानी की अति भक्ति देखकर बाबा बोला—'खैर, भोजन रख दो। भूख लगेगी तो देखा जाएगा।' बाबा के मन में कोई पाप नहीं था। मालपुए वहां रखकर सेठानी अति खुश होती हुई अपने घर गई।

उसी दिन सेठानी का पति परदेश से आ गया। रात्रि का समय होने से वह घर न जाकर मठ में ठहर गया। सोचा—सुबह चला जाऊंगा। उसने बाबा से

कहा—'बाबाजी महाराज ! भूख लग रही है, कुछ खाने को दीजिए।'

बाबा ने कहा—'बेटा ! और तो कुछ है नहीं, ये मालपुए जरूर हैं।' सारे के सारे मालपुए खाकर वह सो गया। शरीर मे जहर फैलते ही उसने सदा के लिए आंखें बन्द कर ली।

सुबह सेठानी दौड़ी-दौड़ी आयी और देखा बाबा प्रसन्नचित्त बैठा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोली—'बाबाजी क्या मालपुए नही खाए ?'

बाबा बोला—'बेटी, तेरे मालपुए अच्छे काम आ गये। एक परदेशी आया, उसने खा लिये। वह अभी तक पास वाले कमरे मे सोया है।' सेठानी ने उसको देखा—आकृति से उसे पहचाना। अरे ! यह तो मेरे पतिदेव हैं। बस, अब क्या था ? छाती पीटती हुई हाय-हाय करने लगी। बाबा को इस गुप्त रहस्य का पता लगते ही बोला—

'पुवा बणाया, चीणी घाली, सन्तां नै जिमावण चाली।
कर्‌या स्त्री खाया भरतार, खाड खुणे तो कुओ त्यार॥'

जो दूसरो का बुरा सोचता है, वह स्वयं का बुरा करता है। स्वयं के बचाव के लिए जो दूसरो को धोखा देते हैं, वे कभी भी अपने जीवन में सुख का स्वप्न नहीं ले सकते। अतः किसी भी स्थिति मे दूसरो का बुरा मत करो।

धोखा देने अन्य को, करता जो आयास।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, करे स्वयं को ह्रास।

दोनों के मन पाप

दो सुनार थे। दोनों बड़े धूर्त और कपटी थे। दोनों के मन मे पाप था। एक के लड़की थी और एक के लड़का। लड़की के दोनो पैर नही थे। लड़के की एक आंख नही थी। एक दिन बाजार मे दोनों का मिलना हुआ। लड़की वाले ने लड़के वाले सुनार से कहा—'मैंने सुना है, आपका सुपुत्र सुशील कुमार बड़ा होशियार है। हर क्षेत्र मे निपुण है। मैं चाहता हूं, आपके लड़के से मेरी लड़की सुदेश का सम्बन्ध हो जाए तो अच्छा है।' उसने कहा—'सम्बन्ध तो करना ही है। क्या आपने सुशील को देखा है ?' वह बोला—'देखना क्या है, मुझे तो आप पर विश्वास है। नगर मे आपकी अच्छी इज्जत है। अच्छा व्यापार चलता है। अच्छा आपका स्वभाव है। उसको देखकर क्या करूंगा ! मैं तो साक्षात्

आपको देख ही रहा हूं। यदि आप मेरी लड़की सुदेश को देखना चाहते हैं तो घर पधारिये।' उसने कहा—'मुझे भी आप पर पूर्ण विश्वास है। लड़की को क्या देखूं ? मैं तो साक्षात् आपको देख रहा हूं। आपकी बोल-चाल तथा रहन-सहन से यह पता चलता है कि आपका खानदान बहुत अच्छा है। अच्छे घर की लड़की भी अच्छी होती है। मुझे तो पूर्ण विश्वास है, जैसा आप चाहें, वैसा करें।'

दोनों को भय था कि कहीं पाप का घड़ा फूट न जाए, एक-दूसरे की कमी का पता न लग जाए। दोनों के दिल में ठगाई थी। ऊपर से बड़े मीठे बोलने वाले थे। शीघ्रातिशीघ्र सम्बन्ध पक्का करके विवाह का दिन निकट ही निश्चित कर लिया गया। दोनों ही अपने-अपने घर पहुंचे। दिल में खुशी का पार नहीं था। दोनों के घर में विवाह की तैयारियां होने लगी। सुशीलकुमार की मां ने सोचा—बस, अब तो मेरे घर में बहू आएगी। घर का सारा काम वह संभाल लेगी। मैं बैठी-बैठी आराम करूंगी।

सुशीलकुमार सज-धजकर आंखों पर दो चश्मे लगाकर विवाह-मण्डप में आ गया। सुहागिन स्त्रियां विवाह के मंगल-गीत गा रही थीं। जोर-जोर से बाजे बज रहे थे। बड़े ठाट-बाट से सुशीलकुमार की शादी सुदेश कुमारी के साथ हो गयी। सांसारिक सभी रस्में पूरी हो जाने के बाद परिवार वाले बहुत खुश हुए। सभी ने सोचा सुदेश कुमारी का भार उतर गया।

इधर सुशीलकुमार का पिता भी बड़ा खुश हुआ। हृदय में हर्ष उछलने लगा और जोर से बोल पड़ा—'गढ़ जीत्यो रे बेटा काणियां।' लड़की के पिता से भी रहा नहीं गया, वह भी जोर से बोला—'खबर पड़सी उठाणियां।' यह सुनते ही उसके चेहरे पर उदासी छा गई और आखिर सारी धूर्तता स्पष्ट होते ही दोनों विलाप करने लगे। अपनी-अपनी कुटिलता का दुष्परिणाम भी स्पष्ट हो गया।

दूसरों को धोखा देकर कोई भी सुख से जी नहीं सकता। स्वयं का कुटिलता-पूर्ण व्यवहार स्वयं के लिए दुःखद सिद्ध होता है, अतः किसी के भी साथ कुटिलतापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए।

स्वर्णकार दो धूर्त थे, दोनों के मन पाप।
स्पष्ट हुई जब धूर्तता, दोनों करें विलाप।

लोभ का त्याग

एक राजा था। संतान नहीं होने से वह बड़ा चिन्ताग्रस्त रहता था। हर समय उसके मस्तिष्क में यही चिन्तन चलता था कि पुत्र के अभाव में राज्य का भार

किसको दूंगा ? मैं अपना उत्तराधिकारी किसको चुनूंगा ? इसी दुःख से मन्त्री भी पीड़ित था। वह भी पुत्र के बिना काफी शोकाकुल रहता था। उसके मन में भी यही चिन्तन था कि मेरा मन्त्री-पद कौन संभालेगा ? मन्त्री और राजा दोनों ने ही पुत्रोत्पत्ति के लिए अनेक मन्त्र-तन्त्र करवाये। अनेकों देवी-देवताओं की शरण में गये, किन्तु भाग्य के अभाव में वे असफल रहे।

एक दिन राजभवन मे एक महात्मा आए और राजा से पूछा—'राजन् ! तुम्हारे मुख पर उदासी क्यों छा रही है ?'

राजा—'महात्मन् ! मेरे और मन्त्री के एक भी पुत्र नहीं है। इससे हम दोनों दुःखी हैं। इसी चिन्ता से हमारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है कि हमारा उत्तराधिकारी कौन होगा ?'

महात्मा—'राजन् ! इस समस्या का समाधान मेरे पास है। आपको बताऊं ?'

राजा—'भगवन् ! हम आपका उपकार नहीं भूलेंगे। शीघ्र फरमाइये।'

महात्मा—'शहर मे जितने भी भिखारी हैं,उन सबको एक स्थान पर एकत्रित करके तुम अपने हाथ से सबको एक-एक रोटी का दान दो। मैं दरवाजे पर खड़ा रहूंगा। जो भिखारी पूरी रोटी का त्याग करेगा, उसको तुम राजा बना देना और जो आधी रोटी को छोड़ेगा उसको मन्त्री पद पर नियुक्त कर देना।'

महात्मा के कथनानुसार राजा ने वैसा ही किया। महात्मा नोहरे के दरवाजे पर खड़े हो गये। ज्योंही दान लेकर एक-एक भिखारी बाहर निकलता, त्योंही महात्मा एक-एक को कहने लगे - 'जो पूरी रोटी का त्याग करेगा उसको राजा बनाया जाएगा और जो आधी रोटी छोड़ेगा उसको मन्त्री बनाया जाएगा।' सभी ने सोचा— यह सब कहने की बात है। कहां पड़ा है राज्य ? इतने मे एक भिखारी ने सोचा—आज मैं आधी रोटी से ही काम चला लूंगा। उसने आधी रोटी छोड़ दी। एक रंक ने पूरी रोटी छोड़ दी। महात्मा बोला—'इन्होंने रोटी के लोभ का त्याग किया है।' राजा ने एक को राज्य दे दिया और एक को मन्त्री बना दिया। ऐसा देखकर सभी भिखारी चिल्लाते हुए बोले—'ऐसा पता होता तो हम भी त्याग कर देते, किन्तु अब पश्चात्ताप करने से क्या हो सकता है ! समय चला गया।'

जो व्यक्ति लोभ का परित्याग करता है, वही आगे जाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है। त्याग का सदा महत्त्व है क्योंकि त्यागी पुरुष ही समाज और देश का विकास कर सकते हैं।

स्वल्प लोभ के त्याग से, मिल जाता है राज।
बन जाता है रंक भी, जन-जन का सरताज।

सब अच्छा होगा

एक दिन एक राजा और मंत्री दोनों घूमने जा रहे थे। मार्ग में चलते-चलते दोनों थक गये। वट-वृक्ष की सघन छाया में विश्राम करने के लिए दोनों बैठ गये। तृषाकुल राजा पानी की खोज में इधर-उधर दृष्टि दौड़ा रहा था। अचानक लहलहाते हुए गन्ने को देखकर स्वयं वहां गया और गन्ना तोड़कर लाया। चाकू से छीलने लगा। असावधानी के कारण राजा की एक अंगुली कट गई। मन्त्री ने शीघ्र उस पर पट्टी बांध दी। अंगुली की असह्य पीड़ा से पीड़ित नृपति बोला—"मन्त्री ! बहुत बुरा हुआ, मैं क्षतांग बन गया।"

मन्त्री ने उत्तर देते हुए कहा—"राजन् ! आप दुःख न करें। जो कुछ भी होता है, वह सब अच्छे के लिए ही होता है। आपकी अंगुली कटी, यह भी बहुत अच्छा हुआ।" यह सुनते ही राजा के हृदय में क्रोधाग्नि भभक उठी। आंखों को लाल करके बोला—"कृतघ्नी ! मेरी तो अंगुली कटी और तू कहता है—बहुत अच्छा हुआ ? कहां गई तेरी बुद्धि ? मैं ऐसे क्रूर हृदय वाले व्यक्तियों को रखना नहीं चाहता। चले जाओ अपने घर।" नृप की यह डांट सुनकर मन्त्री अपने घर चला गया।

राजा को शिकार करने की आदत थी। वह इसी जंगल में शिकार की खोज मे इधर-उधर भटक रहा था। पार्श्वस्थ पहाड़ी से निकलकर अचानक वहां कई डाकू आ गये। डाकूओं ने देवी की बलि चढ़ाने के लिए राजा को पकड़ लिया। देवी के मन्दिर में गये और निरीक्षण करने लगे कि कहीं यह क्षतांग तो नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि से सभी अंगों का निरीक्षण करते-करते राजा की कटी हुई अंगुली पर सहसा नजर पहुंची। क्षतांग की बलि चढ़ाई नहीं जाती, इसी कारण उन्होंने उसको छोड़ दिया। राजा खुश होता हुआ अपने राजभवन में पहुंचा। बैठा-बैठा चिन्तन करने लगा—मन्त्री बड़ा बुद्धिमान था। उसने पहले ही मुझे कह दिया था, जो होता है वह अच्छे के लिए होता है। अगर मेरी अंगुली कटी हुई न होती, तो आज मुझे यमराज के घर जाना पड़ता। मैं किसी भी स्थिति में जीवित नहीं बच सकता था। मैंने बहुत बड़ी गलती की, ऐसे विचक्षण मन्त्री को निकाल दिया।

राजा ने मन्त्री का पता लगा वापस उसे राजभवन में बुलवाया और सारा वृत्तान्त उसको सुनाया। मन्त्री ने कहा—"राजन् ! मैंने पहले ही कहा था, जो होता है अच्छा ही होता है और जो होगा वह भी अच्छा ही होगा। आपके लिए भी अच्छा हुआ और मेरे लिए भी अच्छा हुआ।"

राजा—"तुम्हारे लिए अच्छा कैसा हुआ ?"

मंत्री—"राजन्! मैं आपका उपकार भूल नही सकता हूं। आप क्रुद्ध होकर यदि मुझे नही निकालते और मैं आपके साथ होता तो मुझे वहां पर अवश्य मरना पड़ता क्योंकि मैं क्षतांग नही था। अतः मेरे लिए भी अच्छा हुआ।" राजा बहुत खुश हुआ और पुनः मन्त्री पद पर उसे नियुक्त कर अपने आप को कृत्य-कृत्य समझने लगा।

किसी भी व्यक्ति को निराश नही होना चाहिए। 'यद् भाव्यं तद् भविष्यति' जो होना है वह होकर रहेगा, और जो होता है वह अच्छा ही होता है इसी तथ्य पर अटल रहकर इन्सान को आशावान् रहना चाहिए।

जो होना, होता वही, जो होता वह ठीक।
आशावादी बन सतत, बढ़े चलो निर्भीक॥

नियम पर अटल

एक गरीब बनिया था। वह बड़ी कठिनाई से घर का गुजारा चलाता था। एक दिन कोई पर्व समझ, वह मुनिजनो का व्याख्यान सुनने चला गया। व्याख्यान समाप्त होते ही मुनि ने यथाशक्ति सबको एक-एक नियम दिलाया। जब उस बनिए को कहा गया तो उसने कहा—"महाराज, मैं गरीब हूं। मुझसे नियम नही निभ सकता।" मुनि के अत्याग्रह से उसने 'आज दिन भर बिना आज्ञा कोई भी वस्तु नही लूगा' यह नियम लिया। मुनि को नमस्कार कर वह अपने काम को रवाना हुआ। निकटस्थ छोटे गाव से सौदा बेच, वह अपने नगर वापस आ रहा था। मार्ग मे निबटने के बाद वह धूल मे लोटे को मांज रहा था कि उसे एक कलश का किनारा नजर आया। उसने मिट्टी को दूर कर कलश को निकाला। वह मोहरो से खचाखच भरा हुआ था। लेने को जी ललचाया किन्तु वह दुविधा मे पड़ गया—नियम रखू तो धन जाता है और धन रखू तो नियम जाता है। उसने सोचा—अरे मन! जीवन दो दिन का है। नियम लेकर कभी नही तोडना चाहिए। मुनि ने नियम तो जबरन दिलाया नही था। मैंने अपनी इच्छा से लिया था। नियम के प्रताप से ही आज लक्ष्मी जी के दर्शन हुए हैं। नियम तो आज का है कल आकर ले जाऊगा।

वापस उसी स्थान पर घड़े को गाड़, उस पर मिट्टी डाल निशानी के लिए ऊपर एक छोटी सी लकड़ी गाड़कर घर आ गया। खाना खाकर शीघ्र लेट गया। नीद न आने के कारण स्त्री ने पूछा—"पतिदेव! आज आपका मन कहां दौड़ रहा है?" उसने टालमटोल करते हुए कहा—"नही ऐसी कोई बात नहीं है।"

आखिर स्त्री के अत्याग्रह के आगे वह अपने मन की बात को छिपा नहीं सका। ज्योंही वह अपनी स्त्री को सब बातें सुनाने को उद्यत हुआ त्योंही अचानक उसके घर में दो चोर आए। स्त्री बोली—"ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता। नियम तोड़कर धन ले आते तो सारा दुःख दूर हो जाता। नियम भंग का प्रायश्चित लेकर शुद्ध हो जाते। किसी को यदि उस निशानी का पता लग गया तो फिर हाथ मलते ही रह जायेंगे।"

दोनों की सारी बातें सुनकर चोर दौड़े-दौड़े वहां गये। लकड़ी की निशानी देख बड़े खुश हुए। मिट्टी हटाकर कलश निकाला किन्तु दैवयोग से वह मोहरें बिच्छू बन गईं। ज्योंही लेने के लिये दोनों ने कलश में हाथ डाला त्योंही बिच्छुओं ने डंक मारा। दोनो चिल्लाये और सोचा—बनिया बड़ा धूर्त निकला। अब तो वापस जाकर बदला लेना चाहिए। कलश को रस्सी से बांधकर उस बनिये के घर पर लाकर डाल दिया और दोनो भाग गये।

कलश के छप्पर पर गिरते ही जोर से धमाका हुआ बनिये की स्त्री घबराई और बोली—"पतिदेव! बाहर जाकर देखिये, छप्पर पर क्या गिरा है?" बनिया लाठी लेकर बाहर आया तो मोहरों से चौक चमचमा रहा था। स्त्री भी आई। दोनो के हृदय में खुशी का पार नहीं रहा। बनिया बोला—"देख! नियम पर अटल रहने से घर बैठे ही लक्ष्मी जी के दर्शन हो गये।"

जो व्यक्ति अपने नियम पर अटल रहते हैं, संकट में भी जो नियम नहीं तोड़ते हैं, उनको नियम के प्रभाव से यथेष्ट की उपलब्धि होती है। अतः 'प्राण जाये पर प्रण नहीं जाये' प्राण भले ही चले जाये पर प्रण को नहीं तोड़ना चाहिए।

नियम-निष्ठा नर प्रवर की, होती विजय अगम्य।
एक नियम के योग से, मिला मनेच्छित द्रव्य॥

आप भला तो जग भला

एक शहर में एक करोड़पति सेठ रहता था। उसके पांच पुत्र और एक पुत्री थी। जहां पांच भाइयों में एक बहिन होती है, वहां लाड़-प्यार भी अधिक होता है। इसलिए उसका नाम भी 'लाड़कंवर' रखा गया, किन्तु वह लाड़ ही लाड़ में इतनी बिगड़ गई कि हरेक के साथ गाली-गलौज करना, लड़ाई-झगड़ा करना उसके लिये साधारण बात हो गई। आस-पास के गांवों के व्यक्ति उसके कर्कश स्वभाव से परिचित हो गये। जिससे उसके साथ कोई विवाह भी करना नहीं चाहता

था। सेठ को बड़ी चिन्ता हो गई। आखिर सेठ ने दूर देशान्तर में अच्छा घर व वर देखकर बड़े ठाट-बाट से लाड़कंवर का विवाह किया। किन्तु उसके स्वभाव में किञ्चित भी परिवर्तन न हुआ। वह निरन्तर बात-बात पर सास और जेठानी से झगड़ा करती रहती थी। श्वसुर, पति, जेठ किसी का भी कहना नहीं मानती थी। सब उस बहू से ऊब रहे थे। सब ने सोचा—यह बहू पीहर चली जाय तो अच्छा, घर की अशान्ति मिट जाये। आखिर एक आदमी के साथ उसे पीहर के लिये रवाना कर दिया।

पिता ने सिर पर हाथ रखकर पूछा—पुत्री ! तेरा ससुराल कैसा है ?"

पुत्री—"पिताजी ! ससुराल क्या है, साक्षात नरक है।"

पिता—"तेरे सास-श्वसुर कैसे हैं ?"

पुत्री—"सास तो डायन है और श्वसुर डाकी है।"

पिता—"देवरानी-जिठानी कैसी है ?"

पुत्री—"वे तो बनी बनाई चुड़ैल हैं।"

पिता—"खैर, सबको जाने दो, किन्तु तेरा पति कैसा है ?"

पुत्री—"उनमें भी यदि कुछ अक्ल होती तो फिर रोना ही किस बात का ? वे तो यमदूत के तुल्य हैं।"

पिता—"पुत्री ! मेरे पास एक मंत्र है। यदि तुम उस मंत्र की केवल छः महीनों तक साधना करोगी तो सारा ससुराल तेरे वश में हो जायेगा।"

पुत्री—"ऐसा मंत्र तो मुझे अवश्य बताइये। मैं उसकी निर्विघ्न साधना करूंगी।"

पिता—मंत्र यह है—"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।" अगर तेरी कोई भूल बताये तो मौन रहकर इस मंत्र को याद कर लेना। हाथ जोड़कर 'ठीक' शब्द के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलना। सास श्वसुर ने उसे नहीं बुलाया, फिर भी सेठ ने पुत्री को ससुराल भेज दिया। अब उसे कोई भी कुछ कहता तो वह मौन रहती और उस मंत्र का स्मरण करने लग जाती। धीरे-धीरे उस महामंत्र के प्रभाव से लाड़कंवर की कायापलट हो गई। और सभी घर वाले उसका पक्ष लेने लगे। सास ने थोड़े ही दिनों में बहू को घर की चाबियां सौंप दी। और सबको कह दिया कि मेरी यह बहू ही घर की मालकिन होगी। इसे कुछ भी कठोर कहने की आवश्यकता नहीं है।

कुछ ही दिनों बाद लाड़कंवर के पिता ने पुत्री को लेने के लिए एक आदमी भेजा। सास ने कहा—"आदमी बहू को लेने के लिए बार-बार क्यों आता है ? बहू के बिना मेरे घर का काम नहीं चल सकता। अच्छा अब तो ले जाओ शीघ्र ही वापस भेज देना।" बड़ी मुश्किल से लाड़कंवर पीहर आई। पिता ने पूछा—

"पुत्री ! ससुराल कैसा है ?"

पुत्री—"पिताजी ! साक्षात् स्वर्ग ही है।"

पिता—"सास-श्वसुर कैसे हैं ?"

पुत्री—"आपके (माता-पिता के) तुल्य हैं।"

पिता—"तेरा पति कैसा है ?"

पुत्री—"साक्षात् परमेश्वर हैं।"

पिता—"तेरी देवरानी-जिठानी कैसी हैं ?"

पुत्री—"बहिन से भी अधिक प्यार करती हैं।"

सेठ के मुख से सहसा यही वाणी निकली—"आप भला तो जग भला", अर्थात् आत्मदमन करने वाला ही सबको प्रिय लगता है और सबके लिए पूज्य बन जाता है।

जिसने अपनी आत्मा का दमन कर लिया है, उसने सारे संसार को जीत लिया है। आत्म-दमन ही शान्ति की प्रथम मंजिल मानी गई है अतः हरेक को आत्म-दमन करना सीखना चाहिए।

आत्म-दमन ही विश्व में, सुख का सच्चा द्वार।
दमितात्मा के सामने, अवनत है संसार ॥

समय का मूल्य

सेठ धनीराम की पुस्तकों की एक दुकान थी। सेठ जी नीतिज्ञ होने के साथ-साथ सदाचारी भी थे। सारा शहर उनको इज्जत की दृष्टि से निहारा करता था। एक दिन उनकी दूकान पर एक ग्राहक आया। उसने नौकर से कहा—"मुझे यह पुस्तक खरीदनी है, इसकी क्या कीमत है ?"

नौकर ने उत्तर दिया—"एक रुपया।"

ग्राहक—"इस छोटी सी पुस्तक का एक रुपया ? कम नहीं हो सकता ?"

नौकर—"नहीं !"

ग्राहक का मस्तिष्क चिन्तन व मनन के गहरे सागर में डुबकियां लगाने लगा। कैसे खरीदूं यह पुस्तक ? कीमत अधिक है। आखिर ग्राहक ने पूछा—"क्या सेठ साहब अन्दर हैं ? उनसे मिलना चाहता हूं।"

नौकर और ग्राहक का संवाद चल ही रहा था कि इतने में अचानक सेठ ने दरवाजा खटखटाया। ग्राहक ने सत्कार भरी वाणी में कहा—"सेठ साहब !

नमस्कार ! आपकी ही प्रतीक्षा में बैठा था। अच्छा हुआ आप शीघ्र पधार गये।"

सेठ जी ने कहा—"बोलो भाई ! क्या काम है ? किसलिए प्रतीक्षा कर रहे हो ?"

ग्राहक—"सेठ साहब ! इस पुस्तक की कम से कम क्या कीमत है ?"

सेठ जी—"सवा रुपया।"

ग्राहक—"हैं ! अभी तो आपके नौकर ने एक रुपया कहा था। अब सवा ?"

सेठजी—"बिलकुल सही है, क्योंकि मैं अपना काम छोड़ कर आया हूं। इससे मेरा समय भी तो खर्च हुआ, वह कहां जायेगा ?"

ग्राहक के आश्चर्य का पार नहीं रहा। वह कल्पना के अन्तरिक्ष में विचरण करने लगा। अरे यह क्या ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। सेठजी कहीं नशे में तो नहीं हैं ?

आखिर उसने कहा—"सेठजी ! मोल-तोल करना तो रहने दीजिए, अच्छा हो मुझे इसकी कम से कम कीमत बता दें, तो मैं खरीद लूं।"

सेठजी—"डेढ़ रुपया।"

ग्राहक—"वाह-वाह ! क्या आप भी बच्चों जैसा खिलवाड़ कर रहे हैं। अभी तो अपने सवा रुपया कहा था और अब डेढ़ रुपया ?"

सेठजी—"हां, मैंने पुस्तक की कीमत उस समय सवा रुपया कही थी। पर अब तो उसकी कीमत डेढ़ रुपया है और तनिक ध्यान से सुन लीजिए—ज्यों-ज्यों आप देरी करेंगे, पूछताछ कर हमारा अमूल्य समय नष्ट करते जायेंगे। त्यों-त्यों पुस्तक की कीमत पर समय का मूल्य भी बढ़ता जाएगा। यदि आपको लेनी है तो शीघ्र ले लीजिए। कुछ समय पश्चात् पुस्तक की कीमत दो रुपया हो जायेगी।"

ग्राहक ने सोचा—अब अधिक भाव-ताव करना उचित नहीं है क्योंकि क्रमशः मूल्य में वृद्धि हो रही है। तुरन्त जेब से पैसे निकाल कर दे दिये और पुस्तक खरीद कर अपने घर की राह ली। घर पहुंचा। सोचने लगा कीमत क्रमशः क्यों बढ़ती गई। आखिर उसने यही निष्कर्ष पाया कि समय ही सच्चा धन है। समय से बढ़कर संसार में कोई भी अमूल्य निधि नहीं है। समय को व्यर्थ में नष्ट करना मूर्खता है और समय का सदुपयोग करना बुद्धिमता है। भगवान् महावीर ने कहा—जो समय व्यतीत होता है, वह वापस लौटकर नही आता। अतः हरेक को समय का मूल्यांकन करना चाहिए।

समय न खोना व्यर्थ में, समय बड़ा अनमोल।
समझो कीमत समय की, अन्तर आंखें खोल॥

एक दिन का राज्य

तीन मित्र थे। तीनों में परस्पर बड़ा प्रेम था। विद्यालय में भी तीनों एक साथ अध्ययन करते थे। तीनों में एक राजकुमार था और दो वणिक्पुत्र। एक दिन तीनों मित्र विद्यालय से घर आ रहे थे। मार्ग में वणिक्पुत्रों ने राजकुमार से कहा—"मित्र ! अभी तू घनिष्ठ मित्रता का परिचय दे रहा है, लेकिन जब राज-सिंहासन पर आरूढ़ हो जाएगा, तब क्या हमारे साथ अभी जैसा व्यवहार करेगा ? हमको कुछ बख्शीश करेगा ?"

राजकुमार ने कहा—"दोस्तो ! आपस में अक्षुण्ण प्रेम भी कभी भुलाया जाता है ?" उसी वक्त मैत्री की निशानी के रूप में राजकुमार ने यह लिखकर दे दिया—"मैं राजा बनने के बाद तुम्हें एक-एक वरदान दूंगा, जो भी तुम मांगोगे वही मिल जायेगा।" कुछ ही समय बाद वह राजकुमार राज्यासन पर बैठा और वे दोनों मित्र अच्छा समय देखकर मित्र से कुछ मांगने के लिए गये।

पहले मित्र ने कहा—"मित्र ! मुझे न तो धन चाहिए तथा न कोई जमीन-जायदाद। मुझे चाहिए एक दिन का राज्य।"

राजकुमार ने हां भर ली और दूसरे दिन सारे शहर में उसकी आज्ञा प्रसारित करवा दी गई। राज्यासन पर बैठते ही उसने समस्त राज्य कर्मचारियों के लिए यह आदेश जारी कर दिया कि जिसको जितना वेतन मिलता है अब उसे आधा मिलेगा। अपना राज्य भंडार भरने के लिए उसने सब कर दुगने कर दिये। सारे शहर में हाहाकार मच गया। चारों तरफ से राजा को धिक्कार मिलने लगी, किन्तु वह स्वयं तो राज्य अभिमान के शिखर पर चढ़ा हुआ था। न किसी की मानता और न किसी की सुनता। सारा दिन स्नान भोजन आराम आदि कार्यों में लगा दिया। पूरी रात नृत्य संगीत व निद्रा में बीत गयी।

प्रातः होते ही सेवक संरक्षकों ने कहा—"जनाब ! आपका समय समाप्त हो गया है। एक दिन के लिए जो आपको अधिकार मिला था, वह अब नहीं है।" वह हक्का-बक्का रह गया ! क्या एक दिन ही ? हाय ? मैं तो कुछ कर ही नहीं सका। आखिर आरक्षकों ने हाथ पकड़कर उसको बाहर निकाल दिया। ज्योंही वह राजमहल से बाहर आया त्योंही हजारों लोग चारों तरफ से उसके पीछे पड़ गये। कई उस पर थूकते थे, कई रेत उछालते, कई धिक्-धिक् करते। उसे बुरी गालियां देते क्योंकि एक ही दिन में उसने सबके साथ दुश्मनी मोल ले ली।

दूसरे मित्र ने भी एक दिन के राज्य की याचना की। राजकुमार ने सहर्ष, उसके लिए भी घोषणा करवा दी। ज्योंही उसने राज्यभार संभाला त्योंही समस्त राज्य-कर्मचारियों के वेतन दुगने-तिगुने कर दिये। जनता को समस्त करों से मुक्त

कर दिया। सार्वजनिक संस्थाओं को खुले हाथ दान देना शुरू कर दिया। दीन-हीन कोई भी आये उनकी आशा को फलवती बनाना उसने अपना अटल सिद्धान्त बना लिया। सारे दिन जन-हिताय, जन-विकासाय अनेकों विचार विमर्श चले। अनेकों योजनाएं तैयार की गई। सायंकाल होते ही राज्य का भार मन्त्री को संभालकर वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग में अनेकों राज्य-कर्मचारियों, विद्वानों व व्यापारियों द्वारा उसका अभूतपूर्व हार्दिक स्वागत किया गया। घर-घर उसकी कीर्ति-ध्वजा फहराने लगी और समस्त जन-मानस के लिए वह श्रद्धा का पात्र बन गया।

मनुष्य का जन्म भी एक दिन के राज्य के समान है। विवेकशील व्यक्ति ही इसका सदुपयोग कर सकते हैं। दुरुपयोग करने वालों का कभी सत्कार नहीं होता है, अतः हर एक को इस जन्म का लाभ उठाना चाहिए।

एक दिवस के राज्य सम, मानव का अवतार।
लाभ उठाते दक्ष नर, नहिं खोते बेकार॥

स्वभाव में रमण

एक ब्राह्मण था। वह गंगा नदी में स्नान के लिए गया। गंगा के तटस्थ वृक्ष पर एक बिच्छू था। अचानक वह गंगाजल में गिर पड़ा और तड़पने लगा। उसे देखकर ब्राह्मण का दिल कांप उठा। हृदय में दया के भाव जागृत हुए। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छु को उठाया किन्तु दुर्जन अपनी दुर्जनता को नहीं छोड़ते हैं। बिच्छू हाथ पर चढा और डंक मार दिया। डंक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया। बिच्छू पानी में गिर गया और वैसे ही तड़पने लगा ब्राह्मण दयावान् था। वह दूसरो का दुःख देख नहीं सकता था। उसने सोचा अगर इस बिच्छू को नहीं निकालूंगा, तो बेचारा मर जायेगा उसने फिर उस बिच्छू को बाहर निकाला, किन्तु वह अपने स्वभाव का परित्याग कैसे कर सकता था? डंक लगाते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और वह फिर पानी में गिर पड़ा। ब्राह्मण ने इस तरह तीन चार बार बिच्छू को उठाया, लेकिन हर बार बिच्छू ने उसे काटा।

गंगा के तट पर एक कवि खड़ा था। अनिमेष नयन उस ब्राह्मण के अनोखे खेल को वह देख ही रहा था। उससे रहा नहीं गया। आखिर उसने पूछ ही लिया।

"भाई! बिच्छू ने तुमको बार-बार काटा, फिर भी तुम उसको बार-बार निकालने का प्रयास करते रहे। क्या इसमें कोई तथ्य है?"

ब्राह्मण ने कहा—"कविवर ! वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है तो फिर मैं मेरे स्वभाव को कैसे छोड़ूं ? दुर्जन अपनी दुर्जनता को नहीं छोड़ता है। सज्जन अपनी सज्जनता का परित्याग कैसे करेगा ?"

दुर्जन के साथ भी जो सज्जनता का व्यवहार करता है, बुरे के साथ भी जो भलाई करता है वही इस भूतल पर सन्त पुरुष कहलाता है।

तजे न विपदा में कभी, ब्राह्मण सम सौजन्य।
नहीं छोड़ता बिच्छू सम, दुर्जन निज दौर्जन्य ॥

देखा-देखी मत करो

एक गांव में टीलिया नाम का एक जाट रहता था। उसकी जाटनी का देहावसान हो गया। जाट ने लोगों से कहा—"दुनिया में सतियां तो बहुत हुई हैं, किन्तु सता आज तक कोई नहीं हुआ है। अब मेरी इच्छा है कि जाटनी के पीछे सता बन जाऊं। आप लोग मुझे जाटनी के साथ-साथ जला देना।" लोगों ने उसे काफी समझाया, किन्तु वह कब मानने वाला था। बस, चिता पर जाटनी को सुलाया गया उसके ऊपर ही वह जाट सो गया, धीरे-धीरे आग बढ़ने लगी।

इतने में गांव में आग लग गई। जिससे श्मशान में गये हुए सारे लोग चिता को बीच में छोड़कर गांव चले गये। पीछे से त्योंही अग्नि का ताप जाट के शरीर तक पहुंचा त्योंही वह वहां से भाग चला। उसके कपड़े सारे जल चुके थे, अतः झाड़ी में जाकर छिप गया।

गांव की आग शान्त कर लोग वापिस श्मशान भूमि में पहुंचे। सबने सोचा, जाटनी के साथ-साथ जाट भी जलकर सता हो गया है, ऐसा मालूम पड़ता है। लोग अपने-अपने घर चले गये।

इधर उस टीलिए को भूख सताने लगी। तीन चार दिन बीत चुके। वह रोटियों की तलाश में संलग्न था। अचानक एक औरत उसी मार्ग से (जहां टीलिया रहता था) खाना लेकर खेत पर जा रही थी। टीलिए ने उसे ललकारते हुए कहा—"ठहर जा, ठहर जा, मुझे भूख लग रही है।"

औरत ने पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

वह बोला—"मेरा नाम टीलिया है।

टीलिया नाम सुनते ही वह घबराई। खाने का सामान वहीं छोड़ कर दौड़ी-दौड़ी गांव में आई और पंचों से कहने लगी—"टीलिया तो मरकर भूत हो गया

है। अमुक झाड़ी में छिपकर बैठा है। मैं बड़ी मुश्किल से प्राणों को बचाकर आई हूं।"

गांव के लोग इकट्ठे हुए। सबने कहा—"भूत को वश में करने के लिए काजी जी को वहां भेजा जाय।" काजी जी घोड़ी पर चढ़कर उस झाड़ी के निकट पहुंचे। खूंटी गाड़कर घोड़ी को एक तरफ बांध दिया और भूत को वश में करने के लिए तरह-तरह के मन्त्र पढ़ने लगे। टीलिया सुन ही रहा था, अचानक वहां आया और काजी जी का कान पकड़ कन्धों पर बैठ गया। काजी जी ने बड़ी मुश्किल से पिंड छुड़ाया और शीघ्र घोड़ी पर सवार हो घोड़ी को दौड़ा दिया। पीठ में तो खूंटी की लग रही थी, किन्तु काजी जी को यह पता नहीं लगा कि खूंटी की मार पड़ रही है। वे तो जोर-जोर से हल्ला करते जा रहे हैं—"हाय रे ! मुझे तो टीलिया मार रहा है।"

लोगों ने पूछा—"टीलिया कहां है ? यह तो खूंटी की लग रही है। तब कहीं काजी जी ने घोड़ी ठहराई।"

काजी जी ने कहा—"यह भूत ऐसे वश में आने वाला नहीं है। इसका मौसर होना चाहिए।"

लोगों की प्रेरणा से घर वालों को कर्ज लेकर भी मौसर निश्चित करना पड़ा। टीलिया को भी पता लगा कि अमुक दिन मेरा मौसर होने वाला है। ठीक उसी दिन वह तालाब पर जा पहुंचा। वहां एक धोबी कपड़ा धो रहा था। टीलिए ने जोर से चीख मारी—"धोबीड़ा ठहरजा, ठहरजा, मैं टीलिया आ रहा हूं" धोबी भूत के डर से कपड़ों को छोड़कर दौड़ गया। पीछे से टीलिया धोये हुए सफेद कपड़ों को पहनकर हाथ में लाठी ले अपने घर जा पहुंचा। वहां सैकड़ों ही स्त्री पुरुष भोजन कर रहे थे। टीलिया को देखते ही सब चिल्लाने लगे—"अरे ! टीलिया भूत आ गया है, दौड़ो-दौड़ो।" सब एक-दूसरे से आगे दौड़ने लगे। टीलिए ने कहा—"अरे भाइयो ! दौड़ क्यों रहे हो ? मैं भूत नहीं हूं। वही टीलिया हूं जो पहले था। आखिर में सब भेद खुला और लोग तालियां पीटते हुए बोले—

देखा देखी सत चढ़े, चढ़्यो टीलियो जाट।
धोबी गंवाया कापड़ा, काजी कुटाई टाट ॥

घर वालों का लज्जा से सिर झुक गया। मन ही मन दुःख करने लगे—'हाय ! लोगों में हंसी मजाक हुई सो हुई, किन्तु मौसर के लिए जो हजारों का कर्ज लिया गया वह कैसे उतरेगा···?'

जो व्यक्ति अपनी ताकत को नहीं तौलता है और केवल देखा-देखी करने पर उतारू हो जाता है, उसे कदम-कदम पर लज्जित होना पड़ता है। अतः आत्म-

शक्ति को देखकर ही किसी क्षेत्र में कदम बढ़ाने चाहिए।

> आत्म-शक्ति देखे बिना, करता है जो काम।
> वह मानव हर क्षेत्र में, पछताता अविराम॥

चारों के तुक्के सच्चे

चार मूर्ख थे। चारों में अच्छा प्रेम था। एक दिन चारों ही परदेश के लिए रवाना हुए। रास्ते में भूख लग आई। चारों ने वट वृक्ष के नीचे विश्राम लिया। भोजन पकाने के लिए अलग-अलग काम बांटा गया। रोटियां तैयार हुईं, किन्तु घी लाना किसी को भी नहीं सौंपा था। इससे परस्पर तना-तनी बढ़ी। घी कौन लाये? आखिर यह फैसला हुआ कि जो पहले बोलेगा उसे ही घी लाना पड़ेगा। चारों पलथी मारकर बैठ गये। इतने में दो कुत्ते आये। सारी की सारी रोटियां खा गये। कोई भी नहीं बोला। रात पड़ गई। अर्द्ध-निशा में दो चोर चोरी करके और उसी वृक्ष के नीचे अपने थैलों को ठीक करने लगे। इतने में ही उनको पुलिस वाले दीख गये। चोर तो दौड़ गये किन्तु धन के थैलों को नहीं छोड़ गये। पुलिस वालों ने धन देख कर उन चारों से पूछा—"क्या तुम चोर हो?" घी लाने के भय से चारों ही मौन रहे। चारों को हथकड़ियां पहिनाकर राज-दरबार में लाया गया। राजा ने चारों को बड़े चोर समझकर फांसी का दंड सुना दिया। चारों को श्मशान भूमि में लाया गया। फांसी पर लटकाने की तैयारी थी। इतने में ही छोटे मूर्ख से रहा नहीं गया और वह जोर से बोला—'हम चोर नहीं हैं'। यह सुनते ही तीनों उछल पड़े और हल्ला करने लगे—"घी तुम्हें लाना है, घी तुम्हें लाना है।"

पुलिस वाले भौंचक्के दंग रह गये। यह क्या बला है? शीघ्र राज-दरबार में आये और उन्होंने समग्र वृत्तान्त से राजा को अवगत किया। नृप के आदेश से चारों ही मूर्ख पुनः राज-दरबार में हाजिर हुए। उन चारों की शक्ल देखकर राजा ने मन में सोचा—ये मूर्ख अवश्य हैं, किन्तु हैं किस्मत वाले। राजा ने किस्मत की परीक्षा करने के लिए चारों से प्रश्न किया—"बोलो भाई! मेरी इस बंधी मुट्ठी में क्या है?" पहले मूर्ख ने तुक्का लगाकर कहा—"मोलमसक, दूसरे ने कहा, 'रंग गुलाब', तीसरे ने कहा 'दाखियार' चौथे ने कहा बोल समझ 'अनार'।" चारों के तुक्के सच्चे होने से राजा बड़ा खुश हुआ और उसने भंडारी से कहा—"इन चारों को पांच-पांच सौ रुपये इनाम में दो।"

चारों ही इनाम लेकर उसी वृक्ष के नीचे पहुंचे। रात भर विश्राम यहीं लेना है सुबह आगे चलेंगे। रुपयों को वृक्ष की जड़ में खुले आम रखकर चारों सो गये। चिंता फिक्र नहीं होने से नींद आ गई।

इधर एक आरक्षक फिरता-फिरता वहां पहुंच गया। दो हजार रुपयों को देखकर उसका जी ललचा गया। रुपयों को लेकर वह अपने घर आ गया। सुबह चारों उठे। रुपये न मिलने से चारों राजा के पास आये। राजा ने कहा—"तुम ही तुक्के लगाकर बताओ कि रुपये किसने लिये हैं?"

पहला बोला—"आयो फिरतो-फिरतो", दूसरा बोला—"आयो घोड़े चढ़तो", तीसरा बोला—'हाथ में तलवार', और चौथा बोला—"चोर कोतवाल"। कोतवाल ही हमारे रुपयों का चोर है। कोतवाल को दरबार में बुलाया गया। नृप ने सब बात पूछी। आखिर चारों के तुक्के सच्चे हो गये। राजा उन चारों के सही तुक्के पर बड़ा खुश था, चारों को एक-एक हजार रुपये का इनाम फिर दिलवाया। चारों ने सोचा—अब कहीं नहीं जाना है, बस घर में ही रहना है।

चारों मूर्ख होते हुए भी चारों की किस्मत अच्छी थी जिससे उनका संकट टल गया और उनको अच्छी धनराशि मिल गई। अतः दुनिया में किस्मत ही सच्ची निधि है।

चारों मूर्खों के वचन, हुए सत्य अभिराम।
किस्मत के आधार से, इच्छित हुए तमाम॥

पाप का घड़ा

कमल और विमल दो मित्र थे। दोनों में अच्छा प्रेम था। कमल करोड़पति था, विमल गरीब था। विमल के पुत्र का विवाह होने के कारण वह मित्र कमल को निमंत्रण देने गया।

कमल ने कहा—"मित्र! तेरे पुत्र की शादी में अवश्य भाग लूंगा, किन्तु तुम यह एक हार ले जाओ, पुत्र को पहिना देना—अच्छा लगेगा। मित्र के अत्याग्रह से आखिर विमल ने उस हार को लेकर घर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में जाते-जाते कुछ ही क्षणों में उसका मन बिगड़ गया। विचार करने लगा—इस नवलखा हार को यदि वापस न दूं, तो मेरा दारिद्रय दूर हो जायेगा। मित्र के पास न तो कोई साक्षी है और न मेरे हस्ताक्षर हैं। वह कैसे मांगेगा, हार हजम हो जाएगा। इसी दृष्टिकोसे हार को घर में छिपा दिया।

दूसरे दिन कमल विवाह-मण्डप में आ पहुंचा। दूल्हे के गले में हार न देख कमल ने कहा—"मित्र विमल ! दूल्हे को वह हार क्यों नहीं पहिनाया ?"

विमल—"कौन सा हार ?"

कमल—"ऐसे कैसे बोलते हो ? कल मैंने हार दिया तो था।"

विमल—(सरोष) 'कब दिया था हार ? बिल्कुल नमक की रोटी बना रहे हो।"

कमल हक्का-बक्का रह गया। मुख निस्तेज हो गया। आखिर दोनों में इतनी तना-तनी बढ़ी कि, कमल को राजदरबार में जाना पड़ा। राजा ने कमल की सब बातें सुनकर पूछा—"क्या तुम्हारे पास कोई साक्षी या उसके हस्ताक्षर हैं ?"

कमल—"राजन् ! मैंने तो हार मित्रता के नाते दूल्हे को पहिनाने के लिए दिया था। हस्ताक्षर कराने का कोई सवाल ही नहीं था। मुझे क्या पता था कि यह मित्र होकर मेरे साथ ऐसा बर्ताव करेगा ? विश्वासघात करेगा ?"

राजा ने विमल को बुला, सारा किस्सा पूछा।

विमल—"राजन् ! मेरे जैसे गरीब को नौ लाख रुपये का हार कौन देता है ?"

राजा—"क्या कमल तेरा मित्र है ?"

विमल—"मित्र था, किन्तु अब मुझ पर झूठा कलंक लगा रहा है, अतः शत्रु से भी बढ़कर है।" राजा ने दोनों की बात सुनकर कहा—"कल तुम दोनों को देवी के मंदिर में सुबह उपस्थित होना है। वहां पर न्याय करूंगा कि कौन सच्चा है कौन झूठा ?"

राजा की उद्घोषणा के अनुसार सूर्य उदय होते ही देवी के मंदिर में हजारों की भीड़ जमा हो गई। राजा भी सिंहासन पर बैठ गये। कमल भी आ गया। धूर्त विमल भी घड़े में हार को रखकर, ऊपर कपड़ा तथा रस्सी बांध, हाथ में घड़े को लटका कर सभा में उपस्थित हो गया। नृप ने तथा दूसरों ने पूछा—"साथ में घड़ा कैसे लाए हो ?"

विमल ने कहा—"मेरे कण्ठ-शोष का रोग है, समय-समय प्यास लगती है, अतः पानी का घड़ा मुझे हमेशा साथ रखना ही पड़ता है।"

राजा ने जन-समूह को सुनाते हुए कहा—इस छोटी सी खिड़की में से जो निकल जाएगा, वह सच्चा है और जो फंस जाएगा वह झूठा है।

विमल ने कमल से कहा—"मेरा यह जल का घड़ा थोड़ी देर के लिए तू हाथ में रखना।" बस ! घड़ा उसे पकड़ाकर जोर से बोला—'हे सत्य सहायक देवी ! यदि मेरे पास हार हो तो मैं इस खिड़की में फंस जाऊं और यदि कमल का हार कमल के पास हो तो मैं निकल जाऊं।' इस प्रकार कहता हुआ वह शीघ्र खिड़की

से निकल गया। सभी लोग कहने लगे—"विमल सच्चा, कमल झूठा।" नृप के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कमल के होश गुम हो गये। इधर विमल ने शीघ्र आकर कमल से घड़ा मांगा। कमल के हाथ थर-थर कांप रहे थे। ज्योंही घड़ा देने लगा त्योंही बीच में हाथ से रस्सी छूट गई और जमीन पर गिरकर घड़ा फूट गया। हार बाहर निकलते ही नृप ने विमल की धूर्तता पर उसे देश-निकाला देते हुए कहा—"इनसान चाहे जितना पाप करे किन्तु एक दिन तो पाप का घड़ा फूटे बिना नहीं रहता है। कमल बिल्कुल सच्चा है, इसका तनिक भी दोष नहीं है।"

जो व्यक्ति कोयला खायेगा उसका मुख काला हुए बिना नहीं रहेगा। रुई में आग कभी नहीं छिप सकती। पाप चाहे जितना छिपकर करो, किन्तु एक दिन तो वह अवश्य ही प्रकट होगा, अतः हरेक को अपना दिल स्वच्छ रखना चाहिए।

पाप न छिपता तनिक भी, कितने करो प्रयास।
फूटेगा घट पाप का, होगा दिव्य प्रकाश॥

क्या तैरना सीखा ?

बैरिस्टर बाबू रमेशकुमार अपनी पत्नी को साथ लेकर विलायत से रवाना हुआ। फस्ट-क्लास की टिकट ले जहाज में वह दम्पत्ति उल्लसित मन बैठ गया। बाबू के गले में टाई, आंखों पर चश्मा और कलाई में घड़ी थी। कुर्सी पर बैठा वह दैनिक समाचार-पत्र पढ़ रहा था। उसके दिल में बैरिस्टर का बड़ा घमण्ड था। अपने आपको विद्या-वारिधि समझता था। इतने में एक खलासी (जहाज में काम करने वाला) बाबू के पास आया और हाथ जोड़कर बोला—"बाबू साहब! घड़ी में कितने बजे हैं?" बाबू अखबार पढ़ने में इतने तल्लीन थे कि उनको कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। दो-तीन बार पूछने पर बाबू का ध्यान गया तो रोष-भरी वाणी में बोला—"टेबिल पर घड़ी पड़ी है, तुम स्वयं देख लो। क्यों बिना मतलब शोर मचा रहे। चले जाओ यहां से।"

खलासी—(नम्रभाव से) "बाबू साहब! मुझे घड़ी देखनी नहीं आती है?"

बाबू—"क्या इस वैज्ञानिक युग में तूने घड़ी देखना भी नहीं सीखा? हाय! तब तो तेरी दो आना जिन्दगी पानी में चली गई। अच्छा तुम पढ़े कहां तक हो?"

खलासी—"बाबूजी! आप तो मेरे साथ मजाक करने लग गये। मैं कहां पढ़ा हूं? मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है।"

बाबू—"नहीं पढ़ने के कारण तेरी दो आना जिन्दगी फिर पानी में चली गई। अरे मूर्ख! आज के जमाने में पढ़ाई का बहुत महत्त्व है। पढ़ाई के बिना कोई

किसी को नहीं पूछता। शादी भी मुश्किल से होती है क्योंकि अनपढ़ को कोई भी लड़की देना नहीं चाहता। क्या तेरा विवाह हो गया?"

खलासी—"मेरा तो नहीं, किन्तु मेरे पिताजी का विवाह अवश्य हुआ था।"

बाबू—"अरे खलासी! तेरे जैसा हतभागी कोई नहीं है। इस भौतिकवादी युग में तूने स्त्री-सुख का आस्वाद नहीं लिया। इससे तेरी आठ आना जिन्दगी फिर पानी में चली गई।"

दोनों में ऐसी हल्की-फुल्की बातें हो रही थीं। अचानक समुद्र में भयंकर तूफान आ गया। चारों तरफ भीषण अन्धकार छा गया। जहाज डगमग-डगमग डोलने लगा। खतरे की घंटी बजते ही खलासी जोर से बोला—"बाबूजी! बाबू जी! जहाज डूबने वाला है। क्या आपने तैरना सीखा है?" बाबूजी के होश गुम हो गये। हक्का-बक्का रह गया और जोर से बोला—"अरे भाई खलासी! तैरना तो नहीं सीखा है।"

खलासी बोला—"मुझे और तो कुछ नहीं आता, किन्तु तैरना जरूर आता है। मैं तो तैरकर समुद्र के किनारे पर चला जाऊंगा। पर आप क्या करेंगे? बाबू जी, आप हर क्षेत्र में निपुण एवं दक्ष बने, किन्तु एक तैरना नहीं आने के कारण आप की क्या गति होगी? तनिक हिसाब मिलाइए आपके कथनानुसार मेरी जिन्दगी तो बारह आना ही पानी में गई परन्तु आपकी जिन्दगी अब सोलह आना ही पानी में जाने वाली है।"

खलासी की बात सुनते ही बाबूजी के हृदय में तहलका मच गया। हो-हल्ला करने लगा, पर उपाय क्या···? वह खलासी तो तैरकर समुद्र के तट पर चला गया और बाबू समुद्र में डूब गये।

मनुष्य अन्यान्य कलाओं में तो प्रवीण और दक्ष बन जाते हैं, किन्तु एक तैरने की कला के अभाव में उनका जीवन खत्म हो जाता है। अतः संसार समुद्र से पार होने के लिए सबसे पहले तैरने की कला में निपुण होना परम अपेक्षित है।

सब विद्याएँ सीखकर, पंडित बना महान्।
किन्तु न सीखा तैरना, डूब गया मतिमान्॥

पक्षपात

सुनार ने अपनी जिज्ञासा का समाधान पाने के लिए भगवान् ऋषभदेव से पूछा—"भगवन्! मेरे पास थोड़ी-सी पूंजी है। मैं अल्पारंभी, अल्पपरिग्रही हूं। मैं मरकर कहां जाऊंगा।"

भगवान ने कहा—"तुम नरक में जाओगे।"

सुनार—"तो फिर आपके पुत्र भरत जी कहां जाएंगे? वे तो षट्खण्ड के अधिपति हैं। महारंभी महा-परिग्रही हैं।"

भगवान ने फरमाया—"सुनार! भरत मोक्ष में जायेगा—क्योंकि वह अल्पारंभी और अल्पपरिग्रही है। तुम महारंभी और महा परिग्रही हो।" यह सुनते ही सुनार अवाक् रह गया। आकृति बदल गई। मन ही मन सोचने लगा—यह तो भगवान् का साक्षात् पक्षपात है।

भरतजी सुनार की बाह्य आकृति से उसके भाव ताड़ गये। उसे राजमहलों में बुलाकर कहा—"यह कटोरा तेल से लबालब भरा है। इसे अपनी हथेली पर रख सारे शहर में चक्कर लगा किन्तु ध्यान रहे एक बूंद भी यदि नीचे गिर गई तो तुम्हारे पीछे-पीछे चलने वाले आरक्षक उसी समय तुम्हारी गर्दन उड़ा देंगे। सुनार घबड़ा गया, सोचा—आज तो बिना मौत के मरना पड़ेगा। किन्तु चक्रवर्ती के आदेश का पालन आवश्यक था। इच्छा न होते हुए भी आज्ञा माननी पड़ती है। कटोरा लेकर सुनार चला। पीछे-पीछे आरक्षक हो गये। शहर के समस्त बाजारों में तथा समग्र गलियों में घूमकर वह सुनार भरतजी के समक्ष उपस्थित हुआ। भरत जी ने पूछा—"सारे शहर में घूम आया?"

सुनार—"हां आपके आदेश का पालन तो करना ही पड़ता है।"

भरतजी—"क्या इस कटोरे से तनिक भी तेल नीचे गिरा?"

सुनार—"गिरे कैसे? काल तो मेरे पीछे-पीछे चल रहा था।"

भरतजी—"अच्छा बताओ तो सही नगर के बाजार में क्या-क्या देखा?"

सुनार—"मैंने कुछ भी नहीं देखा। देखूं भी कैसे, मेरी दृष्टि तो उस कटोरे पर टिकी हुई थी। मन में मृत्यु का भय था।"

भरतजी—"इसका मतलब समझे या नहीं?"

सुनार—"मैं तो कुछ भी नहीं समझा, आपने यह क्या खेल रचा?"

भरतजी—'सुनार! मैंने तुझे समझाने के लिए यह प्रयोग किया है, मेरे हृदयस्थ विचारों को ध्यान से सुन—

मैं संसार के समस्त सुख, ऐश्वर्य को एक बाजार समझता हूं। मैं यहां निवास करता हुआ भी कटोरे की तरह केवल आत्मा का ही ख्याल रखता हूं। राज्य सम्पदा पर मुझे तनिक भी आसक्ति नहीं है। मेरी दृष्टि में ये सब बन्धन हैं। मुझे पल-पल परलोक का भय है। मैं प्रतिदिन यह चिन्तन करता रहता हूं कि इस संसार से कब छुटकारा मिले। इसलिए मैं अल्प-परिग्रही हूं। तुम्हारे पास सम्पत्ति थोड़ी है—फिर भी तुम्हारे मन में अनन्त आशाएं हैं। रात-दिन तुम हाय पैसा, हाय पैसा, हाय पैसा करते रहते हो, इसलिए महा-परिग्रही हो।" भरतेश्वर की बात

अन्ततः सुनार की समझ में आ गई।

आसक्ति और अनासक्ति में बड़ा अन्तर है। अनासक्त अवस्था परम शान्ति का मार्ग है। आसक्त अवस्था पतन का द्वार है, अतः किसी भी क्षेत्र में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

सुनार सम आसक्ति से, करो न कोई काम।
अनासक्ति भरतेश सम, रखनी है अभिराम॥

आदत से लाचार

एक गांव में एक कंकू काकी रहती थी। उसका स्वभाव बहुत ही खराब था। एक दूसरे को लड़ाने में वह बहुत होशियार थी। गांव में उसके कारण से काफी अशान्ति रहती थी। एक दिन उस गांव में साधु सन्तों का आगमन हुआ। उनके व्याख्यान में अच्छी-अच्छी शिक्षाएं लोगों को मिलती थी।

एक दिन कुछ बहिनों ने महाराज से निवेदन करते हुए कहा—"महाराज! इस गांव में एक कंकू काकी है। वह एक दूसरे को आपस में लड़ाने में बड़ी निपुण है। उसे कुछ शिक्षा फरमाइये।"

एक दिन अकस्मात् कंकू काकी संतों के स्थान पर आ गई। मुनि ने उसे काफी समझाया। कंकू ने कहा—"महाराज! दिन में एक बार से अधिक झगड़ा न करने का नियम दिला दो।" मुनि ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"बहिन! ऐसे जघन्य कार्य से तेरी गति बिगड़ जायेगी अतः तनिक भी छूट मत करो।" किन्तु वह कहां मानने वाली थी? वह घर गई। उसने सोचा—आज से अधिक आग तो लगानी नहीं है। एक ही ऐसी लगाऊं कि सारा गांव जल जाए। वह एक ब्राह्मण की दुकान पर गई। उससे मीठी-मीठी बातें बनाती हुई बोली—"बेटा! तेरा शरीर इतना कमजोर क्यों है?"

ब्राह्मण बोला—"माताजी! मेरी प्रकृति ही ऐसी है।"

कंकू बोली—"बेटा! तेरी स्त्री डायन है। तुझे जब नींद आ जाती है तब वह निरंतर तुझे खाती है, इससे तेरा शरीर दुर्बल रहता है। यदि मैं झूठ कहती हूं तो आज इसकी परीक्षा कर लेना।"

ब्राह्मण बोला—'अच्छा, आज मैं स्त्री की परीक्षा करूंगा।"

इधर कंकू ब्राह्मण के घर आई। ब्राह्मणी से मीठी-मीठी बातें बनाती हुई बोली—"बेटी! तेरे पति की जाति क्या है?"

ब्राह्मणी बोली—"माता जी ! मैं ब्राह्मणी हूं तो मेरे पति ब्राह्मण ही हैं।" कंकु बोली—"भोली तुझे पता ही नहीं तेरा पति ब्राह्मण नहीं खारवाल है। आज रात उसकी पीठ चाट कर—परीक्षा करना, नमक जैसा कड़वा लगेगा।" इस तरह उसके दिल में भी बात जमाकर कंकु अपने घर चली गई।

ब्राह्मण दुकान से घर आया। खाना खाकर कपटनिद्रा में सो गया। ब्राह्मणी भी परीक्षा करने को तैयार हुई। थोड़ा सा कपड़ा हटाकर ब्राह्मण की पीठ चाटने लगी। मुंह कड़वा हो गया। ब्राह्मण उठा और ब्राह्मणी को पीटता हुआ बोला—"डायन ! रोजाना खाती है। इससे मेरा शरीर दिनों दिन कमजोर होता जा रहा है।" ब्राह्मणी भी सर्पिणी की भांति फुंफकार करती हुई बोली—"अरे खारवाल ! तूने मुझे भ्रष्ट कर दिया।" इस तरह दोनों के आपस में भयंकर चिनगारियां उछलने लगीं। इधर बाहर बैठी कंकु काकी ने सोचा—मैंने जो चिनगारी लगाई थी, वह अच्छी तरह से भड़क उठी। कंकु की खुशी का पार नहीं रहा और वह जोर-जोर से नाचने लगी। उस कोलाहल से पड़ोसियों की भी नींद टूट गई। सब दौड़े-दौड़े आए और दोनों को समझाने लगे। आखिर झगड़े के कारण का पता लगते ही कंकु काकी को दुत्कारने लगे।

आखिर ब्राह्मण-ब्राह्मणी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि न कोई डायन है और न कोई खारवाल। यह सब कंकु का ही प्रताप है। दोनों का झगड़ा शान्त हो गया।

जो व्यक्ति आदत से लाचार होता है वह एक को कुछ कह देता है तो दूसरे को कुछ कह देता है। परस्पर झगड़े कराने में ही वह अपना महत्त्व समझता है किन्तु कलह करना मन-मुटाव करना बहुत बड़ा पाप है। विवेकशील मानव को इससे बचते रहना चाहिए।

कलह कराने में कई, होते अति होशियार।
किन्तु उन्हें मिलता नहीं, कभी मान सत्कार॥

संसार से ग्लानि

याज्ञवल्क्य नाम के एक ऋषि थे। उनके दो पत्नियां थीं। मैत्रेयी और कात्यायिनी। ऋषि बड़े आध्यात्मिक व गहरे चिन्तक थे। एक दिन उनके मस्तिष्क में चिन्तन चला—अब मुझे इस प्रवृत्तिमय जीवन से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। उन्होंने दोनों पत्नियों से कहा—"मैं अब सन्यास लेना चाहता हूं। इस संसार में मुझे ग्लानि उत्पन्न हो गई है। जीवन का कुछ भी विश्वास नहीं है। मैं प्रवृत्ति के

मार्ग को छोड़ निवृत्ति के मार्ग को अपनाना चाहता हूं। लेकिन इससे पहले मैं मेरी सम्पत्ति तुम्हें बांटकर फिर संयम-पथ को स्वीकार करना चाहूंगा।" मैत्रेयी कुछ बुद्धिमती थी उसने कहा—"स्वामिन ! आप जिस सम्पत्ति को छोड़ निवृत्ति लेना चाहते हैं और हमें देते हैं, क्या वह सम्पत्ति मुझे सच्चा सुख देगी ? क्या वह जन्म-मरण के दावानल को शान्त करेगी ?" याज्ञवल्क्य ने कहा—"मैत्रेयी ! उस सम्पत्ति से आध्यात्मिक सुख तो नहीं मिलेगा, किन्तु भौतिक सुखानुभूति अवश्य होगी।"

मैत्रेयी ने कहा—"स्वामिन् ! जिसे आप हेय समझते हैं दुःख का कारण मानते हैं, वह सम्पत्ति आप हमें दे रहे हैं क्या—यही आपका महत्त्व है ? मुझे ऐसी भौतिक सम्पत्ति की चाह नहीं है। यह समस्त सम्पत्ति आप मेरी बहिन कात्यायिनी को दे दें। कृपया मुझे तो आप ऐसी आत्म-शक्ति दें, जिससे मुझे सही सुखानुभूति हो सके।"

आखिर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आध्यात्मिक मार्ग बताते हुए संयम में रमण करने की प्रेरणा दी और कहा—"तुम्हारे विचार बहुत ही प्रशंसनीय एवं दूसरों के लिए अनुकरणीय भी हैं।"

जो व्यक्ति आध्यात्मिक सुख के आकांक्षी है, उन्हें संसार से विरक्त रहना चाहिए और संयम सरोवर में स्नान कर आन्तरिक पाप को धोने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे सही सुख की उपलब्धि हो सके।

आध्यात्मिक सुख इच्छुकों जग से रहो विरक्त।
"मुनि कन्हैया" नित रहो, संयम में अनुरक्त ॥

विचारों का प्रभाव

एक बार हिन्द के बादशाह ने सोचा—हम क्यों जीते हैं ? चीन के बादशाह की तरह हम भी दीर्घजीवी क्यों नहीं होते ? इसका क्या कारण है ? आखिर शंका का समाधान पाने के लिए एक दिन हिन्द के बादशाह ने चीन के बादशाह को लिखा कि हमारा जीवन तो बहुत छोटा होता है, किन्तु आप बड़े दीर्घजीवी होते हैं, इसका क्या कारण है ? बादशाह ने यह पत्र लिखकर मंत्री को ५०० नौजवानों सहित चीन के बादशाह के पास भेजा और कहा—"तुम इस पत्र का जवाब लेकर आना। अगर जवाब लिए बिना ही आ गये, तो तुम्हें प्राण दण्ड दिया जायेगा।"

मन्त्री पत्र लेकर चीन पहुंचा। उसने वह स्वर्ण पेटी बादशाह को दे दी, जिसमें वह पत्र बन्द किया हुआ था। चीन के बादशाह ने पत्र को पढ़ा और हिन्द से आने

वाले ५०० नौजवानों का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया। उन सब की सेवार्थ कुछ आदमी भी नियुक्त कर दिये गये। पांच-सात दिन बाद मन्त्री बादशाह के पास गया और बोला—"महाराज ! अब तो पत्र का जवाब दीजिए।"

बादशाह ने कहा—"भाई ! अभी तो तुम आये हो कुछ दिन ठहरो और यहां की संस्कृति को देखो, तुम्हें उत्तर भी मिल जायेगा।"

मन्त्री कुछ दिन और ठहरकर बादशाह से बोला—"आप अपना उत्तर दे दीजिए। यहां आए बहुत दिन हो गये। यहां की संस्कृति का भी अध्ययन कर लिया है।"

बादशाह—"भाई ! जिस मकान में ठहरे हो, उसके सामने वाला वट-वृक्ष जब जलकर खाक हो जायेगा तब तुम्हें मैं अपना जवाब दूंगा।"

मन्त्री बहुत बड़े असमंजस में पड़ गया। ५०० वर्ष पुराना वह वृक्ष कब जलेगा और कब हम अपने घर जायेंगे। मन्त्री को अब घर जाने की कोई उम्मीद नहीं रही। वह अपने ५०० साथियों के पास आया और बोला—"यह वट वृक्ष जब जल जायेगा, तब बादशाह का उत्तर मिलेगा। अब तो घर जाने की कोई भी आशा नहीं है। सब यहीं मर-खप जायेंगे। मन्त्री तथा उसके साथियों के मस्तिष्क में सोते-जागते, उठते-बैठते निरन्तर यही विचार रहता कि यह वट वृक्ष कब जले और कब हम अपने घर वापस जाएं। इस प्रकार निम्न विचारों व क्षुद्र भावना से वह वट-वृक्ष सिर्फ दो ही महीनों में जलकर खाक हो गया। मन्त्री को आश्चर्य हुआ पर उन्हें खुशी भी हुई कि अब हम घर पहुंच जायेंगे। मन्त्री बादशाह के पास गया और बोला—"आपके कहे अनुसार वह वट-वृक्ष जलकर खाक हो गया है, अब हम अपने घर को रवाना हो रहे हैं, अतः अपना जवाब आप हमें दे दीजिए।"

बादशाह ने कहा—"भाई ! तुम्हारे पत्र का जवाब तो तुम्हें मिल गया ? फिर मैं क्या कहूं ?"

मन्त्री ने साश्चर्य पूछा—"महाराज ! जवाब कैसे मिल गया ? अभी तक तो आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।" बादशाह ने कहा—जिस प्रकार तुमने ५०० वर्ष पुराने वट-वृक्ष को भी "कब जले-कब जले" के अनिष्ट विचारों से दो महीने की अल्प-अवधि में ही जलाकर खाक कर दिया है, उसी प्रकार तुम्हारे राजा भी प्रजा से प्रेम नहीं करते हैं। इसलिए प्रजा उन्हें अशान्ति की नजर से देखती है और बादशाह के प्रति उनके विचार भी अच्छे नहीं रहते हैं, इसी कारण हिन्द के बादशाह अल्पजीवी होते हैं। मेरी प्रजा मुझे चाहती है, प्रेम भरी नजरों से देखती है, मेरे प्रति उनके विचार भी अच्छे रहते हैं, इसी कारण यहां के बादशाह दीर्घजीवी होते हैं। लम्बे समय की जिन्दगी बसर करते हैं।"

मन्त्री ने हिन्द में आकर अपने बादशाह को समग्र विचारों से अवगत किया।

हिन्द के बादशाह पर इन समाचारों का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। सहसा उनके मुख से ये शब्द निकले—"हरेक को शुद्ध विचार रखने चाहिए।"

विचारों में अपरिमित शक्ति होती है। जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसा ही फल मिलता है। निम्न विचारों से ह्रास और उच्च विचारों से विकास। अतः सबको विचारों की मलिनता को त्यागकर पवित्र विचार रखने चाहिए।

अवनति का कारण सही, दिल के बुरे विचार।
उन्नति का सन्मार्ग है, पावन उच्च विचार॥

जमाना झूठ का

सुन्दरपुर शहर में वीरसेन नाम का राजा रहता था। राजा बड़ा धर्मनिष्ठ एवं नीतिज्ञ होने के साथ-साथ व्यवहारकुशल भी था। एक दिन राजा राज्यसभा में अनेकों विद्वानों के सामने नृप ने प्रश्न किया—"संसार में सबसे बड़ा क्या है?" किसी ने कहा—"अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा सर्वोत्कृष्ट है।" किसी ने 'ब्रह्मचर्य' तो किसी ने 'सन्तोष' को बड़ा बतलाया। इस तरह सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अलग-अलग उत्तर दिये। अन्त में राजा बोला—"दुनिया में सबसे बड़ा है सत्य। इससे बढ़कर कुछ भी नहीं हो सकता।"

इतने में एक वेश्या खड़ी होकर बोली—"राजन्! सत्य का समय नहीं है। जमाना झूठ का है। झूठ सबको मीठा लगता है और सत्य कड़वा है। सत्य के पूंछ भी नहीं है और झूठ के मूंछें बन रही है।" राजा बोला—"सत्य के बिना कोई भी काम नहीं चल सकता, अतः जमाना झूठ का नहीं, सत्य का है।" परस्पर वाद-विवाद बढ़ने से राजा ने वेश्या से कहा—"इसका प्रमाण देकर बताना कि जमाना झूठ का है?"

सभा विसर्जित हुई। वेश्या मीराबाई के सदृश सफेद कपड़े पहन कर परदेश के लिए रवाना हो गई। खुले केश भी पीछे लटका लिये। गले में तुलसी की माला व हाथ में तम्बूरा ले उसने अपनी एक नई भजन मण्डली बना ली। गांव-गांव में मधुर-मधुर भजनों द्वारा लोगों को आकर्षित करने लगी। आखिर फिरते-फिरते उसी सुन्दरपुर में आई और पुर के बाहर अपने डेरे डाले। जो भी वहां आते, उन सब को वह भक्ति भरे भजन सुनाती और श्रीकृष्ण के दर्शन कराती। हवा की तरह सारे शहर में मीराबाई की बात फैल गई कि मीराबाई मुफ्त में श्रीकृष्ण के दर्शन कराती है।

राजा के कानों में मीराबाई की महिमा गूंजने लगी। राजा भी सुसज्जित होकर मीराबाई की सभा में आ पहुंचा। मीराबाई ने तरह-तरह के भजन सुनाकर राजा के दिल को मोहित कर लिया। उसे तम्बू में ले जाकर मीराबाई बोली—"राजन् ! जिनके असली माता-पिता हैं उन सबको तो श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे, वरना बंशीधर के बदले जूता नजर आयेगा।" राजा ने ऊपर नजर टिका कर कहा—"धन्य हो मीराबाई आपके काम को ! मुझे तो आपकी कृपा से विष्णु के दर्शन हो रहे हैं। क्योंकि राजा के हृदय में यह भय था कि सच बोलने से यह मुझे वर्णशंकर बना देगी। इस भय से झूठ का सहारा लेना ही पड़ा। आखिर वहां से छुटकारा पाकर राजमहलों में आया और सोचने लगा—दर्शन कहां था, सब ने धोखा खाया। अगर कोई जूता कह देता तो मीराबाई उसको 'वर्णशंकर' घोषित कर देती। इस भय से कोई भी भेद को खोल नहीं सका। इधर मीरा अपनी सब माया को समेट कर वेश्या के कपड़े पहन कर राजमहल में चली आई।

राजा—"वेश्या ! आज तो बहुत दिनों से आई ?"

वेश्या—"हवा बदलने गई हुई थी। कल ही वापस आई हूं।"

राजा—"हम तो कल सत्संग में गये थे, प्रभु के भी दर्शन किये।"

वेश्या—"आपने श्रीकृष्ण के दर्शन किये क्या ?"

राजा—"हां तम्बू में दर्शन किये थे। विष्णु गरुड़ पर सवार थे, साथ में लक्ष्मी भी विराज रही थीं। हाथ में उनके सुदर्शन चक्र था।"

वेश्या कड़ककर बोली—"राजन् ! आपको झूठ बोलते तनिक भी संकोच नहीं होता ? कहां थी मीराबाई ? कहां थे श्रीकृष्ण के दर्शन ? तम्बू में तो मेरा जाल था। कृष्ण स्थान पर जूते के दर्शन किये होंगे।"

वेश्या की वाणी सुनते ही राजा शर्मिन्दा होकर अपनी गलती को स्वीकार करते हुए बोला—"वेश्या, जमाना सत्य का नहीं, झूठ का है। अतः सत्य नहीं, सबसे बड़ा झूठ है।"

आज सर्वत्र झूठ तथा ठगाई का बोलबाला है। वेश्या ने धर्म के नाम पर भी बहुत बड़ी ठगाई की। सबको धोखा दिया। पर क्या इससे वेश्या की इज्जत बढ़ सकती थी ? कदापि नहीं। मोल उसी का बढ़ेगा जो ठगाई को छोड़कर हृदय को स्वच्छ रखेगा, सर्वत्र निश्छलता का व्यवहार करेगा।

अजब जमाना झूठ का, नहीं सत्य साकार।
धर्म नाम पर धूर्तता, पलती हाय ! अपार ॥

जब तक श्वास तब तक आश

जोधपुर के नरेश जसवन्तसिंहजी बड़े न्यायी राजा हुए हैं। वे किसी को भी दुःख देना नहीं चाहते थे। प्रतिक्षण दूसरों का भला करने के लिए जागरूक रहते थे। स्वभाव के सरल थे। योगाभ्यास आदि विविध क्रियाओं में बड़े निपुण थे। राजस्थानी भाषा के सिद्ध हस्त कवि थे। एक दिन उन्होंने सोचा—मेरा यह कुंवर आज्ञाकारी है या नहीं, इसका परीक्षण करना चाहिए। कुंवर को बुलाया और बोले—"पुत्र ! मैं जैसा कहूंगा वैसा करेगा ?"

पुत्र हाथ जोड़कर बोला—"पिताजी ! मैं कभी भी आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा। कृपया कार्य फरमाइये।"

राजा—"क्या आदेश का अक्षरशः पालन करेगा ?"

पुत्र—मैं दृढ़ निष्ठा से आपको विश्वास दिलाता हूं कि रंच मात्र भी इधर से उधर नहीं होऊंगा।"

राजा—"पुत्र ! जिस दिन मेरा देहावसान हो जाए, उस दिन जो कपड़े और आभूषण मेरे तन पर पहिने हुए हों उन सब को उतारना मत, बदला-बदली भी मत करना। जैसा का तैसा ही मुझे चिता पर अर्थात् उन कपड़ों व आभूषणों सहित मुझे जला देना। किसी की भी मत सुनना।" पुत्र—"पिताजी। इस आदेश का ध्यान रखूंगा। जैसा आपने कहा वैसा ही होगा। तनिक भी अन्तर नहीं होने दूंगा।"

राजा जी को श्वास चढ़ाना आता ही था। कुछ ही महीनों बाद अच्छे-अच्छे बहुमूल्य कपड़े तथा आभूषण पहिनकर नृप ने पुत्र को बुलाया और कहा—"पुत्र ! आज तो शरीर में काफी बेचैनी है। पेट में भी काफी दर्द है और सिर पीड़ा से फूट रहा है। कोई भी वस्तु स्वादिष्ट नहीं लगती है। न जाने किस भयंकर रोग ने घेरा डाल दिया है।" यों बातें करते-करते महाराज जसवन्तसिंह ने श्वास चढ़ा लिया और धरती पर लम्बे लेट गये। आंखें फाड़ लीं। मुख पर झाग चढ़ गये। नाड़ी भी हाथ में नहीं आने से कुंवर को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि दरबार तो स्वर्गलोक में पहुंच गये। मन्त्री निकट ही बैठा था। कुंवर ने मन्त्री से कहा—"मन्त्रीवर ! कुछ समय पूर्व पिताजी ने कहा था—कपड़ों तथा आभूषणों को उतारना मत। उनके सहित ही जला देना, किन्तु अब दरबार तो रहे नहीं, मिट्टी हो गई। यदि ये वस्त्र आभूषण आदि नहीं खोलेंगे, तो इतना वैभव व्यर्थ जल जायेगा। अतः मेरी इच्छा है कि इन सबको उतार बदले में दूसरे पहिना दिये जाएं। जिससे अधिक नुकसान न हो। यह सब बातें दरबार सुन ही रहे थे। अचानक निद्रा से आदमी उठता है वैसे ही दरबार उठे और आंखें खोलीं। उसी

समय संसार के स्वरूप के विषय में उन्होंने एक दोहा कहा—

खाया सो तो खो दिया, दीधां चाल्या सत्य।
जसवन्त, घर पोढावियां, माल विराणे हत्थ ।।

जब तक श्वास है तब तक आश है। श्वास निकल जाने के बाद कोई भी किसी को नहीं पूछता है। दरबार को यह विश्वास नहीं था कि मेरा पुत्र इस प्रकार बदल जायेगा, अतः इस स्वार्थ-भरे संसार में धर्म के सिवाय कोई किसी का नहीं है।

दौड़-दौड़ सब आ रहे, जब तक तन में श्वास।
निकल आयेगा श्वास जब, (तब) कोई न आए पास ।।

लज्जा

मोहनी और सोहनी नाम की दो स्त्रियां थीं। मोहनी सदाचारिणी, लज्जावती एवं पतिव्रता स्त्री थी। शहर में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सोहनी बड़ी दुराचारिणी एवं कर्कश स्वभाववाली थी। वह मोहनी की निरन्तर निन्दा करती थी। आस-पास की स्त्रियों को भड़काती रहती थी कि मोहनी अच्छी स्त्री नहीं है। किसी को भी इसकी संगति नहीं करनी चाहिए। एक दिन मोहनी और सोहनी में परस्पर झड़प हो गई। मोहनी ने कहा—"सोहनी ! बिना मतलब मेरी निन्दा क्यों करती हो ? तेरे-मेरे क्या लेना-देना है ?"

इतना सुनते ही सोहनी भड़क उठी। अनर्गल शब्दों से उसको दुत्कारने लगी। आखिर घर गई। सोचने लगी—सोहनी पर ऐसा कलंक लगाऊं, जिससे उसकी इज्जत और आबरू मिट्टी में मिल जाये। दूसरों को बुरा करने के लिये मानव अपना नुकसान भी सह लेता है। उसने आव देखा न ताव, शीघ्र अपने पुत्र को मार उसके शव को मोहनी के मकान के पास कुंए में फेंक आई और विलाप करती हुई पुत्र को खोजने लगी "हाय ! न जाने मेरा वत्स कहां गायब हो गया।" दूसरे लोग भी उसको ढूंढने लगे। आखिर उसी कुएं के पास पहुंचे। उसमें बच्चे की लाश निकल आई। सोहनी तमक कर गरजने लगी—"हाय ! इस मोहनी ने मेरे बच्चे को मार दिया। पापिनी ! धिक्कार है तेरे वंश को।" दोनों में परस्पर भयंकर झगड़ा हुआ। दोनों बादशाह के पास पहुंचीं। बादशाह ने सारी बात सुनी। उससे फैसला नहीं हुआ। बादशाह का वजीर बड़ा बुद्धिमान था। उसने कहा—जहांपनाह ! इस मामले में कानून की किताब कामयाब नहीं हो सकती। कौन झूठी है, कौन सच्ची है, इसकी जांच मैं करूंगा। आप फिक्र न कीजिए।"

वजीर दोनों स्त्रियों को अपने घर ले गया और पहले मोहनी से कहा—"तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लड़के को मारा है। तुम कहती हो, मैंने नहीं मारा। इस बात का विश्वास करना है तो नंगी होकर आ जाओ।" यह सुनते ही वह चौंकी और भृकुटी चढ़ाकर बोली—"वजीर! ऐसी बात करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हूं, किन्तु अपनी लज्जा नहीं छोड़ सकती।" वजीर समझ गया, यह सच्ची सती है। इसके बाद वजीर ने सोहनी को बुलाकर कहा—"तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूंगा कि तुम सच्ची हो।"

वह कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी। वजीर ने शीघ्र उसको रोक दिया और जल्लाद को बुलाकर कहा—"इस स्त्री को बेतों से मारो।"

जल्लाद उसको जोर-जोर से पीटने लगे। वह चिल्लाई, प्रार्थना करने लगी। "मुझे मत मारो, मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूंगी।"

जल्लाद ने पूछा—"सही-सही बता लड़के को किसने मारा है।" कहावत है—'मार के आगे भूत भी भागते हैं।' वह जोर से बोल पड़ी—"बच्चे का वध करने वाली मैं ही हूं।"

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश किया और कहा—लड़के को मारने वाली उसी की मां है।

सारा वातावरण बदल गया। सच्चरित्र मोहनी के सर पर मढ़ा कलंक मिट गया। सर्वत्र उसकी महिमा फैल गई। बादशाह भी उसकी प्रशंसा करने लगा और कुलटा सोहनी को फांसी की सजा सुनाकर कहा—"ऐसी स्त्रियों का मुखावलोकन भी सुखद नहीं है।"

लज्जा एक बहुत बड़ा गुण है। लज्जा के प्रताप से ही इस बहिन की रक्षा हुई। लज्जावान ही धार्मिक बन सकता है। अतः हर एक को लज्जा, दया आदि सद्गुणों से अनुराग रखना चाहिए।

लज्जा सुख आवास है, लज्जा नया प्रकाश।
बहिन मोहनी का जमा, लोगों में विश्वास॥

वाणी से पहिचान

एक अन्धा था, किन्तु उसके हृदय में इतना प्रकाश था कि वह सारे शहर में चक्कर लगा लेता था। और परीक्षक भी सच्चा था। हर एक की वाणी से हर एक को पहिचान लेता था कि अमुक इज्जत वाला है और अमुक नीच है।

एक दिन उस गांव के ठाकुर साहब कहीं पर जीत के नगारे बजाकर अपने गांव में प्रवेश कर रहे थे। उनके आगे-आगे उनके नौकर (गोले) घोड़ों पर चल रहे थे। मार्ग में वह अन्धा मिल गया। नौकरों ने अन्धे से कहा—"अन्धिया भाई राम-राम।" अन्धा भी जोर से बोल पड़ा—"हां, गोलणियां भाई राम-राम।" पीछे से ठाकुर साहब पधार रहे थे। वे भी जोर से बोले—"सूरदास भाई! राम-राम, सूरदास भाई! राम-राम।"

अन्धा भी विवेक पूर्वक बोला—"हां ठाकुर साहब राम-राम! ठाकुर साहब राम-राम!" यह दृश्य देखकर लोगों के दिलों में आश्चर्य का पार न रहा। लोगों ने अन्धे से पूछा—"भाई! तू इस निर्णय पर कैसे पहुंचा कि ये गोले हैं और ये ठाकुर साहब हैं?"

अन्धे ने अपनी मधुर भाषा में उत्तर देते हुए कहा—"भाइयो! हिया फुट्या पर हिया नहीं फुट्या" अर्थात् मेरी ऊपर की आंखें जरूर गई, किन्तु हृदय की आंखें अभी तक विद्यमान हैं। ऊपर से अंधेरा है, किन्तु हृदय में प्रकाश है। मैंने उनकी वाणी से उनको पहिचान लिया कि ये गोले हैं, ये ठाकुर साहब हैं क्योंकि तुच्छ आदमी तुच्छ बोली बोला करते हैं और बड़े आदमी बड़ी बोली बोला करते हैं।"

हर एक को ऊंची बोली बोलना चाहिए। 'वचने का दरिद्रता' वचन में दरिद्रता क्यों? क्योंकि वाणी से इन्सान की पहचान हो जाती है कि अमुक व्यक्ति कितना गहरा है और अमुक कितना छिछला है अर्थात् अमुक तुच्छ है, अमुक महान् है।

हो जाती इन्सान की, वाणी से पहिचान।
'सूरदास' को हो गया, दोनों जन का ज्ञान॥

पचास हजार का त्याग

एक दक्ष वकील था। वह झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा करने में बड़ा निपुण था। बड़े-बड़े वकील उसके पास सलाह लेने आते थे। सर्वत्र उसकी प्रतिष्ठा थी। एक दिन की बात है। वकील साहब भोजन कर रहे थे। इतने में उनका एक मुवक्किल आया और उसने पचास हजार के नोट वकील साहब के सामने रख दिये। वकील साहब ने गर्व प्रकट करते हुए अपनी अर्धांगिनी से कहा—"प्रिये! देखो मेरी चतुरता, धड़ाधड़ रुपये आ रहे हैं।" यह सुनते ही स्त्री की आंखों से पानी बहने लग गया।

वकील ने कहा—"प्रिये ! रुदन क्यों कर रही हो ? अपने घर में किस बात की कमी है ? अच्छी से अच्छी कमाई हो रही है। सर्वत्र मेरा मान है। सभी कार्यों में मुझे अबाध्य सफलता मिलती है। फिर भी रोती हो ?" वकील की पत्नी ने कहा—"प्राणाधार ! मैं आपके कृत्य को देखकर रो रही हूं।"

वकील—"प्रिये। मैंने कौन सा ऐसा बुरा काम किया है ?"

पत्नी - "प्राणेश ! मुझे दुःख इस बात का है कि आप झूठे को सच्चा बनाते हैं और सच्चे को झूठा। क्या यह अकृत्य नहीं है ? आप पचास हजार रुपए देख-कर खुश हो रहे हैं लेकिन जिसको एक लाख घर से देने पड़े, कृपया उससे पूछिए कि वह कितना दुःखी है। पतिदेव ! इस प्रकार के पैसे कमाकर आप आनन्द मना रहे हैं। क्या यह मानवता है ? तनिक गहराई से चिन्तन करें। वकील —"प्रिये ! तुम्हारा कहना एक दृष्टि से ठीक है पर करें क्या ? हमारा व्यापार ही ऐसा है। झूठ को सच न करें तो काम ठप्प हो जाए।"

पत्नी—"पतिदेव ! आप सत्य को असत्य बनाते हैं। इसके बदले सत्य को सत्य बनाने की वकालत क्यों नहीं करते ? यदि आप प्रामाणिकता से काम करेंगे, तो क्या घर का काम नहीं चलेगा। मैं चाहती हूं कि आप यह शपथ ग्रहण करें कि भविष्य में कोई भी झूठा मुकदमा नहीं लेंगे। आपको कदम-कदम पर सफलता अवश्य ही मिलती रहेगी।

पत्नी की न्यायनिष्ठा देखकर वकील साहब के विचारों में परिवर्तन आ गया। उन्होंने अपने मुवक्किल से कहा—"आप ये रुपये ले जाइये और किसी प्रकार प्रतिवादी को समझाइए। अब मैं झूठे मुकदमों से दूर रहना चाहता हूं।"

मुवक्किल भी यह सब देखकर दंग रह गया। और पुनः-पुनः वकील साहब की पत्नी की प्रशंसा करने लगा कि ऐसी सत्यनिष्ठा स्त्री ही संसार का कल्याण करेगी, जिसने पचास हजार का त्याग कर दिया।

प्रत्येक व्यक्ति को सत्य न्याय पर अटल रहना चाहिए। धन के आगे भी जो न्यायमार्ग को नहीं छोड़ता है वही इस विश्व में प्रतिष्ठावान बन सकता है।

धन आगे झुकते नहीं, करते न्याय महान्।
"मुनि कन्हैया" मनुज वे, बनें प्रतिष्ठावान ॥

मन का अनियंत्रण

एक राजा था। उसको आम खाने का बड़ा शौक था। अधिक आम खाने से उसके भयंकर, असाध्य रोग पैदा हो गया। वैद्यों द्वारा इलाज प्रारम्भ हुआ। कोई भी औषधि लाभदायक नहीं होने से आखिर वैद्यों ने कहा – "आपको कभी आम नहीं खाने चाहिए। आपके लिए आम जहर है। आम छोड़ने पर ही हमारा उपचार सफल हो सकेगा। आप पूर्ण स्वस्थ बन जायेंगे।" कुछ ही दिनों में राजा जी स्वस्थ हो गये। भविष्य के लिये भी वैद्यों ने यही सलाह दी—"यदि आपको जीवन प्रिय है, तो आप निरन्तर आम से बचते रहें। कभी भी आप पर रोग आक्रमण नहीं करेगा।"

राजा ने सोचा—यदि देश में आम के वृक्ष रहेंगे, तो बार-बार मेरी नजर में आएंगे और मन ललचाये बिना नहीं रहेगा। इससे तो अच्छा यही है कि देश में जितने भी आम के वृक्ष हैं उन सबको कटवा दिया जाये। बस, न रहे बांस, न बजेगी बांसुरी। आम देखने को ही नहीं मिलेगा तो खाऊंगा क्या?

सारे देश में राजा का आदेश प्रसारित होते ही आम का एक भी वृक्ष न रहा। आनन्द से राज करने लग गया। एक दिन अन्य देश से घोड़े आये। राजा और मंत्री उन घोड़ों पर सवार हो क्रीड़ा के लिए चल पड़े। घोड़े अति त्वरितगामी होने से शीघ्र ही राजा और मंत्री अपने देश की सीमा को पार कर गये। राजा थक गया, अत: घोड़े ठहर गये।

राजा ने मंत्री से कहा—"वह सामने वाला वृक्ष काफी सघन है। कुछ देर उसकी शीतल छाया में विश्राम लेना सुखद होगा।"

मंत्री ने कहा—"वह तो आम का वृक्ष है, उसकी छाया में भी बैठना आपके लिए हानिकारक है।" राजा—"छाया में बैठने से क्या होता है? आम खाऊंगा नहीं।"

दोनों ने उस वृक्ष की शीतल छाया में ही विश्राम लिया। राजा की नजर उन बड़े-बड़े सुगन्धित आमों पर पड़ी। इतने में ही पवन के झोंके से एक आम नीचे गिरा। राजा का मन वश में न रहा, जी ललचा गया। राजा खाने को उद्यत हुआ मंत्री ने शीघ्र हाथ पकड़ते हुए कहा—"राजन्! क्या आप भूल गये? आपके लिए आम जहर है। मन पर नियंत्रण रखिए।"

राजा बोला—"उस बात को बहुत वर्ष हो गये। पूरा न खाकर आम का तनिक रसास्वादन करने में अब क्या नुकसान है?" मंत्री ने काफी समझाया, किन्तु राजा कहां मानने वाला था। आम को खा ही लिया। कुछ ही देर बाद रोग का प्रकोप हुआ राजा और मंत्री शीघ्र अपने देश में आये। जहर की तरह सारे शरीर

में रोग फैलने लगा। कोई भी उपचार लागू नहीं पड़ा। आखिर मन के अनियंत्रण से राजा परलोक का निवासी बन ही गया।

जो व्यक्ति अपने मन का निग्रह नहीं कर सकते हैं उनको नृप की भांति अपनी जीवनलीला समाप्त करनी ही पड़ती है। अतः सुखेच्छुकों के लिये मन का नियंत्रण अत्यावश्यक माना गया है।

मनो अनिग्रह से महिप, पहुंच गया परधाम।
मन पर निग्रह कीजिए, यदि चाहते आराम॥

मणिशेखर

मणिशेखर एक विश्वस्त सेठ का पुत्र था। घर में कोई भी कमी नहीं थी। बाल्यावस्था मे ही कुसंगति के कारण मणिशेखर चोरियां करने लगा। इससे सेठ बहुत दुःखी था। समय-समय पर मणिशेखर को शिक्षा देता था। चोरी का दुष्परिणाम बता-बता कर चोरों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए काफी प्रयत्नशील था। परन्तु उस चिकने घड़े पर क्या असर होने वाला था?

एक दिन उस नगर मे ज्ञानी संतों का आगमन हुआ। हजारों मनुष्य वन्दनार्थ गये। सेठ गया और अपनी दर्दभरी कहानी मुनिराज को सुना दी। अवसर देखकर मुनि ने मणिशेखर से कहा—"भाई! 'पर-धन धूलि समान' पराये के धन को धूलि के समान समझो। चोरी करना भयंकर पाप है।" बहुत समझाने पर उसने कहा—"महाराज! मैं आदत से लाचार हूं। चोरी तो करूंगा, किन्तु झूठ नही बोलूंगा।" मुनि से असत्य न बोलने की विचित्र प्रतिज्ञा ग्रहण करने के बाद भी मणिशेखर दिन मे तो कारोबार करता और रात को चोरी। प्रतिदिन चोरिया होने के कारण सारे शहर में हाहाकार मच गया। लोग आकर राजा से पुकार करने लगे। आखिर एक दिन अर्द्धरात्रि को राजा वेष बदलकर समस्त शहर मे गश्त लगा रहा था।

मणिशेखर चोरी करने के लिए चला और मार्ग में आरक्षक मिल गया। उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

मणिशेखर—"मैं चोर हूं।"

आरक्षक—"चोरी कहां करेगा?"

मणिशेखर—"राजमहलों में।"

आरक्षक ने सोचा—यह कोई पागल, शराबी मनुष्य है इधर-उधर भटक रहा है, चोर नही है। मणिशेखर आगे बढ़ा, उसकी गश्त लगाते हुए नृप से मुलाकात हो गई।

राजा ने पूछा—"कौन हो ?"

मणिशेखर—"मैं हूं मणिशेखर।"

राजा—"किधर जा रहे हो ?"

मणिशेखर—"चोरी करने के लिए।"

राजा—"अच्छा, चोरी कहां करोगे ?"

मणिशेखर—"राजमहलों में।"

राजा ने भी उसे पागल समझकर छोड़ दिया। मणिशेखर राजमहल में गया, पहरेदार सोये हुए थे। उसने भंडार के ताले तोड़ कर एक डिब्बी में से चार रत्नों की चोरी की और वहां से घर के लिए चला। मार्ग में फिर वही संरक्षक मिला। पूछा—"कौन है तू ?"

मणिशेकर—(निर्भयतापूर्वक) "मैं चोर हूं।"

आरक्षक—"कहां गया था ?"

मणिशेखर—"चोरी करने के लिए।"

आरक्षक समझ गया—वही पागल इधर-उधर भटक रहा है। आगे जाते-जाते मणिशेखर को वापिस राजा मिल गया। राजा ने वही प्रश्न किया—"कौन हो?"

मणिशेखर—"मैं मणिशेखर हूं।"

राजा—"कहां गया था ?"

मणिशेखर—"राजमहल में।"

राजा ने उसका पता लिख लिया और उसे वही पागल समझ कर छोड़ दिया। मणिशेखर अपने घर पहुंचा। राजा अपने महलों में गया।

सुबह होते ही मंत्री आया। भंडार के ताले टूटे देखकर वह हक्का-बक्का रह गया। आखिर सब कुछ देखने पर पता लगा कि चार रत्नों की चोरी हुई है। मंत्री ने सोचा—चोर कोई मूर्ख था, चार रत्न ले गया और तीन रत्नों को छोड़ गया। क्यों नहीं अवसर का लाभ उठाऊं? मंत्री की बुद्धि बिगड़ गई। चोरी के साथ चोरी। तीन रत्न गायब कर उसने राजा को इत्तला कर दी कि सात रत्नों की चोरी हुई है। राजा ने मणिशेखर को बुलाया और पूछा—"क्या राज भंडार में चोरी की ?"

मणिशेखर—"हां, मैंने चोरी की।"

राजा—"अच्छा बताओ, चोरी में कितने रत्न गये ?"

मणिशेखर ने कहा—"चार रत्न।"

मन्त्री ने कहा—"राजन् ! चार की नही, चोरी सात रत्नों की हुई है। चोर तो झूठ बोला करते हैं।" किन्तु राजा को अटल विश्वास हो गया कि मणिशेखर

कभी भी झूठ बोलने वाला नहीं है। मन्त्री को ललकारते हुए राजा ने कहा—"वह तो दाल में काला है। बताओ, और रत्न कहां गये?" आखिर चोर का कलेजा कच्चा होता ही है। मंत्री थर-थर कांपने लगा। चेहरे पर उदासी छा गई। उसका चिन्ताग्रस्त चेहरा देखकर मणिशेखर ने कहा—"इस मन्त्री ने चुराएं हैं।" मंत्री ने भी हाथ जोड़कर कह दिया—"बात सही है। मैंने सोचा चोरी तो हो ही गई है। चार का कहेंगे, वैसे ही सात कह देंगे।" तीनों रत्न राजा के सामने आ गये। जो चोर था वह साहूकार निकला और जो साहूकार था वह चोर। मणिशेखर की इस अटल सत्यवादिता पर अति खुश होकर राजा ने उसको अपना मन्त्री बना लिया। चोरी अपने आप छूट गई।

सत्य के सहारे चोर भी साहूकार हो सकता है। सत्यवादी का सर्वत्र सम्मान व स्वागत होता है। हर एक की उन्नति सत्य के आधार पर आधारित रहती है। अतः जीवन के हर पहलू में अधिक से अधिक सत्य को सम्मान मिलना चाहिए।

मणिशेखर वह चोर भी, नृप का बना वजीर।
"मुनि कन्हैया" सत्य से, खुल जाती तकदीर॥

तीसमारखां

एक गांव में भोलू ब्राह्मण था। उसकी पत्नी बातें बनाने में बड़ी होशियार थी। हर एक के आगे अपने पति की प्रशंसा करने के लिये दिन में तीन-चार घण्टे लगाये बिना नहीं रहती थी। भोलू वास्तव में भोला ही था। न तो पढ़ा हुआ था, न वह बोली-चाली में दक्ष था। वह छोटे-छोटे गांवों में तेल, गुड़ आदि निरन्तर बेचने के लिए जाता था। मार्ग में डाकुओं का अधिक भय रहता था। जिससे वह भोलू हरदम अपने पास तलवार रखता था। दूर से वह क्षत्रिय जैसा प्रभावशाली लगता था।

एक दिन वह गांवों में माल-ताल बेचकर अपने गांव आ रहा था। मार्ग में अधिक थकान से कहीं सो गया। नींद इतनी गहरी आई कि ढोल बजाने पर भी वह निद्रामुक्त नहीं हो सकता था। दरिद्री आलसी तथा बेसहूर होने के कारण उसके मुख पर मक्खियां भिन-भिनाने लगीं। आंख खुलते ही उसके क्रोध का पार न रहा। शीघ्र कपड़े को डालकर ३० मक्खियां मार डालीं। भोलू दौड़ा-दौड़ा घर आया और पत्नी से कहने लगा—आज तो तेरे भाग्य सिकन्दर थे। चूड़ा अमर रहने का कोई योग ही था। अभी-अभी जब मैं आ रहा था तब रास्ते में ३० डाकू मिल गये। फिर भी मैं घबराया नहीं। वीरतापूर्वक संग्राम लड़ा। तीसों को मार कर विजयपताका फहराता हुआ घर आया हूं।

यह बात सुनते ही उसकी खुशी का पार नहीं रहा और हाथ जोड़कर बोली—"पतिदेव ! धन्य है आपकी वीरता को । धन्य है आपके अवतार को !" भोलू की वीरता सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई और उसे लोग 'तीसमारखां' के नाम से पुकारने लगे । स्थान-स्थान पर उसका स्वागत होने लगा । नृप को भी यह पता लगा कि अपने नगर में एक नया वीर 'भोलू ब्राह्मण' प्रकट हुआ है । नृप ने उसको राज-भवन में बुलाकर काफी इनाम दिया ।

एक बार लड़ाई का मौका आ गया । नृप ने भोलू को सेनापति बनाकर कहा—"जाओ ! अब सेना तुम्हारे साथ है । जीत के नगाड़े बजाकर आना ।" नृप का आशीर्वाद लेकर चला । दिल में काफी भय था । रात भर उसे नींद नहीं आई—अब तो मेरी पोल खुलेगी । फिर भी उसने साहस नहीं तोड़ा और दूसरों को संत्रस्त करने के लिए वृक्ष की डाली तोड़कर अपने कंधों पर रख कर आगे बढ़ने लगा । उसका अनुकरण करते हुए सारी सेना ने सारे पेड़ उखाड़-उखाड़ कर अपने कंधों पर रख लिये और मूंछों पर ताव लगाते हुए रणस्थल में जा पहुंचे ।

शत्रु की सेना ने सबके कन्धों पर बड़ी-बड़ी डालियां देखकर सोचा ये तो बड़े-बड़े पेड़ उखाड़ डालते हैं । यदि हमारे से लड़ेंगे तो हमको ये चुटकी में मार देंगे । उसी वक्त सारी शत्रु सेना उल्टे पांव रणस्थल से भाग गई । भोलू का काम बन गया और नृप को निवेदन करते हुए कहा—"राजन् ! आपकी कृपा से सब काम सिद्ध हो गया है । अपनी सेना का बल और शौर्य देखकर शत्रुओं की सेना डरकर भाग गई ।" भोलू की वीरता पर प्रसन्न होकर नृप ने उसको 'वीर चक्र' प्रदान कर सम्मानित किया ।

भोलू प्रकृति से भद्र होते हुए भी उसकी किस्मत बड़ी तेजस्वी थी । किस्मत के सहारे इन्सान को यथेष्ट की उपलब्धि हो सकती है ।

जगती में जिस मनुज की, किस्मत है बलवान् ।
भोलू ब्राह्मण की तरह, पा सकते सम्मान ।।

धन का स्वागत

धन्ना नाम का एक जाट था । एक दिन उसकी पत्नी धापू ने कहा "पतिदेव ! बैठे रहने से घर का फल कैसे निकलेगा ? कृपा करके परदेश पधारो और कुछ कमाई करके लाओ ।" जाट ने स्त्री को घर सम्हला दिया और परदेश के लिए रवाना हो गया । किसी बड़े शहर में जाकर किसी सेठ के घर नौकर रह गया, किन्तु काम का बड़ा आलसी था । सेठ ने चार-पांच महीना रखकर वापस उसको छोड़ दिया । पन्द्रह-बीस दिन तक नौकरी के लिए शहर में उसने काफी प्रयास

किया। नौकरी नही मिलने के कारण वह अपने गांव आ गया। पत्नी ने पूछा— "कितनी कमाई करके लाये हो?" उसने कहा—"क्या करूं? मेरे कर्म ही ऐसे हैं, मैंने काफी दौड़-धूप की, फिर भी कमाई नही हुई।" धापू के क्रोध का पार नही रहा। धन्ना बोला—"मुझे भूख लग रही है।' धापू ने रोटी और राबड़ी परोसी। धन्ना परदेश मे सेठ के यहां काफी पकवान खाया हुआ था जिससे उसने कहा— "मुझे यह भोजन अच्छा नही लगता है।" धापू को गुस्सा तो चढ़ा हुआ था ही उसने उसके सिर पर एक कलछी की मारी। उसके भय से धन्ना दौड़ा, पीछे-पीछे वह भी चली। आगे जाते-जाते वह तो किसी मन्दिर में छिप गया। धापू अपने घर आ गई।

धन्ना देवी की मूर्ति के आगे जाकर सो गया। अधिक थकान के कारण उसको गहरी नीद आ गई। रात्रि मे एक दो बजे अचानक दो चोर शहर मे चोरी करके वहां देवी को नारियल चढ़ाने के लिए आये। हीरे-पन्नो से भरे हुए थैलों को एक तरफ रखकर पत्थर खोजने लगे। अमावस की रात होने के कारण सघन अंधकार छाया हुआ था। पत्थर टटोलते-टटोलते चोर का हाथ धन्ना के सिर पर जा पड़ा। नारियल फोड़ने के लिए यह पत्थर अच्छा है। जोर से उस पर नारियल पटका। धन्ना की आंखे खुली उसने सोचा —धापू आ गई। वह लेटा-लेटा धीरे से बोला— "राबडी खाऊं खाऊं", यह शब्द सुनते ही चोर भूत समझकर दौड़े और धन के थैले वही भूल गये।

पीछे से धन्ना उठा और धापू को इधर-उधर देखते हुए धन के थैलों पर नजर जा पहुंची। खुशी का पार नही रहा। कली-कली खिलने लग गई। किस्मत की सराहना करता हुआ शीघ्र थैलों को कंधों पर रखकर घर आया।

धापू बोली—"क्या थैलों में पत्थर भरकर लाये हो?"

धन्ना बोला—"आज तो तेरी तकदीर खुल गई। आंख खोल थैलों में देख क्या है?" हीरों पन्नों पर नजर पड़ते ही धापू का कलेजा शीतल हो गया। और बार-बार पति का स्वागत करने लगी। हाथ जोड़कर बोली—"पतिदेव! मैंने आपका काफी अविनय किया। अब हृदय से क्षमा याचना करती हूं।" धन्ना ने सोचा—यह स्वागत मेरा नही है। धन का स्वागत है। आखिर उसने संसार के स्वरूप को झूठा समझ कर आध्यात्मिक मार्ग की शरण ली। पत्नी को पति तब तक सुहावना लगता है जब तक उसका स्वार्थ सधता है। स्वार्थ के अभाव में पति भी जहर जैसा कड़वा लगने लगता है। इस स्वार्थ भरे संसार में आध्यात्मिकता की शरण ही सुखकर होती है।

स्वार्थ भरे संसार में, साथी केवल धर्म।
परिजन कोई न पूछता, (फिर) बांध रहे क्यों कर्म॥

क्षमा की विजय

एक कौशल्या नाम की बुढ़िया थी। उसे लड़ने का बहुत शौक था। बिना लड़े उसे चैन नहीं पड़ता था। अतः जबरन वह एक न एक से लड़ती ही रहती थी। बेचारे गांव वाले उससे तंग आ गये। एक दिन विवश हो, वे सब मिलकर ठाकुर साहब के पास गये और अपनी फरियाद रखी। ठाकुर साहब ने कौशल्या को बुलाया और कहा—"मांजी ! तुम हमेशा क्यों लड़ती झगड़ती हो ? क्या इससे तुम्हें कोई लाभ मिलता है ?"

बुढ़िया ने कहा—"बिना लड़े मेरा भोजन नहीं पचता है, अतः लड़ना ही पड़ता है।"

ठाकुर साहब ने उसे बहुत समझाया, पर बुढ़िया को सद्बुद्धि कहां उत्पन्न होने वाली थी ? आखिर ठाकुर साहब ने एक उपाय सोचा और बुढ़िया से कहा—"अच्छा, तुम्हारे पास प्रतिदिन एक-एक व्यक्ति आया करेगा और तुम उससे लड़ाई करती रहना। फिर तो दूसरों को तंग नहीं करोगी ?" बुढ़िया ने स्वीकार कर लिया। अब निरन्तर उसके पास एक-एक व्यक्ति जाने लगा। इस प्रकार लड़-लड़ाकर वह अपने व्यसन का पोषण करती थी।

एक दिन एक धर्मात्मा स्त्री की बारी आई। जब वह जाने लगी तब उसकी बड़ी पुत्री ने कहा—"मां ! तुम मत जाओ। आज मैं उस बुढ़िया के पास जाऊंगी !" माता ने उसे समझाते हुए कहा—"पुत्री ! वह बहुत लड़ने-झगड़ने वाली स्त्री है। तुझे दिन भर तंग करेगी। अतः मुझे ही जाने दे।" पुत्री नहीं मानी और उस बुढ़िया के पास जा पहुंची।

लड़की पढ़ी-लिखी और संस्कारित थी। वह बुढ़िया के पास आई और बोली—"मांजी ! आपको किस वस्तु की आवश्यकता है ? क्या लाऊं ?"

बुढ़िया अपने स्वभावानुसार बोली—"तेरी मां डायन है, तेरा बाप राक्षस है।" इस तरह वह अनेकों बुरी-बुरी गालियां देने लगी, परन्तु लड़की शान्त रही और चुपचाप सब सुनती रही। वह अपने साथ कुछ सीने-पिरोने का काम ले गई थी और पढ़ने की कुछ पुस्तकें भी, अतः चुपचाप अपना काम करती रही, बुढ़िया ने देखा कि यह तो कुछ बोल ही नहीं रही है। अतः वह जोर-जोर से बकवास करने लगी और गालियां देती हुई कहने लगी—"तू बोलती क्यों नहीं है ? क्या तेरे जुबान नहीं है ? गूंगी है।" बुढ़िया जब गालियां देकर थक गई तो लड़की ने कहा—"मांजी ! अब आराम कीजिए, आपका मुंह दुखने लग गया होगा।"

बुढ़िया ने सोचा—यह कैसी लड़की है ? मैं तो इसे गालियां सुना रही हूं, हृदय में आग सुलगा रही हूं और यह बदले में मुझे आराम करने को कहती है। कुछ

समझ में नहीं आ रहा है यह लड़ने वाली आज कैसी आ गई। प्रतिदिन आने वालों से तो यह अनोखी ही मालूम पड़ती है। अब मैं कैसे लडूंगी ? यह कुछ भी नहीं बोलती है। आखिर बुढ़िया ने लड़की से कहा—"पुत्री ! तुम्हारी क्षमा और सहनशीलता के आगे ऐसा कौन मानव है जिसका हृदय न पिघले। तुम्हें भभकाने के लिए मैंने काफी प्रयत्न किये परन्तु तुम्हारा हृदय कहां उभरने वाला था, प्रत्युत मुझे ही तुम्हारी क्षमा के सामने चुप होना पड़ा।"

"क्षमा वीरस्य भूषणम्" क्षमा वीरों का आभूषण है। जिनके पास क्षमारूपी अमूल्य निधि है, उनके चरणों में सारा संसार सिर झुकाता है। क्षमाशील के आगे बड़े-बड़े दुश्मन एवं लड़ाकू व्यक्ति शान्त हो जाते हैं। अतः सबको क्षमाशील बनना चाहिए।

क्षमावान् के सामने, दुश्मन बनता मित्र।
क्षमा-सलिल से मलिनता, धोकर बनो पवित्र ॥

शराब से भयंकर नुकसान

एक बार भगवान् नेमिनाथ से श्रीकृष्ण ने पूछा—"प्रभो ! द्वारिका का दहन कैसे होगा ?"

भगवान ने फरमाया—"इस नगरी का दहन मदिरा के योग से होगा।"

श्रीकृष्ण—"भगवान् ! क्या किसी उपाय से दहन टल सकता है ?"

भगवान्—"जब तक नगरी में उपवास, आयंबिल आदि तप होता रहेगा, तब तक इस नगरी का कोई बाल भी बांका नही कर सकेगा।"

श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करके वापस राजभवन में आये और सारे शहर में घोषणा करवा दी कि कोई भी व्यक्ति अपने पास शराब न रखे। जितनी शराब हो उस सबको नगरी के बाहर डाल दिया जाए और नगरी में प्रतिदिन एक उपवास अथवा आयंबिल अवश्य होना चाहिए। तप के प्रभाव से नगरी में किसी भी प्रकार का संकट उत्पन्न नहीं होगा।

श्रीकृष्ण का आदेश होते ही नगरी में तपस्या की मानो बाढ़-सी आ गई हो। घर-घर में तपस्या होने लगी। शराब भी किसी ने नहीं रखी। सभी ने शहर के बाहर फिंकवा दी।

एक बार कई राजकुमार क्रीड़ा करने के लिए जंगल में गये हुए थे। वापस आते समय मार्ग में तृषाकुल हो गये। वर्षाकाल का समय होने से जगह-जगह

चट्टानों में पानी भरा पड़ा था। उन्होंने उस पानी को पी लिया। चन्द ही क्षणों में सब नशे में चूर हो गये। क्योंकि उन चट्टानों में कुछ शराब रह गयी थी। कुछ ही दूरी पर द्वैपायन ऋषि ध्यानावस्था में खड़े थे। वे राजकुमार वहां जा पहुंचे। मुंह से ऋषि को अनर्गल शब्द बोलने लगे। बुरी-बुरी गालियां देते हुए ऋषि को ध्यान से विचलित करने लगे।

कुछ समय तक तो ऋषि शान्त रहे। आखिर वे क्रोधाकुल होकर बोले—"अरे! ये मूर्ख कौन हैं? मेरे साथ भी गाली-गलौज करते हैं।" ऋषि से रहा नहीं गया और उन्होंने यह निर्णय किया कि "यदि मेरी तपस्या का कुछ भी फल हो, तो मैं इस नगरी का दाहक बनूं।" ऋषि मरकर अग्निदेवता हुआ। पूर्वभव के वैर के कारण वह निरन्तर द्वारिका दहन के लिए आता और लौटकर वापिस चला जाता क्योंकि तपस्या के आगे उसका जोर नहीं चलता था। इस प्रकार बारह वर्ष पूरे हो गये, किन्तु उसको ऐसा योग नहीं मिला जिस दिन उपवास और आयंबिल नगरी में न हुआ हो।

एक दिन एक दूसरे के भरोसे में सब रह गये। न किसी ने उपवास किया और न किसी ने आयंबिल। वह देव प्रतिदिन आता ही था। उसको मौका मिल गया। समस्त द्वारिका नगरी पर उसने धधकते हुए अंगारों की वर्षा करनी शुरू कर दी। सारा शहर जलकर भस्म हो गया। केवल बलदेव और वासुदेव उस आग से निकल सके। इस भयंकर संहार का मूलभूत कारण था—शराब।

इन्सान को हर नशीली वस्तु से परे रहना चाहिए। शराब पीना तो एक बहुत बड़ा दुर्व्यसन है। इसके सेवन से भयंकर नुकसान हो जाता है। स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक दृष्टि से भी इसे हेय माना गया है अतः किसी भी स्थिति में शराब नहीं पीनी चाहिए।

हुआ द्वारिका का दहन, मद्य योग से व्यक्त।
व्यसनरहित बन धर्म में रहना है अनुरक्त॥

शब्दों की पकड़

एक सेठ था। उसके पुत्र का नाम बाबूलाल था। सेठ ने अच्छा घर व सुशील लड़की देखकर बड़े ठाठ-बाट से पुत्र का विवाह कर दिया। पुत्रवधू रूपवती व सास की आज्ञाकारिणी तो अवश्य थी, किन्तु बिल्कुल अनपढ़ थी। काला अक्षर उसके लिए भैंस के बराबर था। ग्रामीण होने के नाते शहर के वातावरण से वह पूर्णतया

अपरिचित थी। फैशनपरस्ती से दूर थी। बोलचाल की भाषा भी सीधी-सादी थी। बड़ों के सामने कैसे बोलना, रहना, बैठना आदि व्यवहारों से वह बिल्कुल अनभिज्ञ थी। सास, श्वसुर एवं पति आदि को 'तू' कहकर बतलाती थी। सारे दिन भर घर में हां-हूं करती रहती थी, किसी की भी लाज-शर्म नहीं थी। फिर भी वह निश्छल होने के कारण सबको प्रिय लगती थी। सब उससे बोलना चाहते थे। क्योंकि उसके पेट में दांवपेच न था। वह स्वभाव की बहुत ही अच्छी थी।

एक दिन सास ने बहू को शिक्षा देते हुए कहा—प्राचीन युग में और वर्तमान युग में काफी अन्तर है। आज का युग सभ्यता का युग है। बड़ों के सामने कैसे बोलना, खड़ा रहना, बैठना—यह सब सीखना चाहिए। तुम जो बोलचाल की भाषा में 'तू' का प्रयोग करती हो, यह युग के अनुकूल नहीं है। अपने घर में जितने भी प्राणी हैं सबको 'जी' कहकर बतलाना चाहिए। दूसरी शिक्षा यह है कि किसी भी काम के लिए बोलना पड़े तो धीरे-धीरे बोलना चाहिए। अधिक हो हल्ला नहीं करना चाहिए।

बहू ने हाथ जोड़कर कहा—"सासजी ! आपकी शिक्षा को क्रियान्वित करने का प्रयास करूंगी।"

अब वह बहू सबको जी कहकर पुकारने लगी। एक दिन भैंस का पाड़ा खुल गया। वह ऊपर बैठी-बैठी बोलने लगी—"ओ सासजी ! भैंसजी का पाड़ाजी खुल गया जी ! जल्दी आओ जी।" सास दौड़ी-दौड़ी आई और गुस्से में लाल होकर बोली—"यह क्या गीत गा रही हो ? भैंस और पाड़े के आगे 'जी' लगाने के लिए मैंने कब कहा था।"

बहू हाथ जोड़कर बोली—"खैर, भविष्य में सब ध्यान रखूंगी। किन्तु सासु जी आपने ही कहा था कि सबके आगे 'जी' लगाना, इसलिए मैंने 'जी' शब्द का प्रयोग किया क्योंकि मेरी दृष्टि में तो सब समान हैं। "जिस्यो सासुजी रो लाडोजी, बिस्यो भैंसजी रो पाड़ोजी।"

एक दिन हवेली के पास वाले नोहरे में आग लग गई। ऊपर बैठी हुई बहू ने आग को देख लिया। वह मन्द-मन्द स्वर में बोलने लगी—"ओ सासूजी ! जल्दी आओजी, नोहरे में जी, आग जी, लग गई जी।" सास ने सोचा—बहू धीरे-धीरे कुछ-कुछ क्या कर रही है ? शीघ्र आई और बहू से पूछा—"क्या गाना गा रही हो ?" बहू ने धीमे से कहा—"देखिए ! नोहरे की तरफ," आग धुंआधार थी। सास ने कहा—"ऐसे अवसर पर भी धीरे बोलती हो ?" बहू—"आपही ने कहा था धीरे-धीरे बोलना चाहिए।"

सास ने सोचा—"मूर्ख को टक्का दे देना चाहिए, अक्ल नहीं देनी चाहिए। मूर्ख को दी हुई शिक्षा नुकसानदायक ही होती है। हाय ! ऐसी बहू से क्या लाभ ?"

जो व्यक्ति शब्दों को ही पकड़कर चलता है, उसे यथेष्ट की उपलब्धि असंभव है। अतः शब्दों को न पकड़कर शब्दों के रहस्य की ओर ध्यान देना चाहिए, परन्तु जो मूर्ख होते हैं, वे शब्दों को पकड़कर अपनी अकड़ में रहते हैं और उनकी गहराई को वे सोच ही नहीं पाते हैं, अतः मूर्ख को किसी भी तरह की शिक्षा न देकर उसके सामने तो मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

मूर्ख मनुज के सामने, रहो निरन्तर मौन।
शिक्षा देकर के उसे, सुख पाएगा कौन॥

मनचाहा नहीं करना

एक मुनि एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे। अचानक रास्ता भूल गये। खेत में एक कृषिकार खड़ा था। मुनि ने उससे पूछा—"अमुक नगर को जाना है, मार्ग कौन-सा है?" किसान भला था। उसने मुनि को नमस्कार करते हुए कहा—"महाराज! मार्ग तो बहुत दूर रह गया, आप रास्ते से कैसे भटक गये?" मुनि ने कहा—"भाई जो होना था वह हो गया। अब तुम बताओ, मार्ग कौन-सा है? जिससे मुझे भटकना न पड़े।" किसान मुनि के साथ हो गया। सीधे एवं चौड़े रास्ते में मुनि को ले जाकर बोला—"महाराज, इस मार्ग को आप कभी भी न छोड़ें। यह सीधा उस नगर में चला जायेगा, मैं अब वापस जाता हूं।" मुनि ने कहा—"कृषिकार! तुमने तो मुझे रास्ता बता दिया, किन्तु थोड़ा-सा मार्ग मैं भी तुझे बता दूं।"

कृषिकार—"शीघ्र बताएं, मुझे खेत में जाना है। अधिक समय मेरे पास नहीं है।"

मुनि—"अरे किसान! मनुष्यजन्म बड़ी मुश्किल से मिला है। कुछ न कुछ तुझे नियम लेना चाहिए। नियम के बिना मनुष्य पशु-योनि में आता है।"

कृषिकार—"नियम लेने से क्या लाभ है?"

मुनि—"मनरूपी मदोन्मत्त हाथी को वश में करने के लिए नियम अंकुश के समान हैं।"

कृषिकार—"कठिन नियम तो नहीं ले सकता। कृपया कोई सरल नियम बता दीजिए।"

मुनि—"अष्टमी-चतुर्दशी को रात्रि भोजन नहीं करना और न हरी वस्तु खाना।"

कृषिकार—"महाराज! ये बनिये वाले टेढ़े-मेढ़े नियम तो नहीं ले सकता। और न मुझे याद रहता है। मुझे तो एक सीधा छोटा-सा नियम बता दीजिए।"

मुनि—अच्छा ! निरन्तर भगवान् की एक माला फेरना।"

कृषिकार—"महाराज ! यह भी याद नहीं रहता, मुझे तो कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे शीघ्र कल्याण हो जाये।"

मुनि—"मन का चाहा नहीं करना, इस एक नियम को तो ले सकते हो ?"

बस, कृषिकार ने उपरोक्त नियम ले लिया। मुनि रवाना हो गये। पीछे से उसने चाहा खेत में जाऊं। उसको याद आया कि यह तो नियम लिया हुआ है। मन का चाहा नहीं करना। बैठ जाऊं, वृक्ष की छाया में चला जाऊं। यह भी तो मन का चाहा है। इतने में उसकी स्त्री उसे ढूंढती-ढूंढती आ पहुंची, जोर-जोर से बकने लगी—चलो, जल्दी चलो। यहां खड़े-खड़े क्या करते हो ? खेत में कितना काम बाकी पड़ा है। किसान ने सोचा उत्तर दूं। यह भी मन का चाहा हो गया। अब चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना-बोलना आदि उसकी समस्त क्रियायें बन्द हो गईं।

स्त्री ने सोचा—पति तो पागल हो गये। कुछ कहते सुनते ही नहीं। आखिर वह हताश होकर खेत में चली गई। कृषिकार वहां खड़ा-खड़ा आत्मध्यान में लीन हो गया। मच्छर-चींटी आदि अनेकों जीव जन्तु उसे काटने लगे, फिर भी वह अधीर नहीं हुआ। सब कष्टों को समता से सहता गया। क्रमशः आत्म-भाव में वह इतना रम गया कि सब कर्मों को काट वह सिद्ध स्वरूप को प्राप्त हो गया।

जीवन में नियम आवश्यक है। नियम-हीन जीवन खतरनाक होता है। नियम अंकुश है, निधि है, जीवन का सम्बल है। नियम का अर्थ है इच्छाओं का दमन, अतः हरेक को कुछ न कुछ नियम लेना जरूरी है।

मन का चाहा मत करो, मिल जाये निर्वाण।
मुनि की शिक्षा धारकर, बन गया मुक्त किसान॥

जाट की करामात

एक धनाढ्य जाट था। उसके हर साल सैकड़ों मन अनाज होता था। वह खाता, पीता और मौज उड़ाता था। किसी भी तरह की उसको चिन्ता नहीं थी। जाटनी भी पतिव्रता एवं पतिभक्ता होने के साथ-साथ बड़ी धर्मिष्ठा थी। सोमवती अमावस की बात है कि जाट तो किसी गांव गया हुआ था। पीछे से उसके घर पर एक ब्राह्मण आया और जोर-जोर से बोलने लगा—"माताजी ! आज सोमवती अमावस का बड़ा शुभ दिन है। आज के दिन जो कोई ब्राह्मणों को दान देता है, उसको बहुत पुण्य होता है। उसके समस्त संकट दूर हो जाते हैं। घर में किसी भी

तरह से उसके कमी नहीं रहती है।" जाटनी ने सोचा—पण्डितजी जो बात कहते हैं वह वास्तव में सही है। पांच सेर आटा और आधा सेर घी का दान देने के लिए ज्यों ही वह तैयार हुई। इतने में एक खाती आया और जोर से बोला—माताजी! पहले मेरी बात सुनो, पीछे दान देना। शास्त्रों में कहा है—"सौ पूजा एक पाती, सौ ब्राह्मण एक खाती।" सौ ब्राह्मणों को दान देने में जितना पुण्य होता है, उतना ही पुण्य एक खाती को देने में हो जाता है।"

जाटनी के दिमाग में खाती की बात सोलह आना जंच गई। और उसी को दान देने लगी। इतने में एक डाकौत आया और बोला—"माताजी! पहले मेरी बात सुनो, पीछे दान देना। शास्त्रों में कहा है—"सौ बशौला एक करौत, सौ खाती एक डाकौत।" जैसे एक तरफ तो सौ बशौले हैं और एक तरफ एक करौत, किन्तु शक्ति में बराबर है वैसे ही सौ खाती और अकेला डाकौत बराबर है। डाकौत को दान देने में बड़ा लाभ है। बड़ा पुण्य है।"

जाटनी को इसका कथन भी अक्षरशः सत्य लगा। डाकौत को दान देने की जंच गई। इतने में एक पंडा आ गया। वह बोला—"माताजी! डाकौत से पंडे का ऊंचा स्थान है। ग्रन्थों में भी लिखा है—'सौ झंडी एक झंडा, सौ डाकौत एक पंडा'। जैसे एक झंडे के आगे सौ झण्डियों का कुछ भी महत्त्व नहीं है, वैसे ही एक पंडे के सामने यदि सौ डाकौत भी हैं तो उनका कुछ भी मूल्य नही हैं।"

जाटनी बड़ी उधेड़-बुन में पड़ गई—क्या करूं? किसको दूं? इतने में एक नाई आया और बोला—"आधी गद्दी बैठण नै, माथे पर भी हाथ। हमको महाजनों की गद्दी मिलती है उनके माथे पर भी हाथ रखने वाले हम हैं। ग्रन्थों में भी लिखा है—सौ खाड़ा एक खाई, सौ पंडा एक नाई। नाई का बहुत ऊंचा स्थान है अतः इस दान का हकदार मैं हूं।" इतने में घर का मालिक जाट आ गया। वह बड़ा चतुर था। वह बोला—"देख शास्त्रों में लिखा है—सौ पीढ़ी एक खाट, सौ नाई एक जाट। दुनिया में जाट का बहुत ऊंचा स्थान है। अतः यह दान तो मुझे मिलना चाहिए।" जाटनी समझ गई। किसी को भी दान नहीं दिया गया। जाट की करामात एवं दक्षता से घर का सामान घर में ही रह गया।

जो व्यक्ति बुद्धिमान एवं चतुर होता है उसको कोई भी ठग नहीं सकता। वह अपने चातुर्य से हर क्षेत्र में सफल होता है। समय पर उसको ऐसी बुद्धि उपजती है कि उसको किसी भी तरह का नुकसान नहीं उठाना पड़ता है।

देख चतुरता जाट की, चकित हुए सब लोग।
चतुर मनुज का हर जगह, होता सफल प्रयोग॥

परोपदेशे पाण्डित्यम्

एक भट्ट जी कथा वाचन करते थे। अनेकों भक्त उनकी कथा सुनने के लिए आते थे। एक दिन भट्टजी की सुपुत्री भी कथा सुनने चली गई। कथा में बैंगन का प्रसंग चल रहा था। भट्टजी ने भक्तों को उपदेश देते हुए कहा—"बैंगन किसी को भी नही खाने चाहिए। उसमें बीज बहुत होते हैं, अतः वह वायु-कारक होता है।" पुत्री ने सोचा—पिताजी तो निरन्तर बैंगन खाते हैं और कहा भी करते हैं—'नीली टोपी श्याम घटा, सब शाकों में शाक भटा।' किन्तु आज तो बिल्कुल विपरीत नजर आ रहे हैं, बैंगन की तो खुलकर निंदा करते हैं। ऐसा आभास होता है कि पिताजी को बैंगन की बुराइयों का आज ही पता लगा है। वह दौड़ी-दौड़ी घर आई और मां से कहने लगी—"अम्मा ! आज शाक किसका बनाओगी ?"

अम्मा—"पुत्री ! बैंगन का तो बनाना ही है। साथ में एक और बना लूंगी।"

पुत्री—"आज बैंगन का शाक मत बनाना। पिताजी नहीं खायेंगे। मैं कथा सुनकर आई हूं। पिताजी ने अपने भाषण में बैंगन की बहुत निन्दा की है। और लोगों से कहा—'बैंगन अभक्ष्य है'।"

अम्मा—"पुत्री ! वे बैंगन नहीं खायेंगे तो मैं किसके लिए बनाऊंगी ? तुमने अच्छा किया जो पहले सचेत कर दिया।"

भट्ट जी कथा समाप्त करके घर आये। भोजन के लिए बैठे। ब्राह्मणी ने भोजन परोसा। अन्य तरकारियों के साथ बैंगन की तरकारी नजर नही आने से भट्ट जी बाल पड़े—"आज बैंगन का शाक क्यों नहीं बनाया ? उसके बिना भोजन स्वादिष्ट नही लगता है। क्या घर में बैंगन नहीं थे ?"

ब्राह्मणी ने कहा—"मैं बैंगन का शाक बना ही रही थी। इतने में यह पुत्री दौड़ी-दौड़ी आई और इसने बैंगन बनाने के लिये मना ही कर दिया।"

पुत्री को ललकारते हुए भट्ट जी ने कहा—"अरी ! तूने बैंगन का शाक नहीं बनाने दिया। किसलिए निषेध किया ?"

पुत्री ने विनयपूर्वक कहा —"पिताजी ! आपने कथा में बैंगन को आध्यात्मिक व शारीरिक दोनों ही दृष्टि से अभक्ष्य बताया था। मैंने सोचा आप इतनी निन्दा करते हैं तो आप स्वयं कैसे खाएंगे ? इसलिए मैंने निषेध किया।"

भट्ट जी बोले—पुत्री ! तू तो भोली है। तुझे इतना ज्ञान कहां कि कथा के बैंगन अलग होते हैं और रसोईघर के अलग। कथा में तो जो बात आती है वह कहनी ही पड़ती है। ऐसा अगर उपदेश न करें तो आजीविका कैसे चले। उपदेश के अनुसार अपने आपको चलाने की आवश्यकता नहीं है।" भट्ट जी ने उसी समय बैंगन का शाक बनवाया।

'परोपदेशे पाण्डित्यम्' दूसरे को उपदेश देने में सब कुशल हैं। उपदेश को क्रियान्वित करने वाले बहुत कम हैं, किन्तु जीवन में उतारे बिना किसी का भी उत्थान नहीं हो सकता।

स्वयं बनो आचारयुत, फिर दो पर-उपदेश।
उस शिक्षा का अन्य पर, होगा असर विशेष॥

सुखी कौन ?

एक सिद्ध पुरुष महात्मा थे। उनके पास एक भक्त आया और साष्टांग नमस्कार किया। महात्मा ने उसे उपदेश देते हुए कहा—"भक्त ! धर्म किया करो। मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता।"

भक्त—"महात्मा जी ! आपका फरमाना अक्षरशः सत्य है, किन्तु आज के विषम युग मे परिवार वालों का भरण-पोषण करना बड़ी टेढ़ी खीर है। सारे दिन दौड़-धूप करने के बाद बड़ी मुश्किल से पेट भर खाना मिलता है। अगर कहीं आजीविका का प्रबन्ध हो जाए तो धर्म करने की इच्छा है।"

महात्मा—"भक्त ! अगर तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाये, तब तो भगवान का भजन करेगा ?"

भक्त—"योगिराज ! ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या ? फिर तो मैं ऐसा भजन करूं कि भगवान और मैं एक बन जाऊं।"

महात्मा ने उसकी हथेली पर एका लिख दिया। ज्यों-त्यों करके प्रतिदिन उसे एक रुपया मिल जाता था। घर का काम चलने लगा।

कुछ दिनों बाद महात्मा जी से उसकी फिर मुलाकात हुई। महात्मा ने कहा—"आजकल भी तुम भगवान् का भजन नहीं करते हो, यह क्या बात है ?"

भक्त—"महाराज ! कितनी मंहगाई है ? एक रुपये से घरेलू खर्च कैसे निभ सकता है ?"

महात्मा—"भक्त ! तो फिर तुम क्या चाहते हो ?"

भक्त—"करुणानिधान ! दस रुपये प्रतिदिन मिल जायं, तो खर्च अच्छी तरह चल सकता है।"

महात्मा—"रोज दस रुपये मिलने पर तो भगवान का भजन करेगा ?"

भक्त—"फिर तो मैं सारा समय ही ईश्वर की भक्ति में लगा दूंगा।"

महात्मा ने उसके हाथ पर जो एक का अंक था उसके आगे एक शून्य और बढ़ा दी। अब उसको तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगा। घरेलू खर्च भी बढ़ा।

विवाह-सगाई भी ऊंची हैसियत के अनुसार होने लगी।

कुछ दिनों पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले—"भक्त आजकल तो दस रुपये रोज मिलते हैं फिर भी तू भजन नहीं करता है।"

भक्त—"दीनदयाल! क्या करूं खर्च बढ़ गया। परिवार वालों का भार सिर पर बहुत है। इज्जत के माफिक सब काम करना पड़ता है। आप सिद्ध पुरुष हैं। यथोचित देने के लिए आप कल्प-तरु हैं। कृपा करके कुछ आमदनी और बढ़ा दीजिए।"

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढ़ाकर कहा—"भक्त! अब तो भगवान् का भजन करेगा?"

भक्त ने हाथ जोड़कर कहा—"योगिराज! मेरे पर आपने बड़ी कृपा की। मैं अपना सारा जीवन भगवान् की भक्ति में ही लगाऊंगा।"

अब उसको प्रतिदिन १००) रुपये, महीने में ३०००) रुपये, बारह महीने में ३६००० रुपये मिलने लग गये। फिर भी उसकी लालसा शान्त कहां होने वाली थी? और कहां भजन के लिए समय मिलने वाला था?

इन्सान की इच्छाओं का अन्त नहीं है, ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता है किन्तु सुखी वह होगा जिसने इच्छाओं का दमन कर लिया।

भक्त भजन नहीं कर सका, पाकर इच्छित ऋद्धि।
इच्छाओं के दमन से, होती सुख की वृद्धि॥

दो घड़ी

एक बुधराम नाम के लखपति सेठ थे। उनका व्यापार परदेश में चलता था। घर पर अनेकों नौकर रहते थे। परदेश से समाचार आया कि सेठ साहब को एक बार अवश्य ही दूकान पर आना चाहिए और व्यापार सम्हालना चाहिए। सेठ जी परदेश गये। व्यापार की देख-रेख करके दो-तीन महीने वहां ठहर कर वापस घर आने के लिए रवाना हुए। साथ में अधिक धनराशि होने के कारण सेठ ने तीन-चार पहरेदार ठाकुर साथ ले लिए। सेठ ज्योंही नगर के कुछ नजदीक पहुंचा, त्योंही उसके मन मे विचार आया कि इन सब ठाकुर लोगों को यदि घर ले जाऊंगा तो सबको भोजन कराना पड़ेगा। इससे अच्छा है कि मैं यहां से ही इनको विदा दे दूं। सेठ ने सब ठाकुरों को कह दिया—"अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, मेरा नगर नजदीक है अब किसी का भय नहीं है। तुम सब जाओ।" ठाकुरों की इच्छा थी कि

हम सेठ साहब की हवेली देखकर आएं, किन्तु सेठ का आदेश पालन करना भी आवश्यक था। वे सेठ से विदा लेकर रवाना हो गये।

अब केवल सेठ जी और रथ को चलाने वाला सारथी ये दो ही रह गये। ज्योंही कुछ आगे चले त्योंही अचानक पहाड़ी में से साठ भीलों (डाकुओं) का गिरोह आ निकला।

सब जोर-जोर से बोलने लगे—"लूटो, पकड़ो, इस सेठ को…।"

सेठ हक्का-बक्का रह गया। कलेजा थर-थर कांपने लगा—हाय ! ऐसा पता होता तो ठाकुरों को विदाई क्यों देता ? आज बिना मौत मरना पड़ेगा। इतने में साठों ही चोर सेठ के नजदीक आये और लूटने के लिए उद्यत हुए। उन साठों चोरों में से दो चोरों को सेठ ने पहचान लिया। जोर से उनका नाम लेकर सेठ जी बोले—"अरे ! तुम हो ?" दोनों ने सोचा—इनको अपने नाम का पता कैसे लगा ? दोनों ने ध्यानपूर्वक देखा तो यह पता लगा—"अरे ! ये तो अपने सेठ हैं, हम दोनों ने इनके घर पर पहले नौकरी की थी, इनका नमक-पानी खाया हुआ है। इन पर हाथ डालना, इनको लूटना, अपने लिए शोभास्पद नहीं है। जिस डाली पर बैठना, उसी को काटना क्या मूर्खता नहीं है।"

दोनों ने अठावन चोरों से कहा—"इनको मत लूटो, ये हमारे सेठ हैं।" चोरों में भेद पड़ जाने के कारण चोरी नहीं हो सकती। सब हताश हो गये। सबके हाथ जहां के तहां रह गये। दोनों ने कहा—"सेठ साहब ! आप आराम से धीरे-धीरे घर पधारिये। कोई भी आप पर हाथ नहीं डालेगा।" सेठ जी आनन्द से घर पहुंच गये और मन ही मन सोचने लगे—दो की पहचान से किसी का भी जोर नहीं चला। सबकी हार हो गई, दो जीत गये।

रात-दिन की साठ घड़ी होती है, अगर दो घड़ी भी भगवान का भजन किया जाय तो अठावन घड़ी का तनिक भी जोर नहीं चल सकता है। '५८ घड़ी कर्म की तो २ घड़ी धर्म की' इस कहावत को ध्यान में रखते हुए हर एक को दो घड़ी तो अवश्य ही धर्म करना चाहिए।

घड़ी साठ दिन-रात की, करो घड़ी दो धर्म।
विजय करो बुधराम का, सुनकर सच्चा मर्म ॥

महेन्द्र और नरेन्द्र

महेन्द्र और नरेन्द्र दो मित्र थे। दोनों में घनिष्ठ मैत्री थी। महेन्द्र बड़ा धर्मनिष्ठ था। निरन्तर भगवान की माला फेरना, सन्तों का व्याख्यान सुनना उसने अपना दैनिक कार्यक्रम बना रखा था। नित्य नियम को वह किसी भी परिस्थिति में

नहीं छोड़ता था। नरेन्द्र इसके बिल्कुल विपरीत था। वह संसार के मायाजाल में फंसा रहता था। कुछ भी धर्मध्यान नहीं करता था। एक दिन मित्र महेन्द्र ने नरेन्द्र से कहा—"भाई ! संसार में कोई भी तेरा नहीं है, सब स्वार्थ के साथी हैं। जब तक स्वार्थ होता है तब तक सब पीछे-पीछे दौड़ते हैं। स्वार्थ दूर होते ही सब बदल जाते हैं। और क्या ? पतिव्रता कहलाने वाली स्त्री भी मुंह फेर लेती है, अतः तू कुछ धर्म किया कर।"

नरेन्द्र बोला—"महेन्द्र ऐसी बात नहीं है। मेरी स्त्री मेरे से बड़ा प्रेम करती है। सुख-दुःख में साथ रहने वाली है। मैं कभी रोग-ग्रस्त हो जाता हूं तो वह खाना-पीना सब भूल जाती है। केवल मेरी सेवा-शुश्रूषा में उसका ध्यान रहता है। खुद भले ही रूखा-सूखा खा ले, किन्तु मुझे निरन्तर गर्म-गर्म माल खिलाती है।"

महेन्द्र—"मित्र ! इसकी तो जब तू परीक्षा करेगा तब पता लगेगा कि स्त्री कैसा प्यार करती है ? कैसा अपना कर्तव्य निभाती है।"

नरेन्द्र—"परीक्षा कैसे करूं ?"

महेन्द्र—"पेट दर्द का बहाना लेकर श्वास चढ़ाकर सो जाना। फिर देखना तू तेरी स्त्री का तमाशा तथा प्रेम का वास्तविक स्वरूप।"

नरेन्द्र—"मुझे तो श्वास चढ़ाने की क्रिया आती नहीं है।"

महेन्द्र—"मैं तुम्हें कुछ ही दिनों में सिखा दूंगा।"

नरेन्द्र ने कुछ ही दिनों में श्वास-क्रिया का अभ्यास कर लिया। एक दिन उसने पत्नी से कहा—"आज तो मेरे पेट में दर्द हो रहा है, शूलें चल रही हैं।" यों कहता हुआ श्वास चढ़ाकर लम्बा पसर गया। स्त्री ने सोचा—पतिदेव तो परलोक पहुंच गये। अब तो 'पहले पेट पूजा पीछे काम दूजा'। उसने चूंटिया चूरमा तथा भैंस का दही दबादब खाकर पेट भर लिया। रोने की तैयारी करने लगी, इतने में उसको याद आया—इनके दांतों में सोने की चीप है। दौड़ी-दौड़ी पसेरी लाई और दांतों को तोड़ने लगी। नरेन्द्र लेटा-लेटा सारा नाटक देख ही रहा था। एकाएक उठा और बोला—"चूटियों चूरमों, भैंस रो दही, तू खायो मैं देख्यो सही। सुण-सुण हे चरितारी नार, ले पसेरी म्हारा दांत मती पाड़।"

"देख लिया मैंने तेरा झूठा प्रेम, कम से कम पत्थर से मेरे दांत तो मत तोड़।" दौड़ा-दौड़ा शीघ्र महेन्द्र के घर आया और बोला—"मित्र ! तूने कहा था वह सब सत्य है। मेरा कोई नहीं है। समय पर मेरी स्त्री भी बदल गई है।" आखिर दोनों ने ही संसार के स्वरूप को झूठा समझकर संयम लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

सारा संसार मतलब का है। मतलब से ही सब दौड़े-दौड़े आते हैं। मतलब के अभाव में पतिव्रता कहलाने वाली नारी भी बदल जाती है, अतः संसार का झूठा

प्रेम समझकर हर एक को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होना चाहिए।

जब तक मतलब पहुंचता, तब तक सब हैं साथ।
बिना स्वार्थ संसार में, कोई न पूछे बात॥

स्त्रीहठ

राजा भोज की महारानी और कवि कालिदास की धर्मपत्नी दोनों की आपस में बड़ी मित्रता थी। प्राय: प्रतिदिन दोनों का मिलन हो ही जाता था। एक दिन महारानी ने उससे कहा—"बहन! राजा को मैंने इतना वश में कर रखा है कि मेरी आज्ञा का पालन राजा को करना ही पड़ता है। मैं जैसा चाहूं वैसा कार्य करवा सकती हूं। क्या तेरा पति कवि कालिदास भी तेरे वश में है?" उसने कहा—"जैसे तेरे पति तेरे वश में हैं, वैसे ही मेरे पति भी मेरे वश में हैं, मेरा मन इच्छित उनको करना ही पड़ता है।" महारानी ने कहा—"आज इसकी परीक्षा करें कि किसका पति किसके वश में अधिक है। तू तेरे पति कालिदास को आज भद्र (सिरमुण्डन) बना देना।" उसने कहा—"बहन! तू राजा को गधा बनाकर उसके ऊपर चढ़ना।"

उसने घर आकर अपने पति कालिदास से कहा—"पतिदेव! आज आपको भद्र होना है।" कालिदास की इच्छा न होते हुए भी स्त्री-हठ का पालन तो करना ही पड़ता है। भद्र होकर कालिदास ने स्त्री से पूछा—"प्रिये! इतना हठ पकड़ने में क्या कोई कारण था?" पत्नी ने सब बातें, जो महारानी के साथ हुई थीं, बता दीं।

इधर ज्यों ही राजा भोज राजमहल में आया त्योंही महारानी पिशाचिनी की भांति विकराल रूप धारण कर बोली—"पतिदेव! आपको गधा बनना पड़ेगा, मैं ऊपर बैठूंगी।" राजा सहम गया, किन्तु महारानी का हठ भी अजेय था। आखिर राजा ने सोचा महलों में कौन देखता है। जैसा महारानी ने कहा था, वैसा ही राजा को करना पड़ा।

दूसरे दिन कवि कालिदास ज्योंही राज्यसभा में पहुंचा त्योंही राजा भोज ने उसे मुण्डित देख कहा—

"कालिदास कविश्रेष्ठ:, कस्मिन पर्वणि मुण्डनम्।"

"कालिदास! किस पर्व के उपलक्ष में सिर को मुण्डाया है।"

कालिदास बड़ा दक्ष कवि था। वह अवसर को कब चूकने वाला था। शीघ्र बोला—

"राजानो गर्दभायन्ते, तस्मिन् पर्वणि मुण्डनम्॥"

"राजन् रात्रि में आप गर्व बने थे, उसी पर्व के उपलक्ष में मैंने सिर मुण्ड-वाया है।" राजा अवाक् रह गया। सिर नीचे झुक गया और धीरे से बोला—"संसार में स्त्रीहठ बड़ा बलिष्ठ होता है।"

स्त्रीहठ और बालहठ के आगे बड़े-बड़े राजाओं को झुकना पड़ता है, किन्तु अत्याग्रह करना कोई बुद्धिमत्ता का परिचायक नहीं है। आग्रह को सर्वथा त्याज्य ही समझना चाहिए।

> स्त्रीहठ के आगे झुके, विज्ञ और नरराय।
> किन्तु सर्वथा त्याज्य है, आग्रह करना आज॥

संग्रह करना पाप

ईरान में राजवंशी शाह जूसा नाम का एक व्यक्तित्वशाली पुरुष था। उसका हृदय गंगा-सलिल-सा निर्मल था। वहां के फकीर भी उसे पूज्य दृष्टि से देखते थे। शाह जूसा के एक पुत्री भी थी। प्रत्येक कार्य में वह बड़ी दक्ष थी। वह जितनी शिक्षित और संस्कारित थी उतनी ही सुन्दर भी थी। किसी राजा ने शाह जूसा से कहा—"मैं आपकी लड़की से शादी करना चाहता हूं।" शाह जूसा—"राजन्! मुझे लड़की के लिए वर राजा नहीं त्यागी पुरुष चाहिए।" कुछ समय पश्चात् शाह जूसा ने एक मस्त फकीर को देखा और उससे कहा—"क्या आप शादी करना चाहते हैं?"

फकीर ने कहा—"शादी करना तो चाहता हूं किन्तु मुझ जैसे गरीब को लड़की कौन देगा? मेरे पास तनिक भी धन नहीं है।"

शाह जूसा ने कहा—"मैं धनाढ्य की नहीं धार्मिक व्यक्ति की खोज में हूं। मैं दूंगा आपको अपनी लड़की।"

फकीर—"महाभाग! मैं तो अकिंचन हूं। मेरे पास तो केवल तीन पैसे हैं।"

शाह जूसा—"आप अपने तीन पैसों से ही अगरबत्ती, कुंकुम आदि ले आइए, मैं अपनी लड़की का विवाह आपके साथ कर दूंगा।"

फकीर सब सामग्री ले आया और शाह जूसा ने उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। फकीर उस लड़की को लेकर अपने निवास स्थान पर आया। लड़की ने ज्योंही उस फकीर की झोपड़ी में प्रवेश किया त्योंही वह तमक कर बोली—"मैं इस घर में नहीं रह सकती।"

फकीर—"मृगाक्षी! यह तो मैं जानता ही था कि तुम राजघराने की लड़की मुझ जैसे फकीर की झोपड़ी में कैसे रह सकोगी?"

लड़की—"पतिदेव ! मैं आपकी झोपड़ी को देखकर भागना नहीं चाहती हूं। पर आपने जो रोटियों का संग्रह कर रखा है इसे देख मन में घृणा उत्पन्न हो रही है। क्या आपको कल का भरोसा नहीं है ?"

फकीर—"मृगलोचने ! कुछ रोटियां बच गई थीं। मैंने सोचा, कल काम आ जाएंगी इसलिए रख ली हैं।"

लड़की—"प्राणेश ! आवश्यकता से अधिक रखना अर्थात् किसी भी वस्तु का संग्रह करना बहुत बड़ा पाप है। संग्रहवृत्ति की भावना से देश का पतन हुआ है। इसे आप छोड़ दीजिए। मैं यहां रहने को तैयार हूं।"

फकीर—"प्रिये ! जैसा तुम कहोगी वैसा ही करूंगा और संग्रह को हेय मानूंगा।"

अब वह लड़की फकीर की झोपड़ी में आनन्द से रहने लग गई क्योंकि असंग्रह की भावना का प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता था ?

इन्सान के हृदय में असंग्रह-भावना जब तक जागृत नहीं होगी तब तक कोई भी समाज, प्रान्त, राष्ट्र अपना उत्थान नहीं कर सकेगा, अतः असंग्रह वृत्ति को अधिक महत्त्व देना चाहिए।

संग्रह करना छोड़ दो, यदि चाहते उत्थान।
होता संग्रह-वृत्ति से, कदम-कदम नुकसान॥

दुर्जन का संग

एक हंस और एक कौवे में एक बार अच्छी दोस्ती हो गई। गगन विहरण करते हुए दोनों एक वृक्ष पर आ बैठे। प्रेमपूर्वक दोनों बातें करने लगे। किन्तु स्वभाव से दोनों अलग-अलग थे। हंस की गतिविधि सज्जन जैसी थी और कौवे की दुर्जन जैसी। अचानक उसी वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम लेने के लिये थका हुआ एक मुसाफिर आ गया। वह अपनी चादर बिछाकर सो गया। श्रान्त होने के कारण सहसा गहरी नींद आ गई। वृक्ष पर बैठे हुए हंस ने देखा कि पथिक के बदन पर सूर्य की कुछ किरणें पड़ रही हैं। तीव्र ताप के कारण इसकी नींद टूट जायेगी। इस कारण हंस अपनी पांखें फैलाकर बैठ गया। सारी धूप उसके पंखों पर समाहित हो गई। यह बात कौवे को अच्छी नहीं लगी। उसने सोचा—हंस बिल्कुल भोला है। पथिक की चिन्ता में खुद कितना ताप सह रहा है। पथिक को आराम क्यों देता है ? उसके सुख को पचा नहीं सकने के कारण कौवे ने मुसाफिर के मुख पर विष्टा कर दी।

पथिक की आंखें खुलीं। सोचा—यह दुश्मन कौन? पंख फैलाए हुए हंस को देखते ही वह तो आग-बबूला हो गया। मलकर्ता उसी हंस को समझकर उसने गोली से उसके प्राण पखेरू उड़ा दिये। दुर्जन के संग से हंस को बिना मौत मरना पड़ा।

दुर्जन का संग कभी भी सुखद नहीं होता है। सज्जन का संग सर्वथा लाभप्रद होता है। 'जैसा संग वैसा रंग' जैसा संग मिलेगा वैसा ही रंग चढ़ जायेगा। अतः हर एक को दुष्ट मनुष्यों की संगति से दूर रहना चाहिए।

दुर्जन कौवे-संग से, मरा बिचारा हंस।
सज्जन संगति से मनुज, बनता जग-अवतंस॥

सबसे बड़ा मूर्ख

एक अजयपाल नामक ग्वाला था। वह जंगल में बकरियां चराता था। एक दिन नदी के किनारे उसे एक चमकीला पत्थर मिला। दीखने में वह सुन्दर था। उस कंकर को ले वह आया। उसने कंकर बेच बदले में महाजन से एक सेर गुड़ ले लिया। महाजन बाजार गया और मणिहारे के साथ सौदा कर लिया। उसने कंकर के बदले में एक रुपया दे दिया।

मणिहारे ने दुकान सजाई। इतने में एक जौहरी उसकी दुकान पर आ पहुंचा। जौहरी की नजर उस चमकीले कंकर पर पड़ते ही मणिहारे से पूछा—"भाई! इस कंकर की क्या कीमत है?" मणिहारे के मुख से सहसा निकल गया—"इसकी कीमत पांच रुपये है।" जौहरी ने क्रमशः दो, तीन, चार रुपयों के लिए कहा। मणिहारे ने कहा—"पांच से एक पाई भी कम नहीं लूंगा।" अंत में जौहरी बोला—"खैर, पांच रुपयों में एक पैसा कम ले लो और कंकर मुझे दे दो।" उसने कहा—"एक पैसा भी कम नहीं लूंगा।" एक पैसे के लोभ में वह जौहरी उस कंकर को छोड़कर चला गया।

पीछे से एक विवेकशील जौहरी उसी दुकान पर आ पहुंचा। उसने भी उसी कंकर के लिए पूछा—"इसकी क्या कीमत है?" मणिहारे ने सोचा—क्या बात है, जो आते हैं वे इसी की कीमत पूछते हैं। वह शीघ्र ही बोला—"सेठ साहब! इसकी कीमत पच्चीस रुपये है।" जौहरी ने तुरन्त जेब से निकालकर पच्चीस रुपये दे दिये और उस कंकर को खरीद लिया।

कुछ ही समय पश्चात् वह लोभी जौहरी फिरता-फिरता वापस वहां आया

और बोला—वह कंकर कहां है ?" मणिहारे ने कहा—"उसे पच्चीस रुपयों में बेच दिया।"

जौहरी बोला—"मूर्ख ! तूने आज बहुत बड़ी गलती की। वह कंकर नहीं था, सवा लाख का रत्न था। जिसको तूने पच्चीस में बेच दिया। मणिहारा बोला—"सेठ साहब मैं तो अज्ञानी हूं। मुझे कंकर और रत्न की पहिचान न थी, परन्तु आप तो परीक्षक (जौहरी) थे। आपने एक पैसे के लिए सवा लाख का रत्न खो दिया, अतः सच्चे मूर्ख तो आप हैं।" जौहरी हाथ मलते-मलते घर आया और मन ही मन में दुःख करने लगा 'हाय ! अब ऐसा रत्न कब मिलेगा ?'

जो इस अमूल्य जन्म को निद्रा, हास्य, आलस्य, प्रमाद, और विषय-वासना में वृथा गंवा देते हैं, उनको अन्त में उस मूर्ख जौहरी के सदृश पश्चात्ताप करना ही पड़ता है क्योंकि अवसर निकल जाने के पश्चात् क्या…?

समझो मानव जन्म को, बड़ा कीमती रत्न।
इसकी रक्षा के लिए, करो निरन्तर यत्न॥

मुंडा देखनै टीका काढ़ै

एक सेठ था। उसके दो लड़कियां थीं। अच्छे घर व अच्छे वर देखकर सेठ ने दोनों लड़कियों के विवाह कर दिये। सेठ का छोटा जमाई कान्तिलाल किस्मत वाला था। वह थोड़े ही दिनों में धनाढ्य बन गया। दुकान का कारोबार दिनों-दिन बढ़ता गया। कई मुनीम व नौकर रहने लगे। कुछ ही दिनों में उसकी गिनती लखपतियों में होने लगी। सारे नगर में उसकी इज्जत व प्रतिष्ठा हवा की भांति फैल गई।

किन्तु सेठ का बड़ा दामाद शान्तिलाल अधिक चतुर नहीं था। पढ़ा हुआ भी कम था। घर का पालन-पोषण भी बड़ी मुश्किल से करता था।

एक बार सेठ ने दीपमालिका के शुभ अवसर पर दोनों जमाइयों को भोजन के लिए आमंत्रण दिया। कान्तिलाल को तो अन्दर रंगभवन में ले जाकर सेठ ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और तरह-तरह के मधुर पकवान्नों से उसका स्वागत किया गया। इधर बेचारे शान्तिलाल को बाहर बैठक में गलीचे पर बैठा दिया और भोजन में भी थूली परोसी गई। उससे रहा नहीं गया। वह शीघ्र बोला—

मांहिला ने लाडू पेड़ा, बारला ने थूली।
या तो म्हारो विहाड़ो बांकड़ों का पुरसण वाली भूली॥

परोसने वाली बड़ी चतुर एवं समझदार स्त्री थी। उससे भी रहा नहीं गया। वह भी शीघ्र बोली—

> नहीं थारो दिहाड़ों बांकड़ों, नहीं पुरसण वाली भूली।
> मुंडा देखनै टीका काढ़े, मार सटापट चूली॥

वह जवांई समझ गया कि यहां पर पैसे वालों की मनुहार है, सम्बन्ध की नहीं। अपना अपमान समझकर बिना भोजन किये ही अपने घर के लिए रवाना हो गया।

संसार मतलब का है। सब चेहरा देखकर तिलक निकालते हैं। प्रतिष्ठा एवं पूजा भी पैसे वालों की होती है किन्तु वास्तव में चरित्रशील महानुभावों की ही प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

> तिलक निकाले देख मुख, जग का क्या व्यवहार।
> स्वार्थ बिना दामाद भी, पाता है दुत्कार॥

संसार से ग्लानि

याज्ञवल्क्य नाम के एक ऋषि थे। उनके दो पत्नियां थीं—मैत्रेयी और कात्यायिनी। ऋषि बड़े आध्यात्मिक व गहरे चिंतक थे। एक दिन उनके मस्तिष्क में चिंतन चला—अब मुझे इस प्रवृत्तिमय जीवन से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। उन्होंने दोनों पत्नियों से कहा—"मैं अब संन्यास लेना चाहता हूं। इस संसार से मुझे ग्लानि उत्पन्न हो गई है। जीवन का कुछ भी विश्वास नहीं है। मैं प्रवृत्ति के मार्ग को छोड़ निवृत्ति के मार्ग को अपनाना चाहता हूं। लेकिन इससे पहले मैं अपनी सम्पत्ति तुम्हें बांटकर फिर संयम-पथ को स्वीकार करना चाहूंगा।" मैत्रेयी विदुषी थी। उसने कहा—"स्वामिन्! आप जिस सम्पत्ति को छोड़ निवृत्ति लेना चाहते हैं और हमें देते हैं, क्या वह सम्पत्ति हमें सच्चा सुख देगा? क्या वह जन्म-मरण के दावानल को शान्त करेगी?" याज्ञवल्क्य ने कहा—"मैत्रेयी! उस सम्पत्ति से आध्यात्मिक सुख तो नहीं मिलेगा। किन्तु भौतिक सुखानुभूति अवश्य होगी।"

मैत्रेयी ने कहा—"स्वामिन्! जिसे आप हेय समझते हैं, दुःख का कारण मानते हैं वह सम्पत्ति आप हमें दे रहे हैं। क्या यही आपका न्याय है? मुझे ऐसी भौतिक सम्पत्ति की चाह नहीं है। यह समस्त सम्पत्ति आप मेरी बहन कात्यायिनी को दे दें। कृपया मुझे तो आप ऐसी शक्ति दें, जिससे मुझे सही सुखानुभूति हो सके।"

आखिर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आध्यात्मिक मार्ग बताते हुए संयम में रमण करने की प्रेरणा दी और कहा—"तुम्हारे विचार बहुत ही प्रशंसनीय एवं दूसरों के लिये अनुकरणीय भी हैं।"

जो व्यक्ति आध्यात्मिक सुख के आकांक्षी हैं उन्हें संसार से विरक्त रहना चाहिए और संयम सरोवर में स्नान कर आन्तरिक पाप को धोने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे सही सुख की उपलब्धि हो सके।

आध्यात्मिक सुख इच्छुको, जग से रहो विरक्त।
'मुनि कन्हैया' नित रहो, संयम में अनुरक्त॥

लालच में फँसकर

एक ठाकुर था। गांव में उसका प्रभाव था। युद्ध करने में बहुत बड़ा शूरवीर एवं दक्ष था। चारों तरफ उसकी धाक थी। एक दिन वह किसी शत्रु पर चढ़ाई करने गया, वहां पर जीत के नगाड़े बजा कर वापस गांव में आने लगा। अनेकों नर-नारियों द्वारा ठाकुर साहब का सत्कार हुआ। पानी के कलश लिए हुए सुहागिन औरतें मंगलगीत गाती हुई एक पंक्ति में खड़ी-खड़ी ठाकुर साहब के चिरंजीवी होने की कामना करने लगी। जय-विजय के नारों से ठाकुर साहब की सवारी ने गांव में प्रवेश किया। प्रसन्न होकर ठाकुर साहब ने सभी स्त्रियों के कलशों में एक-एक रुपया डालने के लिए आदेश जारी किया। इतने में सामने से अचानक एक विधवा औरत का आना हो गया। वह घबराई। अपशकुन के भय से वह एक छोटी गली में जाकर छिप गई। ठाकुर साहब ने उसको देख लिया। उसके विवेक पर वे बड़े खुश हुए। ठाकुर साहब ने उसके घड़े में पांच रुपये डालने के लिए आदेश दिया।

पीछे से सभी औरतों का मिलन हुआ। बातें चलीं। सभी ने कहा—"हमें एक-एक रुपया मिला है।" उस विधवा स्त्री ने कहा—"मेरे घड़े में तो पांच रुपये आये हैं। पांच रुपये की बात सुनकर सभी स्त्रियों ने भविष्य के लिए यह निश्चय किया कि अब कभी ऐसा काम पड़े तब अपने को भी काले कपड़े पहन कर आना चाहिए, जिससे पांच-पांच रुपये की प्राप्ति होगी; क्योंकि ठाकुर साहब को काले कपड़े अच्छे लगते हैं।

एक दिन फिर वैसा ही मौका मिल गया। ठाकुर साहब जय-विजय करके आ रहे थे। गांव के लोग सामने गये। स्त्रियां भी काले कपड़े पहन सिर पर पानी का घड़ा रखकर, मंगल-गीत गाती हुई मध्य बाजार में खड़ी हो गई। ठाकुर साहब के

आश्चर्य का पार नहीं रहा। यह क्या बात ? पीछे से क्या कोई बीमारी आ गई ? सभी स्त्रियों के कपड़े काले हैं। पूछताछ करवाने पर ठाकुर को यह पता लगा कि पांच-पांच रुपये के लोभ में फंसकर सबने काले कपड़े पहने हैं। ठाकुर साहब ने आदेश जारी किया कि राजभवन के पास वाले स्थान में आज सब स्त्रियों को इनाम दिया जायेगा। सब स्त्रियों के दिल में बड़ी खुशी थी। सब दौड़ी-दौड़ी वहां एकत्रित हो गईं। ठाकुर साहब आये। नोहरे के दरवाजे बन्द करवाये गये। सब स्त्रियों को एक पंक्ति में खड़ी करके ठाकुर साहब बोले—"तुम सबको शर्म नहीं आती है, पांच रुपयों के लोभ में आकर तुमने कुल मर्यादा का त्याग कर दिया। धिक्कार है तुम्हारे जीवन को।" तेरह-तेरह कोड़ों से एक-एक की पूजा करवाई गई। सब स्त्रियों की अक्ल ठिकाने आ गई। सभी ने सोचा—भविष्य में कभी भी ऐसा काम नहीं करेंगी।

लालच में फंसकर इन्सान को अपनी कुल-परम्परा का परित्याग नहीं करना चाहिए। धन सम्पदा सब यहां की यहां रह जायेगी। यह जीव अकेला ही आता है और अकेला ही जायेगा।

विधवा बनकर नारियां, गाती मंगल-गीत।
स्वल्प लोभवश तोड़ दी, अपने कुल की रीति॥

कुछ तुम समझे, कुछ हम समझे

एक बुढ़िया थी। शहर से कुछ सौदा खरीदकर अपने गांव की ओर रवाना हुई। अधिक थकान होने से वह मार्ग में बैठ गई। उसी मार्ग से एक घुड़सवार आ रहा था। बुढ़िया ने घुड़सवार से कहा—"बेटे ! जरा ठहरो, मेरी बात सुनो।"

घुड़सवार बोला—"मांजी ! जल्दी बोलो, क्या काम है ? मुझे अमुक गांव में शीघ्रता से पहुंचना है।"

मीठी वाणी में बुढ़िया ने कहा—"बेटे जिस गांव में तुम जा रहे हो, उसी गांव में मुझे जाना है। मैं बूढ़ा हूं। मेरे घुटनों में काफी दर्द हो रहा है। अधिक वजन लेकर चल नहीं सकती। इसलिए तुम मेरे सामान की गठरी घोड़े पर ले जाओ। घर पहुंचा देना। तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगी।"

घुड़सवार ने झुंझलाकर बोला—"मांजी ! मार्ग में अनेकों व्यक्ति मिलते हैं। किस-किसका सामान ले जाया जाए। मेरे से यह काम नहीं होता।" यों कहता हुआ घुड़सवार आगे बढ़ गया।

कुछ ही दूरी पर घुड़सवार के मन में आया—आज तो अच्छा अवसर आया था हाथ में। भोलेपन में यों ही गंवा दिया। गठरी हजम करने का बहुत ही अच्छा मौका था। वह वापस मुड़ा। बुढ़िया के पास आया और मीठे शब्दों में बोला—"मैं कुछ ही दूर गया, पर मेरे से चला नहीं गया। मन में मंथरता उत्पन्न हो गई। विचार बदले। मैंने सोचा—वृद्ध मांजी को निराश करना व्यवहार में अच्छा नहीं है। इसलिए गठरी लेने वापस आया हूं। घोड़े पर रख लूं। तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा।"

बुढ़िया हंसकर बोली—"क्या है? समय निकल गया। अब नहीं दूंगी। कुछ तुम समझे, कुछ हम समझे।"

घुड़सवार चकित हुआ और बोला—"मांजी! ऐसे कैसे कह रही हो? क्या हुआ?"

बुढ़िया ने कहा—"उस समय तुम्हारे विचार शुद्ध थे। इसी कारण मुझे भी गठरी देने की सूझी थी। अब तुम्हारे मस्तिष्क में विकृति उत्पन्न हो गई। विचारों में स्वच्छता नहीं रही। मन में पाप भर गया। अनीति आ गई। उस अनीति का असर मेरे पर भी आ गया। मैं धोखा नहीं खाऊंगी, अतः अब अपना सामान देना नहीं चाहती, स्वयं ले जाऊंगी। तुम्हारे विचार बदले तो मेरे भी विचार बदल गये।"

मानसिक विचार-शक्ति का प्रभाव दूसरों पर बहुत जल्दी पड़ता है। जिस व्यक्ति की भली अथवा बुरी जैसी भी विचारधारा होगी, सामने वाले की वैसी ही बन जायेगी। अतः हर व्यक्ति को अपनी विचारधारा पवित्र रखनी चाहिए।

कुछ तुम समझे हृदय में, कुछ हम समझे अब।
बुरे विचारों का असर, मन पर पड़ता सब॥

हम गंगाजी तो जाएँगे

नारायणचन्द और ज्ञानचन्द नाम के दो भाई थे। दोनों बड़े होशियार थे। एक भाई ऊपर की मंजिल में रहता था और दूसरा नीचे…। दोनों की दो अलग-अलग दूकानें थी। दोनों व्यापार में ईमानदारी एवं प्रामाणिकता रखते थे। कम तोल-माप को त्याज्य समझते थे। एक भाव रखते थे, चाहे भोला बालक आए, चाहे होशियार पढ़ा-लिखा। मुंह देखकर कभी तिलक निकालने वाले नहीं थे, जिससे शहर में दोनों की अच्छी छाप थी, अच्छी इज्जत थी, अच्छी प्रतिष्ठा थी।

साधारणतया जितना घरेलू खर्च था, उतनी ही आय थी। संग्रह की भावना तनिक भी नहीं रखते थे। दोनों का जीवन सुखी था। किसी भी तरह की चिन्ता नहीं थी। दोनों बड़ी मस्ती से रहते थे।

एक बार रात्रि में उनके घर में चोर घुस गया। दोनों भाई जाग गये। चोर को सुनाने के लिए ऊपर पड़ा-पड़ा ज्ञानचन्द बोला—

"नारायण! भाई नारायण! कल हम गंगाजी तो जाएंगे।"

"ज्ञानचन्द भाई! कल गंगा जी की तीर्थयात्रा करने जाना है, तैयार हो जाना।" नारायण बोला—

"गंगाजी तो जायेंगे पर घर किसको सम्हलायेंगे?"

"भाई ज्ञानचन्द! गंगाजी जाना तो जरूरी है, परन्तु घर किसके भरोसे छोड़ेंगे?"

ज्ञानचन्द बोला—

> चरखी बेची, पूणी बेची, घर के आग लगायेंगे।
> नारायण भाई नारायण, हम गंगाजी तो जायेंगे॥

"भाई! घर की क्या चिन्ता है? कौन से हीरे-पन्ने पड़े हैं? चरखी पूणी बेच घर को जला देंगे।"

नारायण बोला—

> "घर के आग लगायेंगे तो, मार्ग में क्या खायेंगे?"

"भाई! तू कहता है वह तो ठीक है पर घर को जला देंगे तो आजीविका कैसे चलेगी? किराये की आमदनी का भी बहुत सहारा है इस सम्पत्ति को भी नष्ट कर देंगे, तो मार्ग में क्या खाएंगे?"

ज्ञानचन्द बोला—

> मार्ग में क्या खायेंगे, हम चोरी करके लायेंगे।
> नारायण भाई नारायण, हम गंगाजी तो जायेंगे॥

"भैया! मार्ग में खाने की क्या चिन्ता? चोरी करके लायेंगे। खूब खायेंगे।"

नारायण बोला—

> "चोरी कर धन लायेंगे, तो मार फड़ाफड़ खायेंगे।"

भाई! चोरी करके यदि धन लायेंगे तो मार खानी पड़ेगी।

परस्पर इस तरह संवाद चल रहा था। चोर बड़ी उधेड़-बुन में था—क्या करना चाहिए? इतने में वहां गश्त लगाता हुआ आरक्षक आ गया बोला—"क्या बात है? आज ये प्रश्नोत्तर किस विषय में हो रहे हैं?"

ज्ञानचन्द ने धीरे से कहा—"अन्दर चोर खड़ा है।"

आरक्षक शीघ्र उस चोर को पकड़कर ले गया। दोनों का कुछ भी नुकसान नहीं हुआ क्योंकि जो नीति से अर्जित धन होता है, उसे कोई भी लूट नहीं सकता, जला नहीं सकता।

नीतिवान व्यक्तियों को हर क्षेत्र में सफलता मिलती है। कहीं भी उनको नुकसान नहीं उठाना पड़ता है और उनके पवित्र बुद्धि-कौशल से हर समस्या समाहित हो जाती है, अतः हर एक को नीतिनिष्ठ बनना चाहिए।

नारायण अरु ज्ञानचन्द, दोनों भाई दक्ष।
अर्जित वैभव नीति का, बचा सकल प्रत्यक्ष॥

चार अक्ल

एक दिन गुरु जी ने अपने सुविनीत चेले से कहा—"चेला! देश मे सर्वत्र अकाल है, उदर-पूर्ति करना एक भयंकर समस्या बन गई है। परदेश में चलो, वहां जीवन निर्वाह अच्छा होगा।" शुभ मुहूर्त देखकर दोनों चल पड़े। एक विशाल नगरी मे पहुंचे। नगरी के द्वार पर ही एक व्यक्ति जोर-जोर से अक्ल बेच रहा था—"लो अक्ल, लो अक्ल।"

गुरुजी ने पूछा—"क्या कीमत है?" व्यापारी बोला—"प्रत्येक अक्ल की कीमत एक रुपया है।" गुरुजी के पास चार रुपये थे, अतः उन्होंने चारों अक्ल खरीद ली। ये अक्ल थीं—

(१) "समय पर जो बड़ा होता है उसे बड़ा मानना।"
(२) "परोसा हुआ भोजन न छोड़ना।"
(३) "गुप्त बात को प्रकट न करना।"
(४) "अन्यायी जनों की नौकरी नही करना।"

इन्हें खरीद कर गुरु-चेले दोनों आगे बढ़े। उसी दिन वहां के सम्राट का देहावसान हो गया। राजा के सन्तान नही होने के कारण हथिनी को घुमाया गया कि जिसके गले में यह माला डाल देगी, वही नगरी का राजा होगा। राज्य सम्पदा के अभिलाषी अनेकों व्यक्ति बाजार में खड़े हो गये और हथिनी के सम्मुख सिर झुकाने लगे। गुरु-चेले भी एक तरफ खड़े थे।

हथिनी आई और चेले के गले में माला डाल दी। स्थानीय नागरिकों को नहीं पसन्द आने के कारण वे जोर-जोर से बोलने लगे—"हथिनी की गलती हो गई है। इसको हम राजा नहीं मानते। चुनाव दूसरी बार होनी चाहिए।" हथिनी

पुनः घुमाई गई। किस्मत बलवान होने से हथिनी ने पुनः उसी के गले में माला डाल दी।

चेला राजा बना। सुशील सुन्दरी से राजा का विवाह हुआ। गुरुजी धर्मशाला में ठहर गये। उदर-पोषण भी कठिनता से होने लगा। गुरुजी ने सोचा—चेले के पास जाना चाहिए, वहां मेरी सभी समस्यायें सुलझ जायेंगी। चेला छोटा है, फिर भी जाने में मुझे संकोच नहीं करना चाहिए। गुरुजी को अक्ल भी याद आ गई कि समय पर जो बड़ा होता है उसे बड़ा मानना चाहिए। गुरुजी दरबार में पहुंचे। राजा ने सत्कार किया। गुरुजी अपने चेले को बड़ी इज्जत से देखने लगे। चेले ने गुरुजी को योग्य कार्य पर नियुक्त कर दिया। महारानी का स्वभाव अच्छा नहीं था। मन्त्री से उसका सम्बन्ध जुड़ गया। दोनों के पारस्परिक असद् व्यवहार का पता गुरुजी को लग गया। गुरुजी को आश्चर्य का पार नहीं रहा। गुरुजी ने गुप्त बात को प्रकट करना उचित नहीं समझा। मन्त्री ने रानी से कहा—"अपने प्रेम का पता गुरु को लग गया है। राजा गुरु की बात मानता है, अतः ज्यों त्यों कर गुरु को मरवाना है।"

महारानी कोपभवन में जाकर सो गई। कपड़े फाड़ दिये और बालों को बिखेर कर औंधे मुंह पड़ गई। राजा आया और पूछा—"प्रिये! आज यह कौन-सा शृंगार कर रही हो? कुछ समझ में नहीं आ रहा है, बताओ तो सही?"

रानी बीभत्स रूप बनाकर विद्युत की भांति कड़कड़ाती हुई बोली—"प्राणेश्वर! या तो इस धरा पर मैं जीवित रहूंगी अथवा आपका गुरु।"

राजा—"सुन्दरी! गुरुजी के प्रति इतनी निम्न भावना क्यों? गुरुजी तो बड़े सदाचारी हैं, विश्वासी हैं।"

रानी गर्जती हुई बोली—"और रोना ही किस बात का है? यह गुरु नहीं गुण्डा है। मुझे बुरी नजर से देखता है। मेरे साथ दुर्व्यवहार करने के लिए कटिबद्ध है, किन्तु मैं शीलवती हूं। मुझे विचलित करने वाला कौन है? अतः ऐसे व्यक्तियों को जीवित रखना क्या लाभप्रद है?"

राजा के हृदय में भी क्रोधाग्नि भभक उठी। शीघ्र राजसभा में आया। कुछ प्रपंच रचा। गुरुजी को बुलाया और कहा—"आप यह कठोरदान ले जाइये। अमुक चाण्डाल को दे देना।" गुरुजी ने कहा—"राजन्! अभी जा रहा हूं।"

गुरुजी घोड़े पर रवाना हुए। मार्ग में मन्त्री का घर आया। परस्पर मिलन हुआ। मन्त्री के घर भोज था। अनेकों प्रतिष्ठित व्यक्ति पधारे हुए थे। मन्त्री ने गुरुजी से कहा—"आप भी यहां भोजन कीजिए।" गुरुजी ने इन्कार करते हुए कहा—"राजा का कार्य करने जा रहा हूं। अतः यहां पर अधिक नहीं रुक सकता।"

मन्त्री ने कहा—"यह बर्तन मुझे दे दीजिए, मैं चला जाऊंगा। बेफिक्र हो भोजन करें। थाली परोसी हुई है।"

गुरुजी को दूसरी अक्ल याद आई, भोजनार्थ बैठ गये। मन्त्री बर्तन लेकर चला। चाण्डाल के पास पहुंचा। बर्तन उसे दे दिया। चाण्डाल ने बर्तन खोला। पत्र पढ़कर बोला—"मन्त्री साहब ! इधर पधारिये, राजा के ये समाचार हैं 'जो तुम्हारे पास पत्र लेकर आता है, उसका सिर काट लेना।'" मन्त्री चौंका, घबराता हुआ बोला—"अरे ! यह पत्र मेरे लिए नहीं है, मेरा सिर मत काटना।"

चाण्डाल ने कहा—"मैं आपको नहीं छोड़ूंगा क्योंकि पत्र लेकर आप ही मेरे लिए पास आए हैं।"

मन्त्री का सिर काटा, बर्तन में रखा और राजा को देने के लिए चाण्डाल रवाना हुआ। इधर गुरुजी भोजन करके दरवाजे पर खड़े हो गये। चाण्डाल आया। गुरुजी ने उससे कहा—"रख दो बर्तन, राजा के पास पहुंचा दूंगा।" गुरुजी के सामने चाण्डाल बोल ही क्या सकता था ?

गुरुजी बर्तन लेकर दरबार में पहुंचे। राजा ने सोचा—यह क्या घटना घटी ? गुरुजी जीवित कैसे आ गये ? गुरुजी ने बर्तन सौंपा। राजा ने खोलकर देखा तो अवाक् रह गया। गुरुजी भी समग्र घटनाचक्र से अवगत हो गये। राजा की प्रवंचना पर आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले—"राजन् ! मुझे विश्वास नहीं था कि तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार करोगे। बिना गलती मुझे मरवाने का जाल रचोगे। गुप्त बात को प्रकट नही करना, इस तीसरी अक्ल के आधार पर मैंने मंत्री और रानी की बात को प्रकट करना उचित नही समझा, किन्तु तुम्हारी परीक्षा हो गई। स्त्री के चक्रजाल में फंसकर तुम न्यायान्याय को भी भूल गये। हाय ! धिक्कार है। ऐसे अन्यायी जनों की नौकरी कभी भी नहीं करनी चाहिए। यह चौथी अक्ल मेरे पास है। अब मैं तुम्हारे दरबार में नही रह सकता। जाता हूं।"

जो दूसरों का बुरा चाहते हैं, वे अपना बुरा करते हैं। मंत्री ने चाहा, गुरु को मरवा दूं, प्रत्युत मंत्री को ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। यह है, बुरे का फल बुरा। संसार में सुखी वही होता है जो दूसरों का भला करता है और चारों अक्लों को जीवन में क्रियान्वित करता हुआ आगे बढ़ता है।

बुरे विचारों से अमित, होता है नुकसान।
मेधावी उस सचिव ने, खोए अपने प्राण ॥

मेंढक का धड़ा

एक बनिया था। पांच सेर घी लाने के लिए वह किसी गूजरों की बस्ती में गया। साथ में पंसेरी तो थी पर छोटे-बड़े बाट नहीं थे। एक गूजर के साथ इसने घी का भाव-ताव निश्चित किया। गूजर ने कहा—सेठ साहब ! घी किसमें लोगे ? बनिया बोला, तपेली साथ लाया हूं। किन्तु जरा ठहर जा, तपेली का धड़ा करना है। कुछ चीज ले आऊं। वह इधर-उधर कुछ ढूंढने लगा पर कोई भी चीज नजर में नहीं आई। वह ढूंढता काफी दूर चला गया। तालाब के आस-पास भूमि में मेंढक कूद रहे थे। बनिये ने कुछ मेंढक पकड़े और थैले में डाल लिए। उसने सोचा इनसे धड़ा ठीक हो जायेगा। वह झट आया और तपेली का धड़ा करने लगा। तपेली के वजन का अन्दाज लगाकर उसने ६ मेंढक रखे, पर कम पड़े उसने तराजू नीचे रख कर थैले में से दो मेंढक और निकाले। इतने में ही तराजू से तीन मेंढक कूद कर बाहर निकलकर दौड़ने लगे। बनिया ज्यों ही उन तीनों मेंढकों को लेने दौड़ा त्योंही दूसरे दो-तीन मेंढक फिर भाग निकले। इस तरह बनिया भागे हुए मेंढकों को लाता गया और उधर कुछ लाये हुए भागते गये। यह क्रम चलता रहा। बनिया असमंजस में पड़ गया—क्या करूं, धड़ा कैसे होगा ?

यह सब देखकर गूजर बोला—सेठ साहब ! मेंढकों से धड़ा कभी भी होने वाला नहीं। कुछ पत्थर-रोड़े लेकर आता हूं उनसे धड़ा झट हो जायेगा।

बनिया बोला—बहुत अच्छा, जल्दी करो, समय बहुत हो गया है। दूकान का समय भी होने वाला है। गूजर झट गया और इधर-उधर से कुछ पत्थर लेकर आया—सेठ ने झट धड़ा किया और घी लेकर अपने घर की ओर रवाना हुआ।

सांसारिक सुख मेंढक के धड़े के समान हैं। संसार में संपूर्ण सुख की उपलब्धि होना बहुत कठिन है। दो सुख मिलते हैं तो एक चला जाता है, एक मिलता है तो दो चले जाते हैं। इस तरह का उपक्रम चलता रहता है। अतः संसार के सुखों को विनश्वर समझकर आत्मिक सुखों के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

सांसारिक सुख है क्षणिक, मेंढक-धड़ा समान।
आध्यात्मिक सुख के लिए, करना यत्न महान॥

बिचली को मार

गांव के बाहर वृक्ष के नीचे एक बाबा रहता था। प्रतिदिन एक धुन से अच्छे स्वर में जाप किया करता था कि—"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, बिच —"

को जूतों की मार" ऐसी रट चालू ही थी। उसी वक्त शाम के समय तीन स्त्रियां ब्राह्मणी, राजपूतनी और बनियाइन वहां पानी भरने के लिए आईं। बाबा की वाणी सुनकर ब्राह्मणी और बनियाइन की आकृति खिल उठी किन्तु बीच में चलने वाली राजपूतनी की आकृति मुरझा गई। सिर पर जो घड़ा था, वह भी गिर पड़ा। दौड़ी-दौड़ी अपने घर आई, कोपघर में जाकर सो गई। न भोजन पकाया और न कोई चिराग जलाया। घर में सर्वत्र अंधेरा था। उसका पति राजपूत जो नौकरी पर गया हुआ था, वह घर में आया। राजपूतनी के पास पहुंचा। उसका विद्रूप देखकर वह बोला—आज ऐसे कैसे औंधे मुख पड़ी है? क्या किसी ने तेरा अपमान कर दिया?

राजपूतनी ने कहा—"जिसका पति कमजोर होता है। उसका कोई भी अपमान कर सकता है।" राजपूत जाति में जोश तो होता ही है। उससे रहा नहीं गया, आक्रोशपूर्वक जोर से बोला—"कौन है तेरा अपमान करने वाला? नाम बता अभी जाकर बदला लूं।"

राजपूतनी ने कहा—"गांव के बाहर कुएं के पास वृक्ष के नीचे बाबा बैठा है। उसने मेरा भयंकर अपमान किया है।" समग्र घटनाचक्र से अवगत होते ही राजपूत बोला—"मैं उसका सिर काटकर लाता हूं। तुम्हें तनिक भी दुःख करने की जरूरत नहीं है।"

राजपूत आंखों को लाल करता हुआ कुएं के पास पहुंचा। बाबा के पास भजन-मंडली जुड़ी हुई थी। दस पन्द्रह राजपूत बैठे थे। इससे उसका तनिक भी साहस नहीं हुआ। हताश होकर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे राजपूतों की मंडली विसर्जित हुई। बाबा अकेला रह गया। पूर्व क्रम के अनुसार उसने अपना जप जपना शुरू किया—"अगली भी अच्छी, पिछली भी अच्छी, बिचली को जूतों की मार।" बाबा की यह रट सुन राजपूत ने सोचा—"अभी यहां पर कोई भी स्त्री नहीं है फिर भी यह बाबा ऐसा क्यों बोल रहा है। इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य छिपा हुआ है। समाधान पाने के लिए वह नमस्कार करता हुआ बोला—"योगिराज! आप यह क्या बोल रहे हैं? कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

बाबा ने कहा—"यह मेरे तो समझने की बात है अगर तू जानना चाहता है तो ध्यान से सुन। जप में बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। जीवन की तीन अवस्थाएं होती हैं—(१) बाल्यावस्था (२) युवावस्था (३) वृद्धावस्था। इसमें पहली और तीसरी अच्छी होती हैं। क्योंकि बालक का हृदय सरल एवं स्वस्थ होता है। विषय-वासना से दूर रहता है। वृद्धावस्था में इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं संसार से विरक्त होने की भावना जागृत हो जाती है इसलिए कहता हूं कि पहली भी अच्छी और पिछली भी अच्छी किन्तु बिचली—युवावस्था में इन्द्रियां उन्मत्त होती हैं,

मन उन्माद से भरा रहता उन पर नियन्त्रण करना बहुत ही कठिन है। इसीलिए कहता हूं कि 'बिचली को चूलों की मार' अर्थात् इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण करो। इनका दमन बहुत ही मुश्किल है।"

रहस्य भरे वाक्य का सही हार्द पाते ही राजपूत का गुस्सा शान्त हो गया। बाबा को नमस्कार करता हुआ बोला "बाबाजी! आपकी वाणी का अर्थ मेरी स्त्री ने उलटा समझा। तीन पनिहारियों में वह बिचली थी। उसने सोचा—बाबा मुझे बुरी बता रहे हैं। उस अपमान का बदला लेने के लिए अर्थात् आपका खून करने आया था किन्तु अब मुझे सही-सही समाधान मिल गया। धन्य है आप की बुद्धि को! धन्य है आपके तप-त्याग को!

राजपूत घर आया और स्त्री को भी सारी स्थिति से अवगत किया। स्त्री का गुस्सा भी शान्त हो गया।

हर एक बात को गहराई से सोचना चाहिए, शब्दावली की यथार्थता पर ध्यान देना चाहिए। शब्द के यथार्थ को पकड़े बिना अंट-शंट गलत अनुमान कर लेने से बड़ा अनर्थ हो जाता है। अतः हर विषय का अंकन सही दृष्टिकोण से होना चाहिए।

गहराई से सोचिए, हर शब्दों का अर्थ।
शब्द अर्थ पकड़ें बिना, होते बड़े अनर्थ ॥

धोखा देना पाप

किसी गांव में एक मूर्ख किसान रहता था। उसने अपने जीवन का अधिकतम समय घर में ही बिताया। बाहर निकलना, बाजार में घूमना-फिरना उसे पसन्द नहीं था। एक दिन साहस बटोरकर वह अपनी कुछ पूंजी साथ लेकर शहर के बाजार में आया। वहां उसने बहुत ही अनोखी चीजें देखीं। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या खरीदूं, क्या नहीं। वह इसी उधेड़-बुन में इधर-उधर भटकता-भटकता एक माली की दुकान पर आ पहुंचा। वहां पर उसने बड़े-बड़े तरबूजे देखे। वह समझ नहीं रहा था कि यह क्या चीज है। माली से उस किसान ने पूछा—'ये क्या हैं बड़े-बड़े?" माली को बड़ा अचरज हुआ कि यह कैसा देहाती है जो तरबूज को नहीं जानता। माली ने सोचा कि क्यों नहीं इस देहाती को बुद्धू बनाया जाये।

माली बोला—"भाई किसान! इसे घोड़े का अण्डा कहते हैं।"

किसान बोला—"अच्छा इससे क्या होता है? इसकी क्या कीमत है? मेरे पास तो केवल सौ रुपये हैं।" माली मुस्कराता हुआ बोला—हां-हां इसकी कीमत

तो सौ रुपये ही है। भइय्या! इसे काटोगे तो इसके अन्दर काले-काले बीज निकलेंगे। शाम हो ही गई है। रात होते-होते गांव पहुंच जाओगे। इसे काट कर इसके बीज थोड़े-थोड़े फासलें पर बो देना, कुछ ही घण्टों में घोड़े पैदा हो जाएंगे।

किसान ने तरबूज खरीदा। खेत मे पहुंचा, तरबूज के बीज खेत में रात को ही बो दिये। हारा-थका तो था ही उसे वहां नींद आ गई। उधर राजा की घुड़-सवार फौज आई। वह वही ठहर गई। घोड़े खेत में आराम करने लगें।

घोडों की हिनहिनाहट से किसान की नीद खुल गई। वहां हजारो घोड़ों को देखकर वह खुशी से उछल पडा। सोचने लगा, ये बीज तो बड़ें कमाल के हैं। दो चार घण्टों मे ही इतने घोड़े पैदा हो गये। जब वह उन घोडों को अपने घर की ओर ले जाने लगा तो सैनिकों से झड़प हो गई। बात राजा तक पहुंची। किसान रो-रो कर अपनी बात बताने लगा। किसान की सारी बाते सुनने के बाद राजा ने सोचा, किसान महामूर्ख है। इसे धोखे मे डाला गया है। राजा ने आदेश जारी करते हुए कहा—"जब तक, 'घोड़ें किसके हैं' इस बात का निर्णय नही हो जाता तब तक सिपाहियो और किसान को रोक लिया जाए।"

राजा न्यायप्रिय था। दूसरे ही दिन वह भेष बदलकर किसान के साथ माली की दुकान पर पहुचा। वह किसान कही छिपकर खडा हो गया। राजा ने तरबूज के विषय मे पूछा।

माली ने कहा—"तरबूज की कीमत सौ रुपये है और ये घोड़े के अण्डे है। कुछ ही समय मे इनमे घोडें उत्पन्न हो जाते है।" माली की बात सुनकर राजा ज्योही अपने रूप मे प्रकट हुआ त्योही माली घबड़ाया, चौका और हाथ जोड़कर बोला—"राजन्! बार-बार क्षमा मांगता हू। मेरी गलती पर ध्यान न दे।"

नृप ने उसे ललकारते हुए कहा—

"माली! किसी को इस तरह धोखे मे डालना क्या तेरी इन्सानियत है? किसी से धोखा करना एक महान अपराध है। अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए।" राजा ने किसान के सौ रुपये लौटवा दिये और माली को जेल में बन्द करवा दिया। किसान को भी समझाकर रवाना कर दिया।

जो व्यक्ति दूसरो को धोखा देता है वह स्वयं को छलता है। धोखा देना, छल-कपट व्यवहार करना बहुत बडा पाप है अत: हर एक को निश्छलता का व्यवहार करना चाहिए।

धोखा देना पाप है, खूब समझ लें आप।
धोखा देने से मिला, माली को संताप॥

बुद्धि-विचक्षणता

एक नगर में चार पण्डित रहते थे। एक आयुर्वेद में, दूसरा धर्मशास्त्र में, तीसरा नीतिशास्त्र में, और चौथा कामशास्त्र में दक्ष था। उन चारों 'मनीषियों' ने अपने-अपने विषय का एक-एक महाग्रन्थ बनाया। हर ग्रन्थ के एक-एक लाख श्लोक थे। हर श्लोक विद्वत्ता से परिपूर्ण था। शब्द अलंकार एवं भाव अलंकार की सुन्दर अभिव्यक्ति थी। श्लोक का हर चरण बड़ा आकर्षक था।

चारों ही पण्डित जितशत्रु राजा की सभा में पहुंचे और बोले—"राजन्! हमने आपकी कृपा से अपने-अपने विषय का एक-एक ग्रन्थ लिखा है, उसे आप सुनिये।"

राजा ने कहा—"ये ग्रन्थ तो काफी बड़े प्रतीत हो रहे हैं, प्रत्येक में कितने-कितने श्लोक हैं?" पण्डितों ने कहा—"हर एक ग्रन्थ में एक-एक लाख श्लोक हैं"

राजा बोला—"धन्य है आपकी बुद्धि-विचक्षणता को! धन्य है आपके प्रखर पाण्डित्य को! एक-एक विषय पर आपने एक-एक लाख श्लोक लिखे। किन्तु इतने बड़े ग्रन्थ को सुनने के लिए मुझे अवकाश कहां है। राज्य की जिम्मेदारी संभालनी पड़ती है। इसलिए आप इन ग्रन्थों को संक्षिप्त कर दीजिए। फिर कुछ समय निकाल कर सुनने का प्रयास करूंगा।" पण्डितों ने कहा—"राजन्! आपने जो कहा, वह बिल्कुल सत्य है क्योंकि आपके कन्धों पर राज्य का बहुत बड़ा भार है। अतः हर ग्रन्थ का समावेश पच्चीस-पच्चीस हजार श्लोकों में कर दिया जायेगा।"

राजा ने कहा—"यह भी बहुत है।" पण्डितों ने कहा—"अच्छा, हजार-हजार श्लोको में कर दें तो?" राजा बोला—"इतना सुनने के लिए भी समय नहीं है।" आखिर पंडित हजार से पांच सौ पर आए, सौ पर आये, दस पर आए, आखिर एक-एक श्लोक पर आ गये।

राजा ने कहा—"यदि इसका और भी संक्षेप हो सकता है तो कीजिए।" तब चारों पंडित एक-एक चरण सुनाने को तैयार हो गए। राजा बोला—"एक-एक चरण तो सुनने का समय है, अवश्य ही सुनाइये।"

सबसे पहले आयुर्वेद के पंडित ने कहा—'जीर्णे भोजनमात्रेयः' हमारे शास्त्र में आत्रेय ऋषि का मत बड़ा प्रमाणभूत माना जाता है। वे कहते हैं कि पहले का भोजन पच जाने के बाद ही भोजन करना चाहिए।"

धर्मशास्त्र के पंडित ने कहा—'कपिलः प्राणिना दया' हमारे शास्त्रो मे कपिल ऋषि को सबसे बड़ा माना गया है वे कहते हैं कि दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। नीतिशास्त्र के पंडित ने कहा—'बृहस्पतिरविश्वासः अनेकों' महापुरुषों ने

नीति के विषय में लिखा है उन सब में बृहस्पतिजी का स्थान भी अपने आप में अद्वितीय है। वे कहते हैं कि जीवन में सफल होना हो तो किसी पर अन्ध-विश्वास नहीं रखना चाहिए। कामशास्त्र के पंडित ने कहा—'पांचाल: स्त्रीषु मार्दवम्' कामशास्त्र के प्रकांड विद्वान पांचाल ऋषि का अभिप्राय है कि प्रीति की सच्ची रीति स्त्रियों के साथ मृदुता से बर्ताव करना है।

ग्रन्थों का संक्षेपीकरण सुनकर राजा बहुत ही चकित हुआ और बोला—"महानुभावो! आपने एक-एक विषय पर लाख-लाख श्लोक रचे। विषय का विस्तार करने में आप बड़े विदग्ध हैं। यह बात तो पहले ही मेरी समझ में आ गई थी लेकिन देखना यह था कि आप विषय का संक्षेप कितना कर सकते हैं। संक्षेप करने में भी आप बड़े दक्ष हैं। आपकी प्रखर बुद्धि के सामने मेरा मस्तक अवनत है। मैं आपकी बुद्धि-कुशलता से बहुत ही प्रभावित हूं। ये लीजिए मैं आप चारों को एक-एक लाख मोहरें इनाम देता हूं।" इस तरह वे पंडित बहुत ही सम्मानित हुए और अपने घर गये।

हजारों श्लोकों का सार थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है। संक्षेप में कही हुई बात का दूसरों पर बहुत जल्दी असर होता है। अतः हर एक को ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए कि शब्द थोड़े हों और भाव अधिक हो।

स्वल्प सारयुत वचन का, होता असर महान्।
चन्दन का लघु खण्ड भी, करे ताप अवसान॥

साख से लाख

एक सेठ था। उसके रेशमी कपड़े का व्यापार चलता था। कारोबार में अप्रामाणिकता एवं अनीति से वह सतत दूर रहता था। शहर में सेठ का अच्छा विश्वास था, अच्छी प्रतिष्ठा थी। क्योंकि सेठ का स्वभाव मिलनसार था। हृदय सरल एवं निश्छल था। किसी के भी साथ बुरा व्यवहार नहीं करता था। एक दिन नृप को कुछ रेशमी कपड़े की आवश्यकता होने से उस सेठ को बुलाकर नृप ने अचानक पूछा—"क्या तुम्हारी दूकान में रेशमी कपड़ा है?" सेठ हक्का-बक्का सा हो गया। कुछ सुध-बुध रही नहीं, सहसा मुंह से निकल गया 'कपड़ा नहीं है।' इतना कह सेठ अपनी दुकान में आ गया।

पीछे से कुछ चुगलखोर राजा के पास पहुंचे और बोले—"नाथ! सेठ बिल्कुल झूठ बोलता है। हम अभी-अभी देखकर आये हैं। उसकी दुकान में रेशमी

कपड़े का ढेर लगा हुआ है।" राजा बोला—"सेठ बड़ा सत्यवादी है, नीतिज्ञ है। उसका मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह कभी भी असत्य नहीं बोलता है।" चुगलखोर बोले—"आप हमारे साथ सेठ की दूकान पर पधारें, स्वतः ही पता लग जायेगा कि हम झूठे हैं या सेठ।"

राजा बोला—"अच्छा कल सुबह चलेंगे।"

इधर सेठ के हृदय में दुःख का पार नहीं था। चेहरे पर उदासी छा गई। शीघ्र अपने पुत्र को बुलाकर उसने कहा—"बेटा! आज तो गजब हो गया। मुझे कुछ सुध-बुध तो थी नहीं। मैंने नृप को गलती से कह दिया कि दूकान में कपड़ा नहीं है। पुत्र! अब इस वचन को निभाने के लिए सारा माल जला दो।"

पुत्र—"पिताजी! दुकान में लाख रुपये का माल है। कैसे जलाया जाये? कह दिया है तो क्या?"

पिताजी—"पुत्र! लाख की चिन्ता नहीं है, वचन की चिन्ता है। क्योंकि—

लाख गयां साख रह्यां, फिर भी लाखज होय।
साख गयां लाखज रह्यां, बात न पूछै कोय॥

लाख चले जाने पर भी यदि साख (विश्वास, इज्जत) रह जायेगी तो लाख फिर हो जाएंगे, किन्तु साख गई और लाख रहे, तो कोई भी बात नहीं पूछेगा।" आखिर पिताजी के आदेशानुसार पुत्र ने सारा माल जला दिया।

राजा सेठ की दुकान में आया, घर और गोदाम को भी सम्भाला, किन्तु कपड़े का एक भी तार नहीं मिलने से राजा सेठ की सच्चाई पर बड़ा खुश हुआ। राज-भवन में आकर राजा ने क्रुद्ध होकर आदेश दिया—"उन चुगलखोरों की जीभ निकाल ली जाय। मेरे सामने भी उन्हें चुगली खाते शर्म नहीं आई।" सेठ को इस आदेश का पता लगते ही दौड़ा-दौड़ा वह राजा के पास आया और हाथ जोड़कर बोला—"वे झूठे नहीं, सच्चे हैं। कल तक माल अवश्य था, किन्तु कल मैंने गलती से आपको कह दिया था कि कपड़ा नहीं है। इस वचन को निभाने के लिए रात्रि में सारा कपड़ा जला दिया गया, अतः उनको दण्ड न दिया जाय।" राजा ने पूछा—"माल कितना था?"

सेठ बोला—"एक लाख का।" राजा ने सेठ की नेक नीति पर प्रसन्न होकर उसी समय सेठ को एक लाख रुपये दिलवा दिये। सेठ ने घर आकर पुत्र से कहा—"बेटा! 'साख से लाख' वापस हो गये।"

धन की परवाह न करके इन्सान को कदम कदम पर इज्जत का ध्यान रखना चाहिए। धन को हाथ का मैल समझते हुए जो इज्जत एवं अपने वचन की सुरक्षा करता है वही मानव महान होता है।

वचन निभाने मनुज जो, सहन करे नुकसान।
अवसर पर उस सेठ सम, होता लाभ महान॥

अन्न और मन

एक महात्मा थे। जंगल में वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना निवास स्थान बना रखा था। ज्ञान-ध्यान आदि सद्क्रियाओं से अपने समग्र समय को सफल बना रहे थे। एक दिन की बात है नगरी का सम्राट शिकार की खोज में उसी जंगल में आ पहुंचा। महात्माजी यौगिक क्रियाओं में संलग्न थे।

राजा ने साष्टांग नमस्कार करते हुए पूछा—"महात्मन्! आप इस भीषण अटवी में निवास क्यों कर रहे हैं?"

महात्मा—"राजन्! जितनी आनन्दानुभूति मुझे इस निर्जन वन में हो रही है, उतनी अन्यत्र नहीं।"

राजा—"योगिराज! ऐसी क्या बात है? आप मेरे महलों में पधारिए। वहां आपको सभी सुख-सुविधाएं उपलब्ध होंगी। आपकी अच्छी से अच्छी परिचर्या होगी। हम आपके भक्त हैं। कृपा कर अवश्य ही आप हमारी कुटिया को पावन करें।"

राजा की भक्ति एवं अत्याग्रह को देखकर महात्मा जी उसी समय राजा के साथ राजमहलों में आ गये। खान-पान आदि समस्त क्रियाएं वहीं होने लगीं। महात्माजी को वहां रहते-रहते तीन महीने हो गये। राजा भी अपना अधिक समय महात्मा जी की सेवा में व्यतीत करने लगा।

एक दिन महारानी गुसलखाने में अपना हार भूल गई। पीछे से वे महात्माजी वहां स्नान करने के लिए जा पहुंचे। उस हार पर दृष्टि पड़ते ही योगी का मन बदल गया। बुद्धि बिगड़ गई। उस हार को लेकर वे भाग गये। इधर हार नहीं मिलने से राजा-रानी चिन्तित हो गये। हार का पता लगाने के लिए काफी प्रयत्न किया लेकिन हार नहीं मिलने से रानी के हृदय मे निराशा छा गई।

लुकते-छिपते महात्माजी उसी परिचित जंगल में जा पहुंचे और क्षुधा से पीड़ित इधर-उधर घूमने लगे। पर जंगल में खाने के लिए फलों के अतिरिक्त और क्या मिल सकता था। योगी ने डटकर फल खा लिए, कुछ ही समय बाद योगी को दस्त आने लगे। पेट बिल्कुल साफ हो गया। मन ही मन सोचने लगे, आत्मानुभूति होने लगी—'अरे योगी! क्या तू योगी है? नहीं, तू योगी नहीं है। तू पक्का चोर है। तूने राजा का हार चुराया है। तुझे धिक्कार है।' विचारों में परिवर्तन आते ही योगी दौड़े-दौड़े राजमहल में आये। रात्रि का समय था। सारी दुनिया सो रही थी। नरेश भी निद्राधीन थे। योगी ने राजा को जगाकर कहा—'राजा जी! यह लीजिए आपका हार।"

राजा चौंककर उठा और योगी के चरणों में प्रणमन करता हुआ बोला—

"महात्मन् ! हार वापस देना ही था तो ले ही क्यों गये ?"

योगी ने कहा—नराधीश ! क्या कहूं ? तीन महीने तक आपके यहां का अन्न खाने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई । मन में विकृति आ गई । इसी कारण मैं आपका हार चुराकर ले गया पर ज्योंही जंगल में गया, पेट साफ हुआ, तब मुझे ज्ञान हुआ । विचारों में सहसा परिवर्तन आया, अपने आपको धिक्कारने लगा और पुनः इस घृणित कार्य को घृणा की दृष्टि से देखने लगा । मेरे मस्तिष्क में चिन्तन चला कि विचारों में परिवर्तन एकदम कैसे हुआ । आखिर मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि राजभवन में जाना ही मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं था और न वहां का अन्न खाना ही । जब तक मेरे पेट में आपके अन्न का अंश था तब तक मेरे विचार मलिन थे । ज्योंही उस अन्न से मेरा पेट स्वच्छ बना, त्योंही विचारों में स्वच्छता का संचार होने लगा, अतः राजन् ! यह तो मैं दृढ़ता से कह सकता हूं कि विचारों पर भोजन का अचूक प्रभाव पड़ता है । संसार में यह लोकोक्ति भी सुप्रसिद्ध है कि 'जैसा खाए अन्न, वैसा होवे होवे मन ।'

असर पड़ेगा अन्न का, मानस पर हर बार ।
योगी के मस्तिष्क में, उद्भव हुआ विकार ।।

अभय-दान

वीरसेन नाम का एक क्षत्रिय था । उस पर एक अन्य क्षत्रिय ने चढ़ाई की । परस्पर युद्ध हुआ । वीरसेन कुछ कमजोर होने के कारण यमराज का अतिथि बन गया । उस समय वीरसेन की पत्नी गर्भवती थी । कुछ समय पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ । माता ने अपने पुत्र को वीरोचित शिक्षा देकर वीर क्षत्रिय बना दिया । क्षत्रिय पुत्र की वीरता का सर्वत्र सम्मान होने लगा और वह राजा का कृपा-पात्र बना ।

शत्रुओं को परास्त करने में वह क्षत्रिय-पुत्र सबसे आगे रहता था । हर संग्राम में विजयध्वज लहराकर आता था । उसका शारीरिक व आत्मिक शौर्य देखकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ । उचित पुरस्कार के द्वारा उसका सम्मान किया गया । नगर के लोग भी उसको आदर की दृष्टि से देखने लगे, किन्तु उसकी मां उसके कार्य से खुश नहीं थी ।

माता को रुष्ट एवं खिन्न देखकर क्षत्रिय-पुत्र ने कहा "अम्मा ! सभी व्यक्ति मेरी वीरता पर प्रसन्न हैं, लेकिन तुम उदास क्यों हो ? क्या मुझसे कोई गलती हो गई है ? कृपया बताओ मैं भविष्य में उसका ध्यान रखूंगा ।"

माता ने करुण स्वर में कहा—"वत्स ! तुमने अन्य शत्रुओं को जीतकर विजय प्राप्त की। क्या है इस विजय में ? अभी तक तुम्हारे पिता को मारने वाला शत्रु जीवित है। क्या उसे जीतने का प्रयत्न किया ?"

क्षत्रिय-पुत्र चकित होकर बोला—"माताजी ! मेरे पिता का वध करने वाला अभी तक जीवित है ? आप मुझे आशीर्वाद दीजिए। मैं शत्रु को पराजित करने के लिए जाता हूं। पिता के वैर का बदला लिए बिना नहीं लौटूंगा।" वह चल पड़ा।

उस दुश्मन को यह पता लगा कि वीरसेन का पुत्र मुझ पर चढ़ाई करने आ रहा है। वह बहुत वीर है, उसको मैं कभी भी परास्त नहीं कर सकूंगा। उसकी शरण ही श्रेयस्कर होगी। क्षत्रिय पुत्र जब उसकी खोज करता हुआ वहां पहुंचा तो वह क्षत्रिय पुत्र के चरणों में गिर गया और उसके अधीन हो गया। वह क्षत्रिय-पुत्र पितृ-घातक शत्रु को लेकर माता के पास आया। उस समय वह (दुश्मन) मुंह में तृण डालकर बोला—"मैं आपकी गाय हूं, आप मेरी रक्षा करें।"

माता ने कहा—"वत्स ! तुमने अपने कर्तव्य का पालन कर लिया, किन्तु अब इसको शत्रु मत समझो। भाई समझो और इसे अभयदान दो। क्रोध को शान्त करने वाला ही सच्चा वीर कहलाता है।" माता का आदेश पाकर पुत्र ने अपने शत्रु को मित्र समझा।

शत्रु को मित्र समझने वाला ही महामानव कहलाता है। क्षत्रिय-पुत्र की भांति क्रोध को जीतकर इस विश्व में वास्तविक वीर बनना चाहिए।

प्राण प्रणाशक शत्रु को, (जो) समझे मित्र समान।
'मुनि कन्हैया' विश्व में, मानव वही महान्॥

शिष्यों की परीक्षा

गुरुजी व्याख्यान दे रहे थे। सैकड़ों मनुष्य गुरुजी के वचनामृत का पान कर रहे थे। ओजस्वी एवं प्रभावशाली व्याख्यान होने के कारण सभी का मन मन्त्र-मुग्ध सा बन रहा था। गुरु ने अपने दोनों शिष्यों में से विनीत अविनीत कौन है, इसका परीक्षण करने के लिए व्याख्यान के बीच बड़े शिष्यों को आवाज दी—"इधर आओ।"

शिष्य अपने आसन पर बैठा-बैठा जोर से कड़ककर बोला—'क्या काम है ? आ रहा हूं, जरा ठहर जाइए।"

कुछ समय के पश्चात शिष्य आया और आँखों को लाल करके बिजली की तरह कड़ककर अभिमानपूर्वक बोला—"कहिए, क्या काम है? किसलिए मुझे आवाज दी?"

गुरु ने वत्सलतापूर्वक मधुर स्वर में कहा—"शिष्य! जाओ कैरी (आम) ले आओ।" यह सुनते ही शिष्य की आँखों से शूल की धारा बह चली और गुरु को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ बोला—"गुरुजी! क्या कैरी कल्पती है? ऐसे कैसे अनर्गल शब्द का प्रयोग कर रहे हैं? आप शास्त्रज्ञ हैं, किन्तु मुझे लगता है कि वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि में विकार आ गया है। अन्यथा ऐसे अकल्पनीय शब्द का व्यवहार नहीं करते।" शिष्य की बात सुनते ही श्रावक-समाज की भी श्रद्धा डोल गई और सबके मस्तिष्क में तरह-तरह की कल्पनाएं घूमने लगीं—अरे! यह क्या? गुरुजी में तो पोल है। बेचारा यह शिष्य गुरु को सच्ची-सच्ची सुनाने वाला है कि कैरी कल्पती नहीं है हाय! साधुत्व का दृष्टि से इनको वन्दना कैसे करें? व्याख्यान के बीच में ही गुरुजी को छोड़-छोड़कर प्रायः सभी लोग जाने की तैयारी करने लगे। इतने में ही गुरु ने छोटे शिष्य को आह्वान करते हुए कहा—"शिष्य! इधर आओ।" चेला शीघ्र उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर बड़े नम्र भाव से बोला—"गुरुदेव! आपके चरणों का सेवक आपकी सेवा में उपस्थित है, फरमाइए क्या काम है?"

गुरु—"कैरी लाओ।"

शिष्य (हाथ जोड़कर) "धन्य हैं आपके वचन, अभी जाता हूं।" श्रावक श्रद्धा से गिरे हुए तो थे ही फिर इसकी बात सुनकर मन-ही-मन सोचने लगे—हाय! ऐसा ही यह गुरु है और ऐसा ही यह हां में हां मिलाने वाला शिष्य, कैसा दोनों का योग मिला है। यदि कैरी ले आएगा तो गजब हो जाएगा। बेचारा वह बड़ा शिष्य स्पष्टवादी था, गुरु को भी उसने साफ-साफ सुना दी क्योंकि कैरी कल्पती नहीं है। सभी के दिलों में बड़ी हलचल उत्पन्न हो गई।

वह शिष्य अन्दर गया। पछेवड़ी ओढ़कर, झोली-पात्र ले गुरुजी के पास आया और भक्ति भरे शब्दों में बोला—"गुरुवर! गोचरी की आज्ञा है?" सभा में सन्नाटा छा गया। सभी के दांतों में अंगुलियां आ गईं। सब गुरु की ओर देखने लगे। इतने में उस शिष्य ने पूछा—"गुरुदेव! कैरी मुरब्बे की लाऊं या अचाणे की?" गुरु ने कहा—"शिष्य! बस आ गई कैरी, बैठ जाओ। मुझे आज तुम दोनों की परीक्षा करनी थी कि विनीत कौन है? अविनीत कौन है? परीक्षा हो गई। अब कैरी की अपेक्षा नहीं है।"

सारा श्रावक-समाज दंग रह गया—अरे! यह तो और ही बात निकली। हम सब झूठी कल्पना कर रहे थे। गुरु तो वास्तव में गुरु ही हैं। सभी श्रावक गुरु

के चरणों में झुक गये और सन्देह दूर कर श्रद्धावान बन गये।

जो गुरु के वचनों के प्रति श्रद्धा रखते हैं; गुरु के आदेश का जो सम्यक् रूप से पालन करते हैं, वे शिष्य विनयी कहलाते हैं और आगे आकर वे ही अपने जीवन का विकास कर सकते हैं। अतः हरेक के जीवन में विनय अत्यावश्यक है।

गुरु आज्ञा पर शिष्य जो, रखता ध्यान विशेष।
'मुनि कन्हैया' है वही, विनयी शिष्य हमेश ॥

विकास का द्वार बन्द

एक गांव में एक चित्रकार रहता था। चित्र बनाने में वह बड़ा निपुण एवं सिद्धहस्त था। दूर-दूर तक उसकी हस्तकला प्रसिद्ध थी। चित्र भी बड़े आकर्षक व मोहक बनाता था। चित्रों को देख-देखकर बड़े-बड़े आदमी मोहित हो जाते थे।

एक दिन चित्रकार ने अपने प्रिय पुत्र महेश से कहा—"पुत्र! तुझे चित्रकला में दक्ष होना है। इसके लिए प्रयास अपेक्षित है। उद्यम करने से हर एक क्रिया में सफलता मिलती है।"

महेश - (हाथ जोड़कर) "पिताजी! आपका आशीर्वाद चाहिए, सब अच्छा होगा। मैं आलस्य एवं निद्रा को दूर कर चित्रकला में प्रवीण होने के लिए प्रयास करूंगा।"

पिता ने पुत्र को चित्रकला सिखानी शुरू की। अति श्रम से कुछ ही दिनों में महेश चित्रकला में पटु हो गया। एक दिन पिता ने कहा—"पुत्र! अब तू स्वयं चित्र बनाया कर और शाम को मुझे दिखा दिया कर जिससे बहुत अच्छा लाभ होगा।" महेश ने अपने दिमाग से चित्र बनाना शुरू कर दिया। सुन्दर चित्र बनाकर प्रतिदिन पिताजी को दिखाता तो पिताजी उसमें कुछ न कुछ कसर अवश्य ही निकाल देते। कई दिनों तक ऐसा ही क्रम चलता रहा। महेश ने सोचा—पिताजी तो निरन्तर कमी निकालते हैं, कभी भी चित्र को सुन्दर नहीं बताते। आज काफी श्रम करके आकर्षक चित्र बनाऊंगा और पिताजी से शाबाशी लूंगा। महेश ने अति परिश्रम से एक सुन्दर एवं सुकुमार बालक का अत्युत्तम चित्र बनाया। तरह-तरह के रंगों से उस चित्र की आभा द्विगुणित हो रही थी। कपड़ों एवं आभूषणों से उसमें निखार पैदा हो रहा था। देखने वालों के लिए बड़ा आकर्षक एवं मोहक था। दूर से तो वह ऐसा लगता था मानों कोई सजीव बालक भगवान की प्रार्थना कर रहा हो। महेश फूला-फूला पिताजी के पास गया और उस चित्र को सामने रखा।

पिता ने नाक सिकोड़ते हुए कहा—"पुत्र ! और तो सब ठीक है, किन्तु इसकी दोनों आंखें बराबर नहीं हैं एक में थोड़ा-सा टेढ़ापन है। अब इससे और अच्छा बनाना, जिसमें बिलकुल भी कमी न रहे।"

दो चार दिन बाद महेश ने फिर एक सुन्दर चित्र बनाकर अपने मित्र रमेश को देकर कहा—"इस चित्र को आज तू मेरे पिताजी को दिखाना। देखें, पिताजी क्या कहते हैं?" रमेश चित्र लेकर महेश के पिताजी के पास पहुंचा। चित्र देखते ही महेश का पिता अवाक् रह गया और बोला—"क्या इस दुनिया में ऐसा सुन्दर चित्र बनाने वाला अभी कोई है? ऐसा मोहक चित्र मैंने कभी भी नहीं देखा।" महेश पीछे खड़ा ही था। पिता के मुंह से प्रशंसा सुनते ही वह जोर से अहंकार-पूर्वक बोला—"इस चित्र को बनाने वाला मैं हूं। आपका पुत्र महेश।"

चित्र को फेंकते हुए पिता ने कहा—"पुत्र ! आज से तेरा विकास-द्वार बन्द हो गया है, रुक गया है। अब तू आगे बढ़ नहीं सकता क्योंकि तेरे मन में अहंकाररूपी चोर घुस गया है और तू अपने आपको पूर्ण समझने लग गया है।"

किसी भी व्यक्ति को अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि अहंकार से उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

अभिमानी के ज्ञान का, होता रुद्ध विकास।
चित्रकार के पुत्र का, सुनो सभी इतिहास।।

सबसे मीठा क्या ?

एक दिन बादशाह अकबर ने समस्त सभासदों से प्रश्न किया—"संसार में सबसे मीठा क्या है?" सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। किसी ने सबसे मीठी बरफी, किसी ने मालपुए, आदि-आदि बताए। अन्त में जब बीरबल की बारी आई तब उसने कहा—"जहांपनाह ! न तो कोई पकवान मीठे हैं और न कोई खीर, मालपुए। संसार में सबसे मीठा है—"वचन।"

बादशाह ने कहा—"बीरबल ! तुम्हारी बुद्धि तीन लोक से न्यारी है। पकवानों से तो पेट भर सकता है, क्षुधा भी शान्त हो सकती है। जीभ को भी स्वाद मिलता है, किन्तु वचन से क्या भूख शान्त होती है? वचन का क्या मीठा?"

बीरबल ने कहा—"अभी तो आप मेरा मखौल उड़ा रहे हैं, किन्तु समय आने पर मैं सिद्ध करके बताऊंगा कि वचन मीठा है।" सभा विसर्जित हुई। आगन्तुक

अपने-अपने घर गये। कुछ ही दिनों बाद दीपमालिका का त्यौहार आया। बीरबल ने बादशाह से कहा—आज हमारे हिन्दुओं का बहुत बड़ा पर्व है, अतः आपकी बेगम (महारानी) को मेरे घर भोजन के लिए भेजिए। बादशाह बीरबल की बात को कैसे टाल सकता था ? बेगम उसके घर गई। बीरबल ने उसका अभूतपूर्व स्वागत किया। गद्दी पाट बिछाये हुए थे। तरह तरह की सब्जियों और मिठाइयों की खुशबू से सारा घर सुगन्धित हो रहा था। भोजन आरंभ हुआ। भोजन करते-करते बेगम के मन में विचार आया कि पकवान तो मैंने राजमहल में बहुत खाए लेकिन आज जैसे मधुर व मनोज्ञ मिष्टान्न कभी नही खाए। बादशाह को यह सब बात सुनाकर बीरबल को अवश्य ही कुछ न कुछ पट्टा, परगना बक्शीश करवाऊंगी। दिल में बहुत खुशी थी। बीरबल के प्रति अच्छे विचार थे। भोजन समाप्त हुआ। पान, सुपारी, इलायची आदि की भी मनुहारें हुई।

ज्योंही बेगम वहां से उठी, दो चार कदम आगे रखे त्योंही बीरबल ने जोर से अपने नौकर से कहा—"अभी यहां 'तुरकणी' ने भोजन किया, उस जगह को पानी से साफ कर देना।" यह 'तुरकणी' शब्द सुनते ही बेगम का खाया पीया जहर हो गया। हृदय मे क्रोधाग्नि भड़क उठी। आंखों से खून बरसने लगा। चुपचाप राजमहल मे आ गई और कोपभवन मे जाकर सो गई। बादशाह महलो मे पहुंचा, बेगम का विकराल रूप देखकर बोला—"क्या बीरबल ने तुम्हारा स्वागत ठीक नही किया ? ऐसे कपडो को फाडकर कैसे सो रही हो ?"

बेगम बोली—"धिक्कार है उसके स्वागत मे। जिसको बोलने की भी लियाकत नही है। मुझे तुरकणी कहकर पुकारा बस, या तो मैं जीवित रहूंगी या वह बीरबल जीवित रहेगा।"

बादशाह भी क्रुद्ध हो नीचे आया और बीरबल को बुलाकर कहा—"अरे ! तुमने मेरी बेगम को नाराज कैसे कर दिया ?"

बीरबल—"मैंने तो अनेकों मधुर-मधुर पकवान खिलाए, तन-मन और धन से उनका स्वागत किया।"

बादशाह—"धूल है तेरे स्वागत मे। क्या उनको 'तुरकणी' शब्द कहकर पुकारा तुमने ?'

बीरबल—"हां, किन्तु भोजन तो मीठा था। वचन ऐसा कह दिया तो क्या हुआ ?" वचन से कोई पेट थोड़ा ही भरता है ?"

बादशाह—"उस वचन से उनका खाया-पीया जहर हो गया। क्यों कहा ऐसा वचन ?"

बीरबल—"मैंने आपको समझाने के लिए कहा। उस दिन आपने सभा में कहा था कि वचन क्या मीठा होता है ? अब बताइए वचन सबसे मीठा है या नही ?"

यह सुनते ही बादशाह की आंखें खुलीं। गुस्सा शान्त हुआ। शीघ्र अपनी गलती को स्वीकार करते हुए बीरबल की पुनः पुनः प्रशंसा करने लगा। यह मानना पड़ा कि वचन सबसे मीठा होता है।

जीभ में ही जहर है और जीभ में ही अमृत है। अमृतमय मधुर वचन सबको मनोज्ञ लगते हैं। मधुर वचन से सारा संसार वश में हो जाता है और मधुरभाषी का सर्वत्र सम्मान होता है अतः किसी को भी कटु शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बोला मंत्री बीरबल, सबसे मिष्ट जबान।
बादशाह को हो गया, आखिर इसका ज्ञान॥

सवाईराम की निपुणता

एक सवाईराम नाम का एक व्यक्ति था। वह एक दिन सपरिवार यात्रा पर जाने के लिए तैयार हुआ, किन्तु शहर में चोरियां अधिक होने के कारण मुख्य-मुख्य बहुमूल्य वस्तुएं तो उसने साथ ले ली। पीतल के बर्तन आदि पड़ोसी के घर में रख दिए और यात्रा के लिए रवाना हो गया। पीछे से पड़ोसी का मन बिगड़ गया। नीयत में फर्क आ गया और सोचा—ज्यों-त्यों करके कोई कला निकाल कर बर्तनों को घर में ही रख लूं। वापस नहीं दूं, तो मेरी विशेषता है।

सवाईराम अपनी यात्रा समाप्त होते ही अपने घर आया। एक-दो दिन बाद पड़ोसी के घर पहुंच गया और बोला—"भाई! मैंने जो तेरे यहां बर्तन रखे थे वे वापस दो।" पड़ोसी बोला—"भाई! क्या कहूं बड़े दुःख की बात है। कहते हुए शर्म आती है। बर्तनों का तो नुकसान हो गया।" सवाईराम—"विचार करने की क्या बात है? हो गया सो हो गया। गई हुई कोई वस्तु तो आती नहीं, पर यह तो बताओ, बर्तन चोरी हो गये या कोई और ही किस्सा बना।"

पड़ोसी—भाई! मैंने काफी सुरक्षापूर्वक रखा था फिर भी उन बर्तन में ऐसा घुन लगा कि थोड़े ही दिनों में सबको सफाचट कर गये।

सवाईराम बड़ा नीतिज्ञ एवं समझदार था। पड़ोसी के दिल को समझ गया और अपने आपमें यह निर्णय कर लिया कि घुन बर्तनों के नहीं लगा है, घुन लगा है—पड़ोसी के दिल में। अब तो किसी चालाकी से ही बर्तन आयेंगे। कुछ ही दिनों पश्चात् उसने तीर्थयात्रा के उपलक्ष में एक भोज किया। पड़ोसी के बच्चे भी भोज में सम्मिलित हुए। उसने उन दोनों बच्चों को कहीं बगीचे में ले जाकर कमरे

में छुपा दिया। प्रदोष सम्पन्न होने पर भी बच्चे घर नहीं पहुंचे तो पड़ोसी दौड़कर आया और सवाई से पूछा—भाई साहब ! बच्चे कहां गये ? अभी तक घर नहीं पहुंचे, क्या यहीं खेल रहे हैं ?

सवाईराम अकुलाता हुआ बोला—"भाई ! क्या करूं कलेजा फट रहा है ? मेरे देखते-देखते अचानक एक चील आई और बच्चों को उठा ले गई।" पड़ोसी हाय-हाय करता हुआ राजमहल में पहुंचा और राजा को सारा हाल सुनाया। नृप ने सवाईराम को बुलाकर पूछा—"भाई इसके दोनों बच्चे कहां हैं ? सच सच बताओ।"

सवाईराम बोला—"नाथ ! चील ले गई।"

राजा—"इतने बड़े बच्चों को चील कैसे ले जा सकती है।"

सवाईराम बोला—

जैसे को तैसा मिले, सुनिये राजा भील।
पीतल को घुन खा गये, छोरों को ले गई चील॥

"जैसे बर्तनों को घुन खा जाते हैं, वैसे ही बच्चों को चील ले जाती है।" आखिर रहस्य का उद्घाटन होते ही दोनों को अपनी-अपनी चीज मिल गई।

जो व्यक्ति जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। कोई भी कोयला खायेगा तो उसका मुह अवश्य ही काला होगा। कपटाई चाहे जितनी करो, पर एक दिन तो अवश्य ही उसकी धूर्तता स्पष्ट खुले बिना नहीं रहेगी। निश्छल हृदय ही प्रेम का सच्चा द्वार है।

कपटाई कितनी करो, आखिर होती व्यक्त।
सदा सवाईराम सम, रहो नीति में रक्त॥

बुरे का फल बुरा

एक गरीब ब्राह्मण निरन्तर राजसभा में आता और जोर से बोलता—"धर्मे जय, पापे क्षय।" एक दिन बाजार में राजपुरोहित ने उस ब्राह्मण को कहा—"राजा जी दान दक्षिणा उसी को देते हैं जो मुख पर कपड़ा बांधकर राजसभा में उपस्थित होता है।" उसने वैसा ही किया। इधर राजपुरोहित ने राजा को कहा—राजन् ! यह जो गरीब ब्राह्मण सभा मे प्रतिदिन आता है, इसको आप जानते है ? यह कौन है ?"

राजा—"ऊपरी लक्षणो से तो ब्राह्मण प्रतीत होता है।"

पुरोहित—"राजन् ! वह नाम मात्र का ब्राह्मण है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर शराब पीता है, अतः इसमें द्विजत्व नहीं है।

राजा—"क्या ब्राह्मण होकर शराब पीता है ? इसका कोई सबूत है ?"

पुरोहित—"हां वह सभा में मुख पर कपड़ा बांधकर इसलिए आता है कि आप तक शराब की दुर्गन्ध न पहुंच जाए।"

दूसरे दिन वह गरीब ब्राह्मण मुख पर कपड़ा बांधे हुए सभा में आया। नृप की दृष्टि उस पर पड़ी। नृप को बहुत दुःख हुआ। हाय ! यह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर शराब पीता है। उसी समय राजा ने एक पत्र (रुक्का) लिखकर उसे दिया और कहा—"जाओ ! भण्डारी के पास जो मिलता है, वहां मिल जायेगा।" पत्र लेकर वह चला। साथ-साथ राजपुरोहित चला। बाहर आते ही उसने कहा—"भाई ! आज जो तुझे यह पत्र मिला है, यह मेरा ही तो प्रताप है। लाओ, यह पत्र मुझे दे दो। बदले में ये लो पच्चीस रुपये।" वह बेचारा गरीब था। उसने सोचा—जितना आए उतना ही अच्छा। पच्चीस रुपये ले लिए और वह पत्र उसको दे दिया। पुरोहित पत्र लेकर भंडारी के पास पहुंचा। भण्डारी ने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

> रुपया दीज्यो रोकड़ा, मत दीज्यो लौलाक।
> घर में जाओ बामने, काटी लीज्यो नाक।

भण्डारी ने कहा—"पुरोहित जी ! विराजिए, अभी मैं आपका बिल पेमेण्ट करता हूं।" पुरोहित मन ही मन में बड़ा खुश हो रहा था। अब तो इच्छित मिलेगा। भण्डारी एक हाथ में सौ रुपया और एक हाथ में चाकू लेकर आया और बोला—'यह लीजिए रुपये' पर बदले में नाक दीजिए।" यह सुनते ही पुरोहित घबराया और जोर से बोला—"यह पत्र मेरा नहीं है, एक ब्राह्मण का है।"

भण्डारी बोला—"आप लाए हैं, तो हम आपका ही समझेंगे।"

पुरोहित थर-थर कांप रहा था। भण्डारी ने शीघ्र चाकू से नाक काट दी।

उस गरीब ब्राह्मण को जब यह पता लगा कि पुरोहित का तो नाक कट गया है। वह पढ़ा-लिखा तो था ही, उसने सब जानकारी की और पुरोहित की धूर्तता को प्रकट करने के लिए वह राजसभा में पहुंचा। प्रतिदिन की भांति "धर्मे जय, पापे क्षय" इतना कह वह और बोला—"भले भलो, बुरे बुरो।"

राजा ने आश्चर्य से पूछा—"क्या तू भण्डारी के पास नहीं गया ?" उसने नम्र भाव से आदि से अन्त तक समस्त वृतान्त राजा को सुना दिया। नृप के मुंह से सहसा निकला—"बुरे का फल बुरा।"

एक व्यक्ति दूसरे का बुरा सोचता है तो बुरा स्वयं का होता है। पर का अनिष्ट करके स्वयं के भले की भावना रखना आकाश पुष्प की भांति बेकार है।

अतः भलाई न भी हो तो दूसरों की बुराई करके—पापार्जन कभी भी नहीं करना चाहिए।

बुरा पराया सोचकर, करो न कोई पाप।
करो भलाई हर समय, मिटे संकट संताप॥

भूखा जाट

देश में अकाल के काले-काले बादल उमड़ रहे थे। जीवन निर्वाह करना एक भयंकर समस्या बन गई थी। अनेकों लोग अपना उदर-पोषण करने के लिए इधर-उधर भटक रहे थे। उस समय तीन दिन का भूखा एक जाट फिरता-फिरता एक महात्मा के मठ में पहुंचा। वहां बाबा का दर्शन करने के लिए सैकड़ों ही भक्तगण आते थे। और मुक्त कण्ठ से बाबा की प्रशंसा करते थे। ये सब ठाट-बाट देखकर उस जाट का मन ललचा गया और सोचा, मैं महात्मा जी का चेला बन जाऊं, तो खाने-पीने की मेरी समस्या सहज ही हल हो जायेगी।

महात्मा जी को नस्मकार करते हुए उस जाट ने कहा—"महात्मा जी! मैं आपका चेला बनना चाहता हूं। यदि आपकी इच्छा हो तो मुझे मूंड लीजिए।"

महात्मा जी चेले की प्रतीक्षा मे ही थे, चेले के लिए आंखें फाड़ ही रहे थे। कोई आए, कोई आए, क्योंकि बुढ़ापे में सेवा-चाकरी करने वाला कोई न कोई तो चाहिए ही। शुभ मुहूर्त देखकर महात्मा जी ने उस जाट को मूंड लिया। महात्मा जी की कामना सफल हुई। जाट भी अपने भाग्य की सराहना करने लगा। दोनों ही अपने-अपने मन में बड़े खुश थे। इतने मे भक्त आये और पूछा—"महाराज! यह कौन है?"

महात्मा—"यह नया चेला है, इसकी आज ही दीक्षा हुई है!

भक्त—"इसके लिए किसी चीज की आवश्यकता हो तो फरमाइए!"

महात्मा—"भोजन के लिए घी, खीचड़ा और सोने के लिए खटिया तथा बिछौना चाहिए।"

महात्मा जी के आदेशानुसार भक्तों ने एक थाली भर खीचड़ा, गाय का घी, कुछ सब्जी और बिछौना आदि सामान हाजिर कर दिया।

वह जाट भूखा तो था ही। सारा का सारा खीचड़ा सफाचट कर गया। अधिक मात्रा में खाने से उसको नींद लग गई।

चेले ने कहा—"महाराज! आपकी कृपा से भूख तो शान्त हो गई, किन्तु अब आंखों में नींद आ रही है।"

गुरु ने कहा—"चेला ! कोई बात नहीं है। आराम करो, यह रजाई ओढ़कर सो जाओ।" सोते ही चेले को गहरी नींद आ गई। कई घण्टों के बाद जब आंखें खुली तो चेला सोया हुआ ही विचार करने लगा—अहा ! कैसी मौज बनी, चेला बनने में बड़ा आनन्द है। मैंने सुना है जो भेष लेता है उसे मोक्ष मिलता है। वास्तव में यह बात अक्षरशः सत्य है। उससे रहा नहीं गया। खटिया पर लेटे-लेटे ही गुरु जी से प्रश्न करता हुआ बोला—

खावण मिलग्यो चीपड़ो, ओढ़ण मिलगी सौड़।
चेलो पूछे गुरुजी ने, मोक्ष यही है कि और॥

गुरु ने कहा—"मूर्ख ! ऐसे मत बोल। यहां कहां मोक्ष है। मोक्ष बहुत दूर है। वहां तो अनन्त सुख है। उन सुखों के सामने ये भौतिक सुख तो कुछ भी नहीं है।"

चेले ने कहा—"गुरुजी ! उस मोक्ष को आप अपने पास ही रखें, मुझे तो यही मोक्ष चाहिए।" यों कहते हुए अपने घर का रास्ता पकड़ा।

संयम की साधना वही कर सकता है, जिसके मन में आन्तरिक वैराग्य हो, जिसने अपने मन को मार लिया हो, परन्तु जो पेटार्थी होगा अर्थात् रोटियों के लिये जो संयम लेगा वह कभी भी अपने त्याग-नियमों को नहीं निभा सकता।

संयम पालेगा वही, जिसके मन वैराग।
पेटार्थी, उस जाट सम, नहीं निभाते त्याग॥

पक्को पावणो

कंचनपुर नगर में रामलाल नाम का एक सेठ रहता था। कपड़े की दूकान के साथ-साथ उसके लेन-देन का व्यापार भी चलता था। वसूली के लिए वह सेठ महीने में दस-बीस बार घोड़े पर चढ़कर एक छोटे से गांव में जाया करता था। वहां महाजनों का एक ही घर सेठ किशनलाल का था। इससे वह रामलाल सीधा उसी किशनलाल के घर पहुंचता था। किशनलाल रामलाल को अपना जाति-भाई समझकर उसका काफी आदर-सत्कार करता था। अपने आपको धन्य समझता था कि मेरे घर पर मेरे भाई का आगमन होता है। जितनी बार वह आता, उतनी ही बार उसको तरह-तरह का भोजन खिलाता, घोड़े को भी चने देता।

एक दिन किशनलाल की स्त्री ने पूछा—"पतिदेव ! जब कभी वह सेठ आता है आप उसके लिए विविध मिष्ठान्न बनवाते हैं। उसकी तन-मन-धन से सेवा करते हैं इतना बिना मतलब क्यों ? आखिर क्या कोई मतलब है ?" उसने

कहा—"यह तो परस्पर व्यवहार एवं शिष्टाचार है। मैं कभी शहर आऊंगा, तो वे मुझे भोजन करायेंगे।" स्त्री ने कहा—"कल आप शहर में पधार कर इसकी परीक्षा तो करें। वे शहरवासी हैं।"

वह घोड़े पर चढ़कर अनेकों-अनेकों आशाओं के बांध बांधता हुआ शहर गया। आखिर पूछता-पाछता सेठ की दुकान पर जा पहुंचा। किन्तु रामलाल ने तो उसको आंख उठाकर भी नहीं देखा। उसने सोचा—यह क्या? सेठ तो देखते ही नही हैं। खैर अभी, काम में व्यस्त हैं, फिर आऊंगा। घण्टा दो घण्टा शहर में चक्कर लगाकर वापस दुकान पर आया और जोर से बोला—"सेठां! राम-राम" अब उसको खड़ा होकर बोलना ही पड़ा—"आओ सा! विराजो सा!" घोड़े को एक तरफ बंधवा दिया, किन्तु घास का भी क्या काम था? रामलाल ने मुनीम से कहा—"जाओ, घर पर कह दो, मेहमान आए हैं, रसोई जल्दी तैयार करें।" मुनीमजी शीघ्र घर गये और सेठानी को कह दिया। किन्तु सेठानी कहां भोजन बनाने वाली थी? वह बड़ी चालाक एवं धूर्ता थी। थोड़ी देर बाद सेठ ने घर आकर स्त्री से पूछा—"क्या खाना तैयार हो गया?" वह बक-बक करती हुई बोली—"आपके तो दस आते हैं और पन्द्रह आते हैं। किस-किस के लिए भोजन बनाऊं? आप कोई गांव चले जाइए, मैं अपने पीहर चली जाती हूं। मेहमान भूखा मरता स्वयं अपने घर चला जायेगा।" सेठ को स्त्री का कहना मानना पड़ा।

उधर किशनलाल भी बड़ा चतुर था। वह घर आकर देखता है तो कोई नहीं। घर में एक तरफ छिप गया। शाम के समय सेठ और सेठानी दोनों ही घर आये। सेठानी ने बादाम का हलवा बनाकर—ज्योंही सेठजी की थाली में परोसा त्योंहीं किशनलाल आ धमका और बोला—"सेठ साहब! राम-राम!" अब उसकी भी मनुहार करनी ही पड़ी। पधारो-पधारो! भोजन करो!" अच्छी तरह से पेट भरकर सेठ किशनलाल अपने घर आ गया। स्त्री ने पूछा—"पतिदेव! परीक्षा हो गई।" सेठ बोला—"तूने जो कहा था वह सब सच निकला। शहरवासी बड़े दक्ष होते हैं, किन्तु मैं था "पक्को पावणो" बादाम का हलवा खाकर ही आया हूं। अन्त में दोनों के व्यवहारों में खाई पड़ गई।

जब एक के व्यवहार में रूक्षता आ जाती है तब भला दूसरे के व्यवहार में स्निग्धता का सवाल ही क्या रहता है। पारस्परिक मित्रता तभी टिक सकती है जबकि व्यवहार में सन्तुलन रखा जाए। एक हाथ से ताली नहीं बजती।

सौहार्दता तब निभे, जब हो सम व्यवहार।
एक हाथ से नहीं बजे, ताली कभी विचार॥

तब मानव, अब दानव

यूनान देश में एक विलक्षण चित्रकार रहता था। उसकी हस्त-कला जन-जन के मन को मोहित करने वाली थी। उसका सुयश दिग्-दिगन्त में फैल रहा था। चित्रकार ने एक सुन्दर, स्वस्थ बालक का चित्र बनाया। चित्र में भगवान् की प्रार्थना करते हुए बालक का स्वाभाविक सुन्दर चित्रण किया हुआ था। बालक के मुखमण्डल पर सरलता व सौम्यता झलक रही थी और उसकी मुखाकृति मानव के मानस को आकर्षित करने वाली थी। अतः वह चित्र सजीव सा प्रतीत होता था। संसार की समस्त कला मानो स्वयं मूर्तिमान होकर चित्रकार की कला को परि-वर्धित कर रही हो। वह चित्र जन-जन को मंत्र-मुग्ध कर रहा था। चित्रों की मांग इतनी बढ़ी कि हजारों चित्र स्वल्प समय में ही समाप्त हो गये। मुंहमांगे पैसे मिलने से चित्रकार की दरिद्रता दूर हो गई और उस एक ही चित्र से लक्ष्मी के अधिनायकों में उसकी गणना होने लगी। कुछ ही वर्षों के बाद चित्रकार के मस्तिष्क में नये विचारों की झनझनाहट पैदा हुई। मैंने सुन्दर से सुन्दर मानव का चित्र बनाकर पुरस्कार प्राप्त किया। परन्तु अब मुझे एक भयानक दानव का भी चित्र बनाना चाहिए। अब वह चित्रकार कुरूप मानव की खोज करने लगा। उसकी प्राप्ति के लिए देश-विदेश में भी भ्रमण किया, पर जैसा चाहिए था वैसा मानव नहीं मिला। आखिर अन्वेषण करते-करते वह बन्दीगृह में जा पहुंचा क्योंकि वह दुष्ट मनुष्यों का निवास स्थान होता है। प्रयत्न करने पर एक विचित्र बन्दी उसकी नजर में आया, जिसके शरीर का वर्ण काला था। बाहर आई हुई दन्ता-वली मानो किसी को खाने के लिए उत्सुक हो रही थी। बिखरी हुई केशराशि बीभत्स दृश्य उपस्थित कर रही थी। आंखों की चमक प्रायः लुप्त हो चुकी थी। शरीर पर दुर्बलता का आधिपत्य छाया हुआ था। हाथ और पैर भी बड़े डरावने लग रहे थे। वह चित्रकार ऐसे ही भयानक मानव की खोज में था। अतः उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। उसने पेपर और तूलिका लेकर उस बीभत्स मानव का चित्र बनाना प्रारम्भ किया।

कैदी ने सोचा—क्या यह मेरा चित्र बना रहा है? उसने साश्चर्य पूछा—"मेरा चित्र क्यों बना रहे हो? कहां है मुझमें सुन्दरता? मैं चित्र के योग्य नहीं हूं। आप अपना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं? पेपर और रंग का दुरुपयोग क्यों कर रहे हैं? कुरूप व्यक्ति का चित्र बनाकर आपको मिलेगा क्या? आपका परिश्रम राख में घृताहुति देने के समान कभी भी फलदायी होने वाला नहीं है। फिर भी मेरा चित्र बनाने को लालायित क्यों हो रहे हैं?

चित्रकार—"भाई! इतने दिनों तक मैं तेरी खोज में था। आज बहुत कठिनाई

से तेरे दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। क्योंकि मैंने कई वर्षों पूर्व एक भोले बालक का चित्र बनाया था। उस सजीव चित्र की सुकुमारता ने मानव के मानस को आलोड़ित कर दिया। सर्वत्र मेरी यशोगाथाओं का गान होने लगा। उस बालक के चित्र बेचकर मैं सम्पत्तिशाली बन गया। अब मैं उसके विपरीत दानव का रूप बनाना चाहता हूं। दानव की खोज के लिए मैं जगह-जगह गया परन्तु कहीं मुझे दानव का योग नहीं मिला। अन्ततः यहां आना हुआ। मैं बन्दीगृह में घूमा, लेकिन तुम्हारे जैसा कुरूप आकृति वाला, क्रूर प्रकृति वाला कोई कैदी नहीं मिला, अतः तुम्हारा ही चित्र बनाने का निश्चय किया है।" बन्दी ने कहा—"चित्रकार जी ! क्या आप उस बालक का चित्र दिखा सकते हैं ?" चित्रकार ने सहसा उस बालक के चित्र को उसके समक्ष रखा। चित्र देखते ही उसकी आंखें आंसुओं से डब-डबा आई। वह दुःख के महासागर में डूब गया। चेहरे पर उदासीनता झलकने लगी। चित्रकार ने पूछा—"बन्दी ! चित्र देखकर रुदन क्यों कर रहे हो ? क्या बात है ?"

बन्दी—"चित्रकारजी ! क्या कहूं ? बालक का यह चित्र मेरे ही बचपन का है। कुसंग के प्रभाव से मैं ऐसा बन गया। मैं पहले कैसा था और आज कैसा हूं ? मेरी वह सुन्दरता और सहज-सरलता अब कहां चली गई ? मेरी वह स्वाभाविकता और सुकुमारता कैसे नष्ट हो गई ? दुनिया मुझे सत्कार की दृष्टि से देखा करती थी। मैं प्रशंसा का पात्र था। आप लोगों की आंखों में मैं मानव था और आज आपकी ही आंखों में मैं दानव बन गया हूं। इसलिए मेरा कलेजा फट रहा है, आंखों से गर्म-गर्म पानी निकल रहा है कि ओह ! तब मैं मानव था और अब दानव हूं।"

जिसको जैसा संग मिलता है, वह वैसा ही बन जाता है भले व्यक्ति की संगति से मनुष्य भला बन जाता है तथा बुरे के संग से बुरा, अतः प्रत्येक व्यक्ति को सन्तजनों की सत्संगति करनी चाहिए।

संग मिले जैसा जिसे, चढ़ता वैसा रंग।
मानव भी दानव बना, पाकर दुर्जन संग।।

मन की मन में

एक सेठ था। उसके तीन पुत्र थे। तीनों ही बड़े विनीत थे। लाखों रुपयों का व्यापार चलता था। सेठ ने एक नई फैशन का आलीशान भवन बनवाना शुरू किया। सारा काम सेठ की देख-रेख में होता था। वह कल्पना के मुक्त अन्तरिक्ष

में विहरण करने लगा कि बस, अब तो दीपमालिका तक भवन तैयार हो जाएगा। फिर अच्छा घर और अच्छी पढ़ी-लिखी लड़कियां देखकर पुत्रों का विवाह करूंगा। एक पुत्र को बैरिस्टरी के लिए विलायत भेजूंगा, आदि अनेकों योजनाएं उसके मस्तिष्क में दौड़ती थी। एक दिन दूकान का काम समेटकर घर आया और सेठानी ने थाली में खिचड़ी परोसी। सेठ बोला—"खिचड़ी काफी गर्म है, थोड़ी ठंडी होने दो। इस बीच में भवन देख आऊं कि आज कितना काम हुआ है।" यों कहता हुआ सेठ लम्बी डगें भरता हुआ भवन की ओर चला। कारीगर चारों तरफ काम में लगे हुए थे। मजदूर गारा और ईंटें ढो रहे थे। सेठ को आता हुआ देखकर अपनी वफादारी दिखाने के लिए सभी कारीगर मजदूर अपना-अपना कार्य अधिक तत्परता से करने लगे। सेठ किसी को झिड़कता, किसी को दुत्कारता, किसी को कहता काम तीव्रगति से करो नहीं तो आधे पैसे मिलेंगे। ऐसे सारे भवन का निरीक्षण करता-करता द्वार पर पहुंचा। बढ़ई हाथ में हथौड़ा लिए चौखटों में कीलें ठोंक रहा था।

सेठ ने खातियों को ललकारते हुए कहा—"देखो, दीपमालिका के मंगल अवसर पर प्रवेश का शुभ-मुहूर्त है। समय नजदीक आ रहा है। मन्द गति से काम कैसे चल रहा है? किवाड़ लगाने में यदि इतनी देर करोगे तो मुहूर्त कैसे साधा जाएगा?"

वे (खाती) बोले—"सेठ साहब! आप बेफिक्र रहिए। मुहूर्त कभी भी नहीं टलने देंगे। कार्य तेजी से करेंगे। सुबह शीघ्र आएंगे। और शाम को देरी से जाएंगे।" ऐसे सब कह ही रहे थे, इतने में एक बढ़ई ने सेठ जी को अपनी कर्त्तव्य-परायणता दिखाने के लिए जोर-जोर से काम करना शुरू कर दिया और उसके हाथ का हथौड़ा अधिक तेजी से चलने लगा।

सेठ नीचे आया और अभी-अभी बने सुन्दर आंगन को पुनः पुनः देखकर मन ही मन में प्रफुल्लित हो रहा था। अचानक खाती के हाथ सेहथौड़ा छूट गया। खाती भवन की दूसरी मंजिल पर बैठा-बैठा काम कर रहा था। वह हथौड़ा सीधा सेठ के मस्तक पर इतने वेग से गिरा कि गिरते ही उसका कपाल फट गया। रक्त की धार बह चली। मुख पर झाग आ गये और सेठ सदा के लिए संसार से विदा हो गया। जीवन के समस्त स्वप्नों पर पानी फिर गया और मन की मन में ही रह गई। उसी समय किसी ने कहा—

छूट्यो हथौड़ो हाथ से, आय पड़्यो कपाल।
झरोखा झूलता रह्या, बिच में करग्यो काल॥

मनुष्य अपने जीवन में अनेकों कल्पनाएं संजोता है, किन्तु कल्पनाएं किसी की भी पूरी नहीं हो सकती। अचानक मौत आ जाती है और सब कल्पनाएं, कल्पनाएं

ही रह जाती हैं। अतः शुभकाम में किसी को विलम्ब नहीं करना चाहिए।

स्वप्न अधूरे रह गये, श्रेष्ठी के अनपार।
नहीं कल्पना हो सकी, किसकी भी साकार॥

महात्मा शंखेश्वरदास

धोबी के घर एक गधा रहता था। जब वह रकता तब उसकी आवाज शंख-ध्वनि जैसी होती थी। इसलिए धोबी ने उसका नाम 'शंखेश्वरदास' रख दिया। काफी काम देता था। जिससे धोबी को वह बहुत ही अच्छा एवं प्रिय लगता था। अचानक एक दिन गधा मर गया, इसलिए धोबी को बड़ा दुःख हुआ। चेहरे पर उदासी छा गई। हाय-हाय करने लगा और नाई को बुलाकर कहा—"भाई परम योगीराज महान् आत्मा श्री शंखेश्वरदास का आज स्वर्गवास हो गया। अतः मुझे भद्र बना दो।" नाई ने उस्तरा लेकर धोबी का सिर मूंड दिया। नाई अपने घर आया और सोचने लगा—धोबी भद्र बना है तो मुझे भी महात्मा जी के स्वर्गवास के उपलक्ष में भद्र बनना चाहिए। नाई भद्र बनकर कोतवाल के घर किसी काम के लिए चला गया। कोतवाल ने पूछा—नाई! आज सिर क्यों मुंडाया है? क्या बात है?"

नाई (आश्चर्य से)—"क्या आपको अभी तक पता ही नहीं है?"

कोतवाल—"मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं है। बताओ किसका स्वर्गवास हुआ?"

नाई—"सुप्रसिद्ध महात्मा शंखेश्वर दास का आज देहावसान हो गया, अतः मैं भद्र बना हूं।"

कोतवाल—"क्या शंखेश्वरदास कोई बड़े महात्मा थे?"

नाई—"हां, बड़े त्यागी तपस्वी महात्मा थे।"

कोतवाल—"तब तो अवश्य उनका शोक मनाना चाहिए। भाई! मुझे भी भद्र बना दो।"

कोतवाल सिर मुंडाकर राज दरबार में गया।

राजा ने पूछा—"कोतवाल! भद्र कैसे बना? क्या बात हुई?"

कोतवाल—"राजन्! आप नगर के स्वामी हैं। ऐसी दुःखप्रद, हृदय-विदारक घटनाओं से भी आप अज्ञात रहते हैं। परम तपस्वी महात्मा शंखेश्वरदास का स्वर्गवास हो गया है इसलिए मैंने सिर मुंडाया है।"

राजा ने भी नाई को बुलाकर सिर मुंडा लिया और समस्त शहर में घोषणा करवा दी—"महात्मा शंखेश्वरदास के स्वर्गवास के उपलक्ष में समस्त बाजार, स्कूलें तथा सरकारी कार्यालय बन्द रखें। शाम को सात बजे राजा जी की अध्यक्षता में एक शोक सभा मनाई जायेगी।" राजा की आज्ञा से सारे शहर में शोक मनाया गया। लोगों में भेड़चाल होती ही है। अनेकों अनुकरणप्रिय लोगों ने सिर मुंडा लिया। लेकिन वास्तविक तथ्य की खोज किसी ने भी नहीं की। शाम को नृपति की अध्यक्षता में शोक सभा हुई। हजारों महानुभावों ने भाग लिया। बाहर गया हुआ मन्त्री अचानक उसी सभा में आ पहुंचा। राजा आदि अनेकों को भद्र देखकर मंत्री सहम गया। यह क्या बात है ? राजा आदि अनेकों प्रतिष्ठित व्यक्ति सिर को मुंडाकर कैसे बैठे है ? राजा ने कहा—"मंत्री ! चौंकने की कोई बात नही है। महात्मा शंखेश्वरदास का स्वर्गवास हो गया, इसलिए हम भद्र बने हैं और उनकी शोक सभा मना रहे है।"

मंत्री—"शखेश्वरदास कौन थे ?"

राजा—"कोई महात्मा होगे।"

मंत्री—"उन्होंने कौन से शहर में समाधि ली ?"

राजा—"यह तो हमें पता नहीं। कोतवाल के कथनानुसार हमने यह सब किया है।" मंत्री ने क्रमशः कोतवाल और नाई को बुलाया और उन्हें पूछा—"वह शंखेश्वरदास कौन थे ?" उन्होंने कहा हमें पता नहीं, धोबी जानता है।" धोबी को बुलाकर पूछा गया। धोबी ने हाथ जोड़कर कहा—मन्त्रीवर ! शंखेश्वरदास न कोई योगी थे और न कोई महात्मा। वह था मेरे काम आने वाला प्राणप्रिय 'गधा'। यह सुनते ही सबकी आंखें खुल गई। दांतों में अंगुलियां आ गई। सबके सिर नीचे झुक गये। हाय ! बिना सोचे-विचारे भद्र बन गए। राजा भी पुनः पुनः पश्चात्ताप करने लगे। पर अब क्या था ?

आज का युग भी भेड़चाल की तरह आगे बढ़ रहा है। वास्तविक तथ्य का विचार किये बिना ही हर किसी का अनुसरण करने लग जाते हैं परन्तु जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे काम करते हैं उन्हें आखिर में पश्चात्ताप करना पड़ता है।

बिना विचारे मत करो, कभी तनिक भी कार्य।
नरपति पछताता रहा, मुंडित होकर आर्य॥

वचन-तीर

गांव-गांव में नाटक करता हुआ एक नाटकिया लोभी नृप की नगरी में आ पहुंचा। राजा के बड़ा लोभी होने से उसका तनिक भी सत्कार नही हुआ। मन्त्री

ने कहा—"देना और मरना नृप ने तुल्य कर रखा है। अगर तुम्हारी इच्छा है तो राजमहल के नीचे नाटक भले ही करो। घोषणा मैं करवा दूंगा किन्तु कुछ पैदा होना नहीं होना तुम्हारी किस्मत पर निर्भर है।" नृप से मिलकर मन्त्री ने सारे शहर में नाटक होने की सूचना करवा दी। हजारों लोग नाटक देखने के लिए एकत्रित हो गये। राजा भी सोने के सिंहासन पर आकर बैठ गया। नटी नाचती है। नटेश्वर बजाता है अच्छे-अच्छे खेल दिखाते-दिखाते अधिकतम रात्रि व्यतीत हो गई। उजाला होने लग गया। किसी ने भी पैसा नहीं निकाला क्योंकि राजा के दिये बिना दूसरा पहले कौन दे सकता था? नटी हतोत्साह होकर बोली—"ओ मेरे नायक! नाचते-नाचते रात घड़ी भर रह गई। पिंजर थक गया है अब मेरे से नहीं नाचा जा सकता है।" नट बोला—

> बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
> थोड़ी सी देर के कारण, ताल में भंग न थाय॥

यह जोशपूर्ण गीत सुनते ही नटी की हिम्मत दुगुनी हो गई जोर-जोर से नाचने लगी।

नट के इस अद्वितीय गीत को सुनकर तपस्थ ऋषि, राजकुमार, और राजकुमारी के विचार बदल गये। तीनों हीं बड़े खुश हुए। ऋषि ने अपनी सवा लाख मोहरों की कम्बल उतार कर नाटकिये को दान में दे दी, राजकुमार ने अपने कुण्डल दिये और राजकुमारी ने मोतियों का हार दिया। अच्छी धनराशि एकत्रित हो गई। खेल खत्म हुआ, सब अपने-अपने घर गये। किन्तु राजा के दिल में बड़ी हलचल पैदा हो गई। क्रोध का पार नहीं रहा। शीघ्र ही ऋषि को बुलाकर पूछा—"आपने बिना मतलब यह दान क्यो दिया?"

ऋषि बोले—"ये मेरे उपकारी हैं, मैं बहुत वर्षों से संयम पाल रहा था, किन्तु मन चंचल हो जाने के कारण आज मैं घर जा रहा था। 'बहुत गई थोड़ी रही' नट की इस वाणी से मेरा मन वापस संयम में स्थिर हो गया इसी खुशी में यह दान दिया है।"

नृप ने राजकुमार से यही प्रश्न किया। राजकुमार ने कहा—"पिताजी! राज्य के खातिर मेरा मन मैला हो गया था। आपका खून करने की तैयारी कर रहा था। किन्तु नट का भला हो। यह समय पर आ गया। उसका वचन-तीर 'बहुत गई थोड़ी रही' मेरे दिल मे चुभ गया। मुझे ज्ञान हुआ—पिताजी वृद्ध है, अब थोड़े ही दिनों में राज्य मिलने ही वाला है। फिर यह अन्याय क्यों करू? बस इसी खुशी में कुण्डल दिये।"

नृप बोला—"पुत्र! बहुत अच्छा काम किया।" राजा का क्रोध शान्त हुआ। राजा ने फिर पुत्री से पूछा—"तूने मोती का हार क्यों दिया?"

पुत्री बोली—"मैं विवाह के योग्य हो गई। धर्म के जोश में आपने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। तब मैंने रत्न चुराकर मन्त्री के पुत्र के साथ भागने की योजना बनाई थी। किन्तु नट की इस वाणी 'बहुत गई थोड़ी रही' से मेरे भाव बदल गये। मैंने सोचा, कुल को काला करना उचित नहीं है। पिताजी तो अब थोड़े दिन के हैं। भाई पीछे से विवाह कर देगा। मन निर्मल होने के कारण मैंने मोतियों का हार दे दिया।"

यह सुनकर राजा बड़ा चकित हुआ। उस पर अच्छा असर ही नहीं पड़ा, किन्तु 'बहुत गई थोड़ी रही' इस अद्वितीय वाक्य-तीर ने नृप के हृदय को भी बींध दिया। राजा ने सारा राज्य भार छोड़कर दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया।

वचन में बहुत बड़ी शक्ति होती है। एक वचन ऐसा होता है जिससे गिरते हुए मानव का उत्थान हो जाता है, अतः हर एक को तोल-तोल कर बोलना चाहिए।

चार जनों का वचन से, हुआ शीघ्र उत्थान।
वचन-शक्ति का विषय में, यह प्रत्यक्ष प्रमाण॥

दूध का दूध और पानी का पानी

एक छोटे गांव में एक गूजरी रहती थी। उसके दो भैंस थीं। वह प्रतिदिन शहर में दूध बेचने के लिए जाती थी। एक दिन उसने सोचा—मार्ग में तालाब तो पड़ता ही है यदि मैं पांच सेर दूध में पांच सेर पानी मिला दूं, तो मुझे दस सेर के पैसे मिलते रहेंगे। और मेरी चालाकी को कोई पकड़ भी नहीं सकेगा। क्योंकि दूध और पानी एक मेक हो जायेंगे। उसने वैसा ही किया।

शहर के लोगों को गूजरी के प्रति विश्वास था कि यह बिल्कुल शुद्ध दूध लाती है, तनिक भी मिलावट नहीं करती है। इससे किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। गूजरी का काम चलता रहा उसको अपनी निपुणता पर अपूर्व गर्व था कि संसार में मेरी जैसी होशियार महिला कोई नहीं है। मैं बड़े-बड़े आदमियों की आंखों में धूल झोंकने वाली हूं।

चाहे कोई कितनी ही चतुराई करे, किन्तु एक दिन उसका भण्डाफोड़ हुए बिना नहीं रहता। पाप का घड़ा अवश्य फूटता है। 'सौ सुनार की एक लुहार की' भी चरितार्थ होकर रहती है। महीना समाप्त होते ही गूजरी ने दूध का सारा

हिसाब किया। जितने भी रुपये इकट्ठे हुए उन सबको कपड़ में बांध टोकरी में रख अपने गांव की ओर प्रस्थान किया। दुगुनी कमाई को देख गूजरी मन ही मन में फूल रही थी और भविष्य में भी ऐसा क्रम चालू रखने की सोच रही थी। मार्ग में वही तालाब आया। टोकरी को एक वृक्ष के नीचे रख गूजरी पानी पीने के लिए तालाब में गई।

अचानक एक बन्दर आया। उसने रुपयों की थैली को खाद्य वस्तु समझ कर उठा लिया और वृक्ष के ऊपर जाकर बैठ गया। गूजरी वापस आई। रुपयों की थैली न दिखने के कारण अवाक् रह गई। चेहरे पर उदासी छा गई। इधर-उधर अन्वेषण करने पर उसकी नजर बंदर पर जा पड़ी। करुण आक्रन्दनपूर्वक जोर-जोर से वह पुकारने लगी—"अरे बन्दर भाई! यह थैली तेरे क्या काम आयेगी? इसमें तनिक भी खाद्य वस्तु नहीं है मुझ पर कृपा कर। मैं तेरा उपकार भी नहीं भूलूंगी। मेरी थैली मुझे मिल जानी चाहिए।"

बंदर स्वभावतः चंचल होता ही है। उसने अपने नाखूनों से थैली को फाड़ा और क्रमशः एक रुपया टोकरी में और एक तालाब में डालना प्रारम्भ कर दिया। रुपया ज्योंही पानी में गिरता त्योंही गूजरी का कलेजा कराह उठता। वह हाय-हाय करती पर उपाय क्या? आखिर आधे रुपये टोकरी में आये और आधे तालाब (पानी में) चले गये। इतने में एक कवि वहां पर आ गया। उसने पूछा—बहिन! रोती क्यों हो?"

गूजरी ने कहा—"अरे भाई! इस दुष्ट बन्दर ने मेरे आधे रुपये पानी में डाल दिये। इसी दुःख में विह्वल हो रही हूं।"

कवि बड़ा अनुभवी था। उसने कहा—"बहिन! तूने कभी दूध में पानी तो नहीं मिलाया? सच-सच बोल।" गूजरी—"मैंने अधिक तो नहीं मिलाया? किन्तु पांच सेर दूध में पांच सेरपानी अवश्य मिलाया था।" कवि—"तो फिर दुःख क्यों कर रही है? बन्दर ने यथोचित न्याय कर दिया। 'दूध का दूध, पानी का पानी' दूध के पैसे तुझे मिल गये और पानी के पैसे तालाब को मिल गये। जानती हो भगवान् के घर देर है, अन्धेर नहीं।" गूजरी हाथ मलती हुई अपने घर को चल पड़ी।

कई व्यक्ति अनैतिक कृत्यों द्वारा अर्थार्जन करते हैं। एक बार तो वे अवश्य प्रसन्न होते हैं किन्तु आखिर दूध का दूध पानी का पानी होकर ही रहता है। अतः हर क्षेत्र में नैतिकता का व्यवहार होना चाहिए।

अर्थार्जन करते कई, कर कर बड़े अनर्थ।
टिक नहीं पाता अर्थ वह, जाता सारा व्यर्थ॥

मैं ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हूं

राजा भोज के राज्य में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसकी माता, उसकी पत्नी और वह स्वयं, घर में तीन ही सदस्य थे, किन्तु जीवन का पालन-पोषण बड़ी मुश्किल से हो पाता था। संतोषी होने के साथ-साथ वह बड़ा स्वाभिमानी था। अधिक दैन्य दिखाना उसको अभीष्ट नहीं था। एक दिन की बात है उसको भिक्षा नहीं मिली, नगर में पर्यटन करता-करता वह थक गया। आखिर अपने घर पहुंचा। पत्नी ने पूछा—"आज रिक्त हाथ कैसे आ गये ?"

ब्राह्मण—"काफी यत्न किया, किन्तु कोई भी दाता नहीं मिला"

पत्नी—"तो आज उदर पूर्ति कैसे होगी ?"

ब्राह्मण—"क्या एक दिन का भोजन शेष नहीं है ? मैं तो रोजाना लाकर देता हूं। क्या तू एक दिन का भी नहीं रखती ?"

पत्नी—"पतिदेव ! आप अधिक भोजन सामग्री लाते ही नहीं हैं प्रतिदिन कूंआ खोदना और प्रतिदिन पानी पीना, जहां यह हालत आपकी हो रही है, वहां फिर मैं कहां से लाऊं ?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसको क्रोध आ गया। इधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। परस्पर तनाव बढ़ा गाली-गलौज होने लगा, मारपीट की नौबत आ गई। ब्राह्मण ब्राह्मणी को जोर-जोर से पीटने लगा उसके सिर से खून झरने लगा।

ब्राह्मणी चिल्लाई—"अरे कोई दौड़ो रे अरे कोई दौड़ो रे, मुझे मार रहे हैं।" इतने में पुलिस वाले आ गये और ब्राह्मण को गिरफ्तार करके ले गये। राजसभा में राजा के सामने उसको हाजिर किया गया। राजा भोज ने ब्राह्मण के विषय में पूछा—"यह कौन है ? इसने क्या अपराध किया है ?"

आरक्षकों ने कहा—"राजन् ! यह ब्राह्मण है। इसने अपनी पत्नी को इतना पीटा है कि उसके सिर से खून बह रहा है और इसकी स्त्री कहती थी कि यह ब्राह्मण खाद्य सामग्री तो लाकर देता नहीं है पर खाने को मांगता है। राजन् ! क्षुधातुर इस ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को घायल कर दिया।"

राजा ने पूछा—" अरे विप्र ! क्या यह सच्ची बात है ?"

ब्राह्मण—"महाराज ! और सब बात सत्य है पर एक बात गलत है। ये लोग मुझे ब्राह्मण बता रहे हैं, किन्तु मैं ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हूं। राजन् ! जिसमें सत्य, संतोष, धैर्य आदि सद्गुण होते हैं, वही ब्राह्मण कहलाता है। मेरे में इन सब गुणों का अभाव है। राजन् ! किसी का दोष नहीं है, दोष मेरा है।"

राजा—"विप्र ! तुम चाहे चाण्डाल हो चाहे ब्राह्मण हो, किन्तु स्त्री को किस लिए पीटा ?"

ब्राह्मण—"महाराज ! उदरपूर्ति के अभाव में मारपीट की नौबत आ गई। हम घर में तीन सदस्य हैं—मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी। किन्तु धनाभाव से बड़े दुखित हैं।"

राजा ने सोचा—ऐसा आत्मद्रष्टा एवं निज की भूल बताने वाला व्यक्ति संसार में कोई-कोई होता है। उसकी सहज सरलता पर राजा का हृदय पिघल गया। उसी समय राजा ने भण्डारी को आदेश देते हुए कहा—

"इस ब्राह्मण को एक हजार मोहरें दे दो।"

मोहरों की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर आया। घर में सास और बहू से परस्पर लड़ाई हो रही थी। अचानक ब्राह्मण ने घर में प्रवेश किया। थैली खोली—चमकती हुई मोहरें देखकर सास-बहू दोनों के आश्चर्य का पार न रहा। मुखाकृति कमल की भांति खिल उठी। घर में शान्ति की लहर दौड़ गई।

हर एक को आत्मद्रष्टा बनना चाहिए। आत्मनिरीक्षणता का दूसरों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। आत्म आलोचना ही विकास की पहली मंजिल है।

आत्मालोचक मनुज ही, जग में सच्चा विप्र।
इन्द्रिय निग्रह कर वरो, शिव लक्ष्मी को क्षिप्र॥

संपत्ति और विपत्ति

राजा भोज सभा में बैठा था। अनेकों सभासदों से सभा सुशोभित हो रही थी। उस समय एक पण्डित आया। पहरेदार ने उसको रोक लिया। पंडित ने कहा—भाई ! मैं राजा भोज से मिलना चाहता हूं।

पहरेदार—"अभी नहीं मिल सकते हो, राजा जी कुछ कार्य में व्यस्त हैं।"

पण्डित—"भाई ! आज नहीं मिलने दोगे तो कल मिलूंगा कल नहीं तो दो दिन बाद मिलूंगा, किन्तु राजा जी को यह मालूम हो जाना चाहिए कि आपका भाई द्वार पर खड़ा है। अगर वे अपना भाई बतलाएं और मिलने के लिए आदेश फरमाएं तब तो सभा में जाने देंगे।"

पहरेदार सभा में पहुंचा हाथ जोड़कर नम्र शब्दों में राजा को निवेदन करते हुए उसने कहा—"महाराज ! द्वार पर एक आदमी खड़ा है और कहता है कि वह आपका भाई है अतः आपसे मिलना चाहता है। फरमाइए, क्या आदेश है ?"

राजा भोज के मस्तिष्क में कुछ चिन्तन चला। कुछ ही समय के पश्चात्

राजा ने कहा—"पहरेदार ! मेरे एक भाई है तो सही। सम्भवतः वही आया होगा। उसको रोको मत आने दो।"

द्वारपाल वापस लौटा और उससे कहा—"विद्वद्वर ! आप सभा में पधारिए। आपके लिए कोई रोक-थाम नहीं है।"

पंडित राज-सभा में पहुंचा। राजा ने खड़े होकर उसका स्वागत किया। सभासदों को उठना पड़ा। सब अवाक् रह गये, सोचने लगे। यह कौन आ गया ?

राजा ने अपने साथ सिंहासन पर बैठाकर प्रश्न किया—"क्या मौसीजी सकुशल हैं ?"

पंडित—"हां, अब तक तो सकुशल थीं, किन्तु आपके दर्शन होते ही वह मर गई है।" राजा—"जीना-मरना तो प्रकृति का नियम है। किन्तु उसका दाह-संस्कार अच्छी तरह करना।"

पंडित—"मैं मेरी स्थिति के अनुसार करूंगा। मेरे पास और कुछ नहीं है, केवल एक धोती पहिने हुए हूं। इसका आधा फाड़कर उसके शव पर डाल दूंगा।"

उसी वक्त भण्डारी को बुलाकर राजा ने कहा—"मेरी मौसी का अन्तिम संस्कार करना है इसलिए मेरे नाम लिखकर इसे एक हजार मोहरें दे दो।"

पण्डित मोहरें लेकर अपने घर गया। थोड़ी देर बाद एक सभासद ने साहस कर राजा से पूछा—"आपका यह भाई कहां रहता है ? अभी कौन सी मौसी की बात हो रही थी ? इस भाई को तो पहले कभी नहीं देखा था।"

राजा—"वह केवल मेरा भाई नहीं है, आप लोगों का भी भाई है, तनिक गहराई से चिन्तन करो। आप लोग मुझे सम्पत्ति का पुत्र मानते हैं। संपत्ति की छोटी बहन का नाम विपत्ति है। अभी जो आया था वह विपत्ति का पुत्र था। उसकी आकृति से यह आभास होता ही था कि वह कितने गरीब घर का था। मैं सम्पत्ति का पुत्र और वह विपत्ति का। इस अपेक्षा से वह मेरा भाई हो गया।"

सभासद ने फिर पूछा—"राजन ! 'आपके दर्शन होते ही मौसीजी मर गई' इस वाक्य का क्या रहस्य है ?"

राजा—"मेरे दर्शन से ब्राह्मण की विपत्ति दूर हो गई अर्थात् मेरी मौसी मर गई।"

यह गूढ़ार्थ सुनकर सभी सभासदों के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा और वे मुक्त-कंठ से राजा भोज की प्रशंसा करने लगे—"यह है राजा भोज की विवेकशीलता और उदारता। राजा भोज ही ऐसा है जो कि संपत्ति में फूलता

नहीं है और विपत्ति में घबराता नहीं है। संपत्ति और विपत्ति दोनों को बहिन मानता है और अपने भाई को सिंहासन पर बैठाता है।"

संपत्ति को देखकर फूलना नहीं चाहिए और विपत्ति को देखकर घबराना नहीं चाहिए। संपत्ति विपत्ति में समभाव अर्थात् दोनों को अपनी बहिन समझने वाला ही महापुरुषों की कोटि में आता है।

संपत्ति और विपत्ति में, रहना एक समान।
न्यायी भोज नरेश का, याद करो आख्यान ।।

सन्तोषी सदा सुखी

एक किसान था। उसके पैदावार अच्छी होती थी। फसल का समय होने के कारण रात्रि में वह घर नहीं जाता था। खेत में ही मचान पर सोया करता था। एक दिन चार चोर शहर में चोरी करके माल का बटवारा करने के लिए वहां आ पहुंचे। चोरों की आवाज से किसान की आंखें खुल गयीं। उसने मचान पर लेटे हुए ही जोर से शंख बजाया। चारों चोरों ने सोचा—पुलिस वाले घोड़े पर सवार होकर आ रहे हैं। चारों ही भयभीत होकर धड़ा-धड़ भाग गए और धन को वहीं छोड़ गए।

कुछ ही देर बाद किसान उठा। सोने के आभूषणों को देखकर मयूर की तरह नाचने लगा। हृदय में खुशी का पार नहीं रहा पुनः-पुनः अपनी किस्मत की सराहना करने लगा। स्त्री बोली—"पतिदेव ! इस धन को यहां पर रखना ठीक नहीं घर ले चलो, वहां सुरक्षित रहेगा।"

किसान बोला—"जहां मैं रहूंगा, वहीं सोना भी रहेगा।" उसने सारा सोना मचान के नीचे गाड़ दिया।

दो तीन महीने बाद वे ही चोर चोरी करके उसी खेत में आए और बंटवारा करने लगे। किसान मचान पर सोया हुआ था। आंखें खुलते ही उसने सोचा—"इस बार शंख और जोर से बजाऊंगा तो धन पहले से भी दुगुना हो जाएगा। लोभाकुल होकर उसने जोर-जोर से शंख बजाना प्रारम्भ कर दिया। चोरों ने सोचा—पुलिस वाले हैं अथवा कोई और शंख बजा रहा है। चारों ही उठकर इधर-उधर देखने लगे। किसान पर नजर पड़ी कि चारों ही उसपर टूट पड़े। हाथों, लातों और घूंसों से उसको खूब पीटा। किसान विलाप करता हुआ बोला—"कृपा करके मुझे मारना मत, मैं आपकी गरीब गाय हूं।"

चोर बोले—"पहले वाला धन कहाँ छुपाया है ? सच-सच बतलाओ अन्यथा मारे बिना नहीं छोड़ेंगे।"

किसान को सारा धन बतलाना पड़ा। चोर सारा धन लेकर दौड़ गए।

किसान मन ही मन दुःख करने लगा—हाय ! धन गया सो गया ब्याज में मार खानी पड़ी। यदि उसी धन पर सन्तोष कर लेता तो आज मुझे-मार क्यों खानी पड़ती ?

मन की असंतोष वृत्ति ही दुःख का कारण बनती है और संतोष वृत्ति सुख का कारण। वास्तव में 'संतोषी सदा सुखी' उक्ति को अपना लेता तो रोना क्यों पड़ता ? अति लोभ किसी भी स्थिति में सुखद नहीं होता। अन्ततोगत्वा वह दुःख का ही कारण बनता है। संतोषामृत से जिसकी आत्मा तृप्त होती है, वही व्यक्ति सुख का आस्वादन कर सकता है।

स्वल्प लोभ के योग से, दुःखी बना कृषिकार।
संतोषी होता सुखी, कहते जग करतार॥

मैंने देख लिया

सेठ बलिराम का लड़का विजयकुमार बुरी संगति से काफी बिगड़ गया था। सातों ही दुर्व्यसनों का वह गुलाम बन चुका था। इससे सेठजी काफी दुःखी थे। समय-समय पर शिक्षा भी देते थे, किन्तु उसका कुछ भी असर नहीं होता था। एक दिन उस नगर में मुनिजनों का आगमन हुआ। हजारों मानव दर्शनार्थ तथा उनकी अमृतमयी वाणी सुनने के लिए गये। सेठ ने अपने प्रिय पुत्र से कहा, "विजय ! चलो महाराज का व्याख्यान सुने।"

विजय—"पिताजी ! आप ही पधारें, अभी मुझे समय नहीं है।"

सेठ—"पुत्र ! आज जो मुनिजी पधारे हैं, वे बड़े विद्वान हैं, ज्योतिष शास्त्र के भी ज्ञाता हैं, बहुत अच्छी-अच्छी शिक्षा फरमाते हैं, जरूर चलो।"

पिता के अत्याग्रह से बिना मन विजय मुनिजी के व्याख्यान में गया और सबके पीछे आकर बैठ गया। सेठ ने अपने पुत्र के बारे में मुनिजी को पहले ही संकेत कर रखा था। व्याख्यान के पश्चात् मुनिजी ने विजय से पूछा—"भाई ! व्याख्यान में क्या-क्या बातें आई ?"

विजय ने कहा—"मुनिजी ! व्याख्यान में मेरा ध्यान ही नहीं था। मैं तो अपने ही विचारों मे मग्न था।" मुनिजी पहुंचे हुए सन्त थे। जिस विषय में रुचि

की, उसी विषय पर बातचीत प्रारम्भ कर दी। मुनिजी की विद्वता का उस पर अच्छा प्रभाव पड़ा। चरणों में सिर झुक गया। हाथ जोड़कर बोला—"आपके हर उत्तर से मैं प्रभावित हूं।" मुनिजी ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"जीवन में नियम की बहुत अपेक्षा है।" विजय ने कहा—"मुनिवर ! अधिक नियम तो मैं ले नहीं सकता, किन्तु एक नियम आप अवश्य दिलाइए।" मुनि ने कहा—'सन्तों के दर्शन किये बिना कुछ नहीं खाना' यह नियम ले लो क्योंकि प्रातः उठते ही सबसे पहले त्यागी मुनियों के दर्शन करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं।"

विजय बोला—"मुनिवर। सन्त तो बहुत दूर रहते हैं किन्तु मेरे पड़ोस में एक कुम्हार है, उसके दर्शन किये बिना कुछ भी नहीं खाऊंगा। बस यह नियम करा दीजिए।" मुनि जी ने सोचा—नियम लेने के प्रति भावना तो जागृत हुई है। इस भावना को नहीं ठुकराना चाहिए। अतः उसे वही नियम दिला दिया।

विजय घर गया। कुछ दिनों तक तो उस नियम को पालता रहा। एक दिन वह देरी से उठा, कुम्हार मिट्टी खोदने के लिए सुबह जल्दी ही चला गया था। विजय नियम पर अटल था। वह दौड़ा-दौड़ा गांव के बाहर पहुंचा। इधर कुम्हार को मिट्टी खोदते-खोदते मोहरों से भरा एक स्वर्णकलश मिला। वह सोच ही रहा था कि कलश को कोई देख न ले अन्यथा जमीन का धन राजा को देना पड़ेगा। इतने में वह दूर से कुम्हार का मुंह देखकर वापस लौटने लगा। कुम्हार ने उसे देख लिया, आवाज दी—"भाई ! ठहर जा, ठहर जा।"

कुम्हार घबराया और दौड़ा-दौड़ा आया उसके चरणों में गिरकर बोला—"मैं आपको आधी मोहरें दे दूंगा। कृपया राजा को मत कहना।" विजय को आश्चर्य का पार न रहा। वह होशियार तो था ही, उसने सारी बात सुनी, आखिर मोहरों का आधा हिस्सा लेकर घर पहुंचा और दौड़ा-दौड़ा मुनि जी के स्थान पर गया। भक्तिपूर्वक वंदना कर बोला—"मुनिवर ! मैं आपके उपकार से कभी उऋण नहीं हो सकता। आपने मुझे छोटा-सा जो एक नियम दिलाया था, उससे मुझे मन इच्छित फल मिला। अब तो आप जो कहेंगे वे सभी नियम लेने को तैयार हूं।" आखिर उसने सातों व्यसनों का त्याग कर अणुव्रत के सभी नियम ले लिए और जीवन का अधिकतम भाग संतों की सेवा में व्यतीत करने लग गया।

एक छोटे से नियम से विजयकुमार का जीवन बहुत ही उज्ज्वल एवं सुखी बन गया, अतः हरेक के लिए नियम अपेक्षित हैं।

नियम योग से विजय के, व्यसन हुए सब दूर।
'मुनि कन्हैया' नियम से, मिलता सुख भरपूर॥

कष्टों में भी धैर्य

बनारस के एक श्रीमन्त ब्राह्मण का लड़का राजेन्द्र तक्षशिला में विद्याध्ययन करने के लिए गया। कई वर्षों बाद जब वह तक्षशिला से पढ़कर घर पहुंचा तो उसे पता लगा कि पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। उसने सोचा—जब मेरे पिताजी भी अपने सारे धन को छोड़कर संसार से विदा हो गए हैं, तो फिर मैं भी धन राशि को साथ कैसे ले जाऊंगा? ऐसा सोच उसने धन का परित्याग कर दिया और वह एक वैरागी महात्मा बन गया। ग्रामानुग्राम परिभ्रमण करता हुआ वह एक ऐसे गांव में पहुंचा, जहां का राजा विलासी और अधर्मी था। लेकिन राजा का प्रधानमन्त्री बड़ा धार्मिक था। वह चाहता था कि राजा को किसी महात्मा का योग मिल जाय तो इसका कुछ न कुछ सुधार हो जाय। मन्त्री ने उस साधु को जाते हुए देखा तो उसने राजा के बगीचे में ठहरने का निवेदन किया। महात्मा जी उस बगीचे में ठहर गए और अपनी दिनचर्या करने लगे। एक दिन राजा अपनी रानियों को लेकर उस बगीचे में आया और हंसी मजाक करता हुआ एक स्थान पर बैठ गया। वृक्षों की शीतल और सुगन्धित वायु से नींद आ गई। रानियां उठ कर इधर-उधर फिरने लगी। अचानक उन सबकी दृष्टि उस साधु पर जा पड़ी। रानियां राजा से कुछ समझदार थी। वे योगी के पास गयीं और बोली—"महा-राज! हमें कुछ धर्म की बात बताओ।" रानियों की विनम्र प्रार्थना पर साधु ने कुछ धार्मिक उपदेश देना शुरू किया।

महात्मा जी की आवाज राजा के कानों में पड़ते ही राजा की आंखें खुल गयीं। उसने सोचा—यह कौन दुष्ट पुरुष है, जो मेरी रानियों के साथ मीठी-मीठी बातें कर रहा है? राजा क्रुद्ध होकर साधु के पास आया और बोला—"तेरा धर्म क्या है?" साधु ने कहा—"राजन्! मेरा धर्म क्षमा और प्रेम है।" राजा ने पुनः उसकी नाक कटवा दी और फिर पूछा—"बोल तेरा शास्त्र क्या है?"

साधु ने कहा—"मेरा शास्त्र है अहिंसा और मैत्री।" राजा ने उसके पांव भी कटवा डाले और पूछा—"बोल, तेरा शास्त्र क्या है?" साधु ने शान्ति से उत्तर दिया कि मेरा शास्त्र अहिंसा और मैत्री है। मनुष्य जब किसी पर क्रोध करता है और सामने वाला उसे हजम करता हुआ क्षमा रखता है तो आखिर में क्रोधी को परास्त होना ही पड़ता। राजा भी आखिर महात्मा की क्षमा के आगे हैरान हो गया और उसके एक लात मार कर चल दिया। इस हृदय विदारक घटना को देख रानियां बड़ी दुखित हुईं—हाय! हमारे निमित्त से महात्मा जी को कितना कष्ट सहन करना पड़ा। मन्त्री को पता लगते ही वह दौड़ा-दौड़ा आया और माहात्मा जी से क्षमा याचना करने लगा। महात्मा जी अन्तिम श्वास ले रहे

थे। महात्मा जी ने कहा—"मन्त्री ! घबड़ाओ मत। तन नश्वर है एक दिन तो जाना ही था। आज नहीं तो कल जाता। यह शरीर मेरा नहीं है, मेरे ज्ञान दर्शन आदि आत्मिक गुण हैं।" अन्त में महात्मा जी के मुख के ये शब्द निकले—"चइज्ज देहं न हु धम्म सासणं।" अर्थात् शरीर को छोड़ दो, पर धर्मशासन को मत छोड़ो। शत्रु से भी मित्रता का व्यवहार करो। कष्टों में भी धैर्य रखो तुम्हारी विजय होगी।

'क्षमा खड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति' अर्थात् जिस के हाथ में क्षमा रूपी शस्त्र है, उसका बिगाड़ दुर्जन भी नहीं कर सकता। समय पर क्षमा वही रख सकता है, जिसमें आत्मिक शक्ति का प्राबल्य हो। कष्टों में भी क्षमाधर्म को नहीं छोड़ना, आत्म-विजयी के लक्षण हैं।

क्षमा धर्म को नहीं तजे, कष्टों में भी वीर।
आत्म-जयी बनकर वही, पाते भव जल तीर॥

यह तो मैं ही जानती हूँ

एक दिन दर्शना ने अपने पति रामकुमार से कहा—"पतिदेव ! मैं सास के साथ नहीं रहना चाहती। कृपा करके अलग हो जाइए।"

रामकुमार ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"आज के इस कर्वाले युग में अलग होना लाभप्रद नहीं है। साथ में रहने से कई समस्याएं स्वतः ही हल हो जाती हैं। सास के साथ विनय से रहना सीखो।"

दर्शना—"सास का स्वभाव ठीक नहीं है। वह बात-बात पर झगड़ा करती है। सुख शान्ति से एक भी दिन पूरा नहीं होता अतः इस स्वतंत्र युग में मैं भी स्वतंत्र होना चाहती हूं।"

रामकुमार—"मेरी मां का स्वभाव तो बड़ा ही शीतल है प्रकृति से सरल एवं भद्र है। तुम तुम्हारी प्रकृति को सुधार लो। सब काम अच्छा होगा। अलग होने से कई जिम्मेदारियां निभानी पड़ती हैं।"

दर्शना—"घर का सारा काम मैं संभाल लूंगी। आप किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। साथ रहना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

रामकुमार की इच्छा नहीं होते हुए भी उसको विवशता से अलग होना पड़ा। दर्शना का मन इच्छित हो गया। अपने आपको बहुत धन्य समझने लगी। कई दिनों बाद घर में पापड़ समाप्त हो गये।

रामकुमार ने दर्शना से कहा—"पापड़ बना लेना।"

दर्शना दौड़ी-दौड़ी सास के पास आई और नम्र भाव से बोली—सास जी! पापड़ किसके बनाए जाते हैं।"

सास—"मोठ या मूंग के प्राय: पापड़ बनते हैं।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हूं। फिर क्या करना पड़ता है?"

सास—"उसकी दाल बनाकर उसे धोकर फिर उसका आटा बनाया जाता है।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हूं। यों कहकर वह अपने घर गई और सब सामग्री जुटाकर फिर सास से पूछा—आगे क्या करना पड़ता है?"

सास—"उस आटे को सज्जी के पानी में मिलाकर गूंदना। फिर उसके लोये बनाना।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हूं। फिर क्या करना पड़ता है?"

सास—"चकले बेलन से बटकर पापड़ों को सुखा देना। थोड़े गीले रहने पर उन सबको इकट्ठे करके एक कोठी में रख देना।

बहू—"यह तो मैं ही जानती हूं।" यों ठहाका मारकर वह घर गई और उसने सारा काम वैसे ही किया फिर दौड़ी-दौड़ी आकर बोली—"सास जी! अब क्या करना है?" सास गुस्से में आकर बोली—"अब उस कोठी में पांच सेर पानी डाल देना।"

बहू—"यह तो मैं ही जानती हूं" वह घर गई और उसमें पानी डालते ही वापस आटा हो गया।

रामकुमार जब दुकान से घर आया तब उसको इस घटना चक्र का सही तथ्य मालूम होते ही वह कड़क कर बोला—"दर्शना! मैंने पहले ही कहा था कि अलग होने में लाभ नहीं है। बन गये पापड़?"

दर्शना की अक्ल ठिकाने आ गई और सास के साथ आनन्द से रहने लग गई। जो सुख-सुविधाएं एकता में निहित हैं, अलगाव में नहीं हैं, अत: हर एक को एकता की छाया में निवास करना चाहिए।

अमिट शक्ति है संघ में, रखो प्रेम व्यवहार।
हाथी को भी बांधते, मिलकर कच्चे तार॥

विश्व का स्वामी

एक दिन एक सम्पत्तिशाली सम्राट अनेक नगरों पर विजय प्राप्त करके बड़े ठाठ बाट से अपने शहर में प्रवेश कर रहा था। हजारों व्यक्ति नृप की चरण-धूलि

का स्पर्श करते हुए जय-विजय के घोषों से आकाश-पाताल एक कर रहे थे। मार्ग में राजा की दृष्टि एक त्यागी फकीर पर जा पहुंची। पर उसने न तो राजा को नमस्कार किया और न ही राजा को आदर सम्मान किया।

राजा आश्चर्य के सागर में डूबने लगा—अरे—यह फकीर मेरे आगे भी नत-मस्तक नहीं हो रहा है। सैनिकों को आदेश मिला—"उसको बुलाकर लाओ।" पर वह फकीर कहां आने वाला था। उसने ओज भरी वाणी में कहा—"सैनिकों! मैं उस स्वार्थी और नीच पुरुष के निकट जाना नहीं चाहता ? यदि उसे मिलने की अभिलाषा हो तो यहां आ सकता है।"

आखिर वह महीपति उस फकीर के पास पहुंचा। नेत्रों को लाल बनाकर समुद्र की भांति गर्जन करता हुआ राजा बोला—"रे फकीर! तू बहुत अभिमानी है। तूने न तो मुझे नमस्कार किया और न आदर सत्कार ही दिया। क्या तू मुझसे बड़ा है? क्या तूने अपने आपको मुझसे भी अधिक सम्पत्ति शाली और बलवान समझ रखा है?"

शान्त रस का आस्वादन करते हुए फकीर ने कहा—"राजन्! तूने जो कहा वह अक्षरशः सत्य है। मैं तुमसे बड़ा हूं। अधिक सम्पत्तिशाली हूं। तू तो एक देश का स्वामी है, मैं सारे विश्व का स्वामी हूं।"

उपहास करता हुआ राजा बोला—"अरे भिक्षुक! क्यों वृथा वितण्डावाद कर रहा है? क्यों अहंकार के शिखर पर चढ़ रहा है? बोल, तू कैसे विश्व का स्वामी है?"

भिक्षु ने मुस्कराकर कहा—"राजन्! इतना क्रोध क्यों कर रहे हो? तनिक शान्त चित्त से सुनो—मेरे पास सोना चांदी, जवाहरात आदि कुछ भी वैभव नहीं है क्योंकि मैं उन सबको धूल के समान समझता हूं। मैं संसार से पूर्णतया विरक्त हूं मेरा खजाना त्याग और चारित्र-रूपी अमूल्य सम्पत्ति से भरा हुआ है, अतः मैं सम्पत्तिशाली हूं। मैं तेरी तरह इन्द्रियों का गुलाम नहीं हूं। मैंने मेरी इन्द्रियों तथा मन पर नियंत्रण करना सीखा है। मैं किसी का भी दास नहीं हूं। जिसने मन को जीता उसने जग को जीता, इसी सत्योक्ति की अपेक्षा मैं विश्व का स्वामी हूं।"

यह सुनते ही राजा का गर्व समाप्त हो गया। लज्जावश उसका उत्तमांग झुक गया। योगी के चरणों का स्पर्श करता हुआ बोला—"योगीराज! आप बड़े हैं। मैं छोटा हूं। आप संपत्तिशाली हैं, मैं भिखारी हूं। वस्तुतः आप ही विश्व के अधिनायक हैं। आपने मुझे बहुत ही अच्छा ज्ञान दिया। कोटि-कोटि अभिनन्दन।"

धन सम्पत्ति से कोई बड़ा नहीं बन सकता। बड़ा वही है जिसके पास संयम,

त्याग एवं तप रूपी वैभव है, अतः हर एक व्यक्ति को संयम के सन्मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए।

मनोविजेता विश्व में, है सच्चा बलवान्।
संयम धन संयुक्त नर, वास्तव में भगवान ॥

काम-भोग को धिक्कार

भर्तृहरि एक न्यायप्रिय राजा थे। उनकी प्रतिष्ठा सुनकर एक दिन एक योगी आया और बोला—"राजन्! यह 'अमर फल' आप खा लीजिए। जिससे आपको कभी भी बुढ़ापा नहीं सताएगा। सदा ही युवा रहेंगे, जिससे राज्य की प्रतिपालना करने में आपको किसी भी तरह की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा। आप जैसे नीतिज्ञ नृप मिलने मुश्किल हैं।"

आखिर राजा को वह 'अमरफल' देकर योगी चला गया।

राजा ने सोचा—यह 'अमरफल' मैं न खाकर मेरे प्राणप्रिया महारानी को दे दूं, जिससे वह वृद्धा न बने। राजा गया और रानी को वह फल देते हुए बोला—"इस फल को खाने से तू कभी वृद्धा न बनेगी।

महारानी ने सोचा—यह 'अमरफल' मैं न खाकर मेरे प्राण वल्लभ महावत (हाथी को चलाने वाला) को दूंगी। उसने वैसा ही किया। महावत को देती हुई महारानी बोली—"प्राणेश्वर! यह 'अमरफल' है इसे आप खा लेना, इसके प्रभाव से आप कभी भी वृद्ध नहीं बनेंगे और मेरी मनोकामना पूर्ण होती रहेगी।"

महावत वेश्या से लगा हुआ था। वह उसको सर्वेसर्वा समझता था। दौड़ा-दौड़ा वहां गया और बोला—"प्रिये! इस 'अमरफल' को खा लेना, जिससे तू कभी भी वृद्धात्व को प्राप्त नहीं होगी और मेरी मनोभावना पूर्ण करती रहेगी।"

वेश्या ज्योंही उस फल को खाने के लिए उद्यत हुई त्योंही उसके मन में सद् विचारों का आविर्भाव हुआ—हाय! मेरे खाने में क्या लाभ है? प्रत्युत व्यभिचार बढ़ेगा। यह फल यदि राजा के पास पहुंचाया जाय तो अच्छा है क्योंकि वे खाएंगे तो कभी भी बुढ़ापे से ग्रस्त नहीं होंगे जिससे वे अनेकों वर्षों तक प्रजा का पालन भी अच्छी तरह करते रहेंगे, जनता का भी भला होगा 'अमरफल' भी सार्थक हो जाएगा।

वेश्या राजा के पास पहुंची और वह फल देती हुई बोली—"नाथ! यह 'अमरफल' है। इसके खाने से आप कभी भी वृद्ध नहीं बनेंगे।"

राजा ने फल को पहचान लिया। तलवार लेकर शीघ्र महलों में पहुंचा और

रानी से पूछा—बोल वह फल कहां है ? यदि झूठ बोलेगी तो इस तलवार से तेरा गला काट दूंगा ? रानी घबराती हुई बोली "हाय ! मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी मैंने महावत को दे दिया।"

नृप ने महावत से पूछा, तो उसने कहा—मैंने वह फल वेश्या को दे दिया। ऐसे संसार के स्वरूप को देखकर उसी समय राजा बोला—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोन्यसक्तः।
अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

"मैं जिस रानी को अपनी समझता था वह मेरे से विरक्त होकर अन्यजन की इच्छा करती है, फिर वह भी अन्य में आसक्त है। धिक्कार है उस रानी को, महावत को, वेश्या को, इस काम-भोग को।"

उसी समय राजा भर्तृहरि ने संन्यास ले लिया।

कामदेव की अद्वितीय विडम्बना से सारा संसार पराभूत है। इसके आगे परम विश्वासी का भी विश्वास विलय हो जाता है, किन्तु महान वही है जो भर्तृहरि की भांति संसार से विरक्त होकर संन्यास अवस्था में रमण करने लग जाता है।

नहीं किसी का भी तनिक, दुनिया में विश्वास।
भर्तृहरि के हो गया, दिल में दिव्य प्रकाश ॥

नकटापन्थ

एक गांव में एक नकटा रहता था। लोग उसे देखकर हंसते थे। उसके साथ मखौल भी किया करते थे। उसे चिढ़ाने के लिये तरह-तरह के शब्दों का प्रयोग भी करते थे। "नकटा जीवै बुरे हवाल।" बच्चों के लिए तो वह खिलौना था। जब वह बाजार से गुजरता था तो बच्चों की टोली पीछे हो जाती। एक दिन उस नकटे ने सोचा—गांव में मैं अकेला ही नकटा हूं इसलिए लोग मुझे चिढ़ाते हैं। यदि दस-बीस मेरे साथी हो जाएं तो बिना मतलब चिढ़ाना, मखौल करना सब बन्द हो जाएगा। इसलिए कुछ न कुछ प्रयास करना चाहिए लोगों को नकटा बनाने के लिए वह बाजारों में कहता फिरता था। "मुझे आसमान की परियां नजर आती हैं।"

"कई लोग उसके पीछे पड़ गये, और कहने लगा—"हमें भी परियां दिखाओ।"

नकटा बोला—"एक साथ में पांच आदमी देख सकते हैं। दिन को नहीं, रात को बारह बजे, शहर में नहीं समुद्र के किनारे पर।"

पांच आदमियों को साथ लेकर वह नकटा सागर के तट पर आ पहुंचा। पांचों ने कहा—"परियां दिखाओ।"

नकटे ने कहा—"पहले मुझे परियों के साथ नाचने दो।"

उन्होंने कहा—"परियां हैं कहां ? हमें तो दिखती ही नहीं।"

नकटा जरा हंसकर बोला—"आंख्या आगे नाक, सूझे कांई खाक" तुम्हारी आंखों के सामने नाक आया हुआ है परियां दिखेंगी कैसे ? यदि तुमको परियों के दर्शन करने हैं तो यह लो चाकू नाक काट लो।"

पांचों महानुभाव उसकी चालाकी को समझ नहीं सके। उसके माया के जाल में फंसकर नाक काटकर पांचों नकटे बन गये। फिर भी परियां नजर नहीं आईं। तब वे बोले—अरे मूर्ख ! परियां तो दिखती ही नहीं है।

नकटा बोला—"मूर्ख मैं हूं या तुम हो, परियां पड़ी कहां हैं ? बिना सोचे-समझे नकटे बन गये। मैंने तो अपना पंथ बढ़ाने के लिए यह उपाय सोचा था।"

पांचों के मुख पर कालिमा छा गई। उसको ललकारते हुए वे बोले— बेवकूफ ! तेरे जैसा ढोंगी व कपटी इस दुनिया में कोई नहीं है। यों कहकर उस नकटे को जोर-जोर से पीटने लगे।

नकटा बोला—"अब मुझे पीटने से क्या होगा ? दुनिया तुम्हारी बेवकूफी पर हंसेगी। अब तो यही श्रेयस्कर है कि तुम पांचों मेरी तान मे तान मिलाओ। खुलेआम इसका प्रचार करो कि समुद्र के किनारे पर परियां दिखती हैं इससे अपना नया नकटा पंथ खड़ा हो जाएगा। फिर कोई भी अपने को नहीं चिढ़ाएगा।" फलस्वरूप कई लोग उसके चक्कर में पड़कर नकटे बन गये और उन्होंने अपना एक नकटा-पंथ खड़ा कर ही दिया।

ऐसे ढोंगी आदमी अपने पंथ का प्रसार करते हुए दुनिया को जो धोखा देते हैं वे अपना तथा दूसरों का अहित करते हैं।

जो मानव लाभ-अलाभ को नहीं देखकर केवल—अपने सम्प्रदाय को ही बढ़ावा देना चाहते हैं वे कभी भी महान नहीं बन सकते हैं। महान वही बनेंगे, जो जन कल्याण में जीवन खपाएंगे।

ढोंगी अपने पन्थ का, करते नित्य प्रसार।
धोखा देकर ठग रहे, दुनिया को हर बार॥

विचारों में परिवर्तन क्यों ?

एक चन्दन नाम का सेठ था। उसके कारोबार भी चन्दन का चलता था। दीपावली के मंगल अवसर पर अनेकों सेठ साहूकार नृप से मिलने के लिए राज-भवन में आए। चन्दन सेठ को देखकर नृप की नस-नस में क्रोध छा गया और मन ही मन में विचार आया कि इसको मरवा दूं।

नृप ने मन्त्री से पूछा—"आज मेरी वृत्ति क्यों बदल रही है ? इस चन्दन सेठ ने मेरा क्या बिगाड़ा ? फिर भी इसके प्रति द्वेष जागृत हो रहा है। इसे मर-वाने की कुबुद्धि उत्पन्न हो रही है । क्या कारण है ?"

मन्त्री ने कहा—"इसके पीछे कोई रहस्य छिपा हुआ है। मैं अवश्य पता लगाऊंगा।"

मन्त्री अब प्रतिदिन चन्दन सेठ की दुकान पर आने-जाने लगा और मधुर व्यवहार के साथ मीठी-मीठी बातें भी दिल खोलकर करने लगा। एक दिन मन्त्री ने सेठ को उदास देखकर पूछा—"सेठजी ! आज इतने उदास क्यों हैं ?"

सेठ ने कहा—"कारोबार में बड़ी मन्दी आ रही है, माल बहुत पड़ा है। इन दिनों में राजा के घर भी किसी की मृत्यु नहीं हुई। यदि हो जाए तो मेरा सारा माल खप जाये।" मन्त्री समझ गया। शीघ्र राजमहल में आकर नृप को कहे-सुने बिना नौकर को आदेश दिया—"प्रतिदिन राजमहल में चन्दन का एक भारा आना चाहिए। उससे नृप के लिए अलग भोजन बनेगा।"

चन्दन से अलग भोजन पकने लगा। पता लगते ही नृप ने पूछा—"मंत्री ! आजकल चन्दन की लकड़ियों से भोजन क्यों बन रहा है ?"

मंत्री ने उत्तर दिया—"राजन् ! डाक्टर साहब ने मुझे कहा था नृप के लिए लकड़ी का धूम्र हितकर नहीं है। उसी दिन से पैसों की परवाह नहीं करते हुए मैंने चन्दन मंगाना शुरू कर दिया। इससे अलग खाना पकवाता हूं।" राजा सुन-कर मन ही मन में बड़ा खुश हुआ।

व्यापार ठीक चलने के कारण सेठ के भाव बदल गये। मन ही मन में विचार करने लगा—राजा अमर रहे। उनका शरीर नीरोग रहे तो बहुत अच्छा। पर्व प्रसंग आने पर फिर वह सेठ राजभवन में गया। रुपये नजर किये। भूपति ने हर्षित होकर सेठ को शहर की नाक समझकर नगरसेठ की पदवी से अलंकृत किया। सेठ अपने घर गया।

नृप ने मंत्री से पूछा—"मेरे विचारों में इतना परिवर्तन क्यों ?"

मंत्री बोला—"राजन् ! चन्दन नहीं बिकने से यह सेठ निरतर आपका मरना चाहता था। इधर आपके दिल में भी वैसे ही भाव चमकते थे। खाना पकाने के

बहाने इसका चन्दन बिकवाया। उस सेठ के विचार भी बदल गये। अब वह प्रतिदिन यही भावना भाता है कि महाराज चिरंजीवी रहें। अमर रहें। राज दरबार में कभी किसी की मौत न हो। उसकी वृत्ति में परिवर्तन आते ही इधर आपके विचारों में भी परिवर्तन आ गया।"

हर व्यक्ति को अपने विचार स्वच्छ एवं गंगाजल की भांति निर्मल रखने चाहिए। चूंकि विचारों का प्रभाव दूसरों पर बहुत पड़ता है। कुत्सित विचार एवं कुत्सित भाव सर्वथा त्याज्य माने गये हैं।

चन्दन बिकने से त्वरित, बदले चन्दन भाव।
उसके स्वच्छ विचार का, नृप पर पड़ा प्रभाव ॥

कर्तव्यों पर अटल

बुढ़िया चन्दा का स्वभाव बड़ा सरल था। छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों के साथ वह सद्व्यवहार रखती थी। वचन की मीठी थी। उसकी झोंपड़ी रेलवे पुल के पास थी। रात्रि के समय में बुढ़िया और उसकी लड़की दोनों सो रही थी। अचानक मूसलाधार पानी बरसने लगा, इससे वह पुल टूट गया। रात अंधियारी थी और हवा खूब जोरों से चल रही थी। सहसा लड़की की नींद टूट गई। उसने खिड़की से बाहर देखा, तो पुल टूटा हुआ नजर आया। गाड़ी आने का समय हो रहा था। उसने अपनी अम्मा को जगाकर कहा—"माताजी जल्दी उठो, पुल टूट गया है, गाड़ी आने का समय हो गया है। हजारों मनुष्यों की जान बचाने के लिए अपने को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए।" एक तरफ तो वर्षा और तूफान चालू था, घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो रहा था और दूसरी तरफ लड़की कहती है—"माताजी ! हजारों मनुष्यों की रक्षा करने के लिए हमें कोई उपाय करना ही चाहिए।" यह है कर्तव्यपरायणता की पराकाष्ठा। लड़की बड़ी होशियार थी। उसने अपने हाथ में टूटे हुए खाट का डण्डा लिया, उस पर कपड़ा लपेटा और उसे जला दिया दूसरे हाथ में अपनी लाल साड़ी का फटा हुआ कपड़ा लिया और वह बोली—"माताजी ! चलो अब रेल के सामने खड़े हो जाएं। ड्राइवर जब यह लाल कपड़ा देखेगा तो गाड़ी खड़ी कर देगा।" मां और बेटी दोनों अपनी झोंपड़ी से बाहर आकर उस भयंकर झंझावात में भी पुल के पास खड़ी हो गईं। गाड़ी ठीक समय पर आ गई। ड्राइवर ने जब आग की रोशनी में जब लाल कपड़ा देखा, तो कोई खतरा समझकर गाड़ी को रोक दिया। चारों तरफ भयानक जंगल

था मौसम बड़ा खराब था। ऐसी विकट वेला में गाड़ी का रुकना देखकर सब मुसाफिर आश्चर्य में पड़ गये और नीचे उतर कर देखने लगे कि गाड़ी को क्यों रोकी गई है ? ड्राइवर नीचे उतरा शीघ्र लड़की के पास आकर पूछा—"बहिन ! तुमने यह लाल कपड़ा किस लिए दिखाया ? क्या गाड़ी में बैठना चाहती हो ? बताओ सही बात क्या है ?"

लड़की ने कहा—"ड्राईवर जी ! इसमें मेरा कोई भी स्वार्थ नहीं है। निस्वार्थ भाव से ही यह काम किया है।"

ड्राइवर —"क्या है निस्वार्थ भावना ? बताओ तो सही।"

लड़की—"भयंकर बरसात से यह पास का पुल टूट गया है। हजारों मनुष्यों को जिन्दगी से हाथ धोना न पड़े, इसलिए मैंने लाल कपड़ा दिखाया है।"

ड्राइवर—"क्या यह सही घटना है ? चलो मेरे साथ कहां से पुल टूटा है ?"

लड़की—"ड्राइवर साहब ! यदि आपको मुझ पर विश्वास नहीं है, तो चलिए।"

लड़की के साथ वह चल पड़ा। ड्राइवर ने जब पुल को टूटा हुआ देखा, तो उसके हर्ष का पार न रहा। गाड़ी के मुसाफिरों को जब पता लगा, तो सभी उस पुल को देखने गये और पुनः पुनः उस लड़की की सराहना करने लगे। रेलवे ने उसको इनाम देने की घोषणा की। समय पर अपने कर्तव्य पर अटल रहना ही सच्ची ईमानदारी है, प्रामाणिकता है।

प्रत्येक को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही अपने साध्य को प्राप्त कर सकते हैं। कर्तव्य का परित्याग करना दानवता है।

अटल रहे कर्तव्य पर, जो मानव सर्वत्र।
वही मनुज इस विश्व का, चमकीला नक्षत्र ॥

बिना विचारे जो करे……

एक कैप्टेन साहब थे। उनकी माता देहात में रहती थी। वह रोगग्रस्त हो गई। घर वालों ने कैप्टेन साहब को घर आने के लिए लिखा—"आपकी अम्मा बहुत बीमार है, आप शीघ्र ही घर आएं।" कैप्टेन साहब के पास समाचार पहुंचते ही उन्होंने सोचा—पांच दस दिन के लिए दौरे पर जाना अत्यावश्यक है अतः वहां से लौटकर ही गांव आऊंगा। साहब अपने कार्यक्रम के अनुसार दौरे पर चले गये। इधर साहब का जो चपरासी था उसकी मां भी काफी दिनों से बीमार थी, उसका अचानक देहावसान हो गया। घरवालों का उसके पास तार पहुंचा।

'योर मदर डाइड कम सून' (Your Mother died come soon) तुम्हारी मां का देहावसान हो गया, शीघ्र आओ।

चपरासी ने सोचा साहब को दौरे पर गये दस दिन हो गये, कौन जाने कब आएंगे। माताजी का स्वर्गवास हो गया है, अतः घर जाना आवश्यक है। आखिर कैप्टेन साहब के कार्यालय में टेबिल पर उस तार को रख दिया और भद्र बन वह घर के लिए रवाना हो गया। उसने सोचा—कैप्टेन साहब तार पढ़ेंगे तो स्वयं समझ लेंगे कि मैं छुट्टी पर गया हूं।

चपरासी ज्योंही स्टेशन पर पहुंचा त्योंही कैप्टेन साहब भी दौरा समाप्त कर आ गये। बाहर से आई हुई डाक को सम्भालने के लिए साहब कार्यालय में पहुंचे। सबसे पहले उन्होंने उस तार को देखा। ऊपर नीचे तो कुछ पढ़ा नहीं केवल बीच वाले समाचार के शब्द पढ़कर उसने निश्चय कर लिया कि माताजी का तो देहावसान हो गया क्योंकि असाध्य रोग से पीड़ित होने को समाचार तो पहले आ ही चुके थे। साहब ने नाई को बुलाया और भद्र हो गये, ड्राइवर को कहा—"मोटर शीघ्र लाओ, इसी रेल से घर जाना है।"

कैप्टेन साहब स्टेशन पर पहुंचे इधर वह चपरासी रेल में बैठा ही था। उसकी नजर साहब पर पड़ी, मन ही मन में सोचने लगा—मेरी मां का स्वर्गवास हुआ तो हुआ, साहब की मां का भी स्वर्गवास हो गया, ऐसा प्रतीत हो रहा है। शीघ्र बेचारा गाड़ी से उतरा और साहब को नमस्कार किया। साहब ने चपरासी को पूछा—"अरे ! भद्र कैसे हुआ ?"

चपरासी ने कहा—"मेरी मां का अचानक देहावसान हो गया।"

साहब—"क्या घर से कोई समाचार आया था ?" चपरासी—हां, तार आया था किन्तु आप भद्र कैसे बने हैं ?"

साहब—"मैं अभी अभी दौरे से आया हूं। टेबिल पर मेरा तार पड़ा था। उसमें लिखा था कि माताजी का स्वर्गवास हो गया है, इसलिए भद्र बना हूं और घर जा रहा हूं।"

चपरासी—"वह तार तो मेरा था, आपका नहीं। टेबिल पर मैंने ही रखा था। मेरी मां मरी है, आपकी नहीं।"

यह सुनते ही कैप्टेन साहब अवाक् रह गये। तार मंगाया और उसे अच्छी तरह से पढ़ा। चपरासी का कथन सत्य होने पर साहब का चेहरा उतर गया और बिना विचारे किए हुए कार्य का पश्चात्ताप करने लगें।

छोटे से छोटा कार्य भी विवेक एवं विचारपूर्वक करना चाहिए। जो व्यक्ति सोचे बिना कदम उठाता है, उसको कैप्टेन की भांति पश्चात्ताप करना ही पड़ता है।

बिना विचारे जो करे, वह पछताता नित्य।
साहब दुःख करता रहा, प्रकट हुआ जब सत्य ॥

सबसे मीठी चुप

रामलाल नाम का एक आदमी था। वह स्वभाव से बड़ा सरल एवं भद्र था। छोटे गांव में उसकी दुकान थी। घी, गुड़, शक्कर, आदि का व्यापार था। अपनी स्वल्प कमाई में वह घर का खर्च निकाल लेता था। उसकी लड़की का नाम शोभा था वह बड़ी हो गई। पिता ने समीपस्थ शहर में अच्छा लड़का देखकर विवाह कर दिया। शोभा बड़ी चतुर थी। थोड़े ही दिनों में शहर के समस्त रीति रिवाजों में वह निपुण हो गई। एक दिन रामलाल पुत्री से मिलने के लिए शहर में आया। पुत्री ने पिता के लिए तरह-तरह के पकवान बनाए। पुत्री अपने हाथों से पिता को भोजन कराने लगी। दामाद कुछ ही दूर उनकी हाजरी में खड़ा था। थाली में पतले-पतले और छोटे-छोटे फुलके परोसे गये। वह एक-एक फुलके का एक-एक ग्रास करने लगा। पुत्री ने घूंघट की ओट में दो अंगुली उठाकर इशारा करते हुए कहा—"एक रोटी के कम से कम दो ग्रास तो अवश्य करें।" रामलाल उल्टा समझ गया। उसने सोचा—पुत्री कहती है कि दो-दो रोटी का एक-एक ग्रास करो अन्यथा पेट कैसे भरेगा। उसने वैसा ही किया। पुत्री बड़ी लज्जित हुई। थोड़ी देर बाद रसगुल्ले परोसे गये। उसने सोचा ये धोले-धोले (सफेद-सफेद) अंडे जैसा क्या है? पुत्री ने धीमे स्वर से कहा—"रो बोल (बोलो मत)"। उसने सोचा इनका नाम रो बोला है। फिर मीठी-मीठी जलेबियां परोसी गयीं। वह बोला—"यह सर्प की भांति आंटेदार क्या है?" शर्म से पुत्री का सिर झुक गया। दूसरे सुनने वाले पिताजी को क्या समझेंगे? फिर बेचारी पिताजी की ओर इशारा करती हुई बोली—"चुप-चुप।" उसने जलेबियों का नाम 'चुप' समझ लिया। भोजन समाप्त होते ही हाथ धोकर बाहर आया। मन ही मन में विचार करने लगा—मैंने अपने घर दूध, दही, घी, खूब खाया किन्तु आज जैसे रोबोले (रसगुल्ले) और मीठी-मीठी चुप (जलेबियां) कभी नहीं खायीं। वह अपने मन में एक ही रटन लगाता रहा कि—

> दोय चार रो बोला खाया, थाली ऊपर झुप्प।
> घी तो घर में घणोई खायो, सबस्यूं मीठी चुप॥

दामाद ने रामलाल से कहा—"आपकी इच्छा हो तो दुकान पर पधारें।" दोनों ही दुकान गये। इतने में एक कृषिकार आया। उसके हिसाब-किताब में काफी उलझन पैदा हो रही थी। किसान ने रामलाल की ओर इशारा करते हुए पूछा—"ये कौन हैं?" दामाद ने कहा—"ये मेरे श्वसुर हैं। किसान ने कहा—"मैं आपके श्वसुर को पंच मानता हूं। ये जो फैसला देंगे, मुझे मान्य है।" इसमें वह दामाद इनकार कैसे हो सकता था। दोनों ने अपनी-अपनी बात सुनाई। रामलाल

को और कुछ आता नहीं था, उसने वही दोहा सुनाया। दोहे के तीन पद तो कुछ सूक्ष्म स्वर से बोला—चौथा जोर से बोला—"सबस्यूं मीठी चुप, बस मैं तो यही फैसला जानता हूं।" दोनों को यह फैसला मानना पड़ा। दोनों के चुप (मौन) होते ही वर्षों का झगड़ा समाप्त हो गया।

दुनिया में सबसे मीठी चुप (मौन) है। अगर किसी के परस्पर झगड़ा हो जाए, कोई परस्पर गाली गलौज करे उस समय एक व्यक्ति अगर मौन रख ले तो वातावरण में शान्ति की लहर दौड़ जायेगी। 'मौनेन कलहो नास्ति।' अतः समय पर हर एक को मौन रखना ही चाहिए।

मौन रखे जो समय पर, (तो) मिट जाए दुःख द्वन्द।
शान्त बने नर क्रुद्ध भी, छा जाए आनन्द॥

मूर्ख से दूर

एक मुंशी के पास एक नौकर रहता था। वह बड़ा बेवकूफ था। काला अक्षर उसके लिए भैंस बराबर था। कम वेतन के कारण मुंशी उसे छोड़ना नहीं चाहता था। एक दिन मुंशी ने नौकर को कहा—"जाओ, पोस्टकार्ड लैटर बाक्स में डाल देना।" नौकर ने पूछा—"वह कहां और कैसी है ?" मुंशी ने लेटर बाक्स की निशानी बता दी। नौकर बाजार में गया। सामने से एक काजी आ रहा था। उसके सिर पर लाल टोपी थी। काली-काली उसकी दाढ़ी थी। नौकर ने सोचा—यह बाक्स आ गया है क्योंकि मुंशी जी के बताए हुए सभी चिह्न इसमें मौजूद हैं। उसने शीघ्र काजी की दाढ़ी जा पकड़ी। परस्पर झगड़ा हो गया। सैकड़ों लोग एकत्रित हो गये। लोगों ने पूछा—"भाई ! तूने काजी की दाढ़ी क्यों पकड़ी ?" नौकर ने सारी घटना कह डाली। लोगों ने उसे अच्छी शिक्षा देकर कहा—"झगड़ा मत करो। वह सामने लेटरबाक्स है, उसमें पत्र डाल दो।"

मुंशी को जब उसकी मूर्खता का परिचय मिला तब बड़ा गुस्सा आया। ज्यों ही वह नौकर वापस पहुंचा त्योंही उसे काफी कठोर शब्दों की तर्जना सुननी पड़ी। नौकर हाथ जोड़कर बोला—"मुंशीजी ! भविष्य में ध्यान रखूंगा, कभी ऐसी गलती नहीं करूंगा।"

एक दिन अचानक मुंशी को बुखार आ गया। वैद्य को बुलाया गया। वैद्य ने रोग का निदान करके औषधि की एक खुराक तो उसी समय पिला दी और शेष तीन खुराक बोतल में डालकर पास वाले ताक में रख दीं और कहा—तीनों खुराक ले लेना, बुखार ठीक हो जाएगा।"

घड़ी में एक बजते ही चारपाई पर लेटे-लेटे मुंशी ने नौकर को आवाज दी। नौकर बोला—"फरमाइए, आपकी सेवा में हाजिर हूं।" मुंशी ने कहा—"अरे भाई! ताक में दवाई की बोतल है, उसमें से एक खुराक प्याली में डालकर मुझे दे दे।" ताक में चार-पांच बोतलें रखी थीं। एक बोतल से प्याले में कुछ दवा डालकर नौकर ने मुंशी को दे दी। मुंशी लेटे-लेटे ही कुछ उठाकर दवा पी गया। दवा का स्वाद कुछ भिन्न होने से मुंशी बोला—"पहले जो दवा ली थी उसका स्वाद और था मगर इसका स्वाद और है। कौन सी दवा पिलाई तुमने ?" नौकर ने वह बड़ी बोतल लाकर सामने रख दी। "अरे उल्लू ! यह तो स्याही की बोतल है"—मुंशी ने कहा। नौकर घबराया। बेचारा दौड़ा-दौड़ा मेज पर से स्याही सोख लाकर बोला—"मालिक ! बहुत गलती हो गई। भविष्य में ऐसी त्रुटि नहीं करूंगा। दवा के बदले में स्याही पी गये किन्तु अब आप कृपया स्याही सोख खा लीजिए ताकि पेट में गई स्याही को सोख सके।" उसकी मूर्खता पर मुंशी को बड़ा गुस्सा आया, उसी समय उसे छोड़ दिया।

मूर्ख का संसर्ग कभी भी लाभप्रद नहीं हो सकता। अतः बुरे एवं मूर्ख मनुष्य से सर्वदा दूर ही रहना चाहिए।

मूर्ख मनुज से सर्वदा, रहना सबको दूर।
मुंशी जी के भृत्य का, उपनय सुनो जरूर।।

सच्चा भिखारी

एक मस्त योगी था। सेवा-चाकरी करने अनेकों भक्त आते थे। योगी के फक्कड़ एवं निर्लोभी होने के कारण आस-पास के क्षेत्रों में भी उसका अच्छा प्रभाव था। एक दिन एक धनाढ्य ने योगी के चरणों में एक-एक सोने की मोहर चढ़ाई। योगी ने चेले को सम्बोधित करते हुए कहा—"चेले ! यह मोहर अपने को नहीं चाहिए। तुम जाओ किसी भिखारी को दे आओ।" चेला मोहरें लेकर चला। वह इधर-उधर भिखारी की खोज कर ही रहा था कि हजारों सैनिकों सहित एक राजा आता हुआ दिखाई दिया। किसी अन्य व्यक्ति से पूछने पर उसे यह ज्ञात हुआ कि राजा किसी शत्रु का राज्य छीनने को आ रहा है। क्योंकि वह अपने राज्य का क्षेत्रफल बढ़ाने के प्रयत्न में है।

चेले ने सोचा—राजा के इतना वैभवशाली होते हुए भी इसकी तृष्णा शान्त नहीं हुई है। वास्तव में यह सच्चा भिखारी है। ज्योंही राजा की शिविका के निकट

आई। चेले ने उसके रथ पर मोहर फैंक दी। राजा ने रथ रुकवा, उससे पूछा—"भाई ! मेरे रथ में मोहर क्यों डाली ?"

चेला—"राजन् ! मुझे गुरुवर का यह आदेश मिला है कि किसी भिखारी को यह मोहर दे आओ।"

राजा (क्रुद्ध होकर) "रे मूर्ख ! क्या तूने मुझे भिखारी समझा है ?"

चेला—"भिखारी की खोज करते-करते मुझे कोई नहीं मिला, मुझे तो नाथ ही मिले हैं।" राजा को वैभव का नशा चढ़ा हुआ था। कड़ककर बोला—"कहाँ है ऐसी शिक्षा देनेवाला तेरा गुरु ?" चेले के साथ राजा योगी के पास आ पहुंचा और गुस्से से लाल होकर बोला—ऐसे मूर्ख चेले को क्यों मूंड रखा है ? इसने मुझे भिखारी समझा है।

समता झूले में झूलता हुआ योगी बोला—"राजन् ! शान्त हो, मेरे प्रश्न का उत्तर दो। अभी तुम्हारी राज्य की कितनी आय है ?"

राजा—"अच्छी तरह तो मुझे याद नहीं है किन्तु सात करोड़ की अवश्य है।"

योगी—"इतनी सशस्त्र सेना लेकर अभी तुम कहाँ जा रहे हो ?"

राजा—"दूसरों के राज्यों को अपने अधीन करने अर्थात् जीतने के लिए।"

योगी—"राजन् ! तुम्हारे राज्य में इतनी आय होते हुए भी तुम्हारी तृष्णा शान्त नहीं हुई। भिखारियों की भांति भटकते रहते हो। धन का गुलाम बन दूसरों का धन हड़पने की कामना रखते हो, फिर भी तुम भिखारी नहीं हो ?" योगी की रहस्यमयी वाणी सुनते ही राजा का क्रोध शान्त हो गया और योगी के चरणों में झुककर बोला—"महात्मन् ! मैं सच्चा भिखारी हूं। क्योंकि मेरे हृदय में तृष्णा का पार नहीं है। आज आपने मेरे मन में ज्ञान की लौ जला दी। अन्धकार दूर हो गया है। धन्य है आपकी बुद्धि को।"

जिसके हृदय में तृष्णा का प्राबल्य होता है। वही इस दुनिया में सच्चा भिखारी है। रात-दिन वह इधर-उधर भटकता रहता है। वह न सुख से खा सकता है और न ही सो सकता है, अतः तृष्णा को त्याज्य ही समझना चाहिए।

वही भिखारी जगत में, जिनके मन अति आश।
आशा को जो मारता, उसे नहीं है त्रास॥

ईर्ष्या का त्याग

यूरोप में माइकेल एंजिलो नामक एक चित्रकार था। उसकी चित्रकला बड़ी लोकप्रिय थी। उसकी लोकप्रियता देखकर एक दूसरे चित्रकार को उससे ईर्ष्या

हुई। उसने सोचा—लोग मेरे गुणगान क्यों नहीं करते ? क्या मैं चित्रकार नहीं हूं ? एक ऐसा चित्र बनाऊं, जिससे लोग माइकेल एंजिलो को तो भूल जाएं और केवल मैं ही लोगों के जबान पर चढ़ जाऊं । यह सोच उसने एक स्त्री का चित्र बनाना शुरू किया। जब चित्र पूरा हो गया तो वह उसकी सुन्दरता का परीक्षण करने के लिए कुछ दूर जाकर चित्र को देखने लगा। चित्र में उसे कुछ कमी दिखाई देने लगी। लेकिन कमी क्या थी ? वह समझ नहीं पा रहा था। एक दिन माइकेल उसी मार्ग से जा रहा था। जब उसकी नजर उस चित्र पर पड़ी, तो उसे वह चित्र बहुत सुन्दर लगा। लेकिन उसमे जो कमी रह गई थी वह उसे तत्काल मालूम हो गई, इसलिए वह उस चित्रकार के घर में गया और उससे कहा "भाई ! तुम्हारा चित्र तो बहुत सुन्दर है, पर इसमें जो एक कमी रह गई है वह आंखों में खटक रही है।"

चित्रकार ने कहा—"कमी तो मुझे भी लगती है।"

माइकेल ने कहा—"तुम तनिक अपनी तूलिका देना मैं ठीक कर दूंगा।"

चित्रकार—"भाई ! क्या तुम इस कला में प्रवीण हो ? कहीं मेरे चित्र को बिगाड़ तो नहीं दोगे ? कहीं मेरी मेहनत बेकार न हो जाए ? यही भय है।"

माइकेल—"तुम इतने क्यों घबड़ा रहे हो ? मैं तुम्हारा चित्र खराब नहीं होने दूंगा।"

तूलिका मिलते ही माइकेल ने दोनों ही आंखो में दो काली बिन्दियां लगा दीं। फिर तो वह चित्र बोलता हुआ नजर आने लगा। तब उस चित्रकार ने माइकेल से कहा—"भाई ! धन्य है तुम्हारी बुद्धि को, सोने में सुगन्ध का काम कर दिया। मेरे चित्र की शोभा बढ़ाने वाले तुम ही हो, कृपया बताओ, तुम्हारा क्या नाम है ? कहां रहते हो ? क्या कारोबार है ?" माइकेल ने कहा—"भाई चित्रकार ! मेरा नाम तो माइकेल है।" यह नाम सुनते ही चित्रकार चौंका, हृदय में आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और वह हाथ जोड़कर बोला—"भाई माइकेल ! तुम्हारी उन्नति को देख मेरा हृदय निरंतर जलता था, तुमको परास्त करने के लिए मैंने इस सुन्दर चित्र का निर्माण किया है, किन्तु आज तुम्हारी सहानुभूति और सज्जनता देख मेरे विचार बदल गये हैं। अब मैं ईर्ष्या के निम्न विचारों का परित्याग कर उच्च विचारों के सांचे में अपने जीवन को ढालने का प्रयास करूंगा।"

दूसरों की बढ़ती को देख जलना हीनता है। खुश होना उच्चता का अभिद्योतक है। ईर्ष्यालु जीवन विकास की अपेक्षा अपना ह्रास ही करते हैं, अतः ईर्ष्यारूपी कीचड़ से अपने जीवन को मलिन मत होने दो।

पर की बढ़ती देखकर, मत जलना तिल मात्र ।
ईर्ष्या कीचड़ से कभी, स्नान न करना गात्र ।।

क्षणिक मन-मुटाव

एक जाट था। उसकी पत्नी बड़ी पति-भक्ता थी। वह जाट की आज्ञा का प्रतिदिन ध्यान रखती थी। जाट का स्वभाव भी अच्छा था। वह कलह कदाग्रह से दूर रहता था। दोनों का जीवन बड़ा मस्त एवं सुखी था। खेत में सैकड़ों मन अनाज होता था। दो गाड़ी, चार बैल और बीसे-तीस गाएं थीं। दोनों दूध, दही और घी खाकर हृष्ट-पुष्ट रहते थे। किसी भी तरह की चिन्ता नहीं थी।

एक दिन किसी बात को लेकर जाट जाटनी में मन-मुटाव हो गया। झगड़ा इतना बढ़ा कि एक दूसरे का मुंह देखना भी वे नहीं चाहते थे। बोल-चाल भी बन्द हो गई। आषाढ़ का महीना आया। वर्षा होने लगी। अनेकों कृषिकार खेतों में जाने लगे। जाटनी ने सोचा—खेत का समय आ गया। वह मुंह फेरकर बोली—

"लोक चाल्या लावणी, लोक क्यूं नी जाव।"

जाट भी बहुत चतुर था और खुशमिजाज भी। वह भी मुंह फेर कर बोला—

"लोक चाल्या खाय पो, लोक किनै खाय।"

जाटनी बोली—

"छींको पड़ी राबड़ी, उतार क्यूं नी लै।"

जाट बोला—

"आवै आपां बोल्या चाल्या, चाल क्यूं नी दै।"

बस, उसी वक्त दोनों का मनमुटाव मिट गया और परस्पर प्रेम उमड़ आया।

सह जीवन में मनमुटाव होना कोई विशेष बात नहीं है किन्तु विशेषता यह है कि क्षणिक तनाव भी पुनः प्रेम में परिणत हो जाए। जीवन का वास्तविक तथ्य सौहार्दपूर्ण व्यवहार ही माना गया है।

सह जीवन में कठिन क्या, होना क्षणिक तनाव।
जाट जाटनी के सदृश, करना है सुलझाव॥

गुणों की इज्जत

एक आदमी हलवाई की दुकान पर गया और दोने में गुलाब-जामुन लेकर चला। उसको रेशमी रूमाल से ढक लिया। दोना मन ही मन में सोचने लगा—इस दुनिया में मेरे जैसा भाग्यशाली कोई नहीं है। मुझे रेशमी वस्त्र से ढका गया है। वह आदमी अपनी हवेली में पहुंचा। चौथी मंजिल में एक सुन्दर टेबिल पर उस दोने को रखा। दोना फूल गया, अभिमान करने लगा—अहो! मेरी कैसी इज्जत हो रही है। मुझे बैठने के लिए कैसा सुन्दर आसन मिला है। राजा-महाराजाओं की भांति मेरा स्वागत हो रहा है। सभी लोग मुझे उच्च दृष्टि से निहार रहे है। प्रिय बच्चों की तरह मुझे यहां हाथों में लाया गया है।

किन्तु उस अभिमानी दोने को यह क्या पता था कि यह इज्जत प्रतिष्ठा व स्वागत उसका हो रहा है अथवा गुलाब-जामुन का। गुलाब-जामुन के बिना दोने की क्या कीमत है। कुछ ही देर बाद दोने में से गुलाब-जामुन तश्तरी मे लिए गये। दोना बेकार होते ही उस व्यक्ति ने दोने को नीचे फेंक दिया और उसे कुत्ते चाटने लगे।

दोनों को भान हुआ, आंखे खुली, अहंकार का नशा उतरा। वास्तव में शरीर की कोई इज्जत नही है। यदि शरीर रूपी दोने में सद्‌गुण रूपी गुलाब-जामुन होंगे, तो उसकी पूछ होगी, इज्जत होगी एवं प्रतिष्ठा होगी। जहाँ वह जायेगा, वहाँ उसका सत्कार होगा।

गुणवानों का सर्वदा, आदर है साक्षात्।
'मुनि कन्हैया' गुण बिना, कोई न पूछे बात॥

द्रोणाचार्य की दक्षता

एक दिन पाण्डव और कौरव गेंद खेल रहे थे। खेलते-खेलते गेंद कुएं में आ गिरी, सारे राजकुमार हताश हो गये। उनकी आकृति निस्तेज बन गई। मन ही मन सोचने लगे—कौन इस अंधकूप में उतरकर गेंद को बाहर निकालेगा? क्योंकि गेंद के बिना खेल, बिना नमक के भोजन जैसा है। आखिर यह निर्णय हुआ कि जिसने कुएं में गेंद डाली है, उसको ही निकालनी पड़ेगी।

गेंद डालने वाले ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—"भाइयो! भूल होना कोई बात नहीं है किन्तु भूल को सुधारना विशेषता है। तुम सब तो मेरे

भाई हो। मेरी सहायता करनी चाहिए। जिससे गेंद भी बाहर निकल जाएगी और पारस्परिक सद्व्यवहार में भी वृद्धि होगी।

इस प्रकार परस्पर चिन्तन चल ही रहा था। इतने में वहां पर द्रोणाचार्य आ पहुंचे। उनका श्याम शरीर, वीरतायुक्त मुखाकृति, चमकदार आंखों का तेज देखकर राजकुमार सोचने लगे—ये कोई महापुरुष हैं, अवश्य ही अपनी समस्या का समाधान इनके पास मिल सकेगा। सभी राजकुमार द्रोणाचार्य के पास आये और विनम्र शब्दों में बोले "महात्मन! हमारी गेंद कुएं में गिर पड़ी है। हम सब चिन्तन कर रहे हैं कि उनको कैसे निकालें ?"

द्रोणाचार्य—"राजकुमारो! बड़े आश्चर्य की बात है। आज तो गेंद पड़ी है, कल राजलक्ष्मी संकट में पड़ जाएगी तो कैसे निकालोगे? तुम सबने राजकुल में जन्म लिया है। कुछ दक्षता की आवश्यकता है।"

राजकुमार—"महामानव! आप जो कहते हैं सब ठीक है। कृपया गेंद निकालने का कोई उपाय बताएँ।"

द्रोणाचार्य—"मैं कोई यन्त्र मन्त्र नहीं जानता, किन्तु विद्या से तुम्हारी गेंद बाहर आ जायेगी। द्रोणाचार्य ने एक बाण बनाया उसका अग्र भाग नुकीला कर लिया और उसको धीरे से छोड़ा। वह बाण गेंद में लगा। और उसमें चुभ गया। उसके बाद दूसरा-तीसरा बाण चलाया। इस तरह उन्होंने कई बाण एक दूसरे में छेद दिये। बाणों से कुआ भर गया अन्त में ऊपर वाले बाण को पकड़कर उठाया तो धीरे-धीरे वह गेंद बाहर आ गई।

द्रोणाचार्य की करामात एवं चतुरता देखकर सभी राजकुमारों के हृदय में आश्चर्य का पार न रहा। सभी उनके सामने नतमस्तक हो गये और मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

चतुर एवं निपुण व्यक्ति की हर एक क्रिया सफल होती है।

चतुर मनुज होता सफल, हर कार्यों में सद्य।
'मुनि कन्हैया' चतुर की, पूछताछ है अद्य॥

युक्ति का महत्त्व

एक बार बादशाह अकबर ने सोचा बीरबल इतना दक्ष व होशियार है, इसका पिता तो न जाने कितना होशियार होगा क्योंकि पुत्र की अपेक्षा पिता के नैपुण्य में बाहुल्य होना ही चाहिए। बादशाह से रहा नहीं गया। एक दिन समय देखकर उन्होंने बीरबल से कहा—"अरे बीरबल! जब तुम इतने बुद्धिमान हो

तब तुम्हारे पिता तो तुमसे भी दुने बुद्धिमान होंगे। कल तुम्हारे पिता को मेरे पास भेजना, परीक्षा करूंगा।"

बीरबल घर गया। मन ही मन सोचने लगा—पिताजी को ऐसा समझाऊं कि बादशाह के मुंह में लड्डू आ जाए, लज्जित होना ही पड़े। बीरबल ने विनय-पूर्वक कहा—"पिताजी! कल आपको बादशाह के पास जाना है। कुछ सजगता की जरूरत है। बादशाह आपको कई तरह के टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछेंगे। कृपा करके आप कुछ भी उत्तर मत देना, चुपचाप खड़े रहना। इसी में आपको सफलता मिलेगी और राजा भी आपकी बुद्धि पर चकित हो जायेगा।"

पिता बोला—"पुत्र तुमने जैसा कहा वैसा ही करूंगा" दूसरे दिन वे बादशाह के पास पहुंचे। बादशाह ने कई तरह की बातें पूछी। प्रश्न भी टेढ़े-मेढ़े पूछे, किन्तु बीरबल के पिता ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मौन रहे। बादशाह के आश्चर्य का पार नहीं रहा। यह क्या बोलते ही नहीं हैं। मूर्ति की भांति निरुत्तर खड़े हैं। बादशाह पूछता-पूछता थक गया। आखिर में बादशाह ने कहा—"क्या करूं परीक्षा? बोलते ही नहीं हो। चले जाओ।"

बीरबल का पिता घर गया और जब बीरबल दरबार में पहुंचा तब बादशाह ने कहा—"अरे बीरबल! मूर्ख के सामने क्या करना चाहिए। बीरबल ने बड़ी युक्ति से कहा—"जहांपनाह! मौन रहना चाहिए।"

बीरबल का उत्तर सुनते ही बादशाह निरुत्तर हो गया और मन ही मन पश्चाताप करने लगा—हाय! ऐसा पता होता तो क्यों मैं बीरबल के पिता को बुलाता और क्यों मुझे लज्जित होना पड़ता?

बुद्धिमान मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से हर एक को पराभूत कर सकता है। बुद्धिमान के सामने बड़े-बड़े बादशाह भी लज्जित हो जाते हैं।

बुद्धिमान के सामने, सब जाते हैं हार।
बादशाह भी देख लो, लज्जित हुआ अपार॥

बड़े का बड़प्पन

एक धनाढ्य सेठ थे। एक दिन वे अपने बाहर के कमरे में प्रमुदितमना बैठे हुए थे। अचानक वहां एक मुसाफिर आ पहुंचा। मुसाफिर की नजर सेठजी की अंगुलियों पर पड़ी। उससे रहा नहीं गया। अपनी शंका को समाहित करने के लिए उसने सेठ से पूछा—"श्रेष्ठिन्! दाहिना हाथ बड़ा होता है या बांया?"

सेठ—"भाई! जो हाथ अधिक काम आता है मेरी दृष्टि में तो वही बड़ा

कहलाता है।"

मुसाफिर—"तो फिर बतलाइए आपने यह अंगूठी बाएं हाथ में क्यों पहने रखी है? दाहिने हाथ को क्यों नहीं पहनाई।"

सेठ—"पथिक! एक दृष्टि से तुम्हारा कहना सत्य हो सकता है, किन्तु तनिक गहराई से सोचो और मेरी अन्तस्तल की भावना को पहचानो। मैंने पहले ही कहा था, जो ज्यादा काम करे वही बड़ा है। जो छोटे से काम कराता है, वह बड़ा नहीं है। मैंने बाएं हाथ में अंगूठी पहिन रखी है, इससे दाहिने हाथ का बड़प्पन अपने आप सिद्ध हो जाता है। छोटे को महत्त्व देना ही बड़े का बड़प्पन है। छोटे को मान देना बड़ों का गौरव है।"

मुसाफिर—"सेठ साहब! यह अंगूठी बड़ी अंगुली को न पहिनाकर सबसे छोटी अगुली को पहिनाई। क्या इसमें भी कोई रहस्य है?"

सेठ—"मुसाफिर! जो सबसे छोटा होता है, उसका लाड़ प्यार अधिक होता ही है। मैंने भी छोटी अंगुली को अंगूठी पहिनाई है। छोटे की सार-सम्भाल करने वाला मनुष्य ही ससार मे पूजनीय कहलाता है और उसका मान भी बढ़ता है।"

मुसाफिर—"श्रेष्ठिन्! आपके विचार बहुत ही प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं। आप जैसे महापुरुष ही विश्व विकास में सहायक बन सकते हैं। धन्य है आपकी कल्पना और धन्य है आपकी विचक्षणता।"

दुनिया में बड़ा मनुष्य वह है, जिसने छोटे को मान देना सीखा है। बड़ा गुणों से बनता है, उच्च सिंहासन पर आरूढ़ होने से नहीं।

स्तुत्य वही संसार में, जो नर है गुणवान्।
बड़ा वही जो तुच्छ को, देता है सम्मान॥

परावलम्बन से दुःख

एक शहर में एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसकी आंखें मोतियाबिन्द से आच्छादित थीं। उस ब्राह्मण के आठ पुत्र थे। आठों ही पिता के आज्ञाकारी थे। पुत्रों ने हाथ जोड़कर विनय से कहा—"पिताजी! सभी अवयवों मे आंखों को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आंखों के अभाव में सर्वत्र अंधेरा है। आंखों की सुरक्षा जीवन की सुरक्षा है अतः आपको आंखों का इलाज अवश्य ही कराना चाहिए।"

वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—"पुत्रो! तुम्हारा कथन अक्षरशः सत्य है कि आंखों के बिना कुछ नहीं है, किन्तु मुझे आंखों की आवश्यकता नहीं। तुम मेरे आठ पुत्र हो, मेरे आठ पुत्रवधुएं हैं, तुम्हारी मां है, मैं कितना किस्मत वाला हूं।

मुझे चौतीस आंखें उपलब्ध हैं। मुझे किसी भी बात की चिन्ता नहीं है। तुम लोग सब विनीत हो, सुशील हो, सेवा-सुश्रूषा में उद्यत रहते हो। फिर यदि दो आंखें न हों तो क्या बात है ?"

पिता ने पुत्रों का सुझाव स्वीकार नहीं किया। क्रमशः मोतियाबिन्द बढ़ता गया। कुछ ही दिनों में उसकी आंखों से अंधियारा छा गया। प्रत्येक शारीरिक क्रिया में वह परावलम्बी बन गया। एक दिन की बात है कि घर में अचानक आग लग गई। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से आगे भाग गए। किन्तु उस वृद्ध को किसी ने भी याद नहीं किया। वह उस धधकती हुई ज्वाला में भस्म हो गया। न तो पुत्र काम आये और नहीं अपनी पत्नी काम आई।

स्वावलम्बन से व्यक्ति परमुखापेक्षी नहीं रहता। जो परावलम्बी रहता है उसको वृद्ध विप्र की भांति मौत के घाट उतरना पड़ता है।

परवशता से वृद्ध द्विज, चला गया यमधाम।
स्वावलम्बी हर जगह, करता इच्छित काम॥

मौन व्रत

वंचक नाम का एक महाजन था। उसका स्वभाव बहुत ही खराब था। वह झगड़ा करने को हर समय तत्पर रहता था। उसकी पत्नी भी बड़ी कलहकारिणी थी। घर में परस्पर झगड़े चलते ही रहते थे। स्त्री उसको पांच गालियां सुनाती, तो वंचक उसको दस गालियां सुनाता था। आपस में क्रोधानल के अंगारे उछलते थे। कभी-कभी क्रोध के वशीभूत हो वंचक स्त्री को पीट भी देता था। स्त्री मार खाती-खाती हैरान हो गई। वह मन ही मन सोचती कि मेरा पति क्या है? साक्षात यम है। सुख से नींद भी नहीं लेने देता है। कब मिलेगी इससे मुक्ति ?

उसी नगर में एक दिन योग-क्रिया के विशेषज्ञ एक योगीश्वर पधारे। वे विद्वान होने के साथ-साथ मंत्र-तंत्र करने में भी बड़े प्रवीण थे। अनेकों व्यक्ति उनके सत्संग में आते थे। जटिल से जटिल प्रश्नों का भी उचित समाधान पा, सभी योगी के गुण गाने लगे। सारे शहर में उनकी प्रसिद्धि हो गई कि योगी तो कोई सिद्ध पुरुष है। शहर की कई स्त्रियां धन, पुत्र की आशा ले योगी के पास आने लगीं। वंचक की स्त्री भी दौड़ी-दौड़ी योगी के पास आ बोली—"गुरुवर! मेरा एक-एक दिन दुःख में जा रहा है। प्रतिदिन मुझे जूतों की मार खानी पड़ती है। आप बड़े उपकारी हैं। सबके संकट हरने वाले हैं। कृपया मुझे भी कोई ऐसा मंत्र दीजिए जिससे मेरे दुःख के द्वार बन्द हो जाएं।"

योगी ने उसके सब पूछताछ कर कहा—"बेटी ! ये दो मंत्रित चावल, तेरा पति जब कभी घर आए तब इन चावलों को मुख में डाल लेना। फिर चाहे तेरा पति तुझे गालियां दे तुझ पर प्रहार भी करे, तो भी तू मौन रहना। एक शब्द भी प्रत्युत्तर में मत बोलना। यदि इस मंत्र की एक महीने तक भी साधना कर लेगी, तो सारा संकट टल जाएगा।" वह चावल ले, खुशी-खुशी अपने घर गई।

इधर बंचक घर आया और जोर-जोर से बक-बक करता हुआ स्त्री को गालियां देने लगा—"निकल मेरे घर से पापिनी !" स्त्री ने शीघ्र मुंह में चावल डाल लिए। मौन धारण कर बैठ गई। पांच सात दिनों में ही सब झगड़े बन्द हो गए। आपस में प्रेम का द्वार खुल गया।

दोनों का जीवन सुखी हो गया और आनन्द से रहने लगे।

'मौनेन कलहो नास्ति' मौन रखने से कलह शान्त हो जाता है। वर्षों का मन-मुटाव भी शान्त हो जाता है और परस्पर सौहार्द का सागर उमड़ने लग जाता है, अतः समय पर मौन रखना अत्यन्त आवश्यक है।

अवसर पर जो मौन की, करे साधना सत्य।
उसे प्रेम मिल जाएगा, जीवन का जो पथ्य ॥

प्रेम के वश लक्ष्मी

लक्ष्मी ने अर्द्ध रात्रि में सेठ लक्ष्मीधर से कहा—"श्रेष्ठिन ! मुझे आपके घर में निवास करते हुए काफी समय हो गया है। अब मैं यहां से जाना चाहती हूं। मेरे प्रभाव से सारे संसार में आपकी कीर्ति-ध्वजा लहरा रही है। आपका सर्वत्र सम्मान एवं सत्कार हो रहा है। अन्त में मैं आपको वर देना चाहती हूं। आप यथेच्छित मांग सकते हैं।"

यह सुनते ही श्रेष्ठी के हृदय मे चिन्तन चला और नम्र शब्दों में कहा—"देवी ! क्या मांगूं ? कुछ समझ में नही आ रहा है।"

तब लक्ष्मी ने कहा—"खैर, आज नहीं तो कल मांग लेना।" इतना कह लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई।

सुबह होते ही सेठ ने अपने समस्त परिवार को एकत्रित किया और लक्ष्मी से हुए रात्रिकालीन वार्तालाप को सबके सम्मुख रखते हुए सुझाव मांगे। सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार रखे।

अन्त में सेठ की पुत्रवधू ने कहा—"पिताजी ! अपने को न तो धन चाहिए और न परिवार चाहिए। अपने को चाहिए प्रेम, मित्रता, सद्व्यवहार और कलह

का प्रतिकार। अतः लक्ष्मी के आगे आप यही याचना कर।" दूसरे दिन लक्ष्मी का आगमन होते ही सेठ ने कहा—"हे जगदम्बे! लक्ष्मी! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मुझे तो केवल परस्पर प्रेम, और मैत्री-व्यवहार चाहिए।"

यह सुनते ही लक्ष्मी के मुंह से सहसा ये शब्द निकले—"सेठ! आज तुम्हारी बहुत बड़ी विजय हुई है। तुमने प्रेम का वर मांग लिया। मुझे यह कल्पना नहीं थी कि तुम ऐसे अकाट्य वर की याचना करोगे किन्तु अब तो मुझे अपना वचन निभाना ही पड़ेगा। अब मैं तुम्हारे घर से नहीं जा सकती। क्योंकि जहां प्रेम है, मैत्री का व्यवहार है वहीं मैं रहती हूं। अब यदि मुझे कोई यहां से बलात् निकालना भी चाहे तो भी नहीं जाऊंगी। सदा तुम्हारे घर पर ही रहूंगी। जहां फूट है, कलह-कदाग्रह है वहां हजारों आग्रह होने पर भी मैं नहीं आती क्योंकि मुझे एकता से प्यार है।"

सेठ सुखी हो गया और अपनी पुत्रवधू के परामर्श की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगा। अतः मित्रो! फूट को कभी भी प्रश्रय मत दो। परस्पर मित्रता और सच्चे प्रेम का व्यवहार करो। सर्वत्र विजय होगी।

जहां परस्पर प्रेम है, वहां लक्ष्मी का वास।
लक्ष्मीधर की बात से, होता यह आभास॥

भाग्य परीक्षा

एक गरीब ब्राह्मण था। जीवन निर्वाह के लिए वह इधर-उधर भटकता रहता था। किन्तु किस्मत के अभाव में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता था। वह एक दिन जंगल में शौच आदि कामों से निवृत्त होकर वापिस लौट रहा था। मार्ग में एक चमकीला पत्थर उसकी नजर में आ गया। पत्थर का आकार सुन्दर एवं आकर्षण होने के कारण ब्राह्मण ने उठा लिया। वह विशाल वट-वृक्ष के नीचे छाया में बैठा-बैठा चिन्तन करने लगा—वह दिन मेरा भी धन्य होगा जब आज जैसे ठण्डे दिन में खीर-मालपुए खाने को मिलेंगे। मिष्ठान की इच्छा करते ही उस कंकर के प्रभाव से एक थाल भर खीर-मालपुए उसके सामने हाजिर हो गये। वह तीन दिनों का भूखा तो था ही। इतना डटकर खाया कि खाते-खाते पेट फटने की नौबत आ गई। फिर भी दैविक शक्ति के कारण वह थाल खाली नहीं हुआ। अधिक खाने से नींद आना स्वाभाविक था। ब्राह्मण ने सोचा—अब तो यदि सात मंजिल का महल मिल जाय तो उसमें आराम से सोऊं।

उस कंकर (चिन्तामणि रत्न) के प्रभाव से ब्राह्मण की कामना सफल हुई। भयंकर जंगल में भी आलीशान प्रासाद खड़ा हो गया। ब्राह्मण मन ही मन फूलने लगा—मुझ-सा भाग्यशाली इस दुनिया में कोई नहीं है। सब मन वांछित पूर्ण हो रहे हैं अब तो मखमली शय्या चाहिए। वह भी हो गई। ऊपर की मंजिल में शीतल पवन बह रही थी। वह सो गया।

रत्न अधिष्ठित देवी ने सोचा—यह ब्राह्मण कभी कुछ मांगता है कभी कुछ। किन्तु अब इसकी भाग्य परीक्षा करनी चाहिए। देवी ने कौए का रूप बनाया। जहां वह ब्राह्मण सोया हुआ था वहां आकर वह कौआ बैठ गया और जोर-जोर से कांव-कांव करने लगा। इधर उस ब्राह्मण को नींद आ रही थी। कौए के कर्कश कोलाहल से उसकी नींद टूट गई। नीचे से ऊपर तक आग बबूला हो गया। रंग में भंग करने वाला यह कौआ कहां से आ गया? कौवे को उड़ाने के लिए उसने दो-तीन बार वहां से ही हाथों से प्रयास किया। फिर भी वह नहीं उड़ा। ब्राह्मण आलसी तो था ही पलंग पर लेटे-लेटे ही उसने उस कंकर को कौवे पर फेंका। देवी रत्न लेकर चली गई। पीछे से ब्राह्मण मूल अवस्था में रह गया। फूट-फूटकर रोने लगा—हाय! ऐसा मुझे पता होता कि वह चिन्तामणि रत्न था तो मैं उसे क्यों फेंकता? मैं स्वयं उठकर कौवे को उड़ा देता। किन्तु अब क्या?

मनुष्य का जन्म चिन्तामणि रत्न के समान है। जैसे खोया हुआ रत्न मिलना कठिन है, वैसे ही मनुष्य का जन्म दुष्प्राप्य है। अज्ञानी मनुष्य आलस्य एवं प्रमाद वश रत्न को गंवा देते हैं, किन्तु ज्ञानीजन इस रत्न का पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं।

सुरमणि सम अनमोल यह, मानव का अवतार।
लाभ कमाते विज्ञ जन, नहीं खोते बेकार॥

धन से अनर्थ

एक दिन सरस्वती ने कहा—"लक्ष्मी! दुनिया में मैं सबसे बड़ी हूं। मेरा सर्वत्र स्वागत होता है। मेरे आगे तू निस्तेज हो जाती है। 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' इस कहावत को सब जानते हैं।" लक्ष्मी को यह सब कब सहन था। वह तमककर बोली—"बहन सरस्वती! तेरा वाग्-प्रलाप कानन कुसुम की भांति बेकार है। मुझे देखकर दुनिया पागल बन जाती है। कृत्य-अकृत्य को भूल जाती है। अतः सबसे बड़ी मैं हूं। इसका साक्षात प्रमाण देकर बताती हूं।" लक्ष्मी ने दैविक शक्ति से मार्ग के पास जंगल में एक बहुत बड़ी सोने की पाट (शिला) रखी। इतने में दो

राजपूत वहां आ गये । एक ने कहा—"यह सोने का पाट मेरा है, मैंने पहले देखा है।" दूसरे ने कहा—"मैं इसका हिस्सा लेकर रहूंगा।" इस तरह दोनों में परस्पर झगड़ा हुआ । तलवारें खिंची । दोनों ही यमराज के अतिथि बन गये ।

उसी जंगल में एक बाबा की झोंपड़ी थी । बाबा भिक्षा लेकर आ रहा था । उसकी नजर सोने की पाट पर पड़ी । दिल ललचाया । खाना-पीना सब भूल गया । सोचने लगा क्या करूं ? पाट बड़ी बहुत है, झोंपड़ी में कैसे ले जाऊं ? ऐसा विचार कर वह वहीं बैठ गया । अंधेरा छा गया । उसी मार्ग से ६ चोर चोरी करने जा रहे थे । सबके पास अस्त्र-शस्त्र थे । सोने की चमक देखकर वे सब उसके पास आये । वहां बाबा बैठा था । चोरों ने पूछा—बाबाजी, यहां कैसे बैठे हो ? बाबा बोला—इसी झोंपड़ी में रहता हूं । यह मेरी शिला है । इसकी रक्षा के लिए बैठा हूं ।

चोरों ने पूछा—तुम्हारे पास सोने की पाट कहां से आई ? बाबा बोला—भगवान् की भक्ति करते हुए २० वर्ष हो गये । भगवान् मेरे पर प्रसन्न हुए और उन्होंने यह भेंट भेजी है । चोरों ने बाबा को ललकारते हुए कहा—अरे ढोंगी ! तू साधु कहलाता है । तू सोने की पाट का क्या करेगा ? इसे तो हम लेंगे । जिंदगी प्रिय है तो यहां मत ठहर ।

"तुम कैसे ले जाओगे ? इस पाट का मालिक तो मैं हूं । किसी भी स्थिति में यह पाट नहीं मिलेगा ।"

बस फिर क्या···चोरों ने बाबा पर तलवार चलाई । बाबा परम धाम पहुंच गया । सभी चोरों की आकृति प्रफुल्लित हो रही थी । सबने सोचा अब चोरी करने की आवश्यकता ही नहीं है । क्योंकि यह धन इतना है कि जीवनपर्यन्त खाएं फिर भी यह खत्म होने वाला नहीं है । लेकिन पाट को किस तरह ले जाएं । टुकड़े किये बिना तो ले जाना असम्भव है । अतः पाट के छः टुकड़े कर लें । पर साधन के अभाव में टुकड़े कैसे हों ? इतने में उनको गांव में रहने वाला सुनार याद आ गया । वह अपना मित्र है । हर कार्य में अपने को सहायता देता है तो इस कार्य में भी अवश्य सहायक बनेगा ।

चार चोर तो पाट की रक्षा में रहे । दो चोर सुनार के घर पहुंचे । सुनार को जगाकर बोले—"मित्र ! छैनी हथौड़ा आदि लेकर चलो । सोने की पाट को टुकड़े करना है ।" चोरों ने आदि से लेकर अन्त तक की कहानी सुना दी ।

सुनार बोला—मुझे क्या मिलेगा ? चोर बोले—छः हम हैं, सातवां तू है । बराबर बंटवारा कर लेंगे । सुनार बड़ा चालाक था, धूर्त था । उसने सोचा अवसर का लाभ उठाना ही चाहिए । सुनार जरा मुस्करा कर बोला—मित्रो ! यह काम मेहनत का है । मुझे लग रही है भूख । पेट भरे बिना श्रम का काम हो नहीं सकता । अतः जरा ठहरो, खाना बनालूं । मैं खा लूंगा । तुम भी खा लेना ।

सुनार रसोई में गया। सात लड्डू तैयार किये छः तो बड़े और सातवां छोटा। सातवें के अतिरिक्त छः ही मोदकों में जहर मिला दिया।

सुनार जंगल में चोरों के साथ पहुंचा। पाट को देखकर बहुत खुश हुआ। सुनार बोला—मित्रो! काम बहुत बड़ा है। तुम्हें भी भूख लगी होगी। अतः पहले पेट पूजा, फिर काम दूजा। पहले कुछ खा लें फिर काम शुरू करें। यह बात चोरों के मन में भी जंच गई। सुनार ने झट सातों लड्डू निकाले। बड़े-बड़े लड्डू चोरों को दिए और स्वयं ने छोटा रखा। चोरों को सन्देह उत्पन्न हुआ और सुनार से पूछा—मित्र! हम सबको बड़ा और खुद के लिए छोटा लड्डू। क्या इसमें कोई रहस्य है?

सुनार ने कहा—मैं संग्रहणी के रोग से संग्रस्त रहता हूं। अतः मैं अधिक नहीं खा सकता। चोरों की शंका दूर हुई। लड्डू बड़े प्रेम से खाए। स्वादिष्ट होने के नाते चोरों ने सुनार को धन्यवाद दिया। सुनार ने सोचा—जहर चढ़ने में कुछ समय लगेगा। अतः अधिक समय यहीं ठहरना मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है। शौच के बहाने चोरों से पूछकर वह झाड़ी जाकर छिप गया।

इधर चोरों के मन में विकृति आ गई। उन्होंने सोचा—पाट को तोड़ने का तो सारा सामान पड़ा ही है। स्वतः ही तोड़ लेंगे सुनार को हिस्सा क्यों दिया जाय? उसे मारने की योजना बनाने लगे। उधर छुपा हुआ सुनार चोरों की मृत्यु की इन्तजार में था। चोरों को बेहोश जैसा देखकर सुनार आया। चोर बोले—मित्र! इतनी देर से कहां गया था? हमें तो प्यास लग रही है। पानी पिला। सुनार ने सोचा बस पानी पीते ही सबके प्राण पखेरू उड़ जाएंगे। सुनार लोटा-डोर लेकर कुएं पर गया झुककर पानी निकालने लगा कि चोरों ने धक्का मार-कर उसे कुएं में डाल दिया। चोर पाट के पास आये। तोड़ने की तैयारी करने लगे। शरीर में जहर फैल गया। छः ही चोरों ने सदा के लिए आंखें मूंद लीं। इस तरह सोने की पाट ने दस व्यक्तियों के प्राण ले लिए। परन्तु वह किसी के काम नहीं आई। लक्ष्मी ने कहा—बहन सरस्वती! देखी मेरी करामात। सारा संसार मेरे पीछे पागल बन रहा है। मुझे प्राप्त करने के लिए लड़ते हैं, स्वयं नष्ट हो जाते हैं फिर भी उनकी लालसा शांत नहीं होती।

सरस्वती ने कहा—बहिन लक्ष्मी! अज्ञान के वश में दुनिया तेरे पीछे पागल बन रही है। प्राणों की आहुति देती है। किन्तु जो ज्ञानी है, जिनका विवेक जागृत है, वे धन को अनर्थ का मूल मानते हैं। जाजवान मानते हैं। अतः तू तेरी माया को समेट ले अन्यथा न जाने कितने अज्ञानी लोग अपने प्राणों से हाथ धो बैठेंगे।

सिद्धांतों में परिग्रह को दुःख की खान बताया गया है। परिग्रह को पाप

बताया गया है। धन के चक्र में फंसकर इन्सान कृत्याकृत्य को भूल जाता है। अतः महापुरुषों को इस चक्र से निरन्तर दूर रहना चाहिए।

इस दुनिया में अर्थ हित, होते बड़े अनर्थ।
अर्थार्जन में जिन्दगी, फिर क्यों खोते व्यर्थ ॥

सच्चे मित्रों का संग

एक भोला बनिया था। वह कई वर्षों से रोगग्रस्त रहता था। एक दिन एक अच्छे वैद्य का योग मिल गया। बनिया बोला—वैद्यराज जी ! आप मुझे कोई ऐसी औषधि बताइये जिससे मैं स्वस्थ हो जाऊं। वैद्य ने उसे अच्छी तरह देखकर कहा - आपको ४० दिन तक केवल गाय के दूध पर रहना पड़ेगा निश्चित ही आपकी बीमारी जड़ से कट जाएगी। क्योंकि गाय का दूध हल्का और पाचक होता है।

बनिया घर गया और सोचने लगा—अब तो प्रतिदिन ६-७ सेर दूध चाहिए। अतः गाय लेनी चाहिए। वह पशुओं के बाजार में गया। अनेकों गायें देखीं। कई दुबली पतली थीं। कई रंग-विरंगी थीं उन सब में एक हृष्ट-पुष्ट गाय थी जिसके गले में घंटी बंधी हुई थी। उसने सोचा—यह गाय अच्छी होनी चाहिए। क्योंकि अन्य किसी के गले में घण्टी नहीं है। हृष्ट-पुष्ट होने के नाते दूध भी अच्छा होना चाहिए। बस, किसी से सलाह भी नहीं की और उसने मुंहमांगी कीमत देकर गाय को खरीदकर घर ले आया। उस बनिये की स्त्री बड़ी चतुर थी। उसने गाय को देखते ही पति से पूछा—यह गाय कितनी बार ब्याई है ? बनिया—यह तो मैंने नहीं पूछा।

स्त्री—यह दूध कितना देती है ?

बनिया—यही भी मैंने नहीं पूछा।

स्त्री—क्या इसे दुह कर देख लिया था ?

बनिया—शरीर से यह गाय हृष्ट-पुष्ट है, गले में सुन्दर घण्टी है। यही सोच-कर खरीदी।

स्त्री—आपके पैसे पानी में गये। यह गाय बांझनी है। दूध बिल्कुल भी नहीं देगी। केवल शारीरिक पुष्टता क्या काम आयेगी ?

बनिया—अगर ऐसी बात है तो घबड़ाने की कोई बात नहीं है। गाय किसी और को बेच दूंगा। कीमत आ जायेगी फिर अच्छी दूध वाली गाय ले आऊंगा। दूध पीता रहूंगा।

स्त्री—पतिदेव ! सारी दुनिया आप जैसी भोली नहीं है। परीक्षा किसे-किसकी कौन लेगा ? इसलिए चुप रहना ही अच्छा है। दूसरों को बताने से खुद की मजाक होगी।

गाय उसी के गले में बंध गई और पैसे सब पानी में चले गये।

बाह्य आडम्बर और झूठे ढोंग दिखाने वाले साधुओं के संग से आत्म-ज्ञान रूपी दूध कभी भी नहीं मिल सकता। अगर किसी को आत्मा का ज्ञान करना है, जीवन का कल्याण करना है तो त्यागी वैरागी एवं सच्चे साधुओं का सत्संग करना चाहिए।

आत्मज्ञान के दूध का, करना है यदि पान।
(तो) त्यागी सच्चे संत का, करो संग अम्लान॥

ढोंगी बाबा

एक बाबाजी अपने चेले के साथ किसी गांव की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक गन्ने का खेत आया। उसे देखकर बाबा जी के मुंह में पानी आ गया और चेले से कहा—यह थैला लेकर जाओ, इसमें जितने समा सकें उतने गन्ने भर कर ले आओ। चेला होशियार था। खेत में घुसा अपना काम करने लगा। बाबा जी बाहर खड़े पहरा दे रहे थे। इतने में चार किसान आये। चारों के हाथ में भाले थे। गुरुजी घबड़ाये अगर चेला गन्ने तोड़ता हुआ पकड़ा गया तो पीटा जायेगा। अब तो कोई न कोई कला चलानी चाहिए।

गुरु ने मधुर स्वर में गाना शुरू किया—"संत पकड़ लो संत पकड़ लो आ गये गर्म धारी।" गाने की कला से किसानों का मन आकर्षित हो गया। पद सुनने में वे लीन हो गये। इस गाने में युक्ति यह थी किसान एक अर्थ समझे और चेला दूसरा अर्थ समझे। इस पंक्ति से किसानों को कहा गया कि संसार से यदि छुटकारा पाना हो तो संत को पकड़ लो अर्थात् संत समागम करो। गर्भाधारी अर्थात् यम के दूत आने वाले हैं। चेले से कहा—खेत के मालिक आ गये हैं। अतः गन्ने जल्दी-जल्दी भरो।

बाबाजी ने दूसरी पंक्ति फिर बोली—लम्बे हों तो छोटे कर लो, करलो गुप्ता धारी। किसानों को समझाते हुए बोले—तुम्हारे जन्मांतर का मार्ग लम्बा है सन्त समागम से छोटा कर लो। दूसरे अर्थ में चेले से कहा—गन्ने यदि बड़े हों तो छोटे कर थैले में छिपा लो। भजन के तीसरे पद में कहा—"यमराज की मार पड़ेगी, दुःख होती भारी।" किसानों से कहा—यदि तुम संत समागम

नहीं करोगे तो जानवरों का जन्म धारण करना पड़ेगा और चाबुक आदि की मार खानी पड़ेगी। शिष्य को चेतावनी देते हुए कहा—अगर ज्यादा देर करोगे तो मुझे जूते की मार खानी पड़ेगी। बाबा ने सोचा—चेला अभी तक तो आया ही नहीं, उसे समझाने के लिए चौथे पद्य में कहा—"अन्दर पूजा होसी थारी बाहर होसी म्हारी।" इस पद्य में किसानों को कहा गया—यदि भगवान् की भक्ति नहीं करोगे तो नरक में तुम्हारी मरम्मत होगी, और बाहर भी। चेले से कहा—समय बहुत हो गया है किसान लोग अन्दर तुझे मारेंगे। बाहर मुझे भी मार खानी पड़ेगी।

चेला बड़ा विचक्षण था। उसने दस बारह गन्ने उखाड़े थे। उनके टुकड़े थैले में भर रहा था। बाहर निकलने की तैयारी थी। चेले की प्रतीक्षा में बाबा ऊब गया। क्या हुआ अभी तक चेला नहीं आया? उससे रहा नहीं गया जोर से फिर पांचवें पद्य में कहा—"राम नाम को रटकर चेले टप जा परली क्यारी।" इस पद्य में किसानों को कहा—तुम राम नाम लेकर संसार-समुद्र से पार पहुंच जाओ। शिष्य को चेतावनी थी कि अब खतरा बहुत बढ़ गया है इसलिए राम का नाम लेता हुआ परली तरफ की क्यारी से बाहर निकल जा। इस तरफ आयेगा तो किसान पकड़ लेंगे।

चेला थैला लेकर बड़ी चतुरता से बाहर आ गया। किसान भजन सुनने में इतने लीन थे कि किसी को तनिक भी पता नहीं लगा। बाबा की करामात पर चेला बहुत खुश हुआ।

साधुओं का चोला पहनकर जो हिंसा करते हैं, झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, कराते हैं उनका कभी कल्याण नहीं हो सकता और न ही दूसरों का कल्याण भी कर सकते हैं। स्वयं भी डूबते हैं और दूसरों को भी डूबने का मार्ग बताते हैं। अतः ढोंगी साधुओं से दूर रहकर सच्चे त्यागी साधुओं का समागम करना चाहिए।

ढोंगी संतों का नही, हितकर होता संग।
त्यागी संतों का सतत, सुखकारी है संग ॥

प्रामाणिकता

एक वैभवशाली सेठ बगीचे में घूमने के लिये जा रहा था। मार्ग में एक गरीब लड़का रमेश मिल गया। उसने कुछ पैसों की याचना की। सेठ ने जेब से एक चवन्नी निकाल उसे देते हुए कहा—"एक आना तुम ले लो, तीन आने मुझे

वापस दे दो।" खुले पैसे नहीं होने के कारण उसने कहा—"मैं जल्दी भंजाकर लाता हूं। आप यहां ठहरिये।" वह दौड़ा-दौड़ा गया, अधिक समय लगने से सेठ तो वहां से चला गया। जब रमेश जल्दी भंजाकर लौटा तो सेठ के न मिलने पर उसने यह निश्चय कर लिया कि जब कभी सेठ साहब इधर से गुजरेंगे तो तीन आने वापस दे दूंगा।

रमेश भीख मांग-मांग कर अपना जीवन निर्वाह करता ही था किन्तु उन तीन आनों के वह कभी भी हाथ नहीं लगाता था। एक सप्ताह पश्चात् उसी मार्ग में उसी सेठ को देखकर रमेश दौड़ा और पास जाकर बोला—"सेठ साहब! नमस्ते। ये लीजिए आपके तीन आने। बहुत अच्छा हुआ आपके पुनः दर्शन हो गये। अन्यथा इन तीन आनों का मेरे सिर पर बहुत भार था। सेठ को तनिक भी याद नहीं था। उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। बालक की ईमानदारी पर वह प्रसन्न हो पुनः पुनः उसे निहारने लगा। सेठ रमेश को अपने घर ले गया और उसे स्कूल में भर्ती करवा दिया। रमेश की बुद्धि तीक्ष्ण होने से प्रत्येक कक्षा में प्रथम आता था। कुछ ही वर्षों में वह विद्वान हो गया और आगे जाकर एक अफसर बना। प्रामाणिकता और ईमानदारी के योग से रमेश का जीवन सुखी हो गया।

सच्चाई और ईमानदारी से ही मनुष्यत्व का मूल्यांकन होता है। प्रामाणिक व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है। प्रामाणिकता जीवन की उच्चतम निधि है, इसकी रक्षा अवश्य ही करनी चाहिए।

सच्चाई के योग से, उन्नति हुई अनन्य।
"मुनि कन्हैया" नीति का, फल है सतत सुरम्य॥

सच्चे सुख कौन से

एक सेठ था। वह अपनी ससुराल जा रहा था। मार्ग में थकावट उत्पन्न हो गई। उसी मार्ग से एक जाट गाड़ी में आ रहा था। सेठ ने पूछा कहां जा रहे हो? जाट ने कहा—अगले गांव में। सेठ बोला—मुझे भी उसी गांव में जाना है। पैरों में थकावट आ गई है। गाड़ी में बैठने दोगे? जाट बोला—मुझे क्या दोगे? सेठ ने कहा—मीठे-मीठे पकवान खिलाऊंगा। जाट बोला—मुझे तो और कुछ नहीं चाहिए। गुड़-राब दो तो ले चलूं।

सेठ साहब—गुड़-राब से भी अच्छा खाना देंगे।

जाट—सेठ साहब! इस जगत में उससे अच्छा कुछ नहीं है। मुझे गुड़-राब चाहिए। अगर इसके लिए तैयार हैं तो बैठ जाइए, अन्यथा नहीं।

सेठ ने सोचा—ससुराल में तो बरफी पेड़े आदि अच्छे-अच्छे पकवान मिलेंगे,

गुड़-राब की तो बात ही क्या है ? जाट की शर्त स्वीकार कर ली। गाड़ी में बैठा। ससुराल पहुंचा। सेठ के आदर-सत्कार के साथ-साथ जाट का भी होने लगा। दोनों भोजन के लिए बैठे। बर्फी पेड़े और दूसरे अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे गये। किन्तु गुड़-राब नहीं आई। जाट से रहा नहीं गया। इशारे से सेठ साहब को कहा—गुड़-राब कहां है ? सेठ ने इशारे से कहा—थोड़ी देर बाद आयेगी। खाना तो शुरू करो।

जाट मन ही मन खीझने लगा। आंखें लाल हो गईं। आकृति बदल गई। सेठ पर हमला करने की सोचने लगा। बारह बजे तक तो भूखा रखा और अब यह धूल और ढेले देता है। गुड़-राब की शर्त को तो भूल ही गया पर अन्य व्यक्तियों की शर्म से वह कुछ भी बोल नहीं सका।

सेठ ने भोजन करना शुरू किया। यह देखकर जाट का सिर फिर गया। जाट तो जाट ही होता है। उसने फेंट बांधी। हाथ में लाठी ली। सेठ के पास जाकर बोला—वायदे को भूल गया और खाना खाने लग गया। अब इसका प्रतिफल भोगना पड़ेगा। तैयार हो जा।

सेठ ने सोचा—इस गंवार ने अभी तक बर्फी पेड़े का स्वाद नहीं लिया है। इसलिए 'गुड़राब-गुड़राब' की रटन लगा रहा है। अगर एक बार उनका स्वाद चख लेगा तो और सब भूल जायगा। कमरे में अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं था। तब सेठ उठा और जाट की थाली में बर्फी का एक बड़ा टुकड़ा लेकर जाट की गरदन पकड़कर उसके मुंह में ठूंस दिया। जीभ को आस्वाद मिलते ही जाट का गुस्सा शान्त हो गया। बर्फी और पेड़े दबादब खाने लगा। सेठ तो धीमे-धीमे भोजन कर रहा था। इस तरह सेठ ने जब तक भोजन किया तब तक वह जाट चार थाली भरकर मिठाई सफाचट कर गया। जाट का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा और सेठ को कहने लगा—सेठ साहब जब कभी भी आपको ससुराल आना पड़े तो मुझे बुला लेना। मैं आपको गाड़ी में बैठाकर ससुराल पहुंचा दूंगा। आज के खाये हुए पकवान तो याद आएंगे। आपने मेरे पर बड़ी कृपा की। ऐसे मिष्ठान जिन्दगी में कभी नहीं खाये। सेठ बोला—क्या गुड़-राब मंगाऊं ? जाट बोला—मैं मूर्ख थोड़ा ही हूं। गुड़राब से कौन माथा लगाए।

इन्द्रियों के सुख गुड़राब के समान हैं। आत्मिक सुख बर्फी-पेड़े हैं। जब तक बर्फी पेड़े के स्वाद का पता नहीं होता तब तक गुड़राब खाने की इच्छा होती है। बर्फी आदि की रसानुभूति होते ही गुड़राब को कोई भी नहीं खाता है। अतः आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मिक सुख के स्वाद का, नहीं जहां तक भान।
तब तक इन्द्रिय-सौख्य में, फंसे अब इन्सान॥

विजय का द्वार–पुरुषार्थ

छोटा गांव। दिन का समय। कड़कड़ाती हुई धूप। धरातल गर्म। भिखारी भिखुराम, हाथ में मिट्टी का खण्डित बर्तन, विश्राम के लिए कुएं पर जा पहुंचा। रूखी-सूखी रोटियां ही उसकी उदर-पूर्ति का साधन थी। बड़ी कठिनता से सम्प्राप्त खाना खाया। ठण्डा पानी पीया। अधिक थकान से शरीर में शिथिलता। आंखों में अलसाई। बिछौने के अभाव में उसने कुएं की चट्टान को शय्या मान लिया। तकिया कहां था? हाथों का ही आधार लेना पड़ा। खंभे की छाया में लेटते ही निद्रा देवी का अतिथि बन गया।

सन्ध्या का समय। दिनकर का अपने घर प्रस्थान। पश्चिम दिशा की अरुणिमा। लोगों का आवागमन। बैल आदि पशुओं की खनखनाहट ने भिखुराम को जगा दिया। आंखें खुलीं। सुहावने दृश्य का अवलोकन। कुएं पर दृष्टिपात होते ही उसके मस्तिष्क में चिन्तन का प्रवाह प्रवाहित होने लगा—नवनीत-सी कोमल रस्सी। कुएं में जाती है, बाहर आती है। इस उपक्रम से कठोर हृदयी पाषाण भी कोमल व समतल बन गया। घिस गया। 'रसरी आवत जात है, सिल पर परत निशान।'

बुद्धि-मंथन। गहन चिन्तन। अनुशीलन करने से तत्त्व की संप्राप्ति हुई कि यह सब उद्यम का फलित है। क्या उद्यम से मेरे जीवन में परिवर्तन नहीं आ सकता? क्या मैं दुखद इस रंक-अवस्था को देश-निकाला नहीं दे सकता? राजलक्ष्मी का अधिस्वामी बनना क्या कठिन है? नृप की कन्या के साथ विवाह का संयोग, क्या आकाश-कुसुम की भांति असम्भव? नहीं, कदापि नहीं। क्रमशः उद्यम से सब।

उद्यम जीवन का अमर पाथेय। निराशा में आशा की किरण। मूर्च्छित मानस में संजीवनी। कार्य-सिद्धि का सफल आयुध।

भिखुराम उठा। चेहरे पर भिन-भिनाती मक्खियां। तन पर फटा आवरण। हाथ में मिट्टी का खण्डित बर्तन। किन्तु हृदय में हिम्मत का उफान था। नस-नस में साहस की सरिता संचालित थी। पैरों की गति की शिथिलता का अवमूल्यन। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास से बेपरवाह। चला। तेजी से चला। अनेकों गांवों व नगरों में सैर करता हुआ अपने लक्ष्य तक जा पहुंचा। लक्ष्य था—दिल्ली का।

सदर बाजार में उसने लोगों से पूछा—"राजमहल किधर है?"

"क्या काम है राजमहलों से?"

"मुझे राजकन्या के साथ शादी करनी है।"

"पागल कहीं का, फिजूल बकवास क्यों कर रहा है?"

"फिजूल कैसे? आप तो शादीशुदा हैं और मुझे पागल बताकर टालमटोल करना, कहां की संस्कृति का न्याय?"

"रे मूर्ख ! शादी के लिए कई साधनों की अपेक्षा है।"

"देखिए, जुबान पर नियन्त्रण। जैसे आपके पास साधन, वैसे मेरे पास भी मौजूद हैं। हाथ, कान, आंख आदि सभी इन्द्रियों से परिपूर्ण हूं। किसी में भी क्षतांग नहीं हूं। तो फिर ?"

"आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज में लड़की उसी को मिलती है, जिसके पास कुछ न कुछ धनराशि हो। तुझ से गरीब को पूछेगा कौन ? जिसमें राजा···।"

"वर्तमान में तो लड़कियों की कमी नहीं है, कमी है लड़कों की। लड़के वाले मुंह बाये बैठे हैं। तीस, चालीस, पचास-पचास के आग्रह होते हैं। फिर भी उनका सिर ठनकता रहता है। उनके पीछे-पीछे भटकना पड़ता है, तब कही बड़ी मुश्किल से संबंध······। मुझे क्या फिक्र। मैं तो प्रत्युत तीस-चालीस का दहेज लेकर ही शादी करूंगा, वह भी राज-कन्या से।"

आखिर पूछताछ करता हुआ राजमहल के दरवाजे पर जा पहुंचा। द्वारपाल ने रोका—"राजा के निर्देश बिना कोई भी अन्दर नही जा सकता। ठहर जाओ। कौन हो तुम ?"

"मैं मानव हूं। पदयात्रा करता हुआ बहुत दूर से आया हूं। राजा से मिलना है। बहुत जरूरी काम है। एक पथिक को निराश करना, क्या तेरे लिए शोभास्पद है ? मन की हविस को पूरी करने दो।"

राजा उच्च सिंहासन पर बैठा था। अनेको योजनाएं घड़ने में संलग्न था। मंत्री आदि बड़े-बड़े विशेषज्ञों की सलाह मे तल्लीन था। अचानक भिखुराम पहुंचा। वाणी का बांध टूटा। हृदयस्थ विचारों को व्यक्त करने में वाचाल बना "मुझे और किसी की हविस नहीं है। हविस है—आपकी लड़की से शादी करने की। इसीलिए बहुत दूर से आया हूं। दिल में हिम्मत है। आशावादी हूं। विचारों को क्रियान्वित करने के लिए आपके सन्मुख खड़ा हूं।"

कर्कश शब्दावलि से कानों में झनझनाहट। आंखों में शोणित का स्रोत। अधरावलि में प्रकम्पन। मुखाकृति परिवर्तन। राजा भन्ना उठा—"यह क्या मामला ? समझ में नही आ रहा है कुछ। कौन है यह दरिद्री ? क्यों कर रहा है वृथा बकवास ? इसे मत रहने दो मेरी दृष्टि के सामने।"

दिल में जोश। आंखों में रोष। उद्घोष करता हुआ भिखुराम बोला, "राजन् ! यह व्यक्ति अपनी हविस को पूरी करके जाने वाला है, अन्यथा नहीं। निश्चय पर अडिग है हिमालय की भांति। किन्हीं भी झंझावतों से विचलित होने वाला नहीं है। राजकन्या से शादी···और कुछ भी तमन्ना नहीं है।"

उसके अभूतपूर्व साहस से तत्रस्थित सभा के वरिष्ठ सदस्यों में तहलका मच गया, सन्नाटा छा गया। यह कौन है ? राजा के आगे भी निर्भय निस्संकोच, हिम्मती

साहस की पराकाष्ठा जिसमें। राजा और रंक में परस्पर तना-तनी, गर्मा-गर्मी, अनर्गल शब्दों का अद्वितीय प्रयोग। "मैं तेरे जैसे भिखारी को कन्या नहीं दूंगा, नहीं दूंगा। दरिद्री कहीं का। मत ठहर यहां पर" क्रोधाकुल राजा ने कहा।

वह कहां इधर से उधर होने वाला था? मन्त्री ने उसे निकालने के लिए मार्ग ढूंढ़ा और कहा, "भाई! मैं जैसा कहूं, अगर तू वैसा करेगा, तो तुझे अवश्य ही राजकन्या मिल जायेगी।"

"विलम्ब न करें, फरमाइये क्या काम है? कठिन असाध्य कार्य करने की भी क्षमता है।"

"एक मन खरे मोती चाहिए," मन्त्री बोला। "और कुछ नहीं।"

वीरतापूर्वक आंखों की लालिमा को द्विगुणित करता हुआ भिखु गरजा, "मंत्रीवर! आप अपने वादे पर अटल रहें, अभी जाता हूं।"

भिखुराम चला। दिल्ली के बाजार में। उच्च स्वर से रटन लगाने लगा "एक मन मोती मुझे मिलने चाहिए। राजकन्या से विवाह करूंगा।" सर्वत्र यही रट, यही धुन, यही आवाज। पर, सुने कौन? आखिर एक सज्जन मिला, समग्र वृत्तान्त से अवगत हुआ। उसने उसकी आंखों का तेज देखा। ललाट की रेखा देखी। चमकता चेहरा देखा। हिम्मत का अजब नजारा देखा। शौर्य की पराकाष्ठा देखी। वह बोला, "महाभाग! यहां भटकने में कुछ भी लाभ नहीं है। जहां समुद्र है, वहां जाओ। पानी निकालकर खाली कर दो। एक मन क्या, मोती ही मोती मिल जाएंगे।"

जीवन का नया निर्माण करने समुद्र की ओर प्रस्थान। मार्ग में कष्टों के अनेक भूचाल। सर्दी व गर्मी की प्रताड़ना। भूख प्यास की समवेदना। स्थान-स्थान पर धुत्कार एवं तिरस्कार-दृष्टि से स्वागत। गालियों से अभिनन्दन। फिर भी भिखुराम ने साहस नहीं खोया। वह कायल नहीं बना। सबको पी गया। पुरुषार्थ से आगे बढ़ता गया। पुरुषार्थ ही सत्य-साधना की अमर लौ है। जीवन उन्नति का सोपान है। भाग्य-निर्माता है। त्राता है। पहुंचा समुद्र के तट पर। देखा अनन्त पयोराशि को। घबराहट नहीं, मुस्कराहट। विषाद नहीं, प्रसाद। मन्थरता नहीं, त्वरता। मन अलसाया नहीं, विकसाया। कुण्ठा नहीं, निष्ठा। समुद्र में पैर रखा। हाथ में वह मिट्टी का खण्डित पात्र था ही। उससे पानी बाहर निकाल रहा है। बारह महीने बीते। पयोनिधि रिक्त नहीं हुआ। तथापि भिखुराम ने क्रिया नहीं छोड़ी। संलग्नता जारी रखी। उसने सोचा, आशा जीवन है, निराशा मृत्यु। आशा अमृत है, निराशा गरल। आशा गति है, निराशा कुण्ठा। अवश्य ही लक्ष्य साकार बनेगा।

उदधि अधिष्ठित देव ने इस विचित्र दृश्य को देखा। दौड़ा-दौड़ा वहां आया।

भिखुराम को ललकारते हुए कहा, "पागल ! पानी बाहर क्यों फेंक रहा है वृथा ? क्या और कोई काम नहीं है ? समय गंवाना क्या बुद्धिमत्ता है ?"

"बिना प्रयोजन कोई काम नहीं होता है। हर कार्य की पृष्ठभूमि अवश्य होती है।"

"क्या प्रयोजन है ? किस हेतु यह क्रिया ?"

"मुझे एक मन मोती की आवश्यकता है, इसके लिए ही यह उपक्रम है।"

"अगर मोती नहीं मिलेंगे तो ?"

"यह क्रिया चालू रहेगी। क्या है ? बारह महीने ही हुए हैं। बारह वर्ष भी बीत जाएं तो कोई परवाह नहीं। मैं अपने लक्ष्य पर अटल हूं। मुझे किसी का डर नहीं। मैं आशावादी हूं। अवश्य ही एक-न-एक दिन समुद्र खाली होगा। मन मोती मुझे मिल जायेंगे। तब होगा, मेरा यहां से प्रस्थान। पर मन मोती बिना नहीं।"

देव ने देखा, उसका साहस भरा हृदय। सुनी, उसकी ओज भरी वाणी। दिल पिघला। नवनीत की भांति पिघला। सिर झुका। विनीत शिष्य की भांति झुका। श्रद्धानत उस देव ने कहा, "पुरुष-पुंगव ! धन्य है तुम्हारी कष्ट-सहिष्णुता को। धन्य है तुम्हारी हिम्मत की पराकाष्ठा को। आशापुंज ! चेहरे पर निराशा की रेखा नहीं। कायरता नहीं। घबराहट नहीं। तुम्हारी निर्भयता पर, लक्ष्य-निश्चलता पर, धीरजता पर प्रसन्न हूं। बहुत प्रसन्न हूं। लीजिए एक मन मोती। कीजिए अपना काम। पीजिए शान्ति का अमृत।"

भिखुराम चला। राजमहल की ओर चला। कंधे पर मन मोती का भार। आकृति पर आह्लाद की लहर। पैरों में स्फूर्ति का संचार। आंखों में अभिनव उन्मेष। हृदय में नई चीख। डग भरता हुआ राजमहल में मंत्री के पास पहुंचा और बोला, "मंत्रीवर ! मन मोती हाजिर हैं। पूरी कीजिए मेरे मन की हविस। राजकन्या के साथ शादी।"

मंत्री भौचक्का-सा रह गया। आंखें जमीं में गड़ गईं। कान टूटकर हाथों में आ गए। सिर पर पसीना आ गया। विवेक दब गया। क्रोध उभर आया। जोर से बोला, "होश से बात करो। क्या नशे में चूर हो ? पागलों के सिर सींग नहीं होते, बुद्धि नहीं होती। क्या दिमाग खराब है ? क्यों वृथा बकवास ?"

"आप मंत्री हैं। अपने वचन को निभाएं। वादे को याद करें। महापुरुष अपने वचन के लिए प्राणार्पण कर देते हैं। बदलते नहीं हैं। अडिग रहते हैं। मेरी कामना क्रियान्वित करें"—भिखुराम ने कहा।

मंत्री सिटपिटाता हुआ राजा के पास गया। समग्र घटना चक्र से राजा को अवगत किया। नृप ने कहा, "मंत्री ! चिन्ता की क्या बात है ? पुत्री का विवाह तो करना ही है। जैसा तुम चाहोगे वैसा हो जाएगा।"

मुस्कराते हुए मंत्री ने कहा, "राजन् ! संसार में मैंने अनेकों बुद्धिशील एवं दक्ष व्यक्तियों को देखा, किन्तु ऐसा पुरुषार्थवादी, श्रमवादी, उद्यमी, साहसिक, निर्भीक और भाग्यशाली व्यक्ति नहीं देखा।"

"अवसर का लाभ उठायें। ऐसा सुन्दरतम समय पुनः-पुनः मिलना असंभव। गहराई से चिन्तन करें। कन्या शादी योग्य हो रही है। भिखुराम का घर बैठे ही संयोग। मेरा सहयोग। ऐसा उपयुक्त अनुयोग। प्रयोग में विलम्ब क्यों······?"
बस, फिर······क्या था ······?

विजय प्राप्त होती उसे, जो करता पुरुषार्थ।
भिखुराम का रम्यतर, है दृष्टान्त यथार्थ॥

होनहार

दुख ही दुख।

एक अनाथ बच्चा अनिल।

जीवन नौका डगमगाने लगी। दीपक बुझने लगा। माता-पिता संसार से चल बसे। व्यापार में घाटा लगा। भरपूर घाटा लगा। जमीन-जायदाद सब हाथों से चली गई। रहने वाले प्रासाद को भी लोगों ने छीन लिया। लाखों की सम्पदा असम्पदा में परिणत हो गई। खाने को अनाज नहीं। पहिनने को कपड़े नहीं। रहने को मकान नहीं। बड़ी समस्या, भयंकर समस्या, परिजन दूर। अब किसका आधार ? अब किसका आश्रय ? अनिल संकट में पड़ गया। किसी ने भी सहयोग नहीं दिया ?

बेचारा अनिल दर-दर भटकता है। उदर-पूर्ति एक पहेली बन गई। गालियों की बौछार को स्वर्ण की बौछार, अपमान को सम्मान, दुत्कार को सत्कार, तीक्ष्ण शूलों की चुभन को कोमल फूलों की शय्या समझने लगा। हृदय में निश्छल, वाणी में मधुर, व्यवहार में सज्जन, प्रकृति में भद्र, आकृति में सुन्दर, अनिलकुमार फिरता-फिरता करोड़पति सेठ सागरचन्द के भवन पर आ पहुंचा। दरवाजे पर खड़ा-खड़ा रोटियों की याचना करने लगा। पर, सुने कौन ? सेठ अपने कार्य में व्यस्त था। हाल में मस्त था। नहीं किसी की फिक्र करता, नहीं किसी का जिक्र सुनता। घर-घर में भिक्षा लेते-लेते अचानक एक गुरु और शिष्य का वहां आगमन। हाथ में झोली पात्र। सेठ ने देखा, कमरे से बाहर आया। बद्धांजलि वंदन किया। चरणों में सिर रखा। गुरु के साथ-साथ वह अन्दर गया। भक्ति से दान दिया। गुरु वापस मुड़े। अनिल को देखा। गुरु ज्ञानी थे। रहा नहीं गया। सहसा मुंह से आवाज निकली "शिष्य ! द्वार पर जो यह लड़का खड़ा है। रोटियों के लिए

तड़प रहा है। हाय-हाय करता है। करुणा-भरी चीख भरता है, सिसकियां लेता है, फिर भी इसे कोई नहीं पूछता, किन्तु कुछ ही वर्षों बाद यह अनाथ बच्चा इसी घर का मालिक, सर्वेसर्वा बनेगा।"

यह शब्दावलि सेठ के कानों में टकराई। शरीर में विद्युत, आंखों में शोणित, होठों में कम्पन, चेहरे पर अवसाद। क्या यह भिखारी मेरे घर का आधिपत्य करेगा? नहीं करने दूंगा? नहीं करने दूंगा। अभी इसे यमराज का अतिथि बना दूं। फिर क्या……? सेठ कमरे में गया, योजना घड़ने लगा, कल्पना उभरने लगी। चुपके से दो चाण्डालों को बुलवाया गया।

चाण्डाल आए। बोले, "सेठ साहब! हाजिर हैं आपकी सेवा में, फरमाइए हमारे लायक कोई काम-काज।" गुप्त कमरे के एकान्त में ले जाकर सेठ ने कहा, "चाण्डालो! मैं तुमको विश्वासी मानकर एक बात कह रहा हूं। किसी के भी सामने व्यक्त मत करना।"

"आप हम पर विश्वास रखें। कोई भी बात इधर-उधर नहीं होगी," चाण्डालों ने कहा, "जो कार्य करवाना है अविलम्ब फरमाइए।"

सेठ ने अनिल की ओर इशारा करते हुए कहा, "यह भिखारी मेरा दुश्मन है। इसे मैं जीवित देखना नहीं चाहता। अतः दूर जंगल में या श्मशान-भूमि मे इसे ले जाओ और मार दो। वापस निशानी के रूप में इसकी अंगुली ले आना। इस कार्य की प्रसन्नता पर मैं तुमको कोटि-कोटि बधाइयां दूंगा। एक-एक हजार रुपये भी इनाम के रूप में दूंगा। जल्दी जाओ। सावधानी रखना। काम पटुता से करना।"

रुपयों की चमक में बड़ी शक्ति होती है। आकर्षण होता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी इस चिकनी घाटी पर फिसल जाते हैं। कृत्याकृत्य भूल जाते हैं। चाण्डाल चले। अनिल के पास आए और बोले, "यहां तुमको कुछ भी नहीं मिलेगा। चलो बाजार में। अगर मिठाइयों से मुंह मीठा करना हो तो।" भूख से व्याकुल, दुख से आकुल, भोला बालक उन यमदूतों के साथ चला। पर कहां थी मिठाई? थी केवल ऊपर की सफाई। श्मशान-भूमि में पहुंचे। अनिल का विवेक जागृत हुआ। अरे! यहां कहां बाजार? यहां कहां पकवानों का मौका? यह तो निरा धोखा है।

चाण्डालों के दिल में दया के भाव कहां थे। चाकू निकाला गया। कत्ल के लिए उद्यत हुए। अनिल के वक्ष-स्थल पर जा बैठे। अनिल चिल्ला उठा। आंखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई। जल-विहीन मछली की तरह तड़पने लगा। वचन-वीणा के तार झनझना उठे। "महानुभावों! मैं निर्दोष हूं। अनाथ बच्चा हूं, मुझे बचाइये। आपका सहारा है, उपकार नहीं भूलूंगा।"

उसकी करुणार्द्र-चीत्कार से चाण्डालों के दिल डोल उठे। आत्म-ग्लानि से

मन भर गए, अनिश्चितता के सागर में गोते खाने लगे। क्या करें! मुंहमुंहे बच्चे की हत्या करना भयंकर पाप है। इसके चमकीले चेहरे से आभास होता है, यह पुण्यवान् है। किस्मत वाला है, कैसे मारा जाए? परस्पर चिन्तन चला। विचारों में परिवर्तन आया।

चाण्डाल बोले, "भाई! डर मत, मारेंगे नहीं। पर अंगुली काटकर अवश्य लेंगे। हम तुझे जीवित छोड़ देंगे। पर इस नगर में कभी मत आना। अन्यत्र जहां इच्छा हो, तैयार हो जाओ, चाकू आ रहा है।"

अनिल की आत्मा कराह उठी, कौन सुने, बालक की हृदय-विदारक, दारुण पुकार? चाकू चला, अंगुली कटी, खून की धारा बह चली।

चाण्डाल सेठ के घर आए और बोले, "आपने जैसा कहा था, वैसा ही करके आए हैं। यह लीजिए उसकी अंगुली, दीजिए इनाम।"

सेठ बहुत खुश हुआ। चेहरा खिल उठा, कमल की भांति। कामना साकार हुई। आएगी सुख से नींद। "चाण्डालो! तुम्हें कोटि-कोटि धन्यवाद, यह लो पुरस्कार।"

अनिल उष्ण सिसकियां लेता हुआ इधर-उधर भटक रहा था। सेठ शान्तिलाल कहीं जा रहे थे। उनका योग मिला, हृदय की तड़प रुकी। निराधार को आधार। बुझते दीपक को तेल, डगमगाती नैया को पतवार, गिरते महल को खम्भा, बस, यही चाहिए, और कुछ नहीं…।

शान्तिलाल ने उसे भाग्यशाली समझा। आश्वासन दिया, अपना पुत्र मानकर उसे घर ले गए। अब उसका पालन-पोषण वहीं होने लगा। अनिल का जीवन शान्ति के सौम्य वातावरण में व्यतीत होने लगा। माता-पिता के दुख को भूल गया। सेठजी के पुत्रों मे वह दूध और शक्कर की भांति एक रस हो गया। अनिल को कोई कह नहीं सकता कि यह सेठजी का पुत्र नहीं है। सेठजी ने पढ़ाई की व्यवस्था की। कुछ ही वर्षों में अनिल पढ़-लिखकर दक्ष बन गया। हर कला में निपुण। प्रकृति मे सौम्य। वाणी मे अमृत। वह किसकी मनोभूमि को आकर्षित नहीं कर सकता था। अड़ोसी-पड़ोसी भी उससे प्यार करते, घरों में बुलाते, मोहल्ले के लिए वह जादू बना। श्रद्धा-पात्र बना। उसकी महिमा, उसकी गरिमा, उसकी वरिमा, सर्वत्र फैलने लगी। कुसुम-पराग की भांति। व्यापार में कुशल। व्यवहार में कुशल। आचार में कुशल। आस-पास के गांवों व नगरों में अनिल की कीर्ति-पताका अनिल की भांति फहराने लगी।

अनिल शादी योग्य हुआ। बड़े-बड़े सेठ साहूकार उससे सम्बन्ध के लिए आने लगे। वह सेठ (सागरचन्द) भी आया। शान्तिलाल से मिला और बोला, "मेरी लड़की सरलेश को आप देखें। मैं चाहता हूं, आपके सुपुत्र अनिलकुमारजी के साथ

सम्बन्ध हो जाए।"

सागरचन्द के उत्कट प्रयत्नों पर अनिल का संबंध निश्चित हो गया। विवाह की तैयारियां होने लगीं। विभिन्न मिठाइयों की सुन्दर परिमल से सारा मोहल्ला महकने लगा। घर की अभूतपूर्व सजावट के आगे इन्द्रसभा का सौन्दर्य भी मन्द-सा प्रतीत होने लगा। बारातियों को ठहराने नई डिजाइन का नया गेस्ट हाऊस। उनकी दैनिक आवश्यकताओं का अनुपम इंतजाम, दूल्हे के लिए अलग आलीशान कमरा। जिसकी चमक-दमक मानों शीशमहल को भी परास्त कर रही हो। सेठ के दिल में आकाश की भांति उल्लास। घर में लक्ष्मी का निवास। व्यापार में दिनों-दिन विकास। एक ही प्रकाश 'सरलेश' खूब ठाठ-बाट से ब्याहू। दिल खोलकर खर्च करूंगा।

शान्तिलाल ने भी अच्छी-खासी तैयारी की। दूल्हे को आलीशान कपड़ों व बहुमूल्य आभूषणों से सजाया गया। बारात पहुंची। अपूर्व स्वागत। अपूर्व प्रबन्ध, अपूर्व साज-सज्जा। हर बाराती का दिल उल्लास के महासरोवर में डुबकियां खाने लगा। सबकी जबान पर "बहुत अच्छा-बहुत अच्छा, धन्यवाद-धन्यवाद" के सुनहले उद्घोष। शुभ-मुहूर्त में अनिलकुमार की शादी सरलेश के साथ सम्पन्न हुई। सेठ सागरचन्द की कली-कली खिल उठी। दिल में नई उमंग। नई तरंग। नया रंग। सरलेश को सुखद संग मिला। धन्य है मेरी तकदीर को। धन्य है मेरी तदबीर को, धन्य है मेरे पीर को।

सेठ सागर ने सेठ शान्ति से कहा, मैं जंवाई को घरजंवाई बनाना चाहता हूं। मेरे लड़का नहीं। एक ही सन्तान यह सरलेश। इससे बड़ा मोह है, प्यार है। इसका विरह एक क्षण भी सह नहीं सकता। घर की देख-रेख। घर की जिम्मेवारी। लाखों का कारोबार। अनिलकुमारजी को ही संभालना पड़ेगा। मैं वृद्ध······।"

अनिलकुमार ससुराल में रहने लगा। जीवन की दुखद घड़ियां सुखद में परिणत हो गईं। नुकीले कांटों का समय फूलों की कोमलता में परिवर्तित हो गया। पतझड़ का अवसान हुआ। नया वसन्त खिला। नया रंग मिला। सरलेश का सुहावना संग।

परस्पर क्रीड़ा का उपक्रम चालू था। सहसा सरलेश की नजर अपने प्रिय पतिदेव की कटी हुई अंगुली पर पड़ी। नम्र शब्दों में पूछा, "यह अंगुली कैसे कटी ?"

अनिल कुछ टालमटोल करता रहा। आखिर त्रिया-हठ के सामने उसे अपना पिटारा खोलना ही पड़ा। आदि से अन्त तक की घटना बतानी ही पड़ी। अतीत की स्मृतियां ताजा हो उठीं। हाय! एक दिन वह······, एक दिन यह······। आकाश और पाताल जितना अन्तर······!

पुत्री पिता के पास पहुंची। सहज भाव में बोली, "पिताजी! बाल्यावस्था से ही उनकी एक अंगुली कटी हुई है। दिखने में वह अच्छी नहीं लगती। अतः कोई कृत्रिम अंगुली लगवा दीजिए, जिससे हाथ की शोभा……।

सेठ चौंका। अनेकों कल्पनाओं व आशंकाओं से दिल भर उठा। वहम सताने लगा। "पुत्री! अंगुली स्वतः ही कटी थी अथवा किसी के द्वारा कटवाई गई थी? क्या तुझे समग्र वृत्तान्त की जानकारी है?" सेठ ने पूछा।

पुत्री ने कहा, "हां, पिताजी! सुनिये आदि से अन्त तक की कहानी।" उता-वला होता हुआ सेठ बोला, "बेटी! क्या घटना है? जल्दी बोलो।"

पुत्री द्वारा समग्र वृत्तान्त की जानकारी प्राप्त होते ही सेठ अवाक् रह गया। दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। शरीर में बिजली कौंध गई। पसीने से तर हो गया। पागल मानव की भांति हक्का-बक्का-सा वह बोल पड़ा, "क्या यह………वह ……भिखारी? है………?" इसी आवाज के साथ सेठ की आंखें सदा के लिए बन्द……। घोर अन्धकार अन्धकार ही…… ।

लिखित लेख टलता नहीं, होनहार बलवान।
'मुनि कन्हैया' जगत में, सुख दुख कर्म प्रमाण॥

सच्चाई का सम्मान

मुअत्तिल एम० पी० बंशीधर गुप्त ने कहा—"लक्ष्मण सिंह! आज के जमाने में झूठ का सहारा लिए बिना किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। जो जितना चापलूस एवं दगाबाज होगा उतना ही वह सफल होगा। आदर्श और ईमान सिर्फ मुंह से कहने की बातें हैं। जीवन चलाने के लिए कदम-कदम पर रुपये-पैसों की जरूरत पड़ती रहती है। अतः अर्थार्जन के लिए समय-समय पर अन्याय का सहारा लिए बिना भी काम नहीं चल सकता। तुमको भी अधिक आदर्श एवं ईमानदारी की बातें छोड़ देनी चाहिए। अवसर पर न्यायान्याय को नहीं देखकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करने के लिए जागरूक रहना चाहिए।"

लक्ष्मणसिंह बोला—(जरा चौंककर) "साहब! आप ऐसे कैसे फरमा रहे हैं? आप पर तो संरक्षण का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। रक्षक ही जब भक्षक बन जायेंगे, तब भला सुरक्षा करेगा ही कौन? आपको ऐसे घृणित विचार व्यक्त नहीं करने चाहिए। झूठ को चाहे जितना दबाकर रखा जाय, पर वह दब नहीं सकती। आखिर में दूध का दूध और पानी का पानी होकर ही रहता है। जाल-साजी करना व धोखा देना बहुत बड़ा अन्याय है। जो कार्य सत्य के बल से हो सकता है, वह असत्य के बल से नहीं हो सकता। ऐसी मेरी आत्म-निष्ठा है।"

बंशीधर ने कड़क कर कहा—"लक्ष्मण ! तुम बहुत आदर्शवादी बन रहे हो, आदर्श के चक्कर में कहीं भूखा न मरना पड़े ? तुम जानते ही हो कि मुझपर रिश्वत लेने का जो मुकदमा चल रहा है, उसमें तुम्हें मेरे पक्ष में गवाह बनना है, तुम्हारा झूठ मुझे बचा लेगा और मैं वापस एस० पी० के स्थान पर बहाल होते ही तुम्हें मालोमाल कर दूंगा। सिपाही से तुम्हें थानेदार बना दिया जायेगा। क्या मैं जो कह रहा हूं, उस बात को तुम गहराई से सोचोगे ? तुम्हें स्वीकार है ?"

एस०पी० की बातें सुनकर लक्ष्मणसिंह के हृदय के भाव बदल गए, मन ही मन सोचने लगा—'वस्तुत. एस० पी० साहब ठीक कहते हैं। क्योंकि जो जितना सदाचारी है, वह उतना ही दुखी है और जो जितना दुराचारी है, वह उतना ही सुखी है। तो फिर क्यों नहीं अवसर का लाभ उठाऊं ? घरवाली भी निरन्तर कान खाया करती है कि इतने कम वेतन से घरेलू खर्च भविष्य में कैसे चलेगा ? पुत्री विद्या भी विवाह योग्य हो रही है, क्या करना चाहिए ?'

उसके मुख को एक-टक देखता हुआ बंशीधर बोला—"मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि तुम इतनी गहराई से क्या सोच रहे हो ? तुम्हारी गवाही से मेरा पक्ष सबल हो जायगा और साथ-साथ तुम्हारी उन्नति का द्वार भी खुल जायगा।"

लक्ष्मणसिंह—"तनिक सोचकर ही जवाब दूंगा क्योंकि यह सवाल ही ऐसा है।"

बंशीधर—(कुछ गंभीर होकर) "लक्ष्मण ! क्या अभी तक सोचना बाकी पड़ा है ? कल की तो तारीख है। ध्यान रखना, सब बयान मेरे पक्ष में ही होना चाहिए, अन्यथा तुम जानते हो, मैं तुम्हारा अफसर हूं। जैसा चाहूं वैसा कर सकता हूं।"

बंशीधर की धमकी सुनते ही वह घबड़ा गया। मन ही मन सोचा—'क्या करूं ? अब इधर खाई और उधर कुंआ। ईमानदारी और सच्चाई रखूं तो ये साहब नाराज हो जायेंगे और यदि इनके कहे अनुसार करूं तो सच्चाई से हाथ धोना पड़ेगा।' इसी उधेड़-बुन में उसने अपने घर की राह ली। विचलित एवं व्यथित-सा होकर घर में एक तरफ जाकर बैठ गया। उसका अन्तर्द्वन्द्व उसको कहीं टिकने नहीं देता था।

उसकी पत्नी ऊषा ने कहा—"आज ऐसे कैसे उदास होकर बैठे हैं ? लगता है आप किसी चिन्ता में हैं ?"

लक्ष्मण—"मुझे कोई मार्ग नहीं दिख रहा है।"

ऊषा—"मैं भी तो सुनूं, क्या समस्या है ?"

लक्ष्मणसिंह—"क्या कहूं ? एस० पी० साहब जनता का कोई भी काम बिना रिश्वत के नहीं करते। किसी का छोटे से छोटा काम भी निकालना होता है, तो वे पहले अपनी जेब का मुंह खोल देते हैं। एक दिन वे रंगे हाथों पकड़े गये। कोर्ट में

उनका केस चल रहा है। कल तारीख है। मुझे गवाह के लिए एस० पी० साहब मजबूर कर रहे हैं और साथ-साथ प्रलोभन भी दे रहे हैं कि तुझे थानेदार बना दूंगा। अब मैं सत्य साक्षी दूं या असत्य ? इसी समस्या का समाधान नहीं पा रहा हूं कि मुझे क्या करना चाहिए ?"

ऊषा—"मैं अणुव्रत-परिवार की सदस्या हूं। अणुव्रत जन-जन को नीतकता का पाठ पढ़ाता है। उनका आधार आत्म-संयम है। अणुव्रत में यह नियम है कि असत्य साक्षी नहीं देना। अतः मेरी तो आपको यही सलाह है कि आप प्रलोभन के चक्र में न फंसकर सच्चाई और ईमानदारी पर अटल रहें। नैतिकता जीवन है। नैतिकता के अभाव में कोई भी अपना विकास नहीं कर सकता है।" ऊषा का यह सत्परामर्श सुन लक्ष्मणसिंह ने यह निश्चय कर लिया कि मैं असत्य साक्षी नहीं दूंगा।

दूसरे ही दिन कोर्ट के समय सभी वहां उपस्थित हुए। एस० पी० साहब ने लक्ष्मण को एक तरफ ले जाकर उसके कान में धीरे से कहा—"मेरी बात याद है ना ?"

न्यायाधीश के समक्ष केस की बहस प्रारम्भ हुई। प्रतिपक्षी वकील परस्पर अपने-अपने दांव-पेच लगाने लगे। गवाही के कटघरे में जब लक्ष्मणसिंह को खड़ा किया गया, तब एस० पी० को यह दृढ़ विश्वास था कि लक्ष्मण मेरे पक्ष में ही गवाही देगा और अवश्य ही मैं बरी हो जाऊंगा, परन्तु लक्ष्मणसिंह ने अपने बयान में वही कहा, जो सत्य था।

न्यायाधीश ने बहस समाप्त होने पर अपना निर्णय देते हुए श्री गुप्ता को रिश्वत लेने के अपराध में सात साल की कड़ी कैद और चार हजार रुपये दण्ड के सुना दिये।

सजा सुनते ही एस० पी० साहब का मुंह उतर गया और आंखों में अंधेरा छा गया। मन ही मन अनुताप करने लगे—"हाय ! यदि मैं भी अणुव्रत-परिवार का सदस्य होता और रिश्वत ले-लेकर घर नहीं भरता तो आज मेरी इज्जत और प्रतिष्ठा धूलिसात् क्यों होती और क्यों ऐसी दुर्दशा का शिकार बनता ? इतना पैसा, जो मैंने रिश्वत से बटोरा, मेरे क्या काम आया ? मुझे तो अपने जीवन के अमूल्य भाग को जेल के सीखचों में रहकर बहाना पड़ेगा और मेरे इस दुःख में कोई साझेदार भी नहीं बनेगा।"

डी० आई० जी० श्री रामेश्वरलाल शर्मा ने लक्ष्मणसिंह की सच्चाई और ईमानदारी पर खुश होकर उसे पुलिस-सब-इन्सपेक्टर बना दिया।

वार्षिक पारितोषिक के अवसर पर स्वयं राष्ट्रपति द्वारा उसकी प्रामाणिकता और सच्चाई की सराहना की गई और उसे पुलिस की 'विशिष्ट सेवा का पदक

प्रदान किया गया।

सत्य सार संसार में, सत्य बड़ा बलवान
'मुनि कन्हैया' सत्य से, मिलता अति सम्मान।।

धन और मन

घड़ी में दस बजे थे। महेश ने अपने परम मित्र सुरेश से कहा—"कल मुहूर्त अच्छा है, कमाने-खाने के लिए परदेश जाने की सोचता हूं।" सुरेश ने कहा—"महेश ! मैं भी तेरे साथ चलूंगा, मुझे भी व्यवसाय करना है।"

दोनों ही बीकानेर-मेल से दूसरे दिन रवाना हो गये। पूर्व निर्णीत नगर में पहुंचे। दोनों ने अलग-अलग व्यापार किया। महेश भाग्यशाली था, स्वल्प समय में ही लाखों रुपये कमा लिए। सुरेश ने भी धनोपार्जन करने के लिए काफी उद्योग किये, किंतु सफलता नहीं मिली। व्यापार करते-करते थक गया। आखिर निराश हो उसने स्वदेश वापस जाना ही श्रेयस्कर समझा। ऐसा विचार कर वह महेश के पास गया और बोला—"महेश ! मैं तो कल घर आ रहा हूं। भाभी के लिए कुछ भेजना हो, तो भेज दो।"

महेश—"मित्र ! घर पर कुशल समाचार कह देना कि मैं अभी देश नहीं आ सकूंगा। व्यापार में उलझा हुआ हूं, कमाई भी अच्छी हो रही है। यह एक हीरा तुम्हारी भाभी के लिए भेज रहा हूं, उन्हें दे देना और कह देना कि इसे सम्हाल कर रखे। व्यापार समेट कर मैं भी शीघ्रातिशीघ्र आने का प्रयास करूंगा।"

मित्र का सन्देश व हीरा लेकर सुरेश ने अपने देश की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उसके मन में लोभ जागा और हीरे को हजम करने की कुबुद्धि उत्पन्न हो गई। मन ही मन सोचने लगा—'हीरा बहुत कीमती है, इसको दबाकर रख लूंगा तो जीवन सुखी बन जायेगा। मित्र ने जब हीरा दिया था, तब कोई भी नहीं था, किसी की भी गवाह साख नहीं है। इस अवसर का लाभ उठाना ही चाहिए।' आखिर घर पहुंचा। उस कीमती हीरे को अपनी तिजोरी में रख दिया। महेश की धर्म-पत्नी को पता लगा कि सुरेशजी परदेश से आ गये हैं, अतः वह कुशल-संवाद लेने के लिए उनके घर आई और कहा—"आप अकेले ही कैसे आ गये ? अपने मित्र को साथ नहीं लाए ?"

सुरेश ने कहा—"भाभी जी ! वह बड़ा ही लोभी है, कमाई बहुत ही अच्छी हो रही है, फिर भी उसकी लालसा दिनोंदिन बढ़ती ही जाती है।"

महेश की घरवाली ने पूछा—"अच्छा, यह तो बताइये उन्होंने मेरे लिए क्या भेजा है ?"

सुरेश—"क्या कहूं ? वह लोभी आपको क्या भेजेगा ? कुछ भी नहीं भेजा है उसने ।"

महेश की पत्नी शकुन्तला अपने पति के कुशल समाचार सुनकर घर चली गई । इधर कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् महेश व्यापार समेटकर घर पहुंचा । शकुन्तला को बहुत प्रसन्नता हुई । हाथ जोड़कर विनय-भाव से बोली—"प्राणेश ! बहुत दिनों बाद आपका आना हुआ, आपने तो मुझे एकदम ही भुला दिया । अपने मित्र के साथ भी आपने मेरे लिए कुछ नही भेजा ।"

महेश ने कहा—"तुम्हारे लिए सुरेश के साथ हीरा भेजा था न ?"

शकुन्तला—(आश्चर्य से) "कौन-सा हीरा ? मुझे तो नहीं मिला ।"

महेश—"क्या सुरेश मिलने के लिए घर नही आया था ?"

शकुन्तला—"वे तो घर नही आये, मगर मैं आपके कुशल समाचार पूछने के लिए उनके घर गई थी । मैंने पूछा भी था कि क्या कुछ भेजा है ? उन्होंने कहा—"कुछ भी नही ।"

महेश ने सोचा—सुरेश का मन पलट गया है, मन मे बेईमानी आ गई है, हीरा उसी ने हजम कर लिया है । दूसरे दिन वह सुरेश के घर गया ।

सुरेश ने कहा—"भाई महेश ! कब आए ?"

महेश ने कहा—"कल ही पहुंचा हूं ।"

सुरेश—"स्वास्थ्य तो अच्छा है ? शरीर काफी दुर्बल प्रतीत होता है ।"

महेश—"मित्र ! ठीक ही है, किन्तु बताओ वह हीरा कहां है ?"

सुरेश—"मैंने भाभीजी को दिया था ।"

महेश—"वह कहती है कि मुझे तो नहीं मिला ।"

सुरेश—(आंखें लाल कर) "मित्र ! स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिए । वह झूठी है, मुझे चोर बनाती है । हाय ! ऐसा पता होता तो मैं हीरा लाता ही क्यों ?"

आखिर महेश हाकिम के पास पहुंचा । सारी घटना से हाकिम को अवगत किया । हाकिम ने कहा—"क्या कोई साक्षी है ?"

महेश—"मैंने तो हीरा विश्वास पर ही दिया था, मुझे यह भरोसा नहीं था कि सुरेश धोखा देगा ।"

हाकिम ने सुरेश को बुलाकर कहा—"महेश ने तुम्हारे विषय में इस प्रकार शिकायत की है, हीरा है तुम्हारे पास ?"

सुरेश ने कहा—"परदेश से आते ही मैंने भाभीजी को दे दिया था । इसके गवाह भी मौजूद है, मैं बिल्कुल निर्दोष हूं ।"

हाकिम ने गवाह बुलवाये । चार पेशेवर गवाह उपस्थित हुए । हाकिम के

पूछने पर चारों ने कहा—"हम लोगों के सामने सुरेशजी ने महेशजी की पत्नी को हीरा दिया था। हम ईश्वर की शपथ खाकर कहते हैं कि सुरेशजी बिल्कुल सच्चे हैं।" हाकिम ने चारों को अलग-अलग बुलाकर कहा—"तुमने हीरा तो देखा ही है, उसके बराबर के आकार का एक-एक पत्थर लाओ।" चारों घबड़ाए, अब पोल खुलेगी। चारों ने सोचा—हीरा बहुत कीमती होता है, कुछ बड़ा ही होगा। चारों ही भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के पत्थर उठा लाए, जो कि एक-दूसरे से काफी बड़े-छोटे थे।

हाकिम ने चारों पत्थर अपने पास रख लिए और आदेश दिया कि चारों के कोड़े लगाए जाएं। यह सुनते ही चारों कांपने लगे और मन ही मन सोचने लगे कि अगर थोड़े से पैसों के लोभ में न पड़े होते तो आज यह विषम समस्या क्यों पैदा होती? अब तो सत्य का ही सहारा लेना पड़ेगा। गिड़गिड़ाकर बोले—"साहब! हमने तो क्या हमारे बाप दादाओं ने भी हीरा नहीं देखा। हम तो लालच में फंसकर झूठी साक्षी देने आए हैं।"

सुरेश ने आक्रोशपूर्वक कहा—"हाकिम साहब! कुछ भी हो, हीरा मेरे पास नहीं है, मैं बिल्कुल सच्चा हूं, आप विश्वास करें।"

हाकिम ने उसी समय आदेश दिया कि इसको नंगा करके कोड़े लगाए जाएं तथा इसकी बेइज्जती की जाए।

न्यायाधीश के इस कथन मात्र से ही बेचारे सुरेश की तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई, और अपनी जेब में छिपे हीरे को निकालकर न्यायाधीश की मेज पर रख दिया।

हीरे को तो मित्र ने, छुपा लिया तत्काल।
आखिर न्यायाधीश ने, किया न्याय सुविशाल॥

विलासिता के चक्रव्यूह में

विमला का सुखी जीवन हमेशा के लिए समाप्त हो चुका था। उसके खुशी के दिन अपने प्रियतम की चिता के साथ ही जल गये थे। उसके हृदय में दुख का तूफान रह-रहकर उभर रहा था। मगर इतने ही दुख से छुटकारा कहां? उसका दिल उस समय टूक-टूक हो गया, जब रामलाल ने आकर कहा कि लाला बुधराम कान्ता की शादी अपने पुत्र से नहीं करेंगे।

विमला सिसकती हुई कहती है—"पण्डितजी! उनके द्वारा तय किए गए इस सम्बन्ध को क्यों और किसलिए ठुकराया जा रहा है, आखिर वे क्या चाहते हैं?"

रामलाल—"बहिन ! रो मत, सम्भवतः लाला तुलसीराम यह सोचते होंगे कि लाला बल्लीराम की तो मृत्यु हो गई है, अब हमें विशाल सम्पत्ति, जो दहेज के रूप में मिलने वाली थी, कौन देगा ?"

विमला—"पण्डितजी ! लक्ष्मी भी तो लालाजी के साथ ही साथ रूठकर चली गई, मैं अब क्या करूं ? सयानी लड़की है। इसका सम्बन्ध तो करना ही होगा।"

रामलाल—"बहिन विमला ! इतनी चिन्ता मत करो। सम्बन्ध बहुत मिल जायेंगे, घबराओ मत। इस कार्य के लिए मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। मुझे आशा है कि इस भार से तुमको बहुत जल्दी मुक्ति मिल जाएगी।"

रामलाल विवाह-शादी करवाने के लिए एक अच्छा दलाल था। उसकी सारी ज़िन्दगी इसी दौड़-धूप में व्यतीत हुई थी। वह मृदुभाषी, चालाक तथा बात बनाने में बड़ा ही दक्ष था। इसी से उसकी आजीविका चलती थी।

रामलाल को पता था कि लाला दयालीराम की दूसरी पत्नी का अभी देहान्त हुआ है। उसने सोचा कि अगर उनको समझाया जाए, तो सम्भव है वे मान भी जाएंगे तथा मुझे भी अच्छा खासा इनाम मिल जाएगा। इन्हीं विचारों को लिए वह लाला दयालीराम के गांव की ओर चल पड़ा।

लाला दयालीराम अपने कमरे में उदास बैठे थे। मुख-मण्डल की चमक निस्तेज बन रही थी। वे चिन्ता के अपार पारावार में गोते लगा रहे थे। हक्के-बक्के मनुष्य की भांति आंखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर ताक रहे थे। मन ही मन कहने लगे—'हाय ! अब मेरा जीवन किस रूप में व्यतीत होगा ? कौन अबोध बच्चों की देखभाल करेगा ?' इतने में ही पण्डित रामलाल वहां आ गया। लालाजी को नमस्कार करते हुए बोला—"लालाजी आज तो आप बड़े उदास दीख रहे हैं कहिए क्या बात है ? कौन-सी चिन्ता सता रही है ?" दयालीराम—"क्या कहूं, रामलाल ! जबसे बच्चों की मां मरी है, तभी से मुझे इस चिन्ता ने परेशान कर रखा है कि कौन इनका लालन-पालन करेगा।"

रामलाल—"लालाजी ! इसमें चिन्ता की क्या बात है ? आप शादी क्यों नहीं कर लेते ?"

लालाजी—"शादी ! इच्छा तो है, मगर तुम ही बताओ कि इस अवस्था में अपनी लड़की कौन देगा ? तिस पर यह समाज क्या कहेगा ?"

रामलाल—"आप धनी व्यक्ति हैं, धन के सहारे प्रत्येक कार्य किया जा सकता है तथा आपकी सबके साथ अच्छी मेल-मुलाकात भी है। छोटे-बड़े राजकर्मचारी आदि सभी आपके हाथ के खिलौने हैं। समाज के भी आप कर्णधार हैं, सभी आपको ऊंची नजरों से देखते हैं, तो फिर किसकी शक्ति है कि आपकी आलोचना

करे। आपको घृणा की दृष्टि से देखे।"

दयालीराम—"मगर······?"

रामलाल—"मगर-वगर कुछ नहीं, लालाजी ! आज-कल तो साठ-साठ वर्ष के बुड्ढों के भी विवाह होते हैं, फिर आपको डरने की क्या जरूरत है ? अवस्था भी कोई खास नहीं है।"

अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, घृत की आहुति का मौका मिल गया। दयालीराम ने कहा—"आप आ गए हैं और इतना कह रहे हैं, तो मैं आपका आग्रह टालना अच्छा नहीं समझता हूं।" ऐसे बातों ही बातों में कान्ता का सम्बन्ध दयालीराम के साथ तय हो गया। जब वासना की आग धधक रही हो, तब मनुष्य को कृत्याकृत्य का भान नहीं रहता है। तृष्णा की आग भी उचित अनुचित नहीं देखती। दयालीराम का हृदय-कमल कमल की भांति खिल रहा था। लालाजी ने रामलाल को भेंटस्वरूप एक हजार रुपये देकर विदा करते हुए कहा कि आप जैसे ही सज्जन दूसरों की चिन्ता को खुशी में परिवर्तित कर सकते हैं।

उचित पुरस्कार प्राप्त होने से रामलाल का मुख-मण्डल विकसित हो रहा था, चेहरे पर अद्वितीय चमक थी। पंडितजी प्रसन्न मुद्रा में विमला के घर पहुंचे।

विमला उनकी प्रसन्न मुद्रा देखकर बोली—"रामलालजी ! आज तो आप बड़े खुश नजर आ रहे हैं, क्या कोई विशेष बात है ?"

रामलाल—"जिस लक्ष्य को लेकर गया था, उसे पूरा करके आया हूं।"

विमला—"क्या कान्ता का सम्बन्ध तय हो गया ?"

रामलाल—"हां, अभी-अभी तय करके वहीं से आ रहा हूं। लाला दयालीराम, जो बड़े अमीर हैं, धन-धान्य, नौकर-चाकर, सबसे सम्पन्न हैं, प्रतिष्ठा भी अच्छी है, करीब ३५ वर्ष की आयु है। उनके साथ कान्ता सुख से जीवन व्यतीत करेगी। कान्ता के लिए घर व वर दोनों ही उचित हैं, किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। फिर हमें दहेज भी नहीं देना होगा।" परिस्थिति मनुष्य से सबकुछ करवा सकती है। विमला इस समय लाचार थी। उसके पास अपनी कन्या को दहेज देने के लिए धन न था। विवशता में उसे यह सम्बन्ध स्वीकार करना ही पड़ा।

कुछ ही दिनों में कान्ता का विवाह दयालीराम के साथ हो गया। वह मायके से विदा हो ससुराल पहुंची। हवेली की चमक-दमक, नौकरों का ठाठ-बाट और पति का वैभव देखकर अपने भाग्य की सराहना करने लगी। किन्तु जब पतिदेव के झुरियों भरे चेहरे पर नजर पड़ी, तो उसका मन अवसाद से भर गया। दो पुत्र क्रमशः १६ व ७ वर्ष की आयु के, दो पुत्रियां क्रमशः १० व ४ वर्ष की। यह सब देखकर कान्ता के हृदय में उथल-पुथल मच गई। वह सोचने लगी कि मेरे जीवन

के सब सुन्दर स्वप्न शेष हो गये। यह क्या हुआ? अच्छा तो यही होता कि मैं भी अपने पिता की तरह इस दुनिया से चली जाती।

उसने भावी निराशामय जिन्दगी में प्रवेश करने की अपेक्षा अपनी जीवन-लीला को समाप्त करना अधिक श्रेयस्कर समझा। शादी की प्रथम रात्रि, अमावस्या के सघन अन्धकार में परिणत हो गई। दुनिया निद्रा-मग्न थी, सन्नाटा छाया हुआ था। कान्ता बिछौने से उठी और अपने बाग में बने कुएं की शरण ली। पानी की तरलता में उसके प्राणों का रस घुल गया। देह पानी की सतह पर कमल की भांति तैरने लगी।

दयालीराम की सहसा आंखें खुलीं। कान्ता को न देखकर वे हक्के-बक्के हो गये। अरे, यह क्या? कान्ता कहाँ चली गई? वे बिछौने से उठे, कान्ता को सब जगह खोजा, लेकिन कान्ता नहीं मिली। अन्त में खोजते-खोजते जब कान्ता की प्राणरहित देह को कुएं में पानी पर तैरते देखा तो उनका कलेजा कांप गया। मुख पर विषाद की रेखाएं उभर आईं, अपने आपको घृणा की दृष्टि से देखने लगे; दुख की असह्य पीड़ा से उनका हृदय चीख उठा—"अरे दयालीराम! धिक्कार है तेरे जीवन को, तेरी बुद्धि-हीनता को और वासना की अनुरक्ति को, जिसने तुझको इस वृद्धावस्था में भी विलासिता के चक्रव्यूह में फंसाकर, इस जघन्य कुत्सित कार्य का निमित्त बनाया।"

"हाय! इस बुढ़ापे में तू विवाह न करता तो आज वह बालिका अपनी अमूल्य जिन्दगी को इस तरह नष्ट करने के लिए प्रेरित क्यों होती और क्यों इस मानव-हत्या के जघन्य पाप का तू भागी बनता, क्यों इज्जत और प्रतिष्ठा पर काला धब्बा लगता, किन्तु अब क्या······?"

विलासिता के व्यूह में, फंसता नर नादान।
कर शादी वृद्धत्व में, पाता कष्ट महान॥

झूठा इल्जाम

लाला भगवानदास बहुत बड़ा व्यापारी था। लाखों रुपयों का लेन-देन करता था। नीतिज्ञ एवं विश्वासी होने के साथ-साथ वह बड़ा शीतल एवं गम्भीर था। किसी बात की उसे चिन्ता नहीं थी, किन्तु सन्तान नहीं होने से वह काफी व्यथित-सा रहता था। भाग्य ने पलटा खाया और सन्तानोत्पत्ति का शुभ समय नजदीक आने लगा, किन्तु काल की गति बड़ी बलवान होती है, उसके सामने सभी शक्तियां नगण्य हैं। बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा भी उससे परास्त हो जाते हैं। सन्तानोत्पत्ति के दस दिन पूर्व ही वह अचानक काल-कवलित हो गया। उसकी पत्नी के वक्षस्थल

पर भयानक वज्र-पात हो गया। वह उदर-पीड़ा से छटपटाती रही और अपनी तकदीर को कोसने लगी। हाय! मेरे कैसे कर्म उदय में आये, मैं कैसी हतभागिन नार। पति की अन्तिम क्रिया में भी सम्मिलित न हो सकी। आस-पास की स्त्रियां ने आकर उसको सांत्वना दी।

कुछ ही समय पश्चात् उसके बच्चा हुआ। गुलाब के फूल की तरह कोमल और कामदेव की तरह सुन्दर, लेकिन माता पच्चीस दिन भी अपने सुकोमल अंगज को दूध नही पिला पाई कि पति के शोक में वह भी सदा के लिये संसार से विदा हो गई।

लाला भगवानदास का छोटा भाई लाला मोहनदास बड़ा समझदार था। नगर में भी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसने उस अनाथ बच्चे (रमेश) को अपनी ही सन्तान समझकर तन, मन और धन से उसका लालन-पालन किया। रमेश बड़ा हुआ। पढ़ने में भी बहुत होशियार था। हर कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता था। मोहनदास का रमेश पर बहुत स्नेह था। अपने बच्चों से भी बढ़कर उसकी सब तरह से निगाह रखता था। उसकी पत्नी पुष्पलता पति के इस व्यवहार से मन ही मन झुल-सती थी। उसे जेठ का पुत्र निरा जहर जैसा कड़वा लगता था। हर समय किसी न किसी बहाने से रमेश को डांटने की सोचती ही रहती थी, किन्तु पति के आगे उसका तनिक भी जोर नही चलता था। फिर भी कभी-कभी तो वह पति से झगड़ा कर ही लेती और मुख से अनर्गल एवं घृणित शब्द बोल देती—"पतिदेव! आप तो केवल रमेश की सार-सम्भाल मे लगे हुए हैं। बाहर से आते ही पूछते हैं कि रमेश कहां है? रमेश कहां है? पर कभी अपने बच्चों की भी सार-सम्भाल लेते हैं? वे क्या पढ़ते हैं? किसी की संगति में समय लगाते हैं?"

मोहनदास—"देख, रमेश को पराया बच्चा नहीं समझना चाहिए, अपना ही है।"

पुष्पलता—(झींकती हुई) "कहां है अपना? यह तो जिठानी का आत्मज है। जरा ध्यान रखना आप, इसे अपना मत समझ लेना। यह रमेश बड़ा चालाक है। धूर्त है। कहीं आपको धोखे में न डाल दे।"

मोहनदास—"कैसी ऐसी फिजूल की बातें कर रही हो? रमेश बड़ा अच्छा लड़का है। स्वभाव का सरल एवं सुशील है। पढ़ाई में भी हर वर्ष फर्स्ट आता है। कभी फेल नहीं होता। गरीब का बच्चा सदा मेहनत और फिक्र से पढ़ता है। सुरेश और नरेश को देखो। कितनी बार फेल हो गए हैं, इन्हें पढ़ने की फिक्र नहीं है। दिन-दिन हरामी होते जा रहे हैं। यह सब तुम्हारे लाड़-प्यार का फल है। बच्चों के निर्माण में माता का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व होता है।"

पुष्पलता—"रहने दो ऐसी [illegible]क्षा। औरों को दिया करो। क्या आप पर

उत्तरदायित्व नहीं है ? पराये बच्चे के लिए जीवन लगा रखा है। खुद के बच्चों के लिए एक मिनट भी खर्च नहीं करता—यह कहां का न्याय है ?"

मोहनदास—"खैर, तुम जो कहती हो शायद ठीक ही होगा। किन्तु मुझे कुछ काम के लिए बाहर जाना है। सम्भवतः बीस-पच्चीस दिन लगेंगे। सब बच्चों को अच्छी तरह रखना।"

पुष्पलता के मौज बन गई। बात-बात पर रमेश को दुत्कारने लगी—"जा, यह पापी कैसा जन्मा है ? जन्मते ही मां-बाप को खा गया। ऐसों का मुंह देखना ही पाप है। अपनी इस शक्ल को लेकर निकल जा घर से। मेरे बच्चों के साथ ज्यादा न बैठना, न खेलना। कहीं तेरी संगति से बिगड़ न जाएं।"

जब यह तेरी-मेरी की बात आई तब रमेश को पता लगा—यह मेरी मां नही है, चाची है। मन ही मन मे सिसकता हुआ वह विचार कर रहा है कि चाचाजी तो मुझसे कितना प्यार करते हैं, मुझे स्नेह-भरी दृष्टि से देखते हैं, किन्तु चाचीजी का हृदय तो बड़ा कठोर है। कदम-कदम पर वे तो डांटती रहती हैं। हाय ! ऐसे कैसे निकलेंगे दिन ? क्या करूं ?

पुष्पलता ने कहा—"मन ही मन मे क्या कर रहा है कुड़-कुड़ ? क्या मुझे डराने के लिए ? मैं किसी से डरने वाली नही हूं। तेरे को करना है, सो करले।"

रमेश—"चाचाजी मैं एक अनाथ लड़का हूं। मुझे आपके सिवाय और किसी का भी सहारा नही है। चाचाजी तो मुझसे बहुत प्यार करते हैं। सुधा-भरी शीतल नजर से मुझे निहारा करते हैं आप इतनी कठोर क्यों हैं ? अनाथ पर दया रखनी चाहिए।"

पुष्पलता—"वृथा बकवास न कर, भूख लगी है तो खाना खा ले।"

एक दिन पुष्पलता गुसलखाने में स्नान करने के लिए गई, वहां हार भूल गई। इधर-उधर सारा घर टटोल लिया, बच्चों से पूछताछ कर ली, किन्तु हार नही मिला। आखिर उसके मस्तिष्क मे आया, हो न हो यह रमेश धूर्त है, चालाक है। इसने कही न कही हार को छिपा दिया है। वह इस ताक मे थी कि रमेश की कोई गलती पकड़ी जाए। समय मिल गया। झट रमेश को बुलाया और जोर से ललकारते हुए उसने कहा—"धूर्त ! आज मेरा हार खो गया है। क्या तूने लिया ?"

रमेश—(हाथ जोड़कर नम्र भाव से) "नही लिया, अभी तक मैंने देखा ही नही कि आपका हार कैसा है ?"

पुष्पलता—"हां मैं जानती हूं। तू बड़ा मीठा बोलता है। अति भक्ति दिखाता है। किन्तु "अति भक्ति चोर लक्खन" अति भक्ति करना चोर का लक्षण है। सच-सच बोल, नहीं तो आज मारे बिना नही छोडूंगी। मुझे तो विश्वास है, तेरे सिवाय और कोई नही है हार लेने वाला।"

रमेश—"अनाथ बच्चे पर झूठा इल्जाम लगाना महा भयंकर पाप है। मैं मेरे हृदय से कहता हूं, भगवान् की साक्षी से कहता हूं, मैंने हार नहीं लिया।"

पर पुष्पलता कहां मानने वाली थी, उसको क्रोध का नशा चढ़ा हुआ था, पिशाचिनी की तरह विकराल रूप धारण कर हाथ में डण्डा लेकर रमेश को जोर-जोर से पीटने लगी। शरीर से खून निकलने लग गया, पर उसके हृदय में दया कहां थी? आखिर बड़ी मुश्किल से आंचल छुड़ाकर रमेश चिल्लाता हुआ घर से भाग चला। धैर्य का बांध टूट गया। आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। 'धिक्कार है जीवन को अब कब आएगी मौत?' आखिर दुःख करता-करता तालाब में जाकर गिर गया और संसार से सदा के लिए आंखें बन्द कर लीं।

सन्ध्या के समय लाला मोहनदास जब घर आया, तब पुष्पलता घबराती हुई आई और पति से बोली—"क्या कर दिया आपके रमेश ने? मैंने तो पहले ही कहा था, इसके लक्षण अच्छे नहीं हैं। जरूर रमेश का हमसे पुराना वैर है, नहीं तो वह इस तरह बदला नहीं लेता।"

मोहनदास—"क्या बात हुई, सुनाओ तो सही! या यूं ही बक-बक किए जाओगी।"

पुष्पलता—"क्या कहूं? उसने तो मेरा सर्वस्व लूट लिया। हमारा घर बर-बाद कर दिया।" पुष्पलता छाती पीट-पीट कर रोने लगी!

मोहनदास—"बात तो कुछ बताओगी नहीं, बस गला फाड़े जाओगी। क्या नुकसान कर दिया रमेश ने?"

पुष्पलता—"मेरा हार गुम हो गया, घर का कोना-कोना छान लिया, हार नही मिला। मुझे निश्चित ही लगता है कि हार रमेश ने लिया है। मैंने उसे मारा, पीटा, काफी ललकार भी लगाई, किन्तु वह धूर्त सच बोलने वाला कहां था?"

मोहनदास—"तुम्हारे स्वभाव में अभी तक परिवर्तन नहीं आया। बिना मत-लब दूध-मुंहे बच्चे पर इल्जाम लगाती हो। रमेश बड़ा ईमानदार है। वह कभी भी ऐसा कार्य नही कर सकता। रमेश कहां है?"

पुष्पलता—"मुझे क्या पता रमेश कहां है? आप करते फिरें अब उसकी तलाश।"

इतने में ही मां-मां कहता हुआ नरेश आया और बोला—"यह लीजिए हार। मैं अभी गुसलखाने में गया था, वहां एक तरफ पड़ा था।"

मोहनदास—"देख लिया, बेचारे अनाथ बालक पर झूठा कलंक देती हो। भूलने का स्वभाव तो खुद का, दोष देना दूसरे को। वह बेचारा मां के बिना इस घर में पला, उसने इस घर को अपना घर समझा, पर तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है। हार मिल गया, लेकिन कुमार कहां मिलेगा?"

लालाजी उसकी खोज में चल पड़े। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले की छानबीन कर ली, किन्तु रमेश नहीं मिला। आखिर तलाश करते-करते तालाब में उसकी लाश मिली। उस शव को घर लाया गया।

लाला मोहनदास के दुःख का पार नहीं रहा। चेहरे पर कालिमा छा गई। पुष्पलता भी हक्की-बक्की-सी कुछ क्षण मूर्तिवत् खड़ी रही। आंखों से टप-टप पानी गिरने लग गया। अपने कृत दुष्कृत पर पश्चात्ताप करने लगी—"हाय! मैं डायन हूं। मैंने अपने रमेश को खा लिया। यदि मैं यह झूठा इल्जाम नहीं देती, तो आज यह शव क्यों……?"

अन्य व्यक्ति के शीष पर, देता जो इल्जाम।
वह नर बन सकता नहीं, जन श्रद्धा का धाम॥

ईर्ष्या

चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त दोनों ही श्यामलाल के पुत्र थे। दोनों बड़े सुशील थे। दोनों की पारस्परिक सौहार्द-सौरभ से आस-पास का सारा मोहल्ला महक रहा था। लालाजी भी अपने प्रिय पुत्रों का मेल-मिलाप देखकर अपने आपको धन्य समझते थे। अचानक ही लालाजी काल-कवलित हो गये और घर का समस्त उत्तरदायित्व उनकी पत्नी के कन्धों पर आ पड़ा। सम्पन्न घर एवं पढ़ी-लिखी लड़कियां देखकर माता ने दोनों ही पुत्रों की शादी कर दी। बड़े भाई चन्द्रकान्त की धर्मपत्नी मनोरमा स्वभाव से बड़ी कर्कशा एवं लड़ाकू थी। देवरानी और जिठानी में पारस्परिक मधुर-व्यवहार व प्रेम की अपेक्षा निरन्तर आग सुलगती थी। अशान्ति के काले-कजरारे सघन बादलों से सारा घर तिमिराच्छादित जैसा रहता था। मनोमालिन्य तीव्र गति से इतना आगे बढ़ा कि एक-दूसरे का मुंह भी देखना नहीं चाहती थी।

कुछ ही समय बाद सूर्यकान्त के पुत्र व एक पुत्री पैदा हुई। देवरानी आभा को पुत्रवती देखकर जिठानी मनोरमा के हृदय में ईर्ष्या का दावानल द्विगुणित होने लगा। मन ही मन में अनेकों संकल्प-विकल्पों की उत्ताल तरंगें तरंगित होने लगीं—यह सूर्यकान्त दुकान पर काम करने वाला तो एक है और इसके खाने वाले चार हो गये। वस्तुतः दोनों बच्चे उसकी आंखों में खटकने लगे। अन्तस्तल में जलन पैदा हो गई और तीखे-तीखे वचन तीरों से देवरानी आभा के मानस को क्रमशः बींधने लगी।

अर्द्धांगिनी मनोरमा की अमिष्ट शिक्षा के कारण चन्द्रकान्त की विचारधारा

भी बदल गई और मानस में कड़वापन पैदा हो गया। सूर्यकान्त को समय-समय पर वह कुरेदने लगा और छोटे-छोटे विषयों पर भी झड़प होने लगी। दोनों के उस अटल सम्बन्ध, अकाट्य प्रेम के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी हो गई। छोटे भाई के बच्चों को देखकर उसकी आंखों में रक्त-प्रवाह प्रवाहित होने लग गया। कदम-कदम पर तू-तू और मैं-मैं के बुरे शब्दों से अधर प्रकम्पित होने लग गये।

एक दिन चन्द्रकान्त ने रोष-भरी वाणी में कहा—"सूर्यकान्त ! मैं तुझे साथ रखना नहीं चाहता, तेरा स्वभाव अच्छा नहीं है। निकल जा मेरे घर से।" कठोर शब्दों की तर्जना देते हुए उसको कुछ भी सम्पत्ति दिये बिना घर से निकाल दिया।

सूर्यकान्त की आंखें डबडबा आईं, हृदय पर वज्रपात हुआ। मानसिक विचार सारणी मे उथल-पुथल का ज्वार आने लगा। क्या करूं ? कैसे होगा जीवन-निर्वाह ? आखिर दोनो बच्चों और स्त्री को लेकर पड़ोसी के घर मे किराये पर रहने लग गया। वैभव के अभाव मे दुकान तो कर ही नही सकता था। तेल, गुड़, साबुन आदि अनेको चीजे आस-पास के छोटे गावो मे ले जाकर प्रतिदिन बेचा करता था। उस नैरन्तिक स्वल्प कमाई मे परिवार का भरण-पोषण करने लग गया। 'हर रोज कुआं खोदना और हर रोज पानी पीना' इसी कहावत को चरितार्थ करता हुआ वह क्रमशः अपने व्यापार में विकास करने लगा। वह इतना स्वाभिमानी था कि समय पर भूखा रहना उसे मंजूर था, परन्तु बड़े भाई से याचना करना उसे स्वीकार नही था।

एक दिन सूर्यकान्त तो विक्रय-सामान लेकर कोई गांव गया हुआ था। इधर घर में आटा न होने के कारण बच्चे क्षुधा से पीड़ित हो रहे थे। रोटी-रोटी की आह भरी करुण पुकार से धरा और आकाश एक हो रहे थे। करुण क्रन्दन देखकर मां से रहा नही गया। सकुचाती हुई वह बड़े भाई के घर गई और विनम्र शब्दों में कहा—"सासूजी ! बच्चे बिलख रहे हैं। प्यासी मीन की भांति तड़प रहे है। घर पर आटा बिलकुल नही है। कम से कम चार रोटी का आटा दे दीजिए, कल ही वापस लौटा दूंगी। भूख मैं सह सकती हू, पर बच्चे नही।"

सास ने कुछ आटा दिया। छोटी बहू की कामना क्रियान्वित हुई, दौड़ी-दौड़ी घर आई और रोटियां पकाने की क्रिया प्रारम्भ की, बच्चो के कुछ जी मे जी आया। आशावान् बने। अब तो अवश्य ही क्षुधाग्नि शान्त होगी।

सूर्यकान्त के अलग हो जाने पर भी चन्द्रकान्त की ईर्ष्याग्नि शांत नही हुई थी। प्रत्येक कार्य मे वह उसकी अवनति चाहता था। आंखों मे रजकण की भांति इसके दोनो बच्चे खटकते ही थे। अचानक घर आया और जब अपनी पत्नी द्वारा यह विदित हुआ कि देवरानी आंटा माग कर ले गई है, एड़ी से चोटी तक लाल-

पीला होकर धम-धम करता हुआ वह क्रोधी सूर्यकान्त के घर जा पहुंचा।

आभा खाना पका रही थी, सिकी हुई एक रोटी बच्चों की थाली में थी, दूसरी तवे पर, तीसरी अंगारों पर और चौथी रोटी का आटा कठौती में था। इतने में वह (चन्द्रकान्त) बकवास करता हुआ मन ही मन में कुड़-कुड़ करता हुआ बच्चों की थाली में पड़ी हुई रोटी के टुकड़ों को, कच्चे आटे को तथा सिकी और अधसिकी रोटी को लेकर दौड़ आया। घर से बाहर आकर उसने सारा सामान कुत्तों को डाल दिया। जोर-जोर से बकने लगा—"कुत्ते भले ही खा जाएं पर भाई के परिवार वालों को नहीं खाने दूंगा।"

इस असह्य अपमान और हृदय चीरने वाली दुत्कार से छोटे भाई की पत्नी का हृदय टूक-टूक हो गया। दुःखाक्रान्त अवस्था में वह इस निर्णय पर पहुंची कि इस संसार से सदा के लिए विदाई ले लेनी चाहिए। दोनों बच्चों को साथ लेकर कुएं पर पहुंची। पुत्र को कहा—"पुत्र! मैं तेरे लिए रोटी लाने जाती हूं, तू यहां आनन्द से क्रीड़ा करते रहना।" वह उस छोटी बच्ची को छाती से चिपका-कर कुएं में कूद पड़ी। बाहर पुत्र प्रतीक्षा कर रहा है—"कब अम्मा आए, कब रोटी लाए?"

सूर्यकान्त कुछ कमाई करके जब घर आया, पड़ोसी से पूछा—"घर की मालकिन आभा कहां गई है?"

पड़ोसी—"आज आपके बड़े भाई से झगड़ा अवश्य हुआ था।"

सूर्यकान्त—"किस विषय में? मैं अलग, वह अलग, फिर झगड़ा?"

पड़ोसी—"आटे के विषय में।"

सूर्यकान्त—"अच्छा किसी को पता है, वह घर से निकल कर किधर गई?"

पड़ोसी—"कहां गई, यह तो पता नहीं है, लेकिन वह उससे अपमानित होकर दोनों बच्चों को साथ लिए कहीं जा अवश्य रही थी।"

यह सारा दुःखद वृत्तान्त सुनते ही सूर्यकान्त तो उसकी खोज करने के लिए शहर में निकल गया। पर्यटन करते-करते आखिर उसी कुएं पर जा पहुंचा, जहां पुत्र रुदन कर रहा था, मां-मां की रटन लगा रहा था। सहसा सूर्यकान्त ने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर प्यार से पूछा—"वत्स! तेरी मां कहां गई?"

पुत्र—(बिलखता हुआ) "पिताजी! मेरे लिए रोटी लेने गई है।"

पिता—"क्या वह बच्ची को साथ ले गई है?"

पुत्र—"हां, मुझे कह गई, तू यहां बैठे रहना।"

पिता—"अच्छा! वह किस मोहल्ले में गई है? किधर से गई है?"

पुत्र—(कुएं की ओर संकेत करते हुए) "इधर से, पिताजी! अम्मा कब

आयेगी ? अभी तक नहीं आई, मुझे भूख लग रही है।"

यह सुनते ही सूर्यकान्त अवाक् रह गया। अपनी तकदीर को कोसने लगा। हाय ! कैसा अन्याय ! क्या इस स्थिति में मुझे जीवित रहना शोभास्पद है ? पुत्र को व्यथा भरी वाणी में कहा—"पुत्र ! तुझे अम्मा से मिलना है ? चलो, जहां तेरी अम्मा गई है, वहां हम भी चलें।" यों कहता हुआ पुत्र को साथ लेकर कुएं में कूद गया। संसार से सदा के लिए आंखें मीच लीं। यह है, ईर्ष्या का दुष्परिणाम। बड़े भाई के दुश्चिन्तन तथा जलन के कारण आज छोटे भाई का सारा परिवार यमराज के घर पहुंच गया।

इधर चन्द्रकान्त के भाग्य ने भी पलटा खाया और अचानक उसके व्यापार में लाखों रुपयों का नुकसान हो गया। चन्द्रकान्त के वक्षस्थल पर इतना भयंकर वज्र-पात हुआ कि उसका हार्ट फेल हो गया। अपने प्रिय-पति के देहावसान की भयंकर दुःखाग्नि से प्रज्वलित होकर मनोरमा भी विषपान कर सदा के लिए परलोक चली गयी।

बुढ़िया अपने भाग्य को धिक्कारती हुई करुण विलाप कर रही है। "हन्त ! यदि ईर्ष्या की भीषण ज्वाला नहीं भभकती, तो आज इस विषम स्थिति का क्यों अवलोकन करना पड़ता ? क्यों समस्त परिवार को संसार से विदा लेनी पड़ती ? अब क्या···?"

ईर्ष्या भीषण रोग है, ईर्ष्या दुःख की खान।
होता ईर्ष्याशील के, पग-पग पर नुकसान॥

पंचों की प्रवंचना

सुशीला की शादी सर्व-साधन-सम्पन्न परिवार में बड़े ठाठ-बाट से हुई थी। विवा-होपलक्ष में सेठ करोड़ीमल ने दिल खोलकर खर्चा किया था। चार भाइयों के बीच एक ही बहिन होने के कारण सभी के हृदय में उल्लास का अतिरेक था, किन्तु सुशीला के भाग्य ने अधिक सहयोग नहीं दिया। कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। भवितव्यता की अकाट्य शक्ति के सामने बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा भी निस्तेज हो जाते हैं। उनका समग्र बल पंगु मनुज की भांति निष्क्रिय हो जाता है। 'यद् भाव्यं तद् भविष्यति' अनेकों प्रयत्न करने पर भी होनहार टल नहीं सकता। जो होना होता है वह होकर ही रहता है। छः महीनों की अल्प अवधि में ही सुशीला का समस्त जीवन दुःखाचरण से आवृत्त हो गया, मानो वक्षस्थल पर कड़कड़ाती हुई विद्युत गिर पड़ी हो। सुहाग का अमर प्रदीप बुझ गया। बाल-विधवा सुशीला

के सारे-राग-रंग दुख में परिणत हो गये। मूर्च्छित-मृणालिनी की भांति उसकी जीवन लता सलिलाभाव में अविकस्वर दशा को प्राप्त हो गई।

सुशीला बहिन अब अपने जीवन की समस्त घड़ियां पीहर में व्यतीत करने लगी। अशान्ति की काली घटाओं से दूर होकर शान्ति के उपवन में विहरण करने लगी। सुशीला बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की थी। पाप-पिशाचिनी से कदम-कदम पर सजग रहती थी। साध्वी के प्रति गहरी निष्ठा थी। संयम का शृंगार ही वह अपना सारा शृंगार मानती थी। धर्म के शीतल सरोवर में वह डुबकियां लेती हुई अपने मानसिक सन्ताप को समाप्त कर रही थी।

एक दिन संध्या के समय उसने पिता करोड़ीमल से कहा—"पिताजी! आप से सानुरोध निवेदन है कि आप अपने अमूल्य जीवन की शुभ घड़ियां पंचायती करने में नष्ट न करें, प्रभु-भक्ति में लगायें।"

पिता—"पुत्री! प्रभु-भक्ति के लिए मुझे अवकाश नहीं है।"

पुत्री—"पंचायती की भयंकर महामारी से किसी को भी आत्मसुख की अनुभूति नहीं होती और इसी खट-पट में आप समय पर खाना-पीना भी भूल जाते हैं। रात-दिन का भी ख्याल नहीं रखते हैं। जिसका दिनों-दिन स्वास्थ्य पर भी बुरा असर है और पंचायती के हर निर्णय में स्वभावतया एक पक्ष की दुर्भावना तो अवश्य ही आपके प्रति बनती है, चाहे जिसके पक्ष में भी आप फैसला करें। कभी-कभी सब जानते हुए भी निर्णय वास्तविकता से परे होना सम्भव है। अतः बिना मतलब लोगों का अपयश मोल लेकर जीवन को कालिमा से अवगाहित करना क्या बुद्धिमत्ता है? कृपया मेरा कहना मानकर आप पंचायती के कार्य से विरक्त हो जाइए।"

पिता—"बेटी! तेरा कहना अक्षरशः सत्य हो सकता है, किन्तु हम झूठी पंचायती में भाग नहीं लेते हैं। बराबर न्याय, एक रोटी के दो टुकड़े कर देते हैं। हंस-विवेक रखते हुए दूध का दूध और पानी का पानी कर देते हैं।"

पुत्री—"पिताजी! रहने दीजिए दिखावटी सफाइयां। कहां पड़ा है आज के युग में न्याय? न्यायालय भी अन्याय की तुला पर तुले हुए हैं। वहां का प्रायः सब काम रिश्वत के आधार पर आधारित है। चांदी की मार के आगे बड़े-बड़े बुद्धिमान् न्यायाधीशों की बुद्धि में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। धन का पक्ष इतना बलिष्ट होता है कि रंगे हाथों पकड़ा गया दोषी भी निर्विवाद बरी हो जाता है। सच्चे झूठे और झूठे सच्चे हो जाते हैं। न्याय-अन्याय का पक्ष अवास्तविक होकर हरेक की आंखों के सामने पैसे का प्रबल नृत्य करने लग जाता है, अतः पुनः-पुनः मेरी यह आपको चेतावनी है कि आपका जीवन-सूर्य अस्ताचल की ओर प्रयाण करने वाला है। झूठे झगड़ों व जंजालों से विदाई लेकर जीवन को आत्मविकास

में लगाएं।"

पिता—"सुशीला ! तू अभी तक बिल्कुल भोली है। तेरा वाक्-प्रलाप गगन-कुसुम की भांति अर्थ-शून्य है। तुझे क्या पता, देख पंचों में परमेश्वर रहते हैं। जब हम न्यायासन पर आरूढ़ होते हैं तब हमारे (पंचों के) दिलों में पाप बिल्कुल भी नहीं होता है। हम निष्पक्ष होकर बराबर न्याय करते हैं।"

पुत्री—"रहने दीजिए वृथा वितंडावाद। कपोल-कल्पित आपकी कल्पना अरण्यरुदन की तरह निष्फल है। न तो परमेश्वर आते हैं और न जाते हैं।"

पिता—(आक्रोशपूर्वक) "बस, रहने दे तेरी शिक्षा ! मुझे जैसा उचित व हितकर लगेगा, वैसा करूंगा।"

सुशीला समझ गई कि अब पिताजी को कहने में अधिक लाभ नहीं है। कुछ ही दिनों पश्चात् वह अपनी भाभियों के साथ बात-बात पर तकरार करने में निर्भयता का परिचय देने लगी। समय-समय पर उन सबको चिढ़ाती हुई, सभी के दिलों में अनल-ज्वाला प्रज्वलित करती हुई, अनर्गल वचन-तीर चुभाती हुई बक-बक करने लगी—"भाभियों ! मेरे ही प्रताप से तुम माल-मसाले उड़ाती हो, सुन्दर-सुन्दर कपड़ों तथा बहुमूल्य आभूषणों से पल-पल अपनी शारीरिक शोभा को द्विगुणित करती रहती हो। मैं विधवा बनी सो बनी, किन्तु तुम सबको मौज बन गई।"

सुशीला की तीखी वाणी ने सारे घरेलू वातावरण को अशान्त कर दिया। कोलाहल की प्रचंड आंधी से एकता की लौ बुझ गई और घर में चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार नजर आने लगा। चारों भाइयों को इस अघटित घटना की जानकारी प्राप्त होते ही उन्होंने पिता से कहा—"अगर बहिन को कुछ देना हो तो दे दीजिए, वह निरन्तर घर में धूम मचाती रहती है।" पिता ने पुत्री को बुलाकर कहा—"पुत्री ! क्यों बिना मतलब अपनी भाभियों के साथ झगड़ा करती है ? क्या लेना है तुझे ?"

पुत्री—"गजब करते हैं पिताजी आप ! जब मैं विधवा बनी थी तब ससुराल से ५०० तोला सोना लाकर मैंने आपको सम्भलाया था। वही सोना वापस लेना है।"

पिता—"क्यों असत्य का सहारा लेती है ? केवल नमक की रोटी पकाते तुझे जरा भी संकोच नहीं होता ? एक भी तोला नहीं दिया था तूने।"

पुत्री—(साश्चर्य) "पिताजी ! आप ही ऐसे जीवित मक्खी निगल रहे हैं। मुझे ऐसा विश्वास ही नहीं था कि आप इनकार हो जायेंगे। हृदय के टुकड़े हो रहे हैं। आप भी सहायक हो गये। बस, अब अधिक कहना नहीं चाहती हूं। कृपया मेरा जेवर दे दीजिए।"

पिता—(आंखों से खून बरसाता हुआ) "धिक्कार है तुझे, क्यों वृथा आग सुलगाती है ? निकल मेरे घर से।"

पुत्री—"पिताजी ! मैं मेरा माल-ताल लेकर रहूंगी। अगर आप नहीं देंगे तो मैं पंचों के पास जाकर पुकार करूंगी। आपकी सेठाई भी मिट्टी में मिल जाएगी।"

बीच में ही चारों भाई आंखों से रक्तधारा प्रवाहित करते हुए विद्युत की भांति कड़ककर बोले—"जा जा, पंचों के पास, तुझे करना है सो कर ले। हम झूठे कलंक को धो डालना चाहते हैं।"

पंचों के पास जाकर सुशीला ने अपनी मानसिक-व्यथा-भरी कहानी आदि से अन्त तक कह डाली। पंचों ने सेठ को बुलाकर कहा—"करोड़ीमल ! धिक्कार है तेरे जीवन को। बेचारी विधवा पुत्री को तू धोखे में डाल रहा है।"

करोड़ीमल—"यह (सुशीला) बिल्कुल झूठ बोल रही है। मुफ्त में तो हमारी रोटियां खाती है, प्रत्युत हमें चोर बनाती है। झूठा इल्जाम लगाती है। क्या लिखित रूप से इसके पास कोई साक्षी है।"

सुशीला—"पंचों ! क्या पिता से भी कुछ लिखवाया जाता है ? मुझे तो केवल इतना सा याद है कि जब मेरे पति का देहावसान हुआ तब मैं पांच सौ तोला सोना लेकर पीहर आई और पिताजी को सौंप दिया था। इसके सिवाय मुझे और कुछ भी याद नहीं है।"

एक तरफ सुशीला का बाल-वैधव्य व उसकी करुणामयी चीख ने सहानुभूति को उभारा और दूसरी तरफ सेठ करोड़ीमल, जो निरन्तर पंचायती में निमग्न रहता था और जिनके विपक्ष में निर्णय देते उनकी चिरकालीन दुर्भावना आदि विषाक्त परिस्थितियों के कारण सुशीला का कथन पंचों को अक्षरशः सत्य लगा। आखिर सोच-विचार कर पंचों ने फैसला सुनाते हुए यह जाहिर किया कि सुशीला को ५०० तोला सोना अथवा २० के भाव से १००००) रुपये मिलने चाहिये। फैसला सुनते ही सेठक रोड़ीमल के होश गुम हो गए। वे हक्के-बक्के रह गए, पर करें क्या ?

सुशीला पिता से लड़-झगड़ कर आखिर १००००) रुपये लेकर घर से निकल गई। इधर सेठ करोड़ीमल के दुःख का पार नहीं रहा। वे चिन्ता के महासागर में गोते खाने लगे—'हाय ! रुपये गए सो गए लेकिन साथ-साथ इज्जत भी चली गई। लोगों के सामने ऊंचा मुंह करके कैसे बोलूंगा ?' इस भयंकर मानसिक व्यथा के कारण सेठजी का स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। वे असाध्य रोग से संपीड़ित हो गए।

कुछ ही दिनों पश्चात् सुशीला पिताजी से मिलने के लिए आई और पिता के

चरणों में पड़कर नम्र-भाव से मधुर वाणी में निवेदन करती हुई बोली—"पिताजी ! देख ली आपने पंचों की प्रवंचना। बताइए, पंचायती में कितनी सच्चाई है। मैंने पांच सौ तोला सोना आपको नहीं दिया था, फिर भी तकरार करके दस हजार रुपये ले गई। पिताजी ! क्या पंचों में परमेश्वर रहते हैं ? कहां गए वे आपके परमेश्वर। बिल्कुल हलाहल अन्याय हुआ। ये लीजिए आपके दस हजार रुपये। मुझे केवल आपको समझाने के लिए यह प्रयोग करना पड़ा और अभद्र व्यवहार करके घर के वातावरण को कलुषित बनाना पड़ा। अब मैं आपसे पुनः-पुनः क्षमा चाहती हूं।"

सुशीला की गद्-गद् वाणी से घर का वातावरण बदल गया। सबके रोंगटे खड़े हो गए। मुंह में अंगुलियां आ गई। सेठ करोड़ीमल की आंखों से टप-टप अश्रु-बिन्दु गिरने लगे और धीरे से कोमल शब्दों में सेठ ने कहा—"पुत्री ! तूने मेरी आंखें खोल दीं। हृदयस्थ अज्ञानान्धकार में प्रकाश कर दिया। अब मैं तेरी वाणी का शतशः स्वागत करता हूं। पंचायती करने में कुछ भी लाभ नहीं है। आज के इस विषैले युग में प्रवंचना के सिवाय न्याय कहां पड़ा है ? सर्वत्र झूठ का बोल-बोला है। सच्चाई झूठ में और झूठ सच्चाई में परिणत हो जाता है। पुत्री ! अब मैं आत्म-निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी भी पंच-पंचायती में भाग नहीं लूंगा और न किसी को धोखा दूंगा।"

पंचजनों की वंचना, हुई प्रकट साक्षात्।
पंचों में परमेश हो, सत्य नहीं यह बात॥

चमत्कार

सुबोधकुमार अपने मां-बाप का इकलौता पुत्र था। माता-पिता के अत्यधिक स्नेह व लाड़-प्यार में पला-पुसा और बड़ा हुआ। १७ वर्ष की उम्र में ही वह कुछ ऐसे लोगों की संगति मे फंस गया, जो शराबी, व्यभिचारी एवं जुआरी थे। मदिरा की बोतलें उड़ाना, जुआ खेलना इसके लिए साधारण-सा बन गया था। कुछ ही दिनों में वह प्रायः सभी व्यसनों का दास बन गया। हर रोज स्कूल का नाम लेकर जाता, किन्तु उसने अपना स्कूल सिनेमा-घर को बना रखा था। सिगरेट और बीड़ियों का धुआं उड़ाता हुआ सड़कों एवं गलियों को छानता रहता था। स्कूल में हाजरी भराकर दौड़ जाता था। समय-समय पर मास्टर साहब भी उसको शिक्षा देते थे। उपालम्भ के साथ-साथ डांट भी लगाते थे, किन्तु सुबोधकुमार की ऊसर भूमि में अंकुर प्रस्फुटित कहां होने वाले थे ?

एक दिन मास्टर सुबोधकुमार के घर गये और उसके पिता लाला श्यामनाथ से बोले—"लालाजी ! आपका यह पुत्र बड़ा उद्दण्ड है। मेरे सामने भी अमर्याद शब्द बोलते हुए इसे तनिक भी संकोच नहीं होता। पढ़ाई पर बिल्कुल ध्यान नहीं है। नजर चुराकर कब कहां दौड़ जाता है, किसी को भी पता नहीं लगता और इधर में मैंने सुना है कि सुबोध गुण्डों की टोली में भटकता रहता है, शराब के नशे में चूर रहता है, जुआ खेलता है। यदि आप इस पर नियन्त्रण नहीं रखेंगे तो आगे जाकर आपको ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

लाला श्यामनाथ ने धर्मपत्नी प्रभा से कहा—"सुन लिए सुबोध के समाचार ! अभी मास्टरजी आए थे, वे उसकी कहानी सुना रहे थे कि वह बिल्कुल नहीं पढ़ता है। आवारा लड़कों के साथ फिरता रहता है, सभी व्यसनों का दास बन चुका है। यह सब तुम्हारे अत्यधिक लाड़-प्यार का ही दुष्परिणाम है। खैर, अब भी लापरवाही को छोड़कर उसे सुधारने का प्रयास करो। क्योंकि बाल्यावस्था में जो सुधर जाता है, वह सुधर जाता है, पर भविष्य में बड़ा होने के बाद सुधरना अतीव मुश्किल है।"

अपने प्यारे पुत्र का वृत्तान्त सुनते ही प्रभा की भौंहें ऊपर को चढ़ गई। आशाओं पर पानी फिर गया। आंखों के सामने अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। वह सोफे पर बैठी-बैठी असमंजस के सागर में डुबकियां लगाने लगी, सुबोध स्कूल का नाम लेकर गया था, लेकिन अभी तक उसका कोई पता नहीं, कौन जाने कब आएगा। आंखें फाड़-फाड़कर प्रतीक्षा कर रही थी कि इतने में निरन्तर की भांति शहर से भटकता हुआ वह घर में घुसा। प्रभा ने विद्युत की तरह कड़ककर कहा—"सुबोध ! इधर आओ, किताबें लाओ, आज विद्यालय में क्या अध्ययन किया ?

सुबोध—(टालमटोल करता हुआ) "माताजी ! मास्टरजी जो पाठ देते हैं, वही पढ़ता हूं। तुम हमारी पुस्तकों के विषय में क्या जानती हो ?"

प्रभा—"पुत्र ! मैंने सुना है, तुम दत्त-चित्त होकर अध्ययन नहीं करते हो। इधर-उधर साथियों के साथ घूमते रहते हो। देखो, कदम-कदम पर बुरी आदतों से डरते रहना चाहिए क्योंकि 'सादा जीवन उच्च विचार' ही जीवन की अमूल्य निधि है। धूम्रपान, शराब आदि दुर्व्यसनों की जंजीरों से जो मुक्त रहता है वह मानव इस वसुन्धरा का चमकीला नक्षत्र है। जहां जाता है वहां उसकी इज्जत एवं प्रतिष्ठा होती है। पुत्र ! माता होने के नाते मेरी सीख है कि तुम प्रतिक्षण व्यसनों से बचते रहना।"

प्रभा की शिक्षाओं का उस पर क्या असर हो सकता था ? काली कम्बल पर क्या रंग चढ़ सकता है ? चिकने घड़े पर क्या बूंद ठहर सकती है ? सुबोध कुमार तो 'वही घोड़ा, वही मैदान' इसी कहावत को चरितार्थ कर रहा था। लाला

श्यामनाथ भी उसे काफी समझाते थे, किन्तु उनका किया हुआ प्रयास भी कानन-कुसुम की भांति निष्फल जाता था। इससे वे बड़े चिन्तित एवं व्याकुल रहते थे, पर सुबोध सभी प्रकार के दुर्गुणों से ग्रसित होने पर भी अपने माता-पिता का संकोच अवश्य रखता था। खुलेआम उनको जवाब देने में अब भी उसे हिचक थी। आंख की शर्म ही सुधार के लिए बची हुई एक किरण थी, जो अन्धकार भरे जीवन में आलोक दे सकती थी।

उसी शहर में सन्तों का शुभागमन हुआ, उनका विद्वत्तापूर्ण प्रवचन सुनने के लिए हजारों व्यक्ति जाते थे। लाला श्यामनाथ ने सोचा कि सुबोध का सुधार सन्त-जन ही कर सकते हैं। लालाजी ने एक दिन अपने पुत्र से कहा—"पुत्र! आचार्य श्री तुलसी के अन्तेवासी विद्वान शिष्य यहां आये हुए हैं। उनके ओजस्वी भाषण में बड़ी भीड़ रहती है। क्या तू भी भाषण सुनने के लिए चलेगा?"

पुत्र—"पिताजी! ये आचार्य तुलसी कौन हैं? मैंने तो इनका नाम ही सुन रखा है।"

पिता—"पुत्र! आचार्य तुलसी भारत के एक महान् सन्त हैं। इन्होंने जन-जन का नैतिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए एक अभिनव अभियान चलाकर राष्ट्र को बहुत बड़ी देन दी है।"

पुत्र—"अच्छा! आजकल समाचार-पत्रों में अणुव्रत आन्दोलन की चर्चा बड़े-बड़े अक्षरों मे जो पढ़ने में आती है, क्या उसके वे ही प्रवर्तक हैं?"

पिता—"हां, इस आन्दोलन को प्रचलित करने के लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार भी आशातीत सहयोग प्रदान कर रही है और इसकी सुविस्तृत जानकारी तो मुनिजनों से ही प्राप्त हो सकती है।"

सुबोधकुमार पिता के आग्रह को न टाल सकने के कारण उनके साथ सन्तों के स्थान मे चला गया। (लालाजी ने पहले से ही सन्तों से प्रार्थना कर दी थी कि मेरे पुत्र को सुधारना आपके हाथ है)। प्रवचन का उस पर काफी असर पड़ा। भाषण समाप्ति के बाद उसने अणुव्रत शब्द का अर्थ पूछा।

मुनि—"अणुव्रत अर्थात् छोटे व्रत। जिस आन्दोलन में नैतिक नियमों का संगठन किया गया है उसका नाम है अणुव्रत।"

सुबोध—"इस आन्दोलन का क्या उद्देश्य है?"

मुनि—"जाति, वर्ण, देश, भाषा और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव मात्र को सयम की ओर आकृष्ट करना। व्रतों के आधार पर इसको तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) प्रवेशक अणुव्रती (२) अणुव्रती (३) विशिष्ट अणुव्रती। इनके क्रमशः ११, ४३ और ४६ नियम बनाये गये हैं।

असाम्प्रदायिक आन्दोलन की गतिविधि को जानकर उसने काफी प्रसन्नता

व्यक्त की। परस्पर और भी अनेक प्रश्नोत्तर चले। आखिर जीवन निर्माण की दिशा में प्रेरित करते हुए मुनिराज ने उसको नियम अपनाने की प्रेरणा दी और साथ-साथ जीवन को संस्कारित एवं उज्ज्वल रखने के लिए फरमाया कि किसी की भी बुरी संगति नहीं करनी चाहिए और धूम्रपान आदि व्यसनों से विरक्त रहना चाहिए।

सुबोधकुमार ने कहा—"महाराज ! आपका सदुपदेश अक्षरशः सत्य है। पर अब मैं इन नियमों के योग्य नहीं हूं, किन्तु इसमें जो आत्म-हत्या का नियम रखा गया है, वह तो पाल ही सकूंगा। इसमें मुझे कोई बाधा नहीं लगती। अगर आप चाहें तो मुझे आत्म-हत्या न करने का नियम दिला दीजिए।"

मुनिराज से नियम ले सुबोध अपने घर पहुंचा। दस बजते ही स्कूल के लिए रवाना हो गया। मास्टर साहब ने उसे कुछ डांटा। उस डांट से सुबोध कहां डरने वाला था। प्रत्युत उसने मास्टर साहब की मरम्मत कर दी। घर शिकायत आई। प्रभा के दुःख का पार नहीं रहा। घर आते ही सुबोध के चट-पट करते हुए दोनों गालों पर जोर से चांटे पड़ गये। सारी अंगुलियों के निशान से उसका मुंह सन्ध्याकाल के सूर्य जैसा हो गया। "सुबोध ! कितनी बार मैंने तुझे समझाया, लेकिन अक्ल नहीं आती। आज मास्टर साहब पर हाथ उठाया है, कल मुझ पर, परसों लालाजी पर······। नीच और कमीनों के साथ ही यदि तुझे जीवन बिताना है तो जा, उन्हीं के साथ रह। घर में पैर रखने की जरूरत नहीं है। समझ लेना मां-बाप संसार से चल बसे हैं। इस घर में पैर तभी रख सकोगे, जब बुरी आदतों को छोड़कर गुण्डों के पास न जाने की प्रतिज्ञा करोगे।"

माता की असह्य ललकार से सुबोध अपना बोध भूल गया और चुपके से घर से निकलकर समुद्र के किनारे जा बैठा। अशान्ति से उसका मस्तिष्क इतना भर गया कि उसके विचारों में उथल-पुथल मच गई। वह अपना धैर्य खो बैठा। सुमति उससे विदा ले गई और वह मन ही मन सोचने लगा—'अब इस सागर का अतिथि होकर संसार से प्रस्थान कर देना चाहिए।' समुद्र में गिरकर मरने की तैयारी कर ही रहा था कि अचानक नियम ने उसकी अन्तःप्रेरणा को जागृत किया। एक झटका सा लगा, अन्तर्मन बोल उठा—'अरे, सुबोध ! तनिक सोच, तूने सन्त-मुनिराजों की साक्षी से संकल्प किया है कि तू आत्म-हत्या नहीं करेगा, अब यह क्या कर रहा है ? ठहर जा, अपने को रोक, यह नहीं हो सकेगा।'

यह सुनते ही सुबोध को सद्बुद्धि मिल गई और वहां से लज्जा के कारण किसी अपरिचित शहर में जाकर एक सेठ के पास नौकरी कर ली।

इधर मां-बाप ने सुबोध की खोज में हजारों रुपये खर्च कर दिये, लेकिन उसका पता नहीं लगा। पुत्र के अभाव में प्रभा विक्षिप्त हो गई। 'हा बेटा, हा बेटा' करती

हुई पागल बन गई।

कुछ ही महीनों बाद सुबोध को घर की याद आई। समस्त बुराइयों को देश-निकाला देकर घर की ओर मुंह मोड़ा। घर आते ही उच्च स्वर से मां को पुकारा। पुत्र की आकृति देखते ही प्रभा की कली-कली खिल उठी। बेटे को इस तरह छाती से चिपका लिया जैसे कि जन्म-जन्म की खोई वस्तु उसे मिल गई हो। पुत्ररूपी प्रकाश के सामने उसके पागलपन का समस्त अन्धेरा दूर हो गया। लाला श्याम-नाथ दफ्तर की छुट्टी होते ही खाना खाने के लिए घर पहुंचे। अचानक अपने बच्चे सुबोध को देखकर फूले न समाए, आंखों से खुशी के आंसू टपकने लगे।

पुत्र ने कहा—"पिताजी ! मैंने तो आवेश में आकर आत्म-हत्या करने की योजना बना ली थी, लेकिन महाराज का भला हो, उस एक नियम से मैं मरता-मरता बच गया, और धीरे-धीरे सभी व्यसनों को भी मैंने छोड़ दिया है। पिताजी, बताइये तो सही, आजकल वे महाराज कहां पर विचरण करते हैं। मैं एक बार उनके अवश्य दर्शन···।"

> पाप आत्म हत्या सदृश, कोई भी न विचार।
> एक नियम के योग से, बचा सुबोधकुमार॥

काश ! मैं नियंत्रित होता ?

"पवन ! अभी विलायत जाना तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि मैं वृद्ध हूं। तुम्हारी माता प्रायः रोग-ग्रस्त रहती है। हम दोनों की सेवा करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है। दुकान पर लाखों का व्यापार व लेन-देन चलता है, उसकी सारी जिम्मे-दारी भी अब तुम्हें निभानी पड़ेगी, अब मैं काम करता-करता थक गया, अवस्था भी काफी हो गई। अब मेरी इच्छा यह है कि सांसारिक समस्त कार्यों से मुक्त होकर अपना सारा समय भगवान् की भक्ति में लगा लूं, जिससे मुझे सहजानन्द की अनुभूति हो।"

पवन—"पिताजी ! आपने तो मेरी मानसिक कल्पनाओं पर पानी फेर दिया। मैं क्या सोच रहा था और आप क्या कह रहे हैं ? जरा सोचिए, आज इस वैज्ञानिक युग में प्रकाण्ड पंडितों व उच्च अध्येताओं का महत्व है, सम्मान है, साधारण मेट्रिक, बी० ए० की पढ़ाई करने वालों की संख्या अत्यधिक है, उनकी कोई इज्जत नहीं है। नौकरी के लिए इधर-उधर फिरते रहते हैं। योग्य पद मिलना तो दूर, साधारण पद मिलना भी बड़ा कठिन हो जाता है। इसलिए मैं तो विला-यत जाऊंगा और बैरिस्टरी पास करके आऊंगा। आप अपनी सेवा के लिए नौकर का इन्तजाम कर लें। माताजी की सेवा के लिए मैं दर्शना को घर पर छोड़ दूंगा।

रोबार यदि आपसे न हो सके, तो बन्द कर दीजिए। मैं तो जनवरी के प्रथम ताह में यहां से चला जाना चाहता हूं।" इन तीखे-तीखे तीरों ने सेठ पृथ्वीराज कलेजे को बींध डाला। वे हतप्रभ हो गये, मुखाकृति चपल गई, पर करें क्या ? का बड़ा अखण्ड और अकड़ जमाता था, वह किसकी सुने ? आखिर सेठजी भय- होकर बोले—"बेटा ! आनन्द से जाना, स्वास्थ्य का ध्यान रखना और वापिस दी आना।"

बाबू पवनकुमार रवाना होकर विलायत पहुंचे। वहां अल्प वर्षों में बैरिस्टर कर अपने नगर को रवाना हुए। जब माता-पिता को पुत्र के आगमन की सूचना ली तो सारा परिवार आनन्द-विभोर हो गया। दर्शना अपने प्रियतम के दर्शन लिए आकुल हो उठी। उसके स्वागत के उपलक्ष में सेठ पृथ्वीराज के घर पर तैयारियां होने लगीं। कहीं दावत का सामान एकत्रित हो रहा था, तो कहीं र्सी और टेबुलों की सजावट हो रही थी। सूर्य उदय होते ही बाबू पवनकुमार ने घर पर पहुंचे। मित्र-मण्डली ने उसके स्वागतार्थ एक आयोजन रखा; जिसमें कों मित्रों के भाषण हुए, पवन के अनन्य साथी नरेशकुमार ने सेठ पृथ्वीराज को यवाद देते हुए कहा—"सेठ साहब ! आपने अपने पुत्र को बैरिस्टरी पढ़ाकर छड़े हुए समाज के सामने एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया है।" इतने में सभी का अनुमोदन करते हुए बोले—"सेठजी ! आपने विलायत का रास्ता खोल दिया सामाजिक भय के कारण कोई भी बैरिस्टर न बन सका, लेकिन आपका प्रथम रण सदा के लिए प्रशस्य रहेगा। कोटि-कोटि धन्यवाद !"

दावत पूरी होते-होते रात्रि अधिक हो गई। सबकी आंखों में नींद आने लगी। रे-धीरे सब मित्र अपने-अपने घर गए। बाबू पवनकुमार भी चुपके से अपने र्णीत स्थान पर जा पहुंचे। मेम साहब मुंह सिकोड़े, आंखें लाल बना, विद्युत की ति कड़ककर अपनी अंग्रेजी भाषा में बोली—"वैल ! तुम यहां से चले जाओ। रे हम तुम पर नालिश करेगा। तुमने हमको धोखा दिया है। तुमने विलायत कहा था कि तुम्हारी शादी नहीं हुई है, परन्तु यहां आते ही यह मालूम हुआ कि म शादीशुदा हो।"

बाबू पवनकुमार भयभीत होकर बोले—"मैं किसी भी परिस्थिति में आपको हीं छोड़ूंगा। उस पत्नी से मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आप जैसा कहेंगी, वैसा करूंगा। अपना सम्बन्ध अटूट है अविच्छिन्न है। आप किसी भी तरह का न्देह न करें !" प्रातः चाय आदि का सब प्रबन्ध करके अपने घर की ओर चला। र पहुंचते ही खाना खाने के लिए रसोईघर में गया।

माताजी ने पवन से कहा—"दस वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के बाद ही तू आया, फर भी घर पर नहीं सोया, यह अच्छा नहीं।"

पवन ने कहा—"माताजी ! घर में मेरा दिल नहीं लगता, आप कुछ भी कहें।"

दर्शना बैठी-बैठी सुन रही थी। उसने सोचा—'पतिदेव तो अवश्य ही किसी के चक्कर में फंसे हुए हैं।' एकान्त का मौका पाकर पवनकुमार बोला—"देख, दर्शना ! यदि तुम मेरा इष्ट चाहती हो, तो सदा के लिए तुम अपने पिता के घर चली जाओ, मैं तुम्हारे जैसी अशिक्षित स्त्री के साथ जीवन नहीं बिता सकता।" यह सुनते ही दर्शना उदास हो गई और निजी कमरे में हतोत्साह होकर चली गई। हृदय में चिन्तन चला—'अब मेरा जीवित रहना ठीक नहीं।' बस, फिर क्या था ? दर्शना ने तो जहर का घूंट पीकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

शहर में बैरिस्टर पवनकुमार की चर्चा चलने लगी, अगर यह विलायत जाकर अनियंत्रित न होता, तो क्यों इस 'मेमड़ो' के चक्कर में पड़ता ? क्यों बेचारी दर्शना को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता ? नगर के इस विषाक्त वातावरण से भी पवन कुमार का पाषाण हृदय कहां पिघलने वाला था ? कहां उसमें सन्मति आने वाली थी ? प्रत्युत शराब और मांस उसके जीवन के आवश्यक अङ्ग बन गए और क्रमशः सातों ही व्यसनों ने उसको घेर लिया। आय की अपेक्षा खर्चा चौगुना बढ़ गया। पिता पृथ्वीराज पुत्र-मोह से उसको काफी लम्बे समय तक खर्च के लिए देता ही रहा, पर उसने अपना भविष्य बिलकुल भी नहीं सोचा। एक दिन ऐसा आया कि सेठ पृथ्वीराज का घर धन-विहीन हो गया। पवन को एकान्त में ले जाकर पिता ने मर्मभरे शब्दों में कहा—"वत्स ! अब अधिक खर्च मत करो। व्यसनों से मुक्त होकर निर्व्यसनी बन जाओ। मेरी इस शिक्षा से जीवन सुखी बन जाएगा।"

लेकिन स्निग्ध घड़े पर पानी की बूंद कहां ठहरने वाली थी। पवन पर कुछ भी असर नहीं हुआ। सेठ की शिक्षा को सुनी-अनसुनी कर गया।

पुत्र की चिन्ता से प्रथम माता का और दो महीने बाद पिता का भी देहावसान हो गया। अब पवनकुमार बिल्कुल स्वतंत्र हो गया।

अति विलास एवं मद्यपान से पवनकुमार भी रोगग्रस्त हो गया। काफी समय तक उपचार करवाया मगर रोग की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। एक दिन मेमसाहब बेहोशी का मौका देख घर का सारा जेवर व रुपये लेकर चम्पत हो गई।

बाबू पवन जब चेतनावस्था में पहुंचे तब उन्होंने 'मेम' साहब को आवाज दी। आवाज सुनकर नौकर ने हाथ में पत्र देते हुए कहा कि मेम साहब चली गई हैं।

हैं ! क्या ? मेमसाहब चली गई हैं ? यह कहकर पढ़ने लगा। हृदय के दुख का सागर उमड़ पड़ा, जीवन भार बन गया। रह-रहकर बीती बातें याद आने लगीं। आखिर सोचता है कि इन सबको किसने पनपाया ? मैंने ही इनको आश्रय में

रखकर पनपाया था। काश ! मैं नियंत्रित रहता तो आज मेरी यह हालत क्यों…?

रहती मेरी वृत्तियां, यदि सात्विक अविकार।
तो न दुखी बनता कभी, सोचे पवनकुमार॥

फांसी की सजा

विमला स्वभाव से कोमल थी। वह किसी का दुःख-दर्द नहीं देख सकती थी। प्रत्येक के साथ उसका व्यवहार प्रशंसनीय रहता था। उसकी जिह्वा में अमृत-सी मधुरता थी, अतः वह हर व्यक्ति को प्रिय लगती थी। वह जहां जाती, वहीं उसका विशेष सम्मान होता था। ग्रेजुएट होने के साथ-साथ उसने मनोविज्ञान का भी काफी अध्ययन किया था। उसकी संगीतकला तो जन-मानस को मन्त्र मुग्ध कर लेती थी। उसका आचार और विचार निर्मल था। वह समय-समय पर अपने प्रिय पति रवीन्द्र कुमार एम० ए० को उज्ज्वल आचार व उच्च विचार की शिक्षाएं देती थी। वह पतिव्रत धर्म मे सुदृढ़ थी।

विमला की सहेली मंजुला ने एक दिन कहा—"मैंने सुना है, तेरे पति आजकल काफी व्यसनी हो चुके हैं। शराब की बोतलें पी-पीकर बदमाशों के साथ घूमते रहते हैं। ध्यान रखना, एक व्यसन आ जाने के बाद इन्सान धीरे-धीरे सभी व्यसनों का शिकार हो जाता है।"

विमला ने हंसकर कहा—"मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकती हूं कि मेरे पतिदेव कभी आचारहीन हो सकते हैं। यह निरी अफवाह तेरे कानों में कहां से आ गई ? यह बिल्कुल असत्य है।"

दूसरे ही दिन रवीन्द्र कुमार रात को नौ बजे घर पहुंचा, तो उसके साथ लाल-लाल आंखों वाले दो बदमाश आदमी भी थे। वे दोनों ही मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए थे। लम्बे-लम्बे केशों तथा दांतों से उनकी आकृति डरावनी लग रही थी। वे दोनों ही रवीन्द्र के साथ कमरे में घुस गये और दरवाजा बन्द कर रवीन्द्र के साथ खुसर-फुसर करने लगे।

विमला का दिल सन्देह से भर गया। उसने सोचा—'दाल में कुछ काला है।' वह उनकी बातें सुनने के अभिप्राय से बाहर दरवाजे के समीप ही बैठ गई। किसी का धन हड़पने की योजना बना रहे थे। आखिर पारस्परिक परामर्श करते-करते वे इस निर्णय पर पहुंचे कि आज रात महलों में चोरी करके खूब वैभव लाएंगे और शराब की बोतलें उड़ाएंगे, फिर वैश्या के यहां चलेंगे।

उनके गुप्त परामर्श की समस्त जानकारी विमला को मिल जाने से उसके हृदय में दुःख का पार नहीं रहा। रोंगटे खड़े हो गये और शरीर सिहर उठा।

चेहरे की सारी चमक निस्तेज हो गई। उसका हृदय-कमल मुरझा गया। हृदय की गति तेज हो गई। क्षण-भर के लिए वह दिग्मूढ़-सी हो गई। हाय ! अब इन गुण्डों के जाल में से इन्हें कैसे बचा पाऊंगी ? इसी चिन्ता में वह चुप-चाप कमरे में जाकर लेट गई।

ज्योंही वे गुण्डे वहां से रवाना हुए, त्योंही रवीन्द्र कमरे से बाहर आकर उच्च स्वर से बोला—"विमला ! खाना तैयार हो तो थाली में परोस कर शीघ्र ले आओ। आवश्यक कार्य से मुझे अभी बाहर जाना है।"

विमला—(पलंग से उठकर) "अभी इस अर्द्ध-निशा में क्या काम पड़ा है ?"

रवीन्द्र—(क्रुद्ध होकर) "तुझे इसकी पंचायती की जरूरत नहीं है कि क्या काम है ? क्या नहीं ? हमारे प्राइवेट अनेकों ही काम होते हैं।"

विमला—"मुझे मालूम हो गया है कि आप कहां जा रहे हैं और किस-लिए ?"

रवीन्द्र—(चौंकता हुआ) "क्या मालुम हो गया है तुझे ? तनिक मुझे भी तो बता।"

पिशाच की भांति विकराल रूप धारण किए अपने पति को देखकर विमला सहम गई। आंखें जमीन में गड़ गईं। उसने सोचा—'अब अगर इनकी मैं बराबरी करूंगी तो क्रोध शान्त न होकर प्रत्युत द्विगुणित होगा। अग्नि में घृत का काम करेगा। क्योंकि वह एक विचक्षण एवं समझदार स्त्री थी, हिताहित का विचार किये बिना एक कदम भी नहीं उठाती थी। अतएव अपने ही आवेश को बलपूर्वक दबाकर, हाथ जोड़ नम्र भाव तथा सौम्य एवं मधुर स्वर से बोली—"पतिदेव ! आप स्वयं शिक्षित हैं, मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, आप तनिक संकेत से समझने वाले हैं। देखिए, राजस्थान में कहावत है—'पर धन धूलि समान' पराये धन को धूल के समान समझना चाहिए। चोरी करना भयंकर पाप है। जघन्य एवं पशुवत् कृत्य करने वाला मानव, मानव नहीं दानव है। शराब पीना भी विवेकी एवं बुद्धिशील मनुष्यों के लिए कदापि शोभास्पद नहीं है। बुद्धि एवं विवेक भ्रष्ट हो जाने से शराबियों को कृत्याकृत्य का भान नहीं रहता। मुंह से बिना माप-तौल के शब्द बोलने लग जाते हैं। कहीं-कही उनकी जूतों से भी पूजा की जाती है। हाय ! शराबियों की कैसी दुर्दशा होती है। इसे हम आप सभी जानते है। फिर भी आप···।"

रवीन्द्र बीच में ही बोल उठा—"हूं, तू तो बड़ी चालाक है। हमारे प्राइवेट परामर्श का तुझे कैसे पता लग गया। मैं तो अपने साथियों से अत्यन्त एकान्त में बात कर रहा था। हमारे गुप्त रहस्य का पता ब्रह्माजी को भी नहीं लग सकता। तूने बहुत ही गजब किया।"

विमला—"मेरी बात पूरी तो सुन लीजिए।"

रवीन्द्र—(स्मित होकर) "अच्छा, तो अभी अधूरा उपदेश हुआ है। बोलो, और क्या कहना है ?"

विमला—"वेश्या-वृत्ति से हमारे देश का बहुत बड़ा पतन हुआ है। इस महामारी की बीभत्सी से जो संपीड़ित हैं, वे स्वयं की रक्षा ही नहीं वरन् देश तथा समाज का भी अभ्युत्थान नहीं कर सकते। पतिदेव! अधिक न कहकर आपसे विनम्र शब्दों में मैं यही प्रार्थना करती हूं कि आपको यदि अपना जीवन प्रिय है, कुल को यदि आप उज्ज्वल रखना चाहते हैं, तो इन तीनों (चोरी, शराब, वेश्या-वृत्ति) दुर्व्यसनों से बचते रहिए। इससे आपको बहुत बड़ा लाभ होगा। मैं आपको अच्छा विचारक व आचारवान् समझती थी। मैं आपके प्रति यह धारणा ही नहीं कर सकती थी कि आप ऐसे बदमाशों के चक्र-जाल में फंस जायेंगे, लेकिन आज मेरी समस्त कल्पनाएं अवास्तविक एवं निर्मूल बन गईं। खैर, अब भी मुझे विश्वास है कि आप अपनी आदतों को सुधार कर चरित्रशील बन जायेंगे।"

रवीन्द्रकुमार पर विमला की शिक्षा का कुछ भी असर नहीं हुआ। वह निर्लज्ज होकर उच्च स्वर से बोला—"सुनो, विमला! तुम्हारा कथन या उपदेश मुझे अपने निश्चय से डिगा नहीं सकता। मैंने जो बात ठान ली, वह ठान ली। मैं मेरे निर्णय पर पहाड़ की तरह अटल हूं। तुम्हारी समस्त शिक्षाएं बहुत ही लाभ-प्रद हैं, किन्तु मेरे जीवन में अब उतर नहीं सकती। खैर, अब इन बातों के लिए समय नहीं है। मैं जाता हूं।"

रवीन्द्रकुमार अपने पूर्व निर्धारित स्थान पर जा पहुंचा। साथियों से मिला और बोला—"चलो, शीघ्र राजमहलों में। खूब धन चुराकर लाएं और फिर मौजें उड़ाएं।" तीनों राजभण्डार में पहुंचे। वहां भण्डार सुरक्षार्थ एक पहरेदार सोया हुआ था। उसकी नींद न उड़ जाए, इस भय से उन्होंने आव देखा न ताव शीघ्र साइलेंसर युक्त पिस्तौल निकाल कर उस पहरेदार के सीने में दो-तीन गोलियां मार दी और मन इच्छित धन चुराकर वहां से रवाना हुए। अचानक पुलिस वाले मिल गए और उन तीनों हत्यारों को पकड़ लिया। आखिर न्यायाधीश द्वारा हत्या के अपराध में उन तीनों को फांसी की सजा सुनाई गई।

अब उस रवीन्द्रकुमार की आंखें खुली। कुछ भान हुआ। मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा। 'हाय! यदि मैं मेरी धर्मपत्नी विमला की शिक्षाओं को जीवन में उतार लेता, तो आज मेरी यह दुर्दशा क्यों......?'

दुर्व्यसनों के योग से, होते बड़े अनर्थ।
फांसी मिली रवीन्द्र को, सब शिक्षाएं व्यर्थ।।

स्टेशन पर हाहाकार

प्रवीणकुमार जब स्टेशन पर उतरा, तब सावन के मेघ आकाश पर घिर जाने से वह काली रात और भी काली हो उठी। बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट से धरती तल कंपित हो रहा था। बिजलियों की असह्य चमक-दमक से आंखें चकाचौंध हो रही थीं, रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था और सामने की काली सड़क बिल्कुल निर्जन होने से पिशाच की भांति डरावनी लग रही थी ऐसे विकराल समय में शहर जाना प्रवीण के लिए चिन्ता का विषय बन गया। वह मन ही मन सोचने लगा—"इस भीषण रात्रि में घर जाना बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि मेरे पास तीस हजार रुपये हैं। इतनी बड़ी रकम लेकर अकेला कैसे जाऊं, साथ किसी का मिल नहीं रहा है। कहावत भी है—'डर काया को नहीं माया को है।' रात भर स्टेशन पर ही विश्राम करना अच्छा है।"

प्रवीण स्टेशन मास्टर के पास पहुंचा, नमस्कार करते हुए बोला—"बाबूजी ! मैं परदेश से इस गाड़ी से आया हूं। शहर यहां से दूर है। रात बहुत खराब हो गई। हाथ से हाथ भी नहीं दीखता है। इस समय घर जाने के लिए दिल मनाही कर रहा है, क्योंकि मेरे पास तीस हजार रुपयों की जोखिम है, अतः रात्रि विश्राम यहीं लेना चाहता हूं। कृपा करके कोई ऐसा सुरक्षित स्थान बताइये, जहां मैं आराम से निश्चित होकर नींद ले सकूं।"

तीस हजार का नाम सुनते ही बाबूजी का दिल ललचा गया, प्रवीण को आत्मीयता दिखाते हुए (कुर्सी की ओर इशारा करके) बोले—"विराजिये ! आपको किसी भी तरह से चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। आपकी सहज मधुर बोली एवं शीतल स्वभाव से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आप बड़े सज्जन पुरुष हैं, अवश्य लीजिए यहां रात भर विश्राम। ऐसी अंधेरी निशा मे इतनी रकम लेकर जाना ही नही चाहिए क्योंकि आजकल शहर मे छुटपुट चोरी-चकारी होती रहती है। यह पास वाला वेटिंग रूम (कमरा) खाली पड़ा है, आराम से सो जाइये, भय की कोई आवश्यकता नहीं है, और भी मेरे लिए कोई काम हो तो फरमाइये।"

प्रवीणकुमार वेटिंग-रूम में जाकर आनन्द से सो गया। मुसाफिरी से थका होने के कारण सहसा वह निद्रा देवी का अतिथि बन गया।

इधर स्टेशन-मास्टर की आंखों के सामने वह तीस हजार रुपये नर्तकी की तरह नाचने लगे। उसकी भावना बदल गई, विचारों में विकृति समा गई। वह मन ही मन सोचने लगा—'आज तो बहुत ही अच्छा मौका मिला है। वह तो अकेला ही निद्रित पड़ा है। किसी को भी उसकी रकम की जानकारी नहीं है। इन

रुपयों को शीघ्र ही हस्तान्तरित कर लेना चाहिए। ऐसा सुन्दर समय बार-बार नहीं मिला करता।' आखिर स्टेशन मास्टर अपने कमरे में पहुंचे और पानी भरने वाले एक हरिजन (चाण्डाल) को बुलाकर कहा—"आज मैंने तुझे एक प्राइवेट काम के लिए बुलाया है। क्या दिल से करेगा?"

हरिजन—"बाबूजी! आप यह क्या फरमा रहे हैं? मैं आपके चरणों की रज हूं। आप जो हुक्म करें उसके लिए आधी रात को तैयार हूं।

बाबू—"देख, मैं तुझे विश्वासपात्र समझकर कहता हूं, किसी को कहना मत।"

हरिजन—"मैं भगवान् की साक्षी से कहता हूं कि किसी के आगे बात नहीं करूंगा।"

बाबू—(उसके कुछ निकट होकर) "आज एक पूंजीपति मुसाफिर आया है, वेटिंग रूम में सोया पड़ा है। उसके पास तीस हजार कैश है। रात को एक-दो बजे तुम वहां जाकर उसके गले पर छुरा भोंक देना। जिससे वह मर जायेगा। बस यही काम है।"

हरिजन—(चौंककर) "बाबूजी! अगर किसी को पता लग जायेगा, तो मुझे नर-हत्या के अपराध में भयंकर दण्ड भुगतना पड़ेगा। फिर मुझे कौन छुड़ाएगा।"

बाबू—"घबड़ा मत, काम निपुणता से करना। किसी को भी पता नहीं लगेगा। इस काम की बधाई में मैं तुझे एक हजार रुपये का इनाम दूंगा।"

लोभानल की प्रज्वलित चिनगारियों से सद्गुण रूपी उपवन जल-जलकर भस्म हो जाता है। इन्सान लोभ के चक्रजाल में फंसकर बड़े से बड़े अकृत्य कार्य भी करने को तैयार हो जाता है। मानवीय आचार को त्यागकर दानवीय आचार पर आरूढ़ हो जाता है। हजार रुपये का नाम सुनते ही उस हरिजन का भी दिल फिसल गया। मुंह में पानी की धार बह चली। चेहरे पर खुशहाली छा गई धीरे से वह बोला—"अच्छा बाबूजी! आपके आदेश का पालन तो करना ही पड़ेगा। अब मैं जाता हूं। नमस्ते।"

पार्श्वस्थ क्वाटर में रहने वाले पेटवान को इस गुप-चुप अर्थात् गुप्त रहस्य का पता लग गया। वह वृद्ध होने के साथ-साथ बड़ा अनुभवी एवं सज्जन था। उसने सोचा—'बाबूजी की बुद्धि तो नष्ट हो गई है। लोभांध होकर बहुत बड़ा अन्याय करा रहे हैं। किन्तु मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।' बरसते हुए पानी में वह दौड़ा-दौड़ा प्रवीणकुमार के पास पहुंचा। उसे जगाकर धीरे से बोला—"सेठ साहब! यहां पर आपको खतरा है। यदि आपको अपना जीवन प्रिय है तो कृपा करके मेरे क्वाटर में पधार जाइए।" प्रवीण चमका, आंखें खुलीं, झट उठा—"अरे भाई! ऐसी क्या बात है? बताओ तो सही, वस्तुस्थिति क्या है?"

पेटवान बोला—"सेठ जी अभी यहां अधिक समय लगाने में लाभ नहीं है; मेरे यहां चलिये। वहां पर विस्तारपूर्वक आपको समग्र घटनाचक्र से अवगत करा दूंगा।" प्रवीणकुमार बिना किसी ननु-नच के उसके क्वार्टर में चला गया।

इधर उसी स्टेशन मास्टर का सुपुत्र रश्मिकुमार (जिसकी शादी कुछ ही दिनों पूर्व हुई थी) सिनेमा देखकर एक बजे स्टेशन पर आया। वहां बिल्कुल सुनसान था। निजी क्वाटर का दरवाजा बन्द होने के कारण रश्मि ने सोचा—'यह वेटिंग रूम खुला पड़ा है। अभी यहीं पर सो जाना अच्छा है। घर वालों को जगाकर क्या करूंगा। पिताजी प्रत्युत गुस्सा करेंगे।' इसी विचार से वह वहीं सो गया।

कुछ ही देर बाद वह हरिजन योजनापूर्वक पिशाच की तरह विकराल रूप धारण किए, हाथ में छुरा लेकर उस वेटिंग रूम में जा पहुंचा। रुपयों के लोभ में वह अन्धा तो बना ही था, उस सोये हुए व्यक्ति पर टूट पड़ा और गले में छुरा भोंक दिया। रश्मिकुमार का सिर और धड़ अलग-अलग होकर धरती पर गिर पड़े।

हरिजन की खुशी का पार नहीं रहा। हजार रुपये रह-रहकर उसकी आंखों के सामने नाच रहे थे। वह दौड़ा-दौड़ा स्टेशन मास्टर के कमरे में आकर धीरे से बोला—"भैया! ध्यान रखना इस बात का किसी को पता न लग जाए।"

अब तीस हजार रुपये पर कब्जा करने के लिए स्टेशन मास्टर ने वेटिंग रूम में ज्योंही पैर रखा, त्योंही अपने पुत्र रश्मिकुमार का शव देख हक्का-बक्का हो गया और धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। करुण क्रन्दन तथा भयंकर विलाप करता हुआ अपने आपको धिक्कारने लगा—'हाय! यदि मैं तीस हजार रुपयों के लोभ में नहीं फंसता तो मेरा नौजवान पुत्र क्यों मरता? मेरे जैसा पापी मनुष्य इस दुनिया में कोई नहीं है। मैंने बहुत अन्याय किया अब मैं दूसरों को मुंह कैसे दिखाऊंगा? ऊंचा मुंह करके कैसे बोलूंगा?' मानस-वारिधि में तरह-तरह की लहरें उठने लगी। 'हाय! अब भण्डाफोड़ होते ही मुझे कारागृह का अतिथि बनना पड़ेगा। न जाने किन-किन मुसीबतों का शिकार बनना पड़ेगा। खैर! हुआ सो हुआ, अब स्वयं का बचाव करने के लिए तो कुछ योजना गढ़नी ही पड़ेगी।' मानव के मस्तिष्क में जब स्व: का प्रश्न नृत्य करने लग जाता है तब दूसरे सब गौण हो जाते हैं। स्व-रक्षा के सम्मुख पर-रक्षा आंखों से ओझल हो जाती है। बाबूजी के आदेशानुसार उस लाश को बोरे में डालकर नदी में उसे बहाने के लिए एक आदमी चल पड़ा। मार्गस्थ चुंगी-कर लेने वालों ने उसे रोक लिया और पूछा—"इस बोरे में क्या माल है?" सही हकीकत बताने में वह बिल्कुल दिग्मूढ़-सा हो रहा था, किन्तु आखिर गुप्त रहस्य का उद्घाटन होते ही स्टेशन पर हाहाकार मच गया।

तुच्छ स्वार्थ हित नीच जन, कर देते संहार।
स्टेशन पर अब मच रहा, भीषण हाहाकार॥

समाज का अभिशाप

"मनोरमा ! यों अपने आपको कब तक चिन्ताग्रस्त बनाए रखोगी, सोचो तो जरा। विवाह-शादी कोई साधारण कार्य तो है नहीं, तिस पर भी हम तो लड़की वाले हैं। हमें ही उपयुक्त वर की खोज करनी होगी, जो हमारी सरला को सुखी रख सके। फिक्र मत करो, मैं सरला के लिए शीघ्र ही अच्छे वर की तलाश करूंगा।"

कुछ दिन पश्चात् रामलाल ने कहा—"लाला श्यामलाल बड़े धनाढ्य व्यक्ति हैं, खानदान भी अच्छा है, व्यापार भी लाखों का चलता है। उनका पुत्र रमेश, गोल चेहरा, लम्बा कद, आंखों में तेज सुकुमार शरीर, एक स्वस्थ युवक है। उसने इसी वर्ष एम० ए० किया है। मुझे वह सुशील एवं सर्व-गुण-सम्पन्न प्रतीत होता है। क्या ही अच्छा हो अगर सरला की शादी उससे हो जाए। मगर…?"

मनोरमा "पतिदेव ! अगर लड़का सर्व-गुण-सम्पन्न है, तो फिर मगर क्या है ?"

रामलाल—"तुम्हें क्या पता नहीं, समाज के रीति-रिवाजों का ? लड़कियों के सौदों के दिन तो अब नहीं रहे मगर लड़कों का सौदा आज के सभ्य कहे जाने वाले समाज में भी खुल्लमखुल्ला होने लगा है। लड़के वाले इतना दहेज मांगते हैं जैसे उनके घर किसी लड़की ने जन्म लिया ही न हो !"

मनोरमा—"पतिदेव ! आप इस चिन्ता से पागल क्यों होते जा रहे हैं ? लाला श्यामलाल तो वैभवशाली व्यक्ति हैं, क्या वे भी दहेज की मांग करेंगे, क्या वे भी अपने लड़के की कीमत चाहेंगे ?"

रामलाल—"और रोना ही किस बात का है, कुछ ही दिनों पूर्व उनसे बात-चीत हुई थी। उन्होंने कहा कि रमेश मेरा इकलौता पुत्र है, उसकी शादी मैं बड़े ठाठ-बाट से करना चाहता हूं। अतः बारात में भी करीब ५०० व्यक्ति होंगे तथा दहेज भी कम से कम बीस हजार का देना होगा।"

यह सुनकर मनोरमा अवाक् रह गई और आश्चर्य के महासिन्धु में डुबकियां लगाने लगी। वह कहने लगी—"समाज के ये धनाढ्य व्यक्ति कर्णधार माने जाते हैं, वे समाज प्रतिपालक कहे जाते हैं। उनका नाम बड़े-बड़े समाज-सुधारकों में आता है, मगर ये व्यक्ति प्रतिपालन के स्थान पर समाज को कुचलना चाहते हैं। सुधार का ढिंढोरा पीटनेवाले ये स्वयं रूढ़िग्रस्त होते जा रहे हैं। नैतिकता व प्रेम के स्थान पर इनमें ईर्ष्या व घमण्ड की चिनगारियां प्रज्वलित होने लग गई हैं। मगर ये सब अवगुण होते हुए भी पूजनीय माने जाते हैं क्योंकि उनके पास लक्ष्मी का बोलबाला है। खैर ! कुछ भी हो, लड़का तो सुशील एवं सुन्दर है। होशियार है, तो कर लीजिए सम्बन्ध।"

रामलाल—"म···म···र, इतना दहेज कहां से आएगा ? अगर इतना दहेज न दे सका, तो सरला के भावी जीवन का क्या होगा ?"

मनोरमा—"क्या होगा ? सरला का भावी जीवन नवीन कलियों की तरह आनन्द-दायक होगा। शशि के समान शीतल होगा। सूर्य के समान दैदीप्यमान होगा। आप चिन्ता न करें, रुपयों का प्रबन्ध मैं करूंगी, आप देखते जाइये।"

सम्बन्ध निश्चित होते ही विवाह की तैयारियां होने लग गई। मंगल गीतों से घर का वातावरण अद्वितीय प्रतीत हो रहा था। पांचों पकवानों का परिमल परितः फैल रही थी। सबकी आकृतियों पर उल्लास की रेखाएं अंकित हो रही थीं।

बारात का आगमन हुआ। सरला का विवाह शुभ मुहूर्त में रमेश के साथ सम्पन्न हुआ। मनोरमा अपने दामाद को देखकर मन ही मन में कमल की भांति खिलने लगी।

दहेज की साज-सज्जा से दर्शकों का मन आकर्षित हो रहा था। दहेज देखने के लिए लोग उमड़ रहे थे।

दहेज-प्रदर्शनी समाप्त होने को थी कि मनोरमा की सहेली सत्या आ गई। मनोरमा सत्या को बहुत चाहती थी; उसके दिल में उसके प्रति प्रेम था, श्रद्धा थी, उसने सत्या को दहेज का सामान दिखाना शुरू किया। सत्या की दृष्टि दहेज पर पड़ी तो सहसा अपने अतीत की बातें स्मृति पटल पर आने लगीं।

उसके सामने अपनी लड़की की शादी का दृश्य नृत्य करने लग गया क्योंकि उसने अपनी लड़की की शादी पर सारा जेवर व घर आदि बेचकर बड़ी मुश्किल से ५००० का दहेज दिया था, पर आज उसका जीवन कष्टों के गहरे गर्त में गिर रहा है। उदर-पोषण भी एक पहेली बन रही है। मकान मालिक किराये के लिए तंग करता है। काश ! मैं इतना दहेज न देती तो मेरे घर की यह दशा क्यों होती ?

सत्या के मुख को अवसादभरा देखकर मनोरमा ने कहा—"आज किस चिन्ता-सागर में डूब रही हो ?"

सत्या ने कहा—"देख मनोरमा ! मैं तुमसे कोई बात छिपाना नहीं चाहती, चाहे वह गोपनीय ही क्यों न हो ? मगर पहले तुम यह बताओ, तुमने इतना दिखावा क्यों और कैसे किया ?"

मनोरमा—"समाज में रहते हुए, समाज की सभी प्रथाओं का पालन करना अनिवार्य होता है, चाहे वे अच्छी हों या बुरी। अपनी मान-प्रतिष्ठा रखने के लिए, समाज में इज्जत पाने के लिए हमें सब रीति-रिवाजों का पालन करना पड़ता है। आज यह समाज दहेज-प्रथा की भयंकर बीमारी से संत्रस्त है; बस इसी के लिए

मेरा यह सारा उपक्रम है। मैं मानती हूं; यह प्रथा समाज के लिए अभिशाप है, समाज अन्दर का अन्दर पिसा जा रहा है, रो रहा है, फिर भी यह प्रथा दिनोंदिन प्रगति कर रही है। उसी का यह सूक्ष्म रूप है।"

सत्या—"मगर, तुमने इतने व्यय का प्रबन्ध कैसे कर लिया ?"

यह सुनकर मनोरमा के होश उड़ गए, हृदय टूटने लगा, पर अपनी सखी से हृदय के विचारों को कैसे छुपा सकती थी ? हृदय को वज्र बनाकर कहा—"समाज की अंधी-परम्परा को निभाने के लिए घृणित एवं निम्नतम कार्य करने को भी बाध्य होना पड़ता है।"

"महीने भर पहले की बात है, सम्भवतः तुझे पता हो होगा। सेठ बंसीलाल का हार (सवा लाख का) खो गया था, जिससे सेठ का हार्ट फैल हो गया था। उस हार का अपहरण करने वाली मैं ही तो हूं, उसी के आधार पर यह दहेज तैयार हुआ है और मैं मेरी मनोभावना को साकार रूप दे रही हूं।"

बात सुनते ही सत्या का हृदय बैठ गया और कहने लगी—"हाय रे समाज ! कैसी है यह दहेज-प्रथा जो मानवता को दानवता में परिणत करने में सफल हो रही है। बहन मनोरमा ! तेरे इस घोर अपराध का जिम्मेवार यह रूढ़िग्रस्त समाज ही है, जो निन्दनीय कार्य करने के लिए विवश करता है, लेकिन ऐसी रूढ़ियों को समाप्त कर हमें एक स्वस्थ व सुन्दर समाज की रचना करनी है और इसके लिए हमें आमूल-क्रान्ति की लौ जगानी पड़ेगी।"

दहेज लेना सर्वथा, निंदनीय है कार्य।
ऐसा छिछला आचरण, कभी न करते आर्य ॥

प्रेम-परीक्षा

सुरेश और महेश दोनों ही मित्र धार्मिक एवं नीतिज्ञ होने के साथ-साथ बड़े तत्त्वज्ञ थे। प्रतिदिन किसी न किसी विषय पर परस्पर विचार-विनिमय चलता ही रहता था । एक दिन संसार के स्वरूप का चित्रण करते हुए सुरेश ने महेश से कहा—"मित्र ! मतलबी दुनिया में सब मतलब का प्यार है। जब तक मतलब है, तब तक सब प्रिय लगते हैं। मतलब के अभाव में प्रिय भी अप्रिय बन जाते हैं। मित्र भी शत्रु और पिता भी यम जैसे हो जाते हैं। सास भी डायन हो जाती है। स्वार्थाभाव में कोई भी किसी को नहीं पूछता। और क्या गुंजन करने वाले भ्रमर भी फूलों पर तभी आते हैं, जबकि उनको वहां पर मधुर रस मिलता है। रस की अनुपलब्धि में वे भी मुख बिचकाते हुए वापस मुड़ जाते हैं, अतः सब मतलब के पुजारी हैं।"

इसी पारस्परिक वार्तालाप के बीच उनका तीसरा परम मित्र कमल भी वहां आ पहुंचा, किन्तु कमल की विचारधारा उनसे बिल्कुल भिन्न थी। वह धर्म-कर्म को कुछ भी नहीं मानता था। खान-पान, ऐश-आराम करना उसने अपना सिद्धान्त बना रखा था। वह बोला—"प्रिय मित्रो! तुम कहते हो कि सब मतलब के सम्बन्ध हैं, तुम्हारी दृष्टि में वह सत्य हो सकता है किन्तु मेरे पारिवारिक जीवन में यह बात नहीं है। परिवार का हर सदस्य मेरे लिए जीवन देने को तत्पर है।"

सुरेश ने कहा—"संसार में कोई भी तेरा नहीं है। सब स्वार्थ के साथी हैं। जब तक स्वार्थ होता है, तब तक सब पीछे-पीछे दौड़ते हैं। स्वार्थ दूर होते ही सब बदल जाते हैं। अर्द्धांगिनी कहलाने वाली स्त्री भी मुंह फेर लेती है। दुःख में वह भी तुझे नहीं पूछेगी। वस्तुतः धर्म ही सच्चा साथी है। वह सुख-दुख में प्रतिक्षण साथ रहता है। धर्म से सहज आनन्द की उपलब्धि होती है। धर्म जीवन का शृंगार है अतः संसार से विरक्त होकर कुछ धर्म किया कर।"

कमल—"मित्र! ऐसी बात नहीं है। मेरी स्त्री तो मुझसे बड़ा प्रेम करती है। सुख-दुख में प्रतिक्षण छाया की तरह साथ रहने वाली है। जब कभी भी मैं रोग-ग्रस्त हो जाता हूं तो वह खान-पान सब भूल जाती है और केवल मेरी सेवा-सुश्रूषा करना ही अपना परम कर्तव्य समझती है।"

सुरेश—"मित्र! अभी तक तू अज्ञान अवस्था में है, मोह के जाल में फंसा हुआ है। ममत्व का चश्मा हटाकर तू परीक्षा करेगा, तब तुझे पता लगेगा कि स्त्री कैसा प्यार करती है? कैसे अपना कर्तव्य निभाती है? माता-पिता भी तेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं?"

कमल—"अच्छा! परीक्षा कैसे करूं?"

सुरेश—"उदर-रोग का बहाना लेकर श्वास चढ़ाकर सो जाना, जब तक मैं इशारा नहीं करूं, तब तक उठना मत। फिर देखना तू तेरे पारिवारिक सदस्यों का आन्तरिक प्रेम।"

कमल—"श्वास चढ़ाना तो बहुत बड़ी कला है। अभ्यास के बिना इस कला में पारंगत होना असम्भव है। मुझे इस कला का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। फिर यह परीक्षा कैसे सम्भव हो?"

सुरेश—"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः। उद्यम करने से हर एक विद्या का अभ्यास किया जा सकता है। कुछ दिनों में मैं तुझे श्वास-विद्या में निपुण बना दूंगा।"

सुरेश की उत्कट प्रेरणा से कमल ने श्वास-विद्या का अभ्यास करना प्रारंभ कर दिया, मानसिक एकाग्रता तथा सतत प्रयास से कमल कुछ ही दिनों में उस विद्या में प्रवीण हो गया। एक दिन उसने अपने घरवालों से कहा—"आज तो

मेरे पेट में काफी दर्द हो रहा है। तीखी-तीखी सूइयों की भांति चुभन-सी हो रही है। सिर में भी काफी दर्द है, मानो कोई बहुत बड़ा पहाड़ टूट कर मेरे सिर पर गिर रहा हो।" यों कहता हुआ कमल पुष्प की तरह मुरझा गया। असह्य वेदना देखकर परिवार के सभी सदस्य चिन्तातुर हो गए। चारों तरफ दौड़-धूप मच गई। कोई डाक्टर को बुलाकर लाता है, तो कोई वैद्य को। कमल की नाड़ी को देख-देखकर वापस मुड़ जाते हैं, किन्तु किसी को भी रोग समझ नहीं आया कि कमल कौन-सी बीमारी से संपीड़ित है। कुछ ही देर बाद कमल हाय-हाय करता हुआ श्वास रोककर लम्बा पसर गया। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। घर के सभी सदस्यों की आकृति पर उदासी ने अपना साम्राज्य जमा लिया। हृदय में दु:ख का सागर उमड़ गया। कमल की धर्मपत्नी कान्ता भी चीख-चीखकर रोने लगी, धैर्य का बांध टूट गया। सभी चिन्तातुर होकर कमल को चारों ओर से घेरे हुए बैठ गये हैं।

इतने में कमल का अभिन्न मित्र सुरेश वैद्य का रूप बनाकर आया। कमल के पिता ने उसे नमस्कार करते हुए कहा—"वैद्यजी! धन्यवाद है आपको, जो बिना बुलाए आप मेरे पुत्र को देखने के लिए मेरे घर पधार गये। कृपा करके यदि इसको स्वस्थ कर दें, तो मैं आपका उपकार जीवन भर नहीं भूलूंगा। आपको कोटि-कोटि बधाइयां दूंगा। कई डाक्टर और वैद्य आये, किन्तु कोई भी रोग की जड़ को नहीं पकड़ सका। कौन जाने क्या बला है?"

वैद्य—"सेठ! प्रयत्न करना मेरा कर्तव्य है। अच्छा होना और न होना इसकी किस्मत पर आधारित है। मैं अब इसके रोग का निदान करना चाहता हूं आप लोग सभी यहां से हट जाइये।"

सब लोग दूर हो गये। कुछ जांच-पड़ताल करके वैद्य ने सेठ से कहा—"रोग तो मेरी समझ में आ गया है। आप कहें, तो रोग को बाहर निकाल दूं। लड़का बिल्कुल स्वस्थ हो जाएगा, किन्तु एक शर्त है।"

सेठ—(प्रमुदित होकर) "वैद्यजी! आपकी समस्त शर्तें हमें मंजूर हैं, फरमाइये।"

वैद्य—"जिस रोग को मैं औषधि के बल से बाहर निकालूंगा, उसे किसी न किसी को पीना पड़ेगा। पीने वाला जीए या मरे इसकी जिम्मेवारी मेरे पर नहीं। अगर कोई नहीं पीएगा, तो वापिस इसे ही पिला दूंगा। उसी वक्त यह आपका सुपुत्र सदा के लिए आंखें बन्द कर लेगा।"

माता-पिता, पत्नी आदि सभी सदस्यों ने एक स्वर में कहा—"हम तैयार हैं पीने को, निकालिए, रोग को बाहर।" वैद्य ने दो सेर दूध मंगवाया। उसको ओटाकर (सड़ाकर) अन्दर मेंहदी घुला दी। एक बड़ा प्याला भरकर वैद्य ने सेठ

से कहा —"यह लीजिए पुत्र का रोग। यदि पुत्र का जीवन चाहते हैं, तो आंख मूंदकर पी जाइए।"

सेठ हक्का-बक्का-सा रह गया। बार-बार वैद्य की ओर झांकने लगा। मन ही मन सोचने लगा—'आज तो फंस गया। सांप के मुंह में छछूंदर वाली बात बन गई। छोड़े तो कोढ़ी हो जाए और खाए तो अन्धा। यह सड़ा दुर्गन्धित रोग पीया भी नहीं जाता और इन्कार भी नहीं किया जाता। क्या करूं? बड़ी समस्या खड़ी हो गई। हर एक को अपना जीवन प्रिय होता है। कोई भी मरना नहीं चाहता।'

आखिर सेठ जी दांतों में अंगुलियां देते हुए धीरे से बोले—"वैद्यजी! यदि आप और कोई काम बताते तो मैं उसे करने के लिए शतशः प्रयत्न करता, किन्तु इस रोग को पीने में असमर्थ हूं।"

वैद्यजी मौन होकर आगे बढ़े, माता, भगिनी और भानेज के पास प्याला लेकर पहुंचे। दुर्गन्धित रोग को देखकर सबके मन मिचलाने लगे। नाक सिकुड़ने लगे। सबके सिर नीचे झुक गये। आंखें डबडबा आई, किन्तु रोग पीने के लिए किसी का भी साहस नहीं हुआ क्योंकि मौत के मुख चढ़े कौन?

आखिर कमल की धर्मपत्नी कान्ता के पास जाकर वैद्यजी बोले—"बहिन जी! घर के और सभी सदस्य बदल गये हैं, किन्तु मुझे दृढ़ विश्वास है, आप नहीं बदलेंगी। इस रोग को पीकर आप अपने पति को जीवन-दान करने में सहायक बनेंगी। कमल आपका अभिन्न अंग है, जीवन का उत्कृष्टतम साथी है। उनका जीवन आपका जीवन है, उनकी मृत्यु आपकी मृत्यु है। उनकी स्वस्थता ही आपके जीवन का पाथेय है। किसी भी उधेड़बुन में न जाइए। आंखें मूंदकर इस रोग को पी जाइए। आपका जीवन-साथी स्वस्थ हो जाएगा।"

वैद्य के वचन सुनकर कान्ता का सिर लज्जा से झुक गया, निरुत्तर हो गई। सिटपिटाने लगी। मुंह फेर लिया।

कमल सोया हुआ यह सारा दृश्य देख ही रहा था। मित्र सुरेश (वैद्यजी) का तनिक इशारा पाते ही कमल झट उठा और बोला—"सुरेश! प्रेम-परीक्षा हो गई। सच्चा प्रेम करने वाले कोई नहीं हैं। सब दिखावटी प्रेम करने वाले हैं। माता-पिता, भगिनी आदि परिवार के सभी सदस्य तो बदले सो बदले किन्तु जिस कान्ता को मैं अर्द्धांगिनी समझता था, जिसको मैं मेरी-मेरी कहकर पुकारता था और वह भी मुझे जीवन का आधार एवं सर्वेसर्वा मानती थी। वह कान्ता भी बदल जायगी, मुझे जीवनदान देने में सिर धुनेगी, ऐसी कल्पना स्वप्न में भी नहीं कर सकता था। धिक्कार है इस स्वार्थ भरे संसार को।"

प्रेम-परीक्षा हो गई, बदला मित्र सुरेश
बदल गया परिवार भी, समझा कमल विशेष ॥

हाय ! मौसर की सनक मेरे······

गांव में पचों ने चौधरी टीकमराम से कहा—"भाई टीकम ! माता-पिता के स्वर्गवास के उपलक्ष में, जो उनका मौसर नहीं करता है, उसके सिर पर बहुत बड़ा कर्जा रहता है। कर्जदार आदमी कभी भी मुंह ऊंचा कर नहीं बोल सकता। जहां जाता है, वहां उसको दुत्कार मिलती है। जात-पांत में भी उसकी इज्जत नहीं होती। पारस्परिक व्यवहार तथा लेन-देन उसके सब बन्द कर दिए जाते हैं।" पंच लोग टीकम को समझा ही रहे थे कि इतने में सेठ मिश्रीमल वहां आ पहुंचे। सेठ साहब ने टीकम से पूछा—"तेरे पिता का स्वर्गवास हुए कितने वर्ष हो गये ?"

चौधरी—(हाथ जोड़कर) "सेठ साहब ! चार-पांच वर्ष हुए हैं।"

सेठ—"तुमने बहुत बड़ी गलती की है, अभी तक उनका मौसर नहीं किया।"

चौधरी—"क्या करूं, इच्छा होते हुए भी कमाई के अभाव में मौसर नहीं कर सका।"

सेठ—"पर इस साल तो तुम्हारे पर परमात्मा खुश है, पैदावार अच्छी हुई है। फिर भी कर्ज को नहीं उतार रहा है, क्या यह बुद्धिमत्ता है ?"

चौधरी—"सेठ साहब ! अगर आप इसकी जिम्मेवारी लें, तो मैं इसी महीने में कर्ज उतार दू क्योंकि आज कल कई तरह की राजकीय बाधाएं भी आती हैं।"

सेठ—"तुझे घबराने की जरूरत नहीं है। सारे राजकर्मचारी मेरे से मेल-मुलाकात रखने वाले हैं। अतः इनमें से कोई भी बाधक नहीं बन सकेंगे। सब अच्छा होगा।"

बेचारा चौधरी सेठ के जाल में फंस गया और स्वयं के हिताहित को कुछ भी चिन्तन किये बिना उसने हां भर ली और दिन भी निश्चित कर दिया।

टीकम घर आकर चौधरानी से बोला—"क्या मैं मेरे पिताजी का मौसर कर लूं ! बोल, तेरी क्या इच्छा है ?"

चौधरानी—"पतिदेव ! चढ़े हुए कर्ज को उतारना तो अच्छा है, किन्तु भविष्य में किसी का मुंह नहीं ताकना पड़े, ऐसा काम करना।"

चौधरी—"पैसा तो हाथ का मैल है। यह तो ऐसे ही आता है, और ऐसे ही जाता है। इस साल पैदावार अच्छी हुई है। और यदि कुछ रुपये पैसों की जरूरत पड़ेगी तो सेठ मिश्रीमल तैयार है ही, अतः मेरे दिल में तो मौसर करने की बात सोलह आना जच गई है।"

चौधरानी—"आप जैसा उचित समझें वैसा करें, किन्तु खर्च अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए, ताकि प्रतिष्ठा और इज्जत भी बनी रहे।"

चौधरी टीकमराम अपने निर्णय पर अटल था ही, उसने खर्च के लेखे-जोखे का सारा भार तथा मौसर का समस्त उत्तरदायित्व सेठ मिश्रीमल को सौंप दिया। लगभग इक्कीस गांव के छोटे-बड़े एक हजार भाई-बहिनों ने भोजन में भाग लिया। घृत, शक्कर आदि समस्त वस्तुओं का इन्तजाम तो पहले ही हो चुका था। रुपयों-पैसों का लेन-देन सब सेठ मिश्रीमल के हाथ में था ही। पंक्ति में बैठे लोग पकवान उड़ाने में मशगूल हो रहे थे कि अचानक आठ-दस जवानों को लेकर थानेदार वहां आ पहुंचा। सभी के दिलों में बिजली-सी कौंध गई, चौधरी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया।

इतने में सेठ मिश्रीमल थानेदार साहब को एक तरफ ले गया और कुछ घुस-पुस के बाद थानेदार वापस मुड़ गया। मौसर का सारा कार्यक्रम शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया। चारों तरफ सेठ मिश्रीमल की महिमा होने लगी कि सेठ साहब ने ही टीकम की नाक को कटने से बचा लिया अन्यथा उसको स्वयं को तो डूबना पड़ता ही, उसके साथ-साथ दूसरों को भी कई दिनों तक कोर्ट कचहरियों में हाजिर होना पड़ता।

इधर सेठ ने खर्च का सारा आंकड़ा मिलाकर चौधरी के सामने रख दिया। वह देखते ही अवाक् सा रह गया और बोला—"सेठ साहब ! खर्च तो बहुत हो गया है। लगता है दो चार हजार उल्टे कर्ज लेने पड़ेंगे।"

सेठ—"हां ! भाई चौधरी ! आज के इस महंगाई के जमाने में मौसर करना कोई मामूली बात नहीं है। तेरे जैसे हिम्मत वाले ही कर सकते हैं। हर एक साधारण आदमी से इतना बड़ा काम पार ही नहीं पड़ सकता। खैर ! घबराने की जरूरत नहीं है। एक दो वर्ष में चुका देना।" यों कहकर सेठ ने बही में चौधरी का अंगूठा चिपकवा लिया।

चौधरी चिन्तातुर-सा घर में गया। चौधरानी बोली—"आज आपके चेहरे पर उदासी क्यों ? क्या कोई शारीरिक पीड़ा सता रही है या मानसिक ?"

चौधरी—"मौसर क्या किया, घर को बर्बाद कर दिया। आज तो वही कहावत चरितार्थ हो गई—चौबेजी, छब्बेजी बनने गए थे पर बन गए दुब्बेजी। जब मैं मौसर करने उद्यत हुआ था तब मेरे मस्तिष्क में यह कल्पना थी कि मेरा कर्ज उतर जाएगा। किन्तु कर्ज उतरा तो नहीं प्रत्युत दुगुना बढ़ गया।"

चौधरानी—"हिम्मत रखो पतिदेव ! दुनिया में हिम्मत की कीमत है। रुपयों की क्या चिन्ता है ? चौमासा आने दीजिए, हर साल की अपेक्षा कुछ अधिक खेती करेंगे। खूब मोठ-बाजरा होगा। उसे बेचकर सारा कर्ज उतार देंगे।"

वर्षाऋतु का समय आते ही आकाश में काली-काली घटाएं उमड़ने लगीं। काली-पीली रात्रि में बिजलियों की चमक-दमक से धरातल प्रकाशित होने लगा। मयूर भी नृत्य करने लग गये। किसानों के हृदयांगन में आनंद की तरंगें समुद्र की भांति तरंगित होने लग गई। टीकम चौधरी के भी कुछ जी में जी आया। बरसात होते ही हल जोत दिए कुछ ही दिनों में बाजरी क्रमशः बड़ी होने लगी। चौधरी का दिमाग कल्पना के खुले अंतरिक्ष मे विहरण करने लगा। बस, जमाना होते ही इस साल सारा कर्ज उतार दूगा, किन्तु वर्षा रुष्ट होकर ऐसी गई कि वापस आई ही नही। प्रतीक्षा करते-करते आषाढ़, सावन व भाद्र मास क्रमशः व्यतीत हो गये परन्तु एक बूद भी पानी नही बरसा। अनाज भी प्रायः जलकर भस्म हो गया। किसानो के मुंह में अंगुलियां आ गई। टीकम बड़ा दुःखी हो गया। अनाज के अभाव मे जीवन का पालन-पोषण करना तथा कर्ज उतारना उसके लिए बड़ी समस्या हो गई।

इधर सेठजी रुपयों के लिए तकाजा कर ही रहे थे। महीने मे तीन चार चक्कर टीकम के घर लगाया करते थे। टीकम ने सविनय प्रार्थना करते हुए कहा—"सेठ साहब ! इस साल तो अनाज कुछ भी नही हुआ। अगली साल यदि फसल हुई तो मैं आपका एक पैसा भी नही रखूगा। कृपा करके अभी आप मुझे तंग न करे।"

दूसरे वर्ष मे किस्मत ने सहयोग नही दिया। बरसात बिलकुल नही हुई। काफी दौड-धूप तथा प्रयत्न करने पर भी टीकम की सभी आशाओ पर तुषारापात हो गया। मुरझाए हुए पुष्प की भाति टीकम का मुखमण्डल कुम्हला गया। चिन्ता से उसका शरीर कृश हो गया।

सेठ मिश्रीमल मन ही मन विचार करने लगा—'अब तिलों मे तेल नही है, दो वर्ष हो गये; एक कच्ची कौड़ी भी नहीं आई, अतः कानूनी कार्यवाही से ही टीकम की आंखें खुलेंगी। टीकम के नाम से उसने नोटिस निकाल दिया। कचहरी मे दावा पेश हुआ, न्यायाधीश ने कुर्की का आदेश दे दिया। सेठजी सरकार और कानून के माध्यम से टीकम के घर पहुंचे। साथ में पुलिस आदि का इन्तजाम था ही अधिकतर जेवर चौधरी ने मौसर के समय मे बेच ही दिया था, किन्तु थोड़े-बहुत बचे हुए गहनों पर, बैलों पर और टीकम की बची हुई जायदाद पर सेठ ने पूरा कब्जा कर लिया। चौधरी और चौधरानी दोनों को घर से बाहर निकलना पड़ा। आंखो से आंसुओं का स्रोत बहने लगा। सिर पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े। इधर-उधर भटकता हुआ टीकम अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा—"हाय ! यदि मौसर की सनक मेरे दिमाग पर सवार नही होती, तो आज

इस संकट का सामना क्यों.........!"

सिर पर मौसर की सनक, होती यदि न सवार।
रे टीकम ! आपत्ति का, नहीं उभरता ज्वार ॥

सरोज का साहस

रात के बारह बज रहे थे। जगमिन्दर की तबियत घबड़ा रही थी। रोग का आवेश पल-पल बढ़ रहा था। डाक्टर और वैद्यों की मोटरें दौड़ी-दौड़ी आ रही थीं। कीमती औषधियां सब निष्फल बन रही थीं। इतने में उन्होंने एक जोर की चीख मारी और नेत्र सदा के लिए बन्द कर लिए।

बेचारी सावित्री पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। सुहाग का दीपक बुझ गया। विलाप कर-करके रोने लगी—"हाय स्वामी ! आप अपनी सरोज को किसके भरोसे पर छोड़ गये ? इसका विवाह अब कैसे होगा ? कौन करेगा ? क्या ही अच्छा होता कि मैं भी आपके साथ चली जाती ?" सरोज की आंखें भी आंसुओं से छलछला उठी। हृदय में अनुताप की लहर दौड़ रही थी। कल्पना के चक्रजाल में फंस रही थी।

पुष्पा आई, उसने संवेदना प्रकट करते हुए कहा—"सखी सावित्री ! अब रोने से क्या होगा ? गया हुआ कोई वापस नहीं आ सकता, फिर क्यों दुःख करती है ? अब तो हिम्मत से काम लेना होगा। अपनी छाती वज्र सी कठोर करनी होगी।"

आंखों के आंसुओं को पोंछती हुई सावित्री बोली—"पुष्पा ! मेरा तो आधार स्तम्भ गिर चुका है, तेरे सिवाय मुझे आश्वासन देने वाला कोई नहीं है। अब सरोज का विवाह कैसे होगा ? यह भार तो तुम्हारे ऊपर ही है। जैसा तुम करोगी, वैसा ही होगा।"

पुष्पा—"तुम कोई भी चिन्ता मत करो। सरोज मुझे प्राणों से भी प्यारी है। मैं यथाशक्ति अच्छा घर-वर ढूंढ़ने का प्रयत्न करूंगी। जीवन में सुख-दुःख आते ही रहते हैं, तुम अधीर मत बनो। धैर्य से सब काम सफल होते हैं।"

सरोज के हृदय में उथल-पुथल मचने लगी। विचारों में क्रांति और शान्ति की धारा एक साथ बहने लगी। मेरे कारण इतनी परेशानी उठानी पड़ती है, इससे अच्छा होगा कि मैं आत्म-हत्या करके माताजी को भार-मुक्त बना दूं। सहसा उसकी आत्मा से एक आवाज उठती है कि "आत्म-हत्या" एक भयंकर पाप है। ऐसा पाप तुझे किसी भी परिस्थिति में नहीं करना चाहिए।

फिर विचारों का क्रम बदला, उसने सोचा कि अगर मैं शादी करने से इन्कार

कर दूं तो माताजी के ऊपर से चिन्ता का आवरण हटाया जा सकता है। यह सोच विनय के साथ सरोज ने माता से कहा—"माताजी, मैं आजीवन कुंवारी रहकर अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य करना चाहती हूं।"

माता सावित्री ने यह सुना तो वह जोर-जोर से रोने लगी और करुण स्वर में कहा—"पुत्री! ऐसी बात कभी मत कहना। मैं ज्यों-त्यों करके तेरी शादी करूंगी।"

इतने में पुष्पा ने दरवाजा खटखटाया, अन्दर आई और बोली—"सखी! 'वे' कल फिरोजपुर गए थे। लाला नोहरचन्द का लड़का राजेन्द्र अभी बी० ए० में उत्तीर्ण हुआ है, उससे सरोज का सम्बन्ध तय किया गया है; बसन्त पंचमी का मुहूर्त अच्छा है, अतः विवाह की तैयारियां करो।"

सावित्री की नस-नस में आनंद का संचार होने लगा और गद्गद् स्वर में बोली—"बहिन पुष्पा! तुम्हें शत-शत धन्यवाद है। तुमने मेरी चिन्ता को दूर किया। मैं तुम्हारे उपकार से कभी भी उऋण होने वाली नहीं हूं। आजीवन तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगी।"

बसंत पंचमी का सुनहला समय था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। शीतल मंद चांदनी जन-जन की नयनावली को आकृष्ट कर रही थी, उस पावन दिवस की पावन बेला में सरोज और राजेन्द्र की शादी सम्पन्न हुई।

सरोज का जीवन नए प्रभात से नवीनता लिए हुए था। नव-जीवन के नए प्रभात सहित उसे विदा किया गया।

चलते-चलते रात हो गई। अन्धकार ने भूमण्डल पर साम्राज्य जमा लिया था। मुसाफिरों का आना-जाना प्रायः बन्द हो चुका था। जंगल की सघन झाड़ियां भी मानो निगलने के लिए तैयार थीं। हिंस्र पशुओं के निनाद से वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। बारातियों का झुंड आगे निकल चुका था। गांव कुछ दूर रह गया था। राजेन्द्र का रथ मन्द गति से आगे बढ़ रहा था। अकस्मात् लुटेरे आ निकले और "ठहरो-ठहरो" कहते हुए वे पास आये तथा पिस्तौल की गोलियों से नोहरचन्द, राजेन्द्र और रथिक को यमराज का अतिथि बना दिया। जेवर, कपड़े व नगद रुपयों को अपने कब्जे में करके सरोज की तरफ बढ़े तथा आक्रोश-पूर्वक बोले—"उतर रथ से नहीं, तो तुझे भी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा।"

सरोज की चेतना कराह उठी, होश गुम हो गए, मुख पर विषाद का आवरण छा गया, वह सिसक उठी। उसने सोचा—इस निर्जन जंगल में कौन है मेरा रक्षक? इस तिमिराच्छादित महारात्रि में कौन है, मेरा सहायक? मैं अकेली अबला और ये हैं चार लुटेरे। इतने में हृदय में आवाज निकली—"सरोज! घबड़ा मत, क्या है? कायर मत बन, अवश्य ही तेरी विजय होगी।" मेघ की

तरह गर्जना करती हुई उन लुटेरों को ललकारती हुई बोली—"अरे विवेक-विह्वल मनुष्यों ! मेरे हाथ मत लगाना, मैं स्वयं सब दे दूंगी।" ऐसा कहकर नाक की लौंग, हाथ की चूड़ियां, पैर के गहने छोड़कर और सब दे दिए।

चोरों ने कहा—"हम एक भी तोला सोना नहीं छोड़ेंगे, तार-तार लेकर रहेंगे। स्वेच्छा से दे दो, अन्यथा हम बलात्कार करेंगे।"

सरोज ने कोमल शब्दों में कहा—"भाइयो ! मैं अनाथ बालिका हूं। किसी का भी मुझे आधार नहीं है। जीवन-निर्वाह के लिए कुछ न कुछ धनराशि अपेक्षित है। आप दया करें। थोड़ा-सा तो रहने दीजिए अन्यथा उदर-पूर्ति असंभव है।"

चोरों की आंखें सरोज की मुखाकृति पर पड़ते ही उनका हृदय काम-बाण से बिंध गया। विषयान्ध बनकर कहने लगे—"तुम हमारी कामना को पूरी करो, हम एक भी तोला सोना नहीं छीनेंगे। सारे आभूषण दे देंगे। ऐसा सुन्दर समय पुनः पुनः नहीं मिलेगा। तेरी मंजुल मूर्ति पर हम मुग्ध हैं।" डाकुओं की विषभरी वाणी सुनते ही सरोज का हृदय कांपने लगा, आंखों के आगे अंधियारा छा गया। सारा शरीर पसीने से भीग गया, फिर भी उसने अपना साहस नहीं खोया और सर्पिणी की भांति उग्र रूप धारण कर कहा—"नराधम डाकुओ ! क्या समझते हो ? क्या मैं कुलटा हूं ? चले जाओ यहां से। क्या तुम भारतीय महिलाओं के सतीत्व को नहीं जानते ? मैं प्राणों की आहुति देने को भी तैयार हूं पर शील का खण्डन किसी परिस्थिति में नहीं होने दूंगी।"

पर वे डाकू कहां मानने वाले थे। उसको धमकाते हुए बोले—"अगर हमारे कथन को स्वीकार नहीं करोगी, तो तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा।" यों कहते हुए उसकी ओर बढ़े और उसे पकड़ना चाहा।

किन्तु सती सरोज अपने शील का खण्डन कहां करने वाली थी ? उनको अपनी ओर आते देखकर सती ने अपनी जिह्वा को खींच लिया और सदा के लिए आंखें बन्द कर लीं। प्राणों की आहुति देकर भी उसने सतीत्व की रक्षा की।

लुटेरों का दिल धन-दौलत को देखकर रह-रहकर खुश हो रहा था। सभी के मुख-मण्डल पर हर्ष का उद्भव हो रहा था। उसी गहन जंगल में सिपाहियों का एक समूह घूम रहा था। अचानक उस समूह ने आकर चोरों को घेर लिया। डाकुओं ने सामना किया, किन्तु सशस्त्र पुलिस के आगे डाकुओं का क्या जोर चल सकता था। चारों ही आखिर घायल होकर गिर पड़े। पृथ्वी माता पर पड़े-पड़े कहने लगे, जैसा हमने किया था वैसा पा लिया।

साहस श्लाघ्य सरोज का, प्रण पर रही अडोल।
जीभ खींच ली शील हित, बढ़ा धर्म का मोल॥

स्वप्नों पर पानी

सेठ मंगतराम अपने जीवन में बड़ा सन्तुष्ट था। उसको रहन-सहन, खान-पान आदि समस्त क्रियाओं में सादगी सर्व-प्रिय थी। वह अपने हाल में बड़ा मस्त रहता था। बिना मतलब किसी के साथ बात करना, किसी की बुरी-भली करना उसको बिल्कुल भी अभीष्ट नहीं था। नगर में एक छोटी दुकान चलाया करता था। दूसरों को ठगना, धोखे में डालना उसने सीखा भी नहीं था क्योंकि वह न्यायनीति का पुजारी था। उसका सत्य साध्य था। दुकान में थोड़ी-बहुत जितनी भी कमाई होती, उसे अधिकतर घर-खर्च में लगा देता और कुछ अवशिष्ट कमाई अपने प्रिय-पुत्र नयन की सार-सम्भाल मे व्यय कर देता क्योंकि माता (सरला) व पिता (मंगतराम) को नयन प्राणों से भी अधिक प्रिय था, उनकी आंखों का तारा था, उनके स्वप्नों का आधार था। उसकी फूलों-सी हंसी, तुतलाती हुई बोली माता-पिता के हृदय को लुभाती रहती थी। नयन के लिए प्राणों का बलिदान भी उन्हें तुच्छ लगता था।

राजकुमार की तरह नयन का पालन-पोषण होता था। उसका तनिक भी स्वास्थ्य बिगड़ जाता, तो घर का घर परेशान हो उठता और सारा पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता। जब तक उसे चैन नहीं हो जाता, तब तक किसी को चैन नहीं होती। नयन बड़ा हुआ। उसे स्कूल में भरती कराया गया। पढ़ाई की सारी व्यवस्था करके सेठजी वापस घर लौटे, तो उनका मुख कमल की भांति खिल रहा था।

सरला—"आज किस बात की खुशी है? आपके चेहरे पर बड़ी चमक है। क्या हुआ?"

मंगतराम—"मैं अभी स्कूल गया था। नयन की मां! जानती हो मास्टरजी ने क्या कहा?"

सरला—"मुझे क्या पता? मैं तो घर बैठी थी। आप सुनाइये।"

मंगतराम—" वह कहते थे तुम्हारा नयन भाग्यशाली है। पढ़-लिखकर बड़ा अफसर बनेगा।"

यह बात सुनकर सरला इतनी खुश हुई मानो संसार की समस्त खुशियां सिमटकर उसके हृदय में समाहित हो गई हों। भविष्य के लिए उसके मस्तिष्क में अनेकों कल्पनाएं दौड़ने लगीं—नयन बड़ा होगा, पढ़-लिखकर बड़ा होगा, फिर पढ़ी-लिखी लड़की के साथ विवाह करूंगी। बड़े ओहदे पर अफसर बनेगा। खूब पैसा कमाएगा। आलीशान बंगला होगा, मोटर होगी, दो-तीन नौकर होंगे। जीवन के प्रत्येक पहलू में सुख-शान्ति का अविरल स्रोत बहता रहेगा। ये स्वप्न

नयन की मां के ही नहीं पिता के भी थे। सेठ मंगतरामजी अपनी अधिक कमाई नयन के लिए आंख मूंदकर खर्च कर देते थे। एक पैसा भी उन्होंने जमा करना नहीं सीखा। जब कभी सरला कहती—"पतिदेव ! थोड़ी धनराशि तो बैंक में जमा रखनी चाहिए।"

मंगतराम—अरे पगली ! तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। नयन अपने घर में चलता-फिरता बैंक है। खूब कमाकर लाएगा और हम दोनों की सेवा-चाकरी करेगा।"

सरला—"अजी ! जमाना बहुत खराब आ गया है। कहीं आगे जाकर अपने को रोना न पड़े।"

मंगतराम—"तेरे में अक्ल नहीं। जमाना भले ही खराब हो, किन्तु नयन बड़ा विनीत है, आज्ञाकारी है। फिर चिन्ता किस बात की ?"

नयन की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वह हर क्लास में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता था। बी० ए०, एल०एल० बी० की उपाधि मिल जाने के बाद पुत्र ने कहा—"पिताजी ! आपका यदि मुझे शुभ आशीर्वाद प्राप्त हो, तो मैं विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर लूं।"

पिता—"पुत्र ! आनन्द से जाओ। किन्तु वहां कई बातों का ध्यान रखना।"

पुत्र—"कृपा करके शिक्षा फरमाइये, कदम-कदम पर आपकी शिक्षाएं साथ लिए चलूंगा।"

पिता—"(१) बुरी संगति से बचते रहना, (२) अपनी कुल मर्यादा का भी उल्लंघन मत करना, (३) शराब आदि नशीली वस्तुओं से दूर रहना, (४) मांस अण्डे आदि बुरे पदार्थों को अभक्ष्य समझना। बस, इन बातों का यदि तू प्रतिपल पालन करेगा, तो अवश्य ही तुझे सफलता आलिंगन करेगी।"

पुत्र—"पिताजी ! विश्वास रखिए, मैं आपकी शिक्षाओं को जीवन में उतारता हुआ आगे बढ़ूंगा।"

माता-पिता का शुभ आशीर्वाद पाकर नयन विदेश के लिए रवाना हो गया। शीघ्रातिशीघ्र बैरिस्टरी पास करने के लिए उसने बड़ी एकाग्रता से अध्ययन किया। चन्द ही वर्षों में वह बैरिस्टर बनकर अपने घर आ गया और माता-पिता के चरणों में नमस्कार करता हुआ बोला—"आप ही की कृपा का यह शुभ फल है। आपके उपकार से मैं कभी भी उपकृत नहीं हो सकता।"

नयन कुछ ही दिनों बाद सरकारी अफसर बन गया। जितना भी मासिक वेतन पाता वह सब पिताजी को लाकर दे देता।

एक दिन सरला ने नयन के पिता से कहा—"अजी ! आप तो देखते नहीं हैं।

नयन सब तरह से योग्य हो गया है। अब जल्दी से जल्दी इसका विवाह हो जाना चाहिए। छम-छम करती देवांगना सी सुन्दर बहू आयेगी मेरी पग-चंपी करेगी। मैं घर की सारी जिम्मेवारी उसे सौंपकर निश्चिंत बन जाऊंगी। घरेलू सभी झंझटों से छुटकारा पाकर अमूल्य मानव-जीवन का कुछ लाभ कमाऊंगी। आप मेरी इस भावना को अविलम्ब साकार करें।"

सेठ ने अच्छा खानदान देखकर लाला प्रकाशचन्द्र की सुपुत्री शान्ति, जो कि सुन्दर, सुकुमार, चतुर एवं अच्छी पढ़ी-लिखी थी, उसके साथ नयनकुमार का सम्बन्ध निश्चित कर दिया।

नयन के विवाह की बड़ी धूमधाम से तैयारियां होने लगीं। मां के कानों में ब्याह की शहनाइयां गूंजने लगीं। मंगल-गीतों से घर और आकाश एक होने लगा। बड़े अरमानों के साथ नयनकुमार का विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ।

नयन की बहू शान्ति ने ज्यों ही घर में प्रवेश किया, त्यों ही अशान्ति के काले-काले बादल उमड़ने लगे। शहनाइयों की गूंजें चीखों में बदल गईं। हृदय में बसी अरमानों की नगरी धू-धू कर जल गई। आंखों में आंसू ढलकाती सरला बोली—"पतिदेव ! देख लिया नयन का विनय, बहू ने क्या जादू कर दिया ?"

मंगतराम—"क्या कहूं ? मुझे तो विश्वास ही नहीं था कि नयन ऐसा उद्दण्ड निकलेगा। नयन तो बहू के हाथों का खिलौना बन चुका है। जैसा वह कहती है, वैसा करता है। अपने को तो कुछ भी नहीं गिनता है।"

सरला—"मैंने पहले ही कहा था, इतना खर्च मत करो, अब भविष्य कैसे निकलेगा ? चौका-बर्तन, झाड़ना-बुहारना, खाना-पकाना आदि घर का सारा काम मुझे ही करना पड़ता है। बहू तो बैठी-बैठी आराम करती है। दो टाइम भोजन कर लेती है और महलों में चली जाती है। हाय ! मेरे तो समस्त स्वप्नों पर पानी फिर गया।"

मंगतराम—"तुम जो कहती हो, वह अक्षरशः सत्य है। ब्याह के बाद नयन ने अपनी तनख्वाह की एक कौड़ी भी नहीं दी। बहू क्या आई है, घर में एक कलह आ गई। नाम से तो वह अवश्य शान्ति है, किन्तु शान्ति का नाम-निशान भी नहीं। कदम-कदम पर अशान्ति की चिनगारियां उभरती रहती हैं। बड़ी कर्कशा है। सर्पिणी की भांति फुफकार करती है। नयन को भड़काने वाली भी तो यही है। क्या करें ? बड़ी समस्या खड़ी हो गई।"

सास-बहू में मनमुटाव तो चलता ही था, एक दिन काफी जोर-शोर से तकरार हो गई। बहू ने अत्यन्त तीखी हृदय विदीर्ण करने वाली वाणी में कहा—"अभी तो तुम को दाल रोटी मिल रही है, यह सब मेरा ही तो प्रताप है। मेरे पति के वेतन से ही तो घर का काम चलता है, ज्यादा तीन-पांच करोगी तो हम-हम, तुम-

तुम। काफी दिनों तक मैंने तुम्हारे तीखे तीर सहे, किन्तु अब मैं सहने वाली नहीं हू।" आखिर वह कर्कशा सास-श्वसुर के साथ कहां रहने वाली थी। नयन उसके वश में था ही। उसके कथनानुसार ही नयन की गति-प्रगति होती थी। एक दिन अवसर देखकर घर का सारा सामान लेकर वह अलग हो ही गई।

सेठ-सेठानी बड़े दुःखी हो गए। अनेकों समस्याएं उनके सामने मुंह खोलकर खड़ी हो गई। घर-मालिक किराए के लिए तंग करने लगा। भोजन और कपड़ों का खर्च भी निभाना बड़ा मुश्किल हो गया। चारों ओर से सेठ को दुःख ने घेर लिया। एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से निकलने लगा। मन ही मन सोचने लगे—हाय ! ऐसा बेटा नही होता, तो अच्छा······।

स्वप्नों पर पानी फिरा, देख पुत्र-उत्पात।
सब आशाओं पर हुआ, तीव्र तुषारापात॥

आजीवन कैद

रूपसेन को यह विश्वास नहीं था कि मेरा मित्र वामदेव मेरे साथ विश्वासघात करेगा। मुझे मौत के घाट पर उतारेगा। लेकिन जब धन का प्रश्न सामने आता है, तब मित्र की मित्रता में खाई पड़ जाती है। मन-मुटाव के सघन बादलों से हृदय आच्छादित हो जाता है। एकता में द्वेष की दीवार खड़ी हो जाती है। भाई-भाई को धोखा देने व पुत्र पिता को मारने के लिए उतारू हो जाता है। इसीलिए ऋषियों ने धन को अनर्थ का मूल कहा है।

दुकान से लाखों रुपयों का वैभव लेकर वामदेव और रूपसेन दोनों मित्र अपने नगर के लिए रवाना हुए। मार्ग में चलते-चलते वामदेव की विचारधारा ने पलटा खाया। मन में विकार आया। स्वच्छ हृदय पर कपटाई की काई छा गई। वंचनापूर्ण मधुर स्वर से बोला—"मित्र रूपसेन ! गांव तो अभी काफी दूर है। विश्राम लिये बिना मेरे से तो चला नही आता।"

रूपसेन—"मित्र ! कोई बात नही, थकान आना तो स्वाभाविक ही है, बोलो ! कहां ठहरें ?"

वामदेव—"भाई ! इस वट-वृक्ष के नीचे रातभर शयन कर लें। सारी थकान दूर हो जायेगी। फिर सुबह चलेंगे।"

दोनों वहां सो गये। रूपसेन तो सोते ही निद्रा देवी का अतिथि बन गया क्योंकि उसका हृदय निश्छल था। मक्खन की भांति कोमल था। अपने प्रिय मित्र वामदेव के प्रति किसी भी तरह का दुर्भाव नहीं था।

कपट-निद्रा से सोये हुए वामदेव को नींद कैसे आ सकती थी? वह इस निर्णय पर पहुंच चुका था कि ज्यों-त्यों करके रूपसेन को यमराज के घर पहुंचा देना, जिससे मेरा मनोवांछित कार्य क्रियान्वित हो सके। धन के दो विभाग न होकर समग्र सम्पत्ति का स्वामी मैं बन जाऊंगा।

वह उठा और रूपसेन की छाती पर जा बैठा। सहसा उसकी आंखें खुलीं। अपने प्रिय मित्र को बीभत्स रूप धारण किए हुए देखकर सुधामयी वाणी में बोला—"वामदेव! यह क्या? हाथ में चाकू और आंखों में रक्त का प्रवाह क्यों?"

वामदेव—"रूपसेन! अब तू मेरी निगाह में मित्र नहीं शत्रु है, प्रिय नहीं अप्रिय है। इस चाकू का प्रयोग भी तेरे गले पर होने वाला है तेरी मौत भी मेरी आंखों के सामने नाच रही है। अगर किसी का स्मरण करना है तो कर ले।"

रूपसेन—"मित्र! ऐसा क्यों? क्या मेरा कोई अपराध हुआ है? अगर अज्ञान अवस्था में हुआ है तो पुनः पुनः क्षमा याचना करता हूं, परन्तु यह अकृत्य तेरे लिए शोभास्पद नहीं।"

वामदेव—"कहना था वह कह दिया। मैं मेरे निर्णय पर अटल हूं। तुझे यदि परिवार वालों को कुछ कहलाना है कह दे। नहीं तो आ रहा है चाकू।"

रूपसेन भौंचक्का-सा रह गया। आंखों से आंसुओं का स्रोत अविरल गति से बहने लगा। रुदन करता हुआ छोटा-सा पत्र लिखकर बोला—"भाई! कम से कम यह पत्र तो मेरे पिताजी तक पहुंचा देना।"

वामदेव नृशंसता के अतिरेक पर था। उस निर्दयी हत्यारे ने चाकू मारकर उसे सदा के लिए संसार से विदा कर दिया। यह है लोभ-पिशाच का नग्न ताण्डव। लालच के चक्र-जाल में फंसकर मानव अपनी मानवता को खो बैठता है। दानवीय प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होकर अकृत्य व अवांछनीय कार्य करने लग जाता है। वामदेव की कामना पूर्ण हुई। हृदय कमल की भांति खिल उठा। सारा वैभव लेकर त्वरित गति से रवाना हुआ और अपने गांव में आ गया। घर में समस्त परिवार वालों से मेल-मिलाप कर उसने पिता से कहा—"इस साल व्यापार अच्छा चला था। जो भी धंधा किया उसमें आशातीत सफलता मिली। यह लीजिए इस साल की कमाई।" पिता अमरदत्त ने पुत्र वामदेव को कोटि-कोटि बधाइयां देते हुए कहा—"वत्स! तेरे जैसा कमाऊ पुत्र ही मेरी सेवा-चाकरी करेगा।"

वामदेव ने मित्र रूपसेन का पत्र पढ़ा। लेकिन उस पत्र के अर्थ को वह समझ नहीं सका। हाय-हाय व करुण-रुदन करता हुआ वह लाला लक्ष्मीचन्द के घर पहुंचा। उष्ण निःश्वास लेता हुआ रुदनपूर्वक बोला—"लालाजी! बहुत बड़ा

अन्याय ! दिल के टुकड़े हो रहे हैं। सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। हन्त ! हन्त !"

लक्ष्मीचन्द—"ऐसे दुःख करने की क्या बात है ? सही-सही समाचार सुनाओ तो भाई वामदेव !"

वामदेव—"लालाजी ! क्या समाचार सुनाऊं ? मेरा प्यारा मित्र रूपसेन संसार से चल बसा। मैं आज ही परदेश से आया हूं।"

लक्ष्मीचन्द—(विलाप करता हुआ) "क्या मेरे दुलारे रूपसेन का देहावसान हो गया ? रोगग्रस्त हो गया था या अचानक।"

वामदेव—"लालाजी टी०बी० की बीमारी ने रूपसेन को खत्म कर दिया। अनेकों डाक्टरों व वैद्यों द्वारा अत्यधिक उपचार होने पर भी कोई उपाय नहीं लगा। मेरे देखते-देखते रूपसेन की आंखें बन्द हो गईं।"

लक्ष्मीचन्द—"क्या आखिरी समय में रूपसेन ने मेरे लिए कोई सन्देश भेजा है ?"

वामदेव—"लालाजी! ऐसी कमजोर हालत में बोलने की तो शक्ति भी नहीं, फिर भी यह छोटा-सा पत्र बड़ी मुश्किल से लिखकर दिया है।"

लाला लक्ष्मीचन्द ने पुत्र का पत्र पढ़ा, किन्तु पत्र में—

"वा······रू······घो······ल······।"

इन चार अक्षरों के सिवाय और कुछ नहीं था। पत्र का गूढ़ अर्थ नहीं समझने के कारण लालाजी तो असमंजस के गहरे-गर्त में डूब गए। आंखों से टप-टप पानी बहने लगा।

आखिर उस पत्र को लेकर लालाजी राज दरबार में आए और राजा को समग्र वृत्तान्त से अवगत कराया। राजा की मति चकरा गई। उस पत्र का अर्थ वे भी समझ नहीं सके। समीपस्थ मंत्री ने कहा—"राजन् ! इन चार अक्षरों का अर्थ इतना गूढ़ है कि साधारण मनुष्य की बुद्धि चकराए बिना नहीं रह सकती। अक्षर चार, किन्तु सार बहुत है।"

लाला लक्ष्मीचन्द के विशेष निवेदन पर राज्य द्वारा एक विराट् सभा का आयोजन किया गया, जिसमें समस्त राजकर्मचारियों के अतिरिक्त विद्वान्, वकील, अध्यापक, व्यापारी आदि शहर के अनेकों प्रतिष्ठित महानुभाव उपस्थित हुए। नृपति ने बड़े-बड़े मस्तिष्क वाले बुद्धिशील व्यक्तियों से उन चार अक्षरों का अर्थ पूछा। कोई भी उनकी गहराई तक नहीं पहुंच सका। सब मौन एवं निरुत्तर हो गए। आखिर नृपति के आदेशानुसार मंत्री खड़ा होकर बोला—

"वा······वामदेवन मित्रेण, रू······रूपसेनो वनान्तरम्।
घो······घोर निद्रा वशीभूतो, ल······लक्ष-लोभाग्निपातितः।"

"जंगल में निद्रित रूपसेन का वामदेव मित्र ने लोभाकुल होकर मार दिया।" चारों अक्षरों का यह गूढ़ार्थ स्पष्ट होते ही सभा में सन्नाटा छा गया। नृप के हृदय में आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या इन चार अक्षरों का यह सही अर्थ है? "बुलाओ वामदेव को।"

वामदेव आया। राजा ने पूछा—"वामदेव! क्या तूने तेरे अनन्य मित्र रूपसेन को मारा?"

वामदेव—"राजन्! वह मेरे परम मित्रों में से एक मित्र था। क्या मैं ऐसा क्रूर जघन्य अकृत्य कर सकता हूं?"

राजा—"भाई! तू जो कहता है वह सम्भवतः सत्य ही होगा, पर तेरे द्वारा प्राप्त—पत्र का अर्थ भी असत्य कैसे हो सकता है?"

वामदेव—"राजन्! बिल्कुल मिथ्या। वह तो टी० बी० के असाध्य रोग से खत्म हुआ था। मैं दानव नहीं मानव हूं। ऐसा अकृत्य कभी नहीं कर सकता।"

अन्त में नृपति की कठोर ललकार व असह्य मार से वामदेव को अक्षरशः सब स्वीकार करना ही पड़ा। नृप ने क्रोधाकुल होकर कहा—"अरे अधम वामदेव! लोभासक्त होकर तूने अपने परम मित्र को मार दिया। तेरे सदृश घोर निर्दयी इस संसार में कोई नहीं है। ऐसे क्रूर व्यक्तियों का मुखावलोकन भी भयंकर पाप है।" उसी वक्त वामदेव को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। उसके होश उड़ गए। वह हक्का-बक्का रह गया। मन ही मन में विचार करने लगा—"हाय! यदि मैं लोभ के चक्र में नहीं पहुंचता तो आज यह आजीवन कैद क्यों······?"

लोभी मानव मित्र की, कर देता है घात।
आखिर में उसको मिला, नरक कुंड साक्षात॥

चाण्डाल कौन ?

एक तपस्वी मुनि थे। वे एक-एक महीने का निराहार उपवास किया करते थे, जिससे उनका शरीर जर्जरित हो गया था। एक्सरे के बिना ही उनका फोटो खींचा जा सकता था। मांस व शोणित रहित केवल हड्डियों का पिंजर रह गया था। शारीरिक शक्ति कम होते हुए भी मुनि का मानसिक बल प्रबल था। तपस्या का पारणा लाने के लिए भी मुनिवर स्वयं जाते थे। उनके घोर तप के प्रभाव से प्रभावित होकर एक देवता हमेशा उनकी सेवा में रहा करता था। मुनि गोचरी, पंचमी जहां कहीं भी पधारते थे, वह साथ ही रहता था।

एक दिन मुनिराज नीचे देखते हुए धीरे-धीरे भिक्षा के लिए जा रहे थे। अचानक सामने से एक धोबी आया, जिसके सिर पर कपड़ों की एक बहुत गठरी

थी। एक दूसरे को नहीं देखने के कारण मुनि और रजक आपस में टकरा गये, गठरी का धक्का लगने से मुनि नीचे गिर गये। शरीर से गिरे सो गिरे किन्तु साधुत्व से भी गिर गये। मुनि शीघ्र उठे और धोबी को गालियां देने लगे—"अरे पागल! ऐसे कैसे चलता है? क्या तेरी आंखें फूट गई? अन्धा कहीं का!" बस ये अपशब्द धोबी के कानों में पड़ते ही मानो अग्नि में घी पड़ गया। धोबी के क्रोध का पार नहीं रहा। शीघ्र गठरी एक तरफ रख उसने मुनि पर धावा बोल दिया। मुनि भी क्रुद्ध होकर उसका सामना करने लगे। धोबी बलिष्ठ था, उसने शीघ्र मुनि को पछाड़ दिया और मुनि के ऊपर जा बैठा। मुनि की अच्छी तरह से पूजा करके धोबी अपने घर के लिए रवाना हो गया।

मुनि का गुस्सा शांत हुआ, आंखें खुलीं। अपने आप का भान होते ही पश्चाताप करने लगे—हाय! मैंने बहुत बड़ा अकृत्य किया। साधु होने के नाते मुझे ऐसा काम करना, क्या उचित था? ऐसे अपने आपको धिक्कारते हुए, शान्त-रस का स्वाद लेते हुए मुनि आगे चले।

इतने में वह देव आया। मुनि को नमस्कार किया। मुनि बोले—"देवानुप्रिय! इतनी देर कहां गये थे? अभी धोबी ने मुझे पीटा।"

देव—"महाराज! मैंने मार्ग में दो को लड़ते हुए जरूर देखा, किन्तु मैं समझ नहीं सका कि दोनों में साधु कौन है और चाण्डाल कौन है? उस समय आपके घट में चाण्डाल घुस गया था। धोबी ने आपको नहीं पीटा था। चाण्डाल को पीटा था। मैं आपका संरक्षक हूं, चाण्डाल का नहीं। आपके कोई हाथ भी नहीं लगा सकता।" यह सुन मुनि मौन हो गये।

मनुष्य जाति से कोई चाण्डाल नहीं होता है। चाण्डाल वही है कि जिसके घट में क्रोध का नशा छाया हुआ हो। क्रोध एक भयंकर अग्नि है। इससे निरन्तर दूर रहना चाहिए।

मुनि भूले निज भान जब, तब वे बने चण्डाल।
संरक्षक भी देवता, खिसक गया तत्काल॥

किस्मत का चमत्कार

मणिचूड़ और चन्द्रचूड़ दो देवता थे। दोनों में परस्पर अच्छा प्रेम था। एक दिन शक्ति की बात चली।

मणिचूड़ ने कहा—"सुर-शक्ति सदा किस्मत के पीछे रहती है।" चन्द्रचूड़ ने कहा—"मित्र! तू गलती में है। देव-शक्ति चाहे जो कर सकती है।"

अब इसकी परीक्षा करने के लिए दोनों मृत्यु लोक में आये। मणिचूड़

बोला—"ये जो तीन प्राणी खेत आ रहे हैं, इनको धनी बनाओ।" चन्द्रचूड़ ने उन तीनों के आगे स्वर्ण और रत्न के ढेर लगा दिये। इधर तीनों ने सोचा —यदि कभी अंधे हो जायेंगे तो कैसे चलेंगे ? इसका अभी से अभ्यास करना चाहिए। तीनों आंखें बन्द करके चलने लगे। धन पीछे रह गया। इस असफलता के बाद देव ने सोचा—वरदान देकर इन्हें धनी बना दूं। दोनों तालाब की पाल पर बैठ गये। इतने में एक जाटनी पानी लेने के लिए आई और पूछा—"तुम कौन हो ?" उन्होंने कहा—"हम सिद्ध पुरुष हैं। चाहे जो वरदान मांग लो हम देने को तैयार हैं।" जाटनी ने रूप मांगा। वह देवी सी रूपवती बन खेत में आ गई। जाट देखते ही चमका और बोला—"हे देवी मां ! कहां से आई हो ?" "मैं तो पेमे की मां हूं।" यों कह जाटनी ने सारी बात सुना दी।

जाट लाल-पीला होकर बोला—"घर में तो खाने के लिए अनाज के लाले पड़ रहे हैं और पिशाचिनी को सुन्दर रूप अच्छा लगता।" वह दौड़ा-दौड़ा तालाब पर गया और सिद्ध पुरुषों से वर मांगा—"मेरी स्त्री को गधी बना दो।"

देव के वरदान देते ही वह बेचारी गधी बन गई। वह जोर-जोर से रेंकती हुई खेत में इधर-उधर दौड़ने लगी। जाट गुस्से में लाल हो उसे लाठी से पीटता हुआ अनर्गल एवं घृणित गालियां निकालने लगा—"दुष्टा ! तुझे रूप चाहिए, किन्तु आज तुझे मारे बिना नहीं छोडूंगा।" घर का सारा काम बन्द हो गया। सबके दिलों में अशान्ति के बादल छा गये। आखिर जाट का पुत्र पेमा दौड़ा-दौड़ा सिद्ध पुरुष के पास गया और पूछा—"क्या मुझे भी वरदान मिलेगा ? देवों ने कहा—हां, जो भी तुम मांगोगे।" पेमे ने कहा—'महाराज ! न मुझे धन चाहिए न कुछ और। कृपया गधी को मेरी मां बना दो। रोटी पकाने की भी समस्या खड़ी गई है।" तत्काल देवता ने उसे स्त्री बना दिया।

मणिचूड़ हंसकर बोला—"मित्र ! भाग्य बिना इन तीनों को तू कुछ भी नहीं दे सका। अब चलो भाग्यवान के पास।" दोनों शहर में आये। सिद्ध पुरुष का नाम सुनकर एक अंधा आया और बोला—"कृपया मुझे वरदान दीजिए।" देवों ने कहा—"तुम जो चाहो एक वर मांग लो।" अंधे ने कहा—"स्वर्ण के थाल में पक-वान खाते हुए पोते को देखूं।"

यह सुनते ही उस देव को मानना पड़ा कि वास्तव में किस्मत का चमत्कार है। किस्मत के बिना एक कौड़ी भी कोई किसी को नहीं दे सकता। देव द्वारा अंधे की आशा पूर्ण करते ही उसकी आंखें खुल गईं। धन से भण्डार भर गये और क्रमशः पोता भी हो गया।

मनुष्य तो क्या देवता भी तभी सहयोग दे सकते हैं जब इन्सान की किस्मत

हो। किस्मत के अभाव में किसी को भी धनवान नहीं बना सकते।

किस्मत है जब मनुज की, तब देते सब योग।
बिना भाग्य वह देव भी, कर न सका सहयोग।।

संग्रह से दुःख

राजा भोज सभा में बैठे थे। इतने में उनके सामने एक शहद की मक्खी आई। वह दोनों पांव मलकर सिर पर लगाने लगी। राजा भोज ने यह देखकर उपस्थित विद्वानों से प्रश्न किया—"विज्ञो! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मक्खी कोई फरियाद लेकर आयी है। क्या आपमें से कोई बतला सकता है कि यह क्या फरियाद कर रही है?"

भोज का प्रश्न सुनकर सभी पण्डित आश्चर्य के झूले में झूलने लगे। आखिर एक मनीषी ने कहा—"राजन्! यह मक्खी कुछ ही दिनों पहले मेरे पास आई थी और फरियाद करने लगी।"

मैंने कहा—"तुम राजा के पास जाओ वहां बराबर न्याय होगा। इसलिए आपके पास आई है।"

राजा—"विज्ञवर! यह तो बताओ इसकी क्या फरियाद है?"

विज्ञ—"राजन्! यह मक्खी आपको चेतावनी देने आई है कि महाराज भोज! संग्रह करना बहुत बड़ा पाप है। संग्रहशील व्यक्ति को मेरी तरह दुःख का शिकार बनना ही पड़ता है। मैंने बड़ी निपुणता से मधु का संचय किया था। संगृहीत मधु पर मैं मन ही मन गर्व करती थी। मैंने न तो उसका भक्षण किया और न ही किसी को दान दिया। अन्त में लूटने वाले लूट ले गये और मैं हाथ मलती ही रह गई।"

संचय करने वाला व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता, अतः हर एक को असंग्रह की भावना विकसित करनी चाहिए।

संग्रह करना छोड़ दो, सुन मक्खी-आख्यान।
'मुनि कन्हैया' संग्रही, पाता दुःख महान।।

रेखा

विवाह की तैयारियां बड़ी धूमधाम से होने लगीं। घर को सुसज्जित किया गया। सबके दिलों में खुशी का संचार होने लगा। विशेषकर विद्यावती बहुत ही खुश नजर आ रही थी। क्योंकि आज वह चिन्ता-मुक्त होने आ रही है, अपने दिल का बोझ हल्का करने आ रही है, आ रही है अपनी पुत्री को दूसरों के हाथों सौंपने, जो उसका जीवन साथी बनेगा। इसी खुशी के साथ उसको एक चिन्ता थी कि रेखा, जो अब तक बचपन साथ लिए हैं, जिसकी जिह्वा बड़ी ही चंचल एवं कर्कश है, वह अपने पति, सास, श्वसुर के साथ न जाने कैसा व्यवहार करेगी, न जाने वहां कैसे शान्ति रखेगी। सोचती है इसी कटु व्यवहार के कारण आज तक कितने ही व्यक्तियों ने संबंध करने से इन्कार कर दिया, कितने ही इसके नाम मात्र से चौकन्ने हो जाते। काश ! आज का दिन मेरे लिए आह्लाद का होगा, मगर सुरेन्द्र के जीवन में क्या होगा ? फूल खिलेंगे या कांटे ?

बारात आई, मोटर द्वार पर रुकी। सबके मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट छा गई। आनन्द की सरिता बहने लगी। मंगल मुहूर्त और मंगल-वेला में रेखा और सुरेन्द्र प्रणय-सूत्र में बंध गए।

कर्म-चक्र का अगला चक्र चला, खुशहाली की जगह वीरानी ने ले ली, फूल की जगह कांटे खिलने लगे। आज सुरेन्द्र की मां उसको अपनी नव-नवेली दुलहन के हवाले कर गई। अभी पहला दुःख ही सुरेन्द्र को विकृत कर ही रहा था कि फिर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। सुरेन्द्र अब अनाथ हो गया, मां का दुःख भूल ही नहीं सका था कि पिता का हाथ भी हमेशा के लिए उठ गया। बेचारा दिल को सांत्वना की लहर में बिठाने की कोशिश करने लगा।

रेखा की प्रकृति में कोई परिवर्तन न हुआ। वह हर एक के साथ कलह-कदाग्रह करती रहती थी। यहां तक कि अपने पति देवता के साथ भी। किसी विशेष घटना के कारण सुरेन्द्र और रेखा में काफी वाद-विवाद हुआ। उसको समझाया गया, धमकाया गया। मगर उस पर किसी प्रकार का असर न हुआ। सुरेन्द्र हैरान होकर पलंग पर आ गिरा। अर्द्ध-निद्रा में सोचने लगा—प्रतिदिन की कलह ने तो मेरा जीवन ही बर्बाद कर दिया। यह रेखा क्या है ? मेरे जीवन पर शनि की तरह छा गई है, सुख और शान्ति को छीन लिया है। काश ! मैं भी अपने पिता की तरह इस दुनिया से चला जाता।

रात्रि के शान्त वातावरण को देख सुरेन्द्र ने अपनी प्रियतमा रेखा को समझाने के बहाने वार्तालाप शुरू किया और मधुर स्वर में रेखा को सम्बोधित करते हुए कहा—"प्रिये ! लड़ाई-झगड़ों में कुछ भी लाभ नहीं है। तनिक अपने आप में

परिवर्तन करो। सबसे मधुर बोलो। ज़हर की प्याली पीना सरल है, किन्तु तुम्हारे कंटकमय वचनों का पान करना कठिन है।" इन शब्दों को सुनते ही रेखा सर्पिणी की भांति फुफकारने लगी। परस्पर तनाव बढ़ा, मारपीट होने लगी। सुरेन्द्र का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच गया। क्रोधावेश में उसने रेखा का खून कर दिया। इस नृशंस हत्या की बात हवा की तरह फैल गई। लोगों से घर भर गया। लोगों के दिलों में घटना के प्रति उत्कण्ठा उत्पन्न हो गई, पुलिसवाले भी आ पहुंचे और कानूनी जांच-पड़ताल करने लगे। जांच-पड़ताल में सुरेन्द्र ही दोषी साबित हुआ, अतः उसे हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। बीस हजार की जमानत पर रिहा हो गया और न्यायालय में उसके विरुद्ध मुकदमा चलने लगा।

आज की दुनिया में हर वस्तु पैसों से मिलती है, जैसे—न्याय, इज्जत···। यही सोचता हुआ सुरेन्द्र न्यायाधीश की कोठी पर गया और कहने लगा—"जज साहब! आपके पास मेरा मुकदमा है, आप चाहें तो मुझे स्वतंत्र कर सकते हैं अथवा जिन्दगी भर परतंत्र।"

न्यायाधीश—"भैया सुरेन्द्र! मैं कर ही क्या सकता हूं? जब तुम अदालत में दोषी प्रमाणित हो गए, तो अदालत ही इसके दण्ड की व्यवस्था करेगी।"

सुरेन्द्र—"जज साहब! अदालत तो आपकी ही है, फिर अदालत क्या करेगी? करने वाले तो आप ही हैं।"

न्यायाधीश—"सुरेन्द्र! जब तुमने खून किया है, तो तुम्हें सजा मिलनी ही चाहिए, मैं लाचार हूं।"

सुरेन्द्र ने सोचा कि अब आखिरी अस्त्र का उपयोग किए बिना कार्य पूर्ण न होगा और उसने जज साहब के सामने दस हजार के नोट रखते हुए कहा—"साहब! यह लीजिए आपका इनाम, कर दीजिए मुझे हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त।"

न्यायाधीश—(फड़ककर) "सुरेन्द्र! यह क्या है? घूस! छि···छि···छि···। न्याय और सत्य पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। इन मुट्ठी-भर रुपयों के लिए मैं अपना ईमान नहीं बेच सकता। ले जाओ इन रुपयों को, यहां फिर कभी मत आना।"

न्यायाधीश मन में सोचता है— वाह रे समाज! तेरे में ऐसे व्यक्ति भी जन्म लेते हैं, जो न्याय, ईमान को बेचते फिरते हैं। तनिक लोभ के कारण समाज तथा देश को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। वे देशद्रोही हैं, गद्दार हैं।

सुरेन्द्र हाथ मलता-मलता अपने घर पहुंचा। अब क्या था? कुछ समय पश्चात् न्यायाधीश ने उसको आजीवन कारावास का दण्ड दिया। यह सुनते ही सुरेन्द्र ने कहा—"काश! मैं अपने आवेश पर नियंत्रण कर सकता, तो यह सजा

क्यों·· ·······?"

मौके पर आवेश को, रोके वही महान।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, बहुत बड़ा नुकसान॥

दो हजार क बदले नौ हजार

शकुन्तला के शादीयोग्य होने पर भी लाला मदनलाल ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। सरस्वती ने विनम्र शब्दों में निवेदन करते हुए कहा—"पतिदेव! शकुन्तला सौन्दर्य, सौम्य, सारल्य और सौकुमार्य आदि सर्वगुणयुक्त होने के साथ-साथ काफी बड़ी हो गई है। क्या आपने इसके लिए अच्छे घर व अच्छे वर के लिए प्रयास किया है?" मदनलाल—"क्या प्रयास करूं? सारा समाज अन्ध रूढ़ियों की जंजीरों से जकड़ा हुआ है। सब लकीर के फकीर हो रहे हैं। लड़के वाले पिशाच की भांति मुंह बाए खड़े हैं। कोई पांच हजार तो कोई दस हजार के लिए पहले से ही वादा करके लड़की वालों को बांधना चाहता है। अपने हृदय के टुकड़ों को बेचते हुए उनको तनिक भी संकोच नहीं होता। इसी कुत्सित एवं घृणित प्रणाली के कारण सारा समाज जर्जरित हो रहा है। पतन के गहरे गर्त में गिर रहा है। अन्दर ही अन्दर सारे घुन की भांति पिसे जा रहे हैं। सब के हृदय दारुण पीड़ा से भरे हुए हैं। ठहराव की घृणित बीमारी से सब पीड़ित व बेचैन हैं। फिर भी यह दावानल शान्त नहीं हो रहा है। मुझे तो दो सौ रुपये मासिक मिल रहे हैं। कैसे मिलेगी शकुन्तला के भार से मुक्ति?"

सरस्वती बोली—"प्राणाधार! आपके कथन में असत्य का लवलेश भी नहीं है। मेरा हृदय भी इसी चिन्ता से व्याकुल-सा रहता है। आजकल कई लोग अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए अपनी हैसियत से अधिक बिना मतलब खर्चा कर देते हैं, किन्तु आगे जाकर उनको स्वयं की भूल के लिए पछताना पड़ता है, किन्तु अपने को ऐसी प्रतिष्ठा नहीं चाहिए। घर को देखकर ही खर्च करना समझदारी है, लेकिन ज्यों-त्यों करके बाई का विवाह तो अब शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिए।"

लाला मदनलाल की काफी दौड़-धूप के बाद शकुन्तला का सम्बन्ध लाला प्यारेलाल के सुपुत्र राकेशकुमार के साथ निश्चित हो गया। यद्यपि लाला प्यारेलाल उन व्यक्तियों में नहीं थे, जो दहेज को बुरा समझते हों या किसी प्रकार का दहेज के प्रति आकर्षण न हो पर चूंकि लाला मदनलाल के कम आय होते हुए भी वे खान-पान व रहन-सहन का स्तर ठीक रखते थे, जिससे उनके धर्म-सम्पन्न होने का अनुमान लगाया जा सकता था और उन्होंने लाला प्यारेलाल को यह वादा तो दे

ही दिया कि वे अपनी हैसियत से अधिक ही दहेज देंगे। इसलिए यह सम्बन्ध कुछ आसानी से बैठ गया।

लाला मदनलाल के एक ही संतान होने के कारण उनके दिल में बड़ा उल्लास था। विवाह की तैयारियां होने लगीं। घर में कहीं पर सुनार काम करते हैं, तो कहीं पर दर्जी अपनी मशीन का कौशल दिखा रहा है। हलवाई भी विभिन्न प्रकार की मिठाइयां बनाने में पूरी तैयारी के साथ लग रहा है और इधर द्वारों पर वंदनवार बांधे जा रहे हैं। तरह-तरह की झण्डियों और रंग-बिरंगे बल्बों से अलग सजावट हो रही थी। सरस्वती सर्वत्र जा-जाकर निरीक्षण कर रही थी कि कहीं सजावट तथा व्यवस्था में कसर न रह जाए।

कुछ ही समय पश्चात् शहनाई का स्वर सुनाई देने लगा। बारात आ रही थी, सभी के दिलों में आनंद की तरंगे तरंगित हो रहीं थीं। नगर की सहस्रों स्त्रियां दौड़-दौड़कर अपने घरों की छतों व खिड़कियों से शकुन्तला के वर को देखने के लिए लालायित हो रही थीं। वर महोदय (राकेशकुमार) सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों व बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित, घोड़ी पर सवार होकर बड़ी शान से चल रहे थे।

मण्डप की सजावट निराली थी। उसका अद्वितीय सौंदर्य अभ्यागतों के मानस को आकर्षित कर रहा था। वहां की सुन्दर व्यवस्था के लिए सभी लाला मदनलाल की प्रशंसा कर रहे थे। सरस्वती भी बड़े उत्साह से यह देख रही थी। उसके नेत्र तृप्त हो गये। इस शुभ दिन को देखने के लिए आंखें कई वर्षों से प्रतीक्षा कर रही थीं। निश्चित शुभ मुहूर्त में सखियां शकुन्तला को मण्डप में ले आईं और उसे आसन पर बैठा दिया। वर वरासन पर विराजमान था ही। पण्डितजी के मंत्रोच्चारण के साथ शकुन्तला की शादी सानंद सम्पन्न हुई।

लाला मदनलाल ने अपनी शक्ति के अनुसार कन्यादान में दो हजार रुपयों का माल दिया। दहेज-स्वल्पता के कारण लाला प्यारेलाला की आकृति बदल गई और तत्काल रोष भरे शब्दों में कहा—"यह दहेज तो बहुत कम है।"

मदनलाल—"(मृदु शब्दों में) इतनी व्यवस्था भी बड़ी मुश्किल से कर पाया हूं। इससे अधिक देने में असमर्थ हूं।"

प्यारेलाल—"आधुनिक युग के अनुसार घड़ी, रेडियो और स्कूटर आदि तो दहेज में अवश्य ही दीजिए।"

यह सुनते ही लाला मदनलाल स्तब्ध-सा रह गया। सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। आंखें रक्तिम हो गईं। सारा शरीर क्रोध से कम्पित हो गया, पर वह भी पक्का आर्य समाजी था। उसे इस बात का तनिक भी संकोच नहीं था कि वह अपनी पुत्री का पुनर्विवाह नहीं कर सकता, अतः क्रुद्ध होकर बहुत तीखी वाणी में

बोला—"भिखारियों की भांति याचना करते हुए आपको तनिक भी शर्म नहीं आती। मैं ऐसे लालची एवं भिक्षुकों को कन्या देना नहीं चाहता। निकल जाइये घर से। मेरी पुत्री के भाग्य में जैसा विधि-विधान होगा, वैसा होगा।"

क्षण भर में सन्नाटा छा गया। बाजों का स्वर बन्द हो गया। सरस्वती के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। सबके चेहरों की चमक-दमक निस्तेज हो गई। सभी के नेत्र नग्न-नृत्य देखने के लिए उतावले हो गये। मुख-मुख पर बातें होने लगीं—"हाय! यह क्या समाज है?" "हड्डियों का ढेर है।" "इस दहेज-प्रथा का भयंकर रूप जब तक रहेगा, तब तक यह समाज स्वस्थ नहीं होगा और समाज का कोई भी सदस्य आराम की जिंदगी नहीं जी सकेगा।" "धिक्कार है—ऐसे समाज के नागरिकों को जहां क्षुधा शांत करने के लिए अनाज नहीं, तन ढकने के लिए पूरा कपड़ा नहीं। व्यवसाय के अभाव में घरेलू-खर्च की भी कोई सुव्यवस्था नहीं फिर भी बेशर्म होकर खुल्लम-खुल्ला कहा जाता है—लाओ बीस हजार रुपया, लाओ रेडियो, लाओ स्कूटर। हाय! कैसे होगा यह पिछड़े हुए समाज का सुधार!"

लाला प्यारेलाल के दिमाग पर लोभ का भूत सवार था। अपनी अकड़ में वह अकड़ा हुआ था। अभिमान के नशे में जोर से बोला—"पुत्र राकेश! उठ, आज के युग में लड़कियों की कोई कमी नहीं है। हम तो पन्द्रह हजार का माल लेकर ही घर में प्रवेश करेंगे।" पिता का रूप देखकर राकेश सहम गया। पिता के सामने बेचारा क्या बोल सकता था। बिना सोचे-विचारे लाला प्यारेलाल मुंह चढ़ाकर पुत्र सहित वहां से रवाना हो गया। ऐसे दुर्व्यवहार से उनको धिक्कार ही धिक्कार मिलने लगी। प्रतिष्ठा, मान, विश्वास उनके मिट्टी में मिल गये। इज्जत की धज्जियां उड़ने लगीं।

ऐसे लालची व पिशाच वृत्ति वाले लालाजी के सामने बड़ी पेचीदगी परिस्थिति उत्पन्न हो गई। यदि मैं ऐसे ही घर चला जाऊंगा तो लोग मेरा उपहास किये बिना नहीं रहेंगे। अंगुली दिखा-दिखाकर मुझे अपमानित करेंगे। इधर लालाजी के घृणित व्यवहार एवं कुत्सित आचार की दुर्गन्ध चारों तरफ फैल चुकी थी।

एक तरफ जहां बिना दुल्हन के बारात लौटने में उनकी ही नहीं, बल्कि साथ के सगे-सम्बन्धियों की एवं सब की भर्त्सना होती, इसलिए दुल्हन सहित जाना ही उचित होता, तो दूसरी ओर दुल्हन जो उसी समय विवाह के लिए तैयार हो जाए, यह भी लगभग असम्भव सा हो रहा था।

उत्कट प्रयत्न व अनहद दौड़-धूप करने पर भी लाला प्यारेलाल को कोई उपयुक्त सम्बन्ध नहीं मिला। आखिर प्रतिष्ठा के मारे लालाजी हताश होकर एक छोटे गांव में गये और लड़की वाले को प्रत्युत नौ हजार रुपये देकर पुत्र राकेश का

विवाह कर घर आए। लालाजी मन ही मन सोचने लगे—'हाय! ये तो लेने के देने पड़ गये। यदि मैं दो हजार के दहेज में संतोष कर लेता तो घर के नौ हजार क्यों देने पड़ते? क्यों मुझे इज्जत और आबरू से हाथ धोना पड़ता? क्यों मुझे गालियों की दुत्कार सुननी पड़ती। किंतु अब क्या……?"

लेने के देने पड़े, लोभ योग से व्यक्त।
सुखी वही संतोष में, रहता जो अनुरक्त॥

माया का संसार

प्रतिवर्ष लाखों रुपये की आय से सेठ शीतलचन्द बड़ा संतुष्ट था। पारिवारिक एवं घरेलू चिंताओं से वह सर्वथा मुक्त था। सेठ की नैतिकता की धाक थी। वह जहां जाता वहीं इज्जत और प्रतिष्ठा उसकी अनुगामिनी होकर रहती थी। दिग्-दिगन्त में उसकी कीर्ति-पताका लहरा रही थी। अचानक काल की कुटिल गति ने उसे लील लिया। काल के दुश्चक्र के आगे विश्व के अप्रतिम योद्धाओं का उत्कट पराक्रम भी शिथिल हो जाता है। इसके आगे किसी का भी उपक्रम सफलता की वर-माला नही पहन सका। विज्ञान भी इसके आगे पराजित है। शीतलचन्द का जीवन-प्रदीप ज्योंही बुझा घर मे अन्धकार छा गया। सेठ के वियोग में नैरन्तरिक आक्रन्दन एवं विलाप से सेठानी का स्वास्थ्य भी क्रमशः गिरता गया और वह भी शीघ्र ही काल-कवलित हो गई।

पुत्र अरुणकुमार इस दुखद आघात से अतिशय आहत हुआ। उसके समक्ष एक भयंकर समस्या खड़ी हो गई। व्यापार में दिन-प्रतिदिन घाटा होने लगा। जो घर वैभव से भरा रहता था, आज उसमें अनाज के भी लाले पड़ गये। जहां अरुण-कुमार के समक्ष अनेक नौकर, मुनीम कर-बद्ध खड़े रहते थे, वह घर आज वीरान हो गया। 'सब दिन होत न एक समान', यह बहुत ही अनुभूत वाणी है। अरुण-कुमार के जीवन-महासागर में सहसा भयंकर भूचाल आते ही उसकी समस्त सुख-सुविधाएं समाप्त हो गईं। दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। धन के अभाव में स्वयं का भरण-पोषण भी कठिन हो गया। भविष्य अन्धकार में विलीन हो गया। सगे-सम्बन्धियों ने मुंह फेर लिया। उस अबोध बालक को देखकर किसी के भी हृदय में करुणा-भाव जागृत नहीं हुआ।

अरुणकुमार के मस्तिष्क में अनेक विचार उभरने लगे। हाय! कैसे होगा जीवन-निर्वाह? कैसे मिलेगी दुख-कारा से मुक्ति? मुझे अब किसी का भी सहारा नहीं है, किन्तु बहिन चन्द्रकला नहीं बदलेगी। वह मेरी जीवन-नैया को पार पहुंचाने में पतवार का काम करेगी। वह मुझे इस संकट के कुएं में से निकालकर

अपना कर्तव्य निभाएगी क्योंकि उसका ससुराल सर्व-साधन सम्पन्न है। लाखों रुपयों का व्यापार चलता है। वहां पर मानसिक संताप की लहर शांत होते ही सुख-शांति की मृणालिनी खिल उठेगी। वह इन्हीं अपरिमित आशाओं को लेकर भिखारियों की भांति भटकता हुआ चन्द्रकला की ससुराल जा पहुंचा। शरीर पर फटा-पुराना चिथड़ा लिपटा हुआ था, जिससे उसका चेहरा बिल्कुल बदल रहा था। आंखें गड़ी हुई थीं और चमड़ी ढीली होकर ऐसे लटक गई थी जैसे उसका मांस और हड्डियों से कोई सम्बन्ध ही न हो।

चन्द्रकला की दृष्टि ज्योंही अपने भाई अरुणकुमार पर पड़ी त्योंही वह सहसा चौंक उठी। मन ही मन विचार करने लगी—'हाय! मेरे भाई की यह दुर्दशा कैसे हुई? इस दीन और मलिन भाई को मैं कैसे गले लगाऊं? मेरे ससुराल वाले क्या समझेंगे? देवरानी, जिठानी भी मुझ पर ताने कसेंगी। यही अच्छा होगा—बिना परिचय पाए ही इसे यहां से रवाना कर दिया जाए।'

चन्द्रकला का देवर दौड़ा-दौड़ा भाभी के पास आया और जोर से बोला—"भाभीजी! द्वार पर जो भिखारी खड़ा है, वह आपका नाम लेकर उच्च स्वर से पुकार रहा है। क्या आप इसको पहिचानती हैं? मुझे बताएं तो सही यह कौन है?"

चन्द्रकला झल्लाती हुई बोली—"यह तो मेरे पीहर का नौकर है। घर का कूड़ा-कचरा निकालने वाला है। सम्भव है इधर-उधर भटकता हुआ ऐसे ही आ गया है। बेचारा भूख से व्याकुल हो रहा है। कुछ रूखी-सूखी रोटी इसे अवश्य ही मिलनी चाहिए।"

अरुणकुमार के कानों में जब यह वार्तालाप पड़ा, उसके धैर्य का बांध टूट गया। उसकी सारी आशाओं पर अनल पात हो गया। उसके शरीर में बिजली कौंध गई। उसने अनेक बार अपनत्व-भरी आंखों से चन्द्रकला को देखा और मन ही मन गुनगुनाया—"हाय! बहिन को तो मैं ऐसा न समझता था। इसने भी मेरे साथ यह व्यवहार किया? यह तो मेरे कृतकर्मों का दोष है, अन्य किसी के सिर पर इसे नहीं मढ़ना चाहिए।" उसने वहीं पर मिट्टी खोदी एवं बहिन की ओर से मिली हुई सूखी रोटी को गाड़कर वहां से आगे चल दिया।

अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए वह आगे से आगे चलता गया। पुरुषार्थ और भाग्य का समन्वय हुआ कि उसको सफलता के कुछ आसार दिखाई देने लगे। नैरन्तरिक उत्कट उद्यम से भाग्य ने पलटा खाया। कुछ ही दिनों में अरुणकुमार की गई हुई सम्पत्ति लौट आई। वह लक्षाधिपति की कोटि में गिना जाने लगा।

धन के प्रबल बल पर समस्त सुख-सुविधाएं सहज तथा समुपलब्ध हो जाती हैं। पैसा आते ही उसका चेहरा खिल उठा, शारीरिक सौन्दर्य में भी निखार

आ गया। अरुणकुमार को, चतुर्मुखी विकास होते ही, स्वदेश की स्मृतियां भी कचोटने लगीं। एक दिन उसने लाखों रुपयों का वैभव अपने साथ लेकर स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में बहिन का ससुराल आ गया। उस गांव को देखते ही उसकी स्मृतियां ताजी हो आईं। बहिन के घृणित व्यवहार से अरुण का दिल पहले से ही फटा हुआ था, फिर भी वह व्यवहार-कुशल था अतः बहिन से साक्षात् किए बिना वह आगे न जा सका।

उसने ज्योंही दरवाजे में प्रवेश किया, गवाक्ष में बैठी चन्द्रकला अपने भाई को धन-सम्पत्ति से लदा हुआ देख, आनन्द-विभोर हो उठी और दौड़ी-दौड़ी नीचे आकर भाई से मिली, कुशल-क्षेम पूछा। भाई का हार्दिक सत्कार करती हुई बोली—"भाई! आज तो बहुत दिनों से मिलना हुआ। आंखें फाड़-फाड़ कर पपीहे की तरह निरन्तर निर्निमेष में टक-टकी लगाए रहती थी। आज मेरी मनोकामना फलित हुई। घर वालों को सगर्व कहने लगी—यह मेरा प्यारा भाई है। अब इसके लिए मधुर-मधुर पकवान तैयार होने चाहिए। चन्द्रकला के आदेशानुसार तरह-तरह की भोजन सामग्री तैयार हुई, गद्दी-पट्टे लगाए गए।

अरुणकुमार ने कहा—"बहिन! मैं यहां (रंग भवन में) भोजन करना नहीं चाहता। मेरे लिए वही स्थान और वही भोजन रुचिकर है, जो तुमने कुछ समय पूर्व जब मैं दरिद्रावस्था में यहां आया था और तुमने दिया था। बहिन वह दिन तुम्हें याद होगा—जब मैं तुम्हें भाई नहीं, किन्तु पीहर का एक साधारण नौकर लग रहा था।"

यह सब सुनकर चन्द्रकला को मानो काटो तो खून नहीं, वह लाज के मारे डूब गई।

अरुणकुमार अब अपने घर आ गया था। अपने विगत जीवन पर नजर डालता हुआ सोच रहा था और चिन्तन के क्षणों में उसे लगा—'जैसे संसार काया का नहीं किन्तु माया का ही है।'

सदा स्वार्थ पूरित रहे, सब लौकिक उपचार।
है वाणी अनुभूत यह, माया का संसार॥

पर्दे से नुकसान

नवीन राजभवन के निर्माण का कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् राजा ने मंत्री से कहा—"मंत्री! राजभवन तो बड़ा मोहक और मनोहर बना है, लेकिन कमरे की आमने-सामने की दीवारों पर दो सुन्दर चित्र बन जाने से भवन की शोभा द्विगुणित हो जायेगी।"

मंत्री—"राजन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपके विचारों को अवश्य ही क्रियान्वित करने का प्रयास करूंगा।"

मंत्री ने दो विचक्षण कलाकारों को नियुक्त कर कहा—"जिसका चित्र सुन्दर व मोहक होगा, उसे राजा की ओर से पुरस्कार दिया जायेगा।" दोनों चित्रकारों में एक वृद्ध था और एक युवक। अच्छा समय देख दोनों ने चित्र बनाना प्रारम्भ किया। वृद्ध कलाकार ने सोचा—"मेरे कला-नैपुण्य से सारा संसार अवगत है। मेरे सुयश का सौरभ चारों तरफ फैल चुका है। मैं अनुभवी हूं। यह युवक नया खिलाड़ी है। इसको मेरे जैसा अभ्यास नहीं है। मेरी जैसी हस्त-विचक्षणता भी इसके पास नहीं है, परन्तु कहीं यह युवक मेरा अनुकरण कर मेरे जैसा सुन्दर चित्र न बना डाले इसलिए वस्त्रावरण डलवा देना उचित होगा, जिसमें दोनों की प्रवीणता का परीक्षण सुचारु रूप से हो सके। ऐसा सोच वृद्ध कलाकार ने मंत्री से कह कमरे में एक पर्दा डलवा दिया।

पर्दे को देख युवक के हृदय में निराशा की चिनगारियां प्रबल होने लगी। वह दुख के सागर में डूबने लगा और मन ही मन सोचने लगा—ओह ! इस बुड्ढे के विश्वास पर ही मैंने राजभवन का कार्य अपने हाथ में लिया था कि वृद्ध का चित्र देखकर एक सुन्दर चित्र बना लूंगा। पर अब क्या होगा ? यह राजभवन है। यदि मोहक व आकर्षक चित्र न बना, तो पुरस्कार के बदले तिरस्कार ही मिलेगा। हाय ! बुड्ढा भी कितना स्वार्थी निकला! इसने अवश्य ही अपनी कला को छिपाने के लिए यह पर्दा डलवाया है। खैर, "विघ्नै पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना, प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।" बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को जो नहीं छोड़ता है, वही उत्तम जन कहलाता है, जो कष्टों में घबराता है कायर बन जाता है, वह मानव किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। अतः मुझे हिम्मत नहीं हारनी है, ऐसा सोच वह युवक अपने गुरु के पास गया और अपनी समस्या गुरु के चरणों में रख दी।

गुरु ने शिष्य को सान्त्वना देते हुए कहा—"शिष्य ! घबराने की जरूरत नहीं है। अधीर क्यों हो रहे हो ? किस्मत पर भरोसा रखो। धैर्य का फल सदा मीठा होता है। मैं जैसा कहूं, वैसा करना, सब अच्छा होगा।"

शिष्य—(हाथ जोड़कर) "गुरुवर ! आपके आदेश को निभाने के लिए मैं प्रतिपल तैयार हूं। फरमाइये क्या आदेश है ? मेरा मान और मेरी शान आप ही रख सकते हैं।" गुरु—"शिष्य ! तुम्हें कोई भी चित्र बनाने की आवश्यकता नहीं है केवल उस दीवाल को घोट-घोट कर दर्पण जैसी साफ बना लेना। दीवाल पर तनिक भी कालिख मत रहने देना। मैं दृढ़ता से कह सकता हूं कि आखिर विजय तुम्हारी ही होगी। तुमको ही पुरस्कार मिलेगा, और संसार में तुम्हारी कला

चमक उठेगी। वृद्ध कलाकार की अवश्य हार होगी। और वह देखता ही रह जायेगा। शिष्य! अब जाओ काम प्रारम्भ करो।" शिष्य! (नत-मस्तक होकर) "पूज्यवर! आपने जो मार्गदर्शन दिया है वैसा ही करूंगा। आपकी कृपा से अवश्य ही मेरी विजय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

गुरुजी का आशीर्वाद लेकर वह युवक राजभवन में आया। गुरु के वचन पर निष्ठा होने के कारण उसने दीवाल घोटना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन घोटते-घोटते दीवाल चमकीले दर्पण जैसी बन गई। युवक का मस्तिष्क विभिन्न कल्पनाओं के उपवन में रमण करने लगा, कैसे विजय होगी और कैसे गुरु की वाणी सत्य होगी?

उधर उस वृद्ध कलाकार का भी चित्र पूर्ण हुआ। वह अपने मंजुल व आकर्षक चित्र का पुनः-पुनः अवलोकन कर हृदय को उल्लसित बना रहा था। दरबार में गया और उसने राजा से प्रार्थना की—राजन्! चित्र तैयार है, आप देखने के लिए पधारे और मेरी मनो-कामना पूर्ण करें। राजा ने राजभवन में आकर उस पर्दे को हटा दिया। दोनों में कौन-सा चित्रकार अधिक निपुण है? इसकी परीक्षा के लिए निरीक्षण करने लगा। बूढ़े द्वारा निर्मित चित्र का प्रतिबिम्ब उस युवक की घोटी हुई दीवाल पर पड़ा। दीवाल चमकदार होने के कारण प्रतिबिम्ब के सामने वास्तविक चित्र फीका हो गया, अतः राजा को उस युवक की चित्रकला अधिक सुन्दर मोहक प्रतीत हुई। यद्यपि उस घोटी हुई दीवाल पर चित्र नहीं था। फिर भी दूर से चित्र जैसा ही आभास हो रहा था। युवक के चित्र पर प्रसन्न हो पुनः-पुनः उसकी प्रशंसा करता हुआ राजा बोला—"ओ युवक चित्रकार! तू ही पुरस्कार का हकदार है। यह लो मन इच्छित इनाम।" वृद्ध चित्रकार बेचारा देखता ही रह गया। और निराश होकर अपने घर की ओर चल दिया। मन ही मन सोचने लगा—ओह! पर्दे से नुकसान! अगर मुझे ऐसा पता होता तो पर्दा कभी भी नहीं करवाता और न युवक पुरस्कार का पात्र बन पाता, किन्तु अब क्या······?

जो व्यक्ति दूसरे के विकास को सहन नहीं कर पाता है, आखिर उसको पश्चात्ताप करना ही पड़ता है। अतः ईर्ष्या के आवरण से आवृत्त न होकर सबको अपना हृदय उदार एवं विशाल रखना चाहिए।

पर की उन्नति में बने, बाधक जो इन्सान।
उसका सफल न हो सका, कोई भी अभियान॥

बनिये की वाचालता

एक बनिया था। वह बातें बनाने में बड़ा वाचाल था। जहां कीचड़ नहीं वहां समुद्र बना देता था। सुई का मूसल बनाना तो उसके लिए खेल जैसा था। छोटे-छोटे गांवों में वह माल बेचने जाता था। जब वापस घर आता तो अपनी पत्नी के आगे बड़ी-बड़ी बातें बनाता। "आज तो तेरा सुहाग अमर रहना ही था, अन्यथा मैं तो परलोक पहुंच जाता"—वह कहता।

सेठानी पूछती—"पतिदेव! ऐसा क्या संकट आ गया था?"

सेठ—"कल मार्ग में चार चोर मिले। उन्होंने मुझे लूटना चाहा। किन्तु मैंने वीरता के साथ उनसे संग्राम किया। किसी को हाथ से मारा, तो किसी को पैरों से और सबको भगा दिया।" इस प्रकार वह बनिया निरन्तर अपनी प्रशंसा करता और कहता रहता कि आज पांच मिले, आज सात मिले।

सेठानी बड़ी विवेकशील एवं समझदार थी। उसने सोचा—पतिदेव तो बड़े कायर हैं और मेरे सामने बड़ी-बड़ी डींगें हांकते हैं। एक दिन इनकी परीक्षा करनी चाहिए कि वास्तविक स्थिति क्या है। सेठानी ने सेठ से सब पूछ लिया कि आप किधर से जाते हैं और किधर से आते हैं? सेठानी दूसरे दिन पुरुष के कपड़े पहन कर मार्ग में जा बैठी। कुछ समय बाद जूतों को घसीटता धीरे-धीरे आता हुआ वह सेठ दिखायी दिया। सेठानी ने उसे जोर से ललकारा और दो चार थप्पड़ लगाकर बोली—"इधर लाओ यह पोटला।" सेठ रोता-रोता बोला—"यह लो पोटला, किन्तु मेहरबानी करके मुझे मारो मत।" सेठानी बोली—"बैठ जाओ यहां पर, जब तक मैं आंखों से ओझल न हो जाऊं तब तक यहां से उठना मत।"

सेठानी सेठ का सारा सामान लेकर घर लौट आई। वह सेठ धीरे-धीरे चलता हुआ घर पहुंचा। सेठानी बोली—"पतिदेव! आज तो रात बहुत चली गई। इतनी देर कैसे कर दी?" सेठ बोला—"आज की बात तो पूछो मत, घर पर जीवित पहुंच गया, यह तेरे सौभाग्य का ही प्रताप है। मार्ग में आते-आते आज पच्चीस चोरों से मुठभेड़ हो गई। मैंने किसी को हाथों से, किसी को दांतों से, सबको पछाड़ दिया। किन्तु सामान का पोटला वे जरूर ले गये।" सेठानी गुस्से से लाल-पीली होकर बोली—"सेठजी! आपको फिजूल की बात बनाने में तनिक भी संकोच नहीं होता। कभी कहते हैं चार चोर मिले, कभी पांच, कभी पच्चीस। कहां मिलते हैं चोर, आज तो मैं मिली थी आपको। यह लीजिए आपका पोटला। भविष्य में ऐसे निरर्थक झूठे ढोंग रचकर मेरे आगे डींगें हांकने की आवश्यकता नहीं है।" सेठ बोला—"हां, पोले-पोले हाथ मुझे भी कोमले की मां जैसे ही लगे थे।" आखिर सेठ को सारे ढोंग छोड़ने ही पड़े।

जो व्यक्ति अधिक ढोंग करते हैं, आवश्यकता से अधिक जो व्यर्थ की बातें बनाते हैं उनका विश्वास किसी भी क्षेत्र में जम नहीं सकता। अतः प्रत्येक को निश्छलता की लौ जलानी चाहिए और जैसी बात हो वैसी स्पष्ट रखना ही श्रेयस्कर समझना चाहिए।

ढोंगी और वाचाल का, नहीं तनिक विश्वास।
निश्छलता की लौ जगी, करना हृदय प्रकाश।।

मेरेपन का दुःख

एक सेठ था। परदेश में लाखों रुपयों का कारोबार चलता था। एक दिन मुनीम का पत्र आया कि सेठ साहब एक बार आप जरूर कृपा करके परदेश पधारें और अपनी दुकान का निरीक्षण करें। पत्र पढ़ते ही सेठजी रवाना होने लगे। उस समय सेठानी गर्भवती थी। सेठ ने कहा—"तुम सुख-शान्ति से रहना, मैं कुछ ही दिनों में वापिस आ जाऊंगा।" सेठजी परदेश गये, किन्तु व्यापार में इतने फंसे कि घर आना मुश्किल हो गया।

सेठानी के पुत्र हुआ। सेठ को समाचार दिये गये। पुत्र के समाचार पढ़कर सेठ ने परदेश में पुत्र की खुशी में हजारों का खर्च कर एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया। सेठानी सेठ की प्रतीक्षा निरन्तर कर रही थी।

सेठ को घर से गए बारह वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु सेठजी घर नहीं आये। क्योंकि वहां अच्छी कमाई हो रही थी। व्यापार भी जोर से चलता था। "ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता है।" इसी कहावत के अनुसार सेठजी घर कहां आने वाले थे?

एक दिन सेठानी ने कहा—"पुत्र! तू अपने पिता से मिलना चाहता है?"

पुत्र—"मां! मेरे पिताजी कहां हैं?"

माता—"परदेश, अमुक शहर में व्यवसाय करते हैं। जब तू गर्भ में था तभी से गये हैं। आज बारह वर्ष हो गए हैं।"

मां से सब पूछ-ताछकर पिता से मिलने के लिए पुत्र रवाना हो गया। साथ में दो नौकर थे। मार्ग में कई गाड़ियां बदलनी पड़ती थीं। एक स्टेशन पर धर्मशाला में ठहरे थे। अचानक उस बच्चे के पेट में दर्द हो गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा। रात का समय था नौकर घबरा गये। किसी से भी जान-पहचान न होने के कारण उपचार कहां होने वाला था? इधर सेठजी भी बड़े ठाठ-बाट से देश के लिए रवाना हुए। साथ में पांच-दस नौकर मुनीम थे। रास्ते में उसी स्टेशन पर उसी धर्मशाला में सेठजी ने विश्राम लिया। उस बच्चे की चिल्लाहट

से सेठ को नींद नहीं आ रही थी। तीन-चार बार मनाही करने पर भी बच्चे का चिल्लाना बन्द नहीं हुआ और क्रमशः पेट में दर्द बढ़ने लगा। सेठ के सिर पर धन का नशा चढ़ा हुआ था। गुस्से में आकर बोले "इस लड़के को बाहर निकाल दो, नींद नहीं लेने देता है।" सेठ के नौकरों ने जबरदस्ती पकड़कर उस बच्चे को बाहर निकाल दिया। कुछ देर के बाद उस बच्चे ने सदा के लिए आंखें बन्द कर लीं। साथ वाले नौकरों का चेहरा उतर गया। पर करें क्या? वहां किसी से पहचान थी नहीं।

सेठजी आराम से नींद लेकर उठे और पूछा—"वह लड़का कौन था?" नौकर गये। पूछ-ताछ करने पर पता लगा कि वह लड़का सेठजी का है। नौकरों की सूचना मिलते ही सेठजी दौड़े-दौड़े बाहर आये और उस शव को देखते ही पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़े। मन ही मन दुःख करने लगे—"हाय! पहले यदि मालूम होता कि यह लड़का मेरा है तो बाहर क्यों निकालता? दवाइयों से पेटी भरी थी। उपचार करता। पर अब क्या…?"

दुनिया में मेरेपन का दुःख है। जहां इन्सान यह सोच ले कि मेरा कोई नहीं है उसे दुःख हो ही नहीं सकता। अतः ममत्व का परित्याग करना ही सुख का प्रशस्त मार्ग माना गया है।

मेरेपन का दुःख है, मेरेपन का भार।
तेरी-मेरी छोड़ दो, पाओ सुख अविकार॥

परीक्षक बनो

लाला श्यामलालजी जवाहरात के बहुत बड़े व्यापारी थे। बीसों मुनीम उनकी दुकान पर रहते थे। लाखों का व्यापार चलता था। किन्तु 'सब दिन होत न एक समान' सब दिन समान नहीं होते हैं। सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख आते ही रहते हैं। रात के पीछे दिन और दिन के पीछे रात अवश्य ही होती है। सेठ साहब की किस्मत बदली। कारोबार में चारों तरफ नुकसान होने लगा। सेठ जी के एक पुत्री और एक पुत्र थे। घाटा अधिक होने से उनके हृदय पर बहुत बड़ा धक्का लगा जिससे सेठजी ने संसार से सदा के लिए आंखें बन्द कर लीं।

सेठानी के वक्षस्थल पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। घर की स्थिति को सम्हालना एक समस्या बन गई। जीवन का भरण-पोषण भी कठिन हो गया। एक दिन पुत्र कमल से कहा—"पुत्र! यह लो नीलम, मुनीम प्रेमचन्दजी की दूकान पर जाओ और इसे बेच दो। जितने रुपये मिले उतने लाओ, जिससे पेट पोषण तो सुख में करें।"

कमल मुनीम के पास गया और नीलम उन्हें देता हुआ बोला—"मुनीमजी ! इस नीलम को बेच दीजिए। अम्मा ने कहा है।" मुनीमजी नीलम को देखकर विचार में पड़ गये, कुछ समय पश्चात् उन्होंने सोच-विचारकर कमल से कहा—"अभी इसके भाव मन्दे हैं, अतः इसे बेचना ठीक नहीं है। वापस ले जाओ।"

कमल—"मुनीमजी ! घर में खाने के लिए अनाज ही नहीं है अतः जिस भाव में बिके इसे बेच दीजिए।"

मुनीम—"तुम दूकान से पांच सौ रुपये ले जाओ, घर का खर्च चलाओ और कल से तुम दुकान पर आकर बैठा करो।"

कमल—"मुनीमजी ! मैं तो कुछ समझता ही नहीं हूं फिर दुकान में क्या करूंगा ?"

मुनीम—"कमल ! मैं भी पहले अनभिज्ञ था परन्तु तुम्हारे पिताजी की कृपा से मैं सब कुछ समझने लगा हूं। इस दुकान को अपनी ही समझो, यहां पर काम सीखा करो।"

कमल अब मुनीमजी की दुकान पर बैठने लगा। काम सीखना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धि-विचक्षणता के कारण वह चन्द ही दिनों में इतना निपुण बन गया कि प्रेमचन्दजी ने दुकान की सारी देख-रेख कमल के हाथों में सौंप दी। कुछ वर्षों में ही कमल की स्थिति ऐसी हो गयी कि वह पुनः लखपति बन गया।

जवाहरात के परीक्षकों में कमल का नाम पहला आने लगा, तब मुनीमजी ने एक दिन कहा—"कमल ! अब बाजार भाव कुछ अच्छे हैं, इसलिए अब नीलम को बेचना अच्छा है।" कमल ने नौकर भेजकर माताजी से उस नीलम को मंगवाया और मुनीम को दे दिया।

मुनीमजी ने कहा—"कमल ! तुम इसकी परीक्षा करो। यह नीलम कितने रुपयों का है ?"

कमल ने उसे देख नीचे फेंक दिया और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—"मुनीमजी ! यह तो कांच का टुकड़ा है।"

मुनीमजी ने कहा—"कमल ! मैंने तो उसी समय उसे कांच का टुकड़ा समझ लिया था, लेकिन उस दिन अगर कांच का टुकड़ा कह देता तो मेरी बात पर तुम्हें विश्वास नहीं होता, पर आज तुम सच्चे जौहरी बन गये हो। नीलम की परीक्षा कर सकते हो कि नीलम कैसा होता है।"

कमल ने कहा—"मुनीमजी ! धन्य है आपकी निपुणता को। आप जैसे परोपकारी मनुष्य ही समाज का उत्थान कर सकते हैं, दूसरे नहीं।"

हर व्यक्ति को परीक्षक बनना चाहिए जिससे सत्य-असत्य का सही ज्ञान हो सके। कांच और नीलम का मूल्यांकन परीक्षक ही कर सकते हैं। सही ज्ञान की

उपलब्धि होते ही कमल की भांति दिव्य प्रकाश होता है कि यह कांच का टुकड़ा है।

बनो परीक्षक सत्य सब, पाना अगर यथेष्ट।
ज्ञानोपलब्धि के लिये, रहना सतत सचेष्ट॥

मृत्यु का भय

एकनाथ नाम का एक महात्मा था। वह बड़ा बैरागी व मस्त था। उसके पास एक दिन एक भक्त आया और बोला—"महाराज! धन्य है आज की बेला, और धन्य है आज का स्वर्णिम दिन, आप जैसे त्यागी सन्तों के दर्शन हुए। महाराज! आपका जीवन तो बड़ा शान्त एवं सुखी प्रतीत हो रहा है। किसी भी तरह की आपको चिंता नहीं है, परन्तु मेरा जीवन अशान्ति से आच्छादित रहता है। रात-दिन एक न एक चिन्ता सताती रहती है। सुख की नींद भी नहीं ले सकता। आपके और मेरे जीवन में इतना अन्तर क्यों?" एकनाथ महाराज ने कहा—"भक्त! इन प्रश्नों का उत्तर अभी नहीं मिलेगा। पर एक बात सुन, तेरी मृत्यु आज से आठवें दिन होने वाली है, इसलिए अभी से उसकी चिन्ता कर।"

महात्मा की बात सुनते ही भक्त घबराया और दौड़ा-दौड़ा अपने घर आया। उसने सोचा—अब तो आठवें दिन मरना पड़ेगा। इस दृष्टि से उसने अपने परिवार वालों से व पड़ोसियों से क्षमायाचना कर ली। सांसारिक मोह से विरक्त हुआ, घर के कार्यों से निवृत्त बना, जीवन का सारा समय धर्मध्यान में व्यतीत करने लगा। जब आठ दिन पूरे हो गए तो एकनाथ महाराज उसके घर पर गये।

भक्त—"महाराज! अब मेरी मृत्यु में कितना समय अवशिष्ट है?"

एकनाथ—"भक्त! मौत कब आयेगी यह तो ब्रह्मज्ञानी जानते हैं, किन्तु बता तेरा यह सप्ताह कैसे बीता?"

भक्त—"महाराज! मेरे सामने तो मौत नाच रही थी, इसलिए मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। पौद्गलिक सुखों व सांसारिक कर्मों से विमुख होकर मैंने आठों दिन ही धर्मध्यान में बिताए।"

एकनाथ—"भक्त! जिस प्रकार तेरे सामने आठों ही दिन मौत नाचती रही और तुमने कोई भी सांसारिक कार्य नहीं किया, उसी प्रकार महापुरुषों की आंखों के सामने मौत निरन्तर ही नाचती रहती है, वे जानते हैं कि मौत आने वाली है अतः वे शान्त व निश्चिन्त रहते हैं। सुख से नींद लेते हैं। भक्त यह है तेरे प्रश्न का उत्तर।"

भक्त—"(खुश होकर) पूज्यवर ! आपने मुझे बहुत ही अच्छा ज्ञान दिया। मैं आपके उपकार को कभी भी भूल नहीं सकता। अब मैं भी सांसारिक कार्यों से निवृत्त होकर धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति करूंगा और मौत को निरन्तर याद रखूंगा जिससे मुझे भी शान्ति मिले।"

किसी भी परिस्थिति में मौत को नहीं भूलना चाहिए। मौत निरन्तर हमारे ऊपर घूमती रहती है। वह हर एक को सचेष्ट करती है कि मैं किसी को भी सूचित किये बिना ही अचानक हमला बोलने वाली हूं। अतः सत्कार्य करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तेरे सिर पर रे मनुज ! घूम रहा यमराज।
आलस निद्रा त्यागकर, निज जीवन को मांज॥

अभिमान का नशा

सुन्दरलाल ने कुछ ही समय पूर्व एम० ए० पास किया था। उसको विद्या का बड़ा अहंकार था। वह हर एक के सामने अंग्रेजी की ही प्रशंसा करता और अंग्रेजी में ही बात-चीत करता। आंखों पर चश्मा लगाता था। पैंट, सूट, बूट तथा टाई लगाकर जब वह बाजार में से गुजरता तो हरेक की नजर उस अपटूडेट बाबू पर पड़े बिना नहीं रहतीं। माता-पिता भी अपने पुत्र को दक्ष तथा प्रवीण समझकर अपने आपको धन्य मानते थे। पिता ने अच्छा खानदान तथा रूपवती लड़की देख सुन्दरलाल का विवाह बड़ी धूम-धाम से कर दिया। बहू घर में आई। सबको बड़ी प्रसन्नता थी। बहू का स्वभाव बहुत अच्छा था। कदम-कदम पर वह सास एवं पति की आज्ञा का ध्यान रखती थी। घरेलू कार्यों में पटु होने के साथ-साथ वह बोली-चाली में भी दक्ष थी। किन्तु प्राचीन युग में शिक्षा का प्रचलन नहीं होने के कारण वह बिल्कुल अनपढ़ थी।

एक दिन बाबू सुन्दरलाल ने पत्नी से कहा—"वाटर लाओ।" उसने सोचा पतिदेव भाटा मांग रहे हैं। शीघ्र गली में गई और एक चमकीला पत्थर ढूंढ़कर लाई व पति के चरणों में हाजिर किया। सुन्दरलाल ने मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा—हाय ! कैसे जीवन बिताऊंगा ? पत्नी को कुछ कहे बिना ही वह उठा और बाजार में चला गया। मित्रों से मिलन होते ही उसने कहा—"मेरी शादी क्या हुई है, मेरे पीछे तो पत्थर बंध गया है।" मित्रों ने पूछा—"अरे ! क्या हुआ ?" उसने दिल खोलकर सब बात कह दी। मित्रों ने कहा—सीधी सरल भाषा में बोलना चाहिए था, अंग्रेजी का प्रयोग क्यों किया ? अनपढ़ होने से कोई बुरी नहीं होती है। दोष उसका नहीं तुम्हारा है।' सुन्दरलाल ने कहा—"अच्छा,

भविष्य में ध्यान रखूंगा ।"

एक दिन उसने पत्नी से सीधी भाषा में कहा—"पानी लाओ ।" वह बेचारी दौड़ी-दौड़ी गई । कांच के गिलास में ठंडा-ठंडा पानी छान कर उसे हाथ में ले पति के सामने हाजिर हो गई । उस मदान्ध से रहा नहीं गया, वह जोर से बोल पड़ा—"थैंक्यू-थैंक्यू !" वह अबला समझ न सकी, उसने सोचा—पतिदेव 'फैंक दो फैंक दो' फरमा रहे हैं । मेरा कर्तव्य है कि पति की आज्ञा का अक्षरशः पालन करूं । बस ऊपर खड़े-खड़े ही उसने गिलास फैंक दिया ।

सुन्दरलाल कुछ गर्म होकर—"गिलास को फैंका क्यों ? देखो उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये ।"

पत्नी ने विनयपूर्वक कहा—"आपने अभी फरमाया था कि फैंक दो, मैंने तो आपके आदेश का पालन किया है ।"

सुन्दरलाल—"फैंकने के लिए थोड़े ही कहा था ? मैंने तो थैंक्यू अर्थात् तुझे धन्यवाद दिया था ।"

पत्नी पति के चरणों में गिर गई और आंसू ढुलकाती हुई बोली—"प्राण-वल्लभ ! कृपया सीधी-सादी भाषा का प्रयोग करें, क्योंकि मुझे अंग्रेजी भाषा आती नहीं है । आप अपनी विदेशी भाषा का प्रयोग अन्यत्र भले ही करें, पर मेरे सामने नहीं ।"

सुन्दरलाल समझ गया कि हर एक स्थान में अंग्रेजी बोलना लाभप्रद नहीं है । आज तो केवल गिलास का ही नुकसान हुआ है भविष्य में कुछ बड़ा नुकसान भी हो सकता है ।

बाबू सुन्दरलाल पर छाया हुआ अभिमान का नशा दूर हो गया । खान-पान, रहन-सहन, बोली-चाली आदि समस्त क्रियाओं में वह सादगी अपनाने लग गया ।

जो व्यक्ति अहंकार करता है, उसको आखिर पश्चात्ताप करना ही पड़ता है । अहंकार सब गुणों का नाशक है, अतः धन, रूप, विद्या आदि किसी का भी अहंकार नहीं करना चाहिए । जीवन के हर क्षेत्र में सादगी व विनय ही लाभप्रद है ।

धन का, बल का, बुद्धि का, मत करना अभिमान ।
अभिमानी का एक दिन, होता है अवसान ।।

अमरकुमार

सम्राट श्रेणिक ने एक सुन्दर महल बनवाना शुरू किया । ज्योंही वह बनकर तैयार होता त्योंही ढह जाता । राजा ने ज्योतिषशास्त्रज्ञों से पूछा—"ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे बार-बार मेरा महल ढह न जावे ।"

ब्राह्मणों ने कहा—"राजन् ! इसके लिए एक बत्तीस लक्षण वाले लड़के का होम होना चाहिए।" नृप ने सारे शहर में घोषणा करवा दी कि अगर कोई मुझे ऐसा लड़का देगा तो उसको लड़के के बराबर सोना तोल कर दिया जायेगा। अमरकुमार की माता ने जब यह समाचार सुना तो उसका हृदय लोभ के गहरे सागर में डूब गया। लोभिन मां ने अमरकुमार के बराबर सोना ले लिया और उसको होम के लिए बेच दिया।

आक्रन्दन करते हुए बालक अमरकुमार को राजमहल में लाया गया। करुण-रुदन व विलाप सुनकर महारानी चेलना ने राजा को बाल-हत्या न करने के लिए बहुत समझाया और कहा—"ऐसे निरपराध प्राणी की हिंसा करना आपके लिए शोभास्पद नहीं है।" लेकिन राजा कब मानने वाला था। वह अपने लक्ष्य पर अटल था। रानी की बात बिल्कुल नहीं मानी। तब महारानी बिलखते हुए अमर-कुमार के पास आई और बोली—"वत्स ! धैर्य रखो, घबराओ मत। जो कर्म उदय में आये हैं, उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। मैं तुम्हें एक मंत्र बताती हूं। उसका शुद्ध भाव से जाप करो। अवश्य ही तुमको आत्म शक्ति मिलेगी। देखो ! वह मंत्र यह है—

"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।"

अमरकुमार ने हाथ जोड़कर मधुर स्वर से कहा—"माताजी ! यह नमस्कार महामंत्र तो आपकी कृपा से मुझे याद है। अभी कुछ ही दिनों पहले संतों के पास सीखा था।"

रानी ने कहा—"फिर डरने की क्या बात है ? इस महामंत्र की रटन लगाओ। इसके प्रभाव से सारा संकट दूर हो जायेगा।"

रानी की अनमोल शिक्षा के अनुसार अमरकुमार तो जोर-जोर इस मंत्र का रटन लगाने लगा। इतने में होम करने वाले आये और उसको होमस्थल पर ले गये। ज्योंही पंडितों ने कुमार को अग्निकुण्ड में फैंका त्योंही अग्नि सलिल की भांति शीतल हो गई। एक स्वर्ण सिंहासन बन गया। उस पर अमरकुमार बैठ गया और मंत्र का अस्खलित गति से जाप करता हुआ आत्मध्यान में लीन हो गया।

होम करने वाले सभी पण्डित बेहोश होकर गिर पड़े। सम्राट श्रेणिक इस विस्मयोत्पादक वृत्तान्त से अवगत होते ही घटनास्थल पर जा पहुंचा। अमर-कुमार के चरणों में नतमस्तक होकर नृपति ने कहा—"मैं पुनः-पुनः क्षमाप्रार्थी हूं। आप महान् हैं। मेरी इस अक्षम्य त्रुटि पर ध्यान न देकर कृपया मेरा राज्य ग्रहण करें।"

अमरकुमार ने कहा—"यह संसार असार है। जिसने मेरी रक्षा की है मैं तो

उसकी शरण लूंगा। आखिर अमरकुमार ने मुनिव्रत लेकर अपना कल्याण कर लिया।

नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से बड़े से बड़े संकट टल जाते हैं। जीवन की दुखद घड़ियां भी सुख में परिणत हो जाती हैं। अतः इस मन्त्र का निरन्तर जाप करना चाहिए।

नमस्कार महामन्त्र का, करो निरन्तर जाप।
अमरकुंवर ज्यों झट मिटे, भव-भव के संताप॥

पत्नी के ढोंग

एक ठाकुर था। वह अपने मित्रों के सामने प्रति-दिन अपनी स्त्री की प्रशंसा किया करता था कि मेरी पत्नी जैसी पति-भक्ता और कहीं नहीं मिलेगी। एक दिन एक मित्र से नहीं रहा गया और वह बोला—"ठाकुर साहब! आप स्त्रियों के चरित्र से अनभिज्ञ हैं। एक दिन परीक्षा कीजिए कि वह आप से कैसा प्रेम करती है।" ठाकुर—"मित्र! क्या परीक्षा करूं? मेरे बिना मेरी स्त्री जीवित ही नहीं रह सकती। जैसे बिना पानी मछली तड़फती है, वैसे ही वह मेरे बिना तड़पती रहती है।" मित्र—"ठाकुर साहब! आप अज्ञान अवस्था में हैं कल ऐसा करें कि स्त्री को कहकर पांच-सात दिन के लिए दूसरे गांव चले जायें थोड़ी दूर जाकर वापस घर में आकर छिप जायें। और स्त्री के प्रेम की परीक्षा करें।"

मित्र ने जैसा कहा था ठाकुर ने वैसा ही किया दिन व्यतीत हो गया। चारों ओर अंधेरा छा गया। ठकुरानी ने दासी से कहा—"ठाकुर गया गांव, म्हानै न भावै धान। अभी रात का समय है, खेत में से पांच-सात गन्ने ले आ।" दासी गई। गन्ने तोड़कर लाई। ठकुरानी चूसने लगी।

ठाकुर छिपा हुआ यह सब हाल देख रहा था और सोचने लगा मेरे बिना इसको धान भी नहीं भाता है। मेरे से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।

कुछ समय बाद ठकुरानी ने कहा—"गन्ना चूसने से भूख लग गई है। अभी रात बहुत है। थोड़े नर्म-नर्म बाफले बाटी तो बना ले। घी भी अच्छा लगाना।" दासी ने बाफले बनाये और खूब घी लगाया। ठकुरानी ने खूब बाफले खाये। कुछ समय पश्चात् वह फिर बोली—"दासी! बाफले तो मुझे अच्छे नहीं लगे। कुछ खिचड़ी बना ले।"

दासी ने खिचड़ी बनाई, ठकुरानी ने खाई और बोली—"दासी! तीन प्रहर रात्रि तो बीत गई है, अभी एक प्रहर अवशिष्ट है। कुछ धानी सेक ले। उसे चबाते-चबाते रात्रि बिताएं।" दासी ने वैसा ही किया।

ठाकुर ने यह सब हाल देख ही लिया था और वह अचानक प्रकट हुआ। ठकुरानी खड़ी हुई और विनयभाव से बोली—"प्राणाधार ! मेरी तकदीर अच्छी है, जो आप जल्दी पधार गये।"

ठाकुर—"प्रिये ! तेरी तकदीर अच्छी थी। घोड़े के सामने एक भयंकर सांप आ गया था। उससे मैं किसी तरह बच गया।"

ठकुरानी—"प्राणेश ! वह सांप कितना बड़ा था ?"

ठाकुर—"वह गन्ने जितना बड़ा था।"

ठकुरानी—"उसने फन तो नहीं फैलाया था ?"

ठाकुर—"फन की क्या बात पूछती है, उसका फन बाफले जैसा बड़ा था।"

ठकुरानी—"क्या वह बैठा था अथवा दौड़ता था ?"

ठाकुर—"जैसे खिचड़ी में घी दौड़ता है। वैसे वह दौड़ता था।"

ठकुरानी—"क्या वह फुफकार भी करता था ?"

ठाकुर—"हां, जैसे कड़ेले में सेंकने के समय धानी फूटती है, वैसे ही जोर से वह फुफकार मार रहा था।"

आखिर ठाकुर साहब क्रोधाकुल होकर बोले—"प्रिये ! देख लिए मैंने तेरे ढोंग—कहां है सच्चा प्रेम ? तू केवल बातें बनाने में होशियार है। तथ्य कुछ भी नहीं है।" यह सुन ठकुरानी का सिर झुक गया। जबान बन्द हो गई।

दुनिया में सच्ची पतिभक्ता स्त्री कोई-कोई है। झूठा प्रेम दिखाने वाली बहुत हैं। अतः हर एक को सोचना चाहिए कि कोई किसी का नहीं है यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा।

कभी किसी का है नहीं, कोई भी परिवार।
ठाकुर ने जाना सही, मतलब का सब प्यार॥

वह क्या करता होगा ?

सर्दी का समय था। सम्राट् श्रेणिक और महारानी चेलना महलों में शयन कर रहे थे। चेलना का हाथ आवरण से बाहर रह गया, जिससे हाथ अकड़ गया। वह अचानक जगी और अपने हाथ को संभाला। सहसा उसके मुंह से निकला—"ओह वह क्या करता होगा ?" ये शब्द सम्राट् श्रेणिक के हृदय में तीर की भांति चुभ गये। मन में उथल-पुथल मच गई। वह कल्पना के रिक्त अन्तरिक्ष में विहरण करने लगा।

सूर्योदय होते ही सम्राट् ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—"वत्स ! रानी

के महलों को जला डालो। मैं भगवान् की वन्दना करके वापिस आता हूं।" सम्राट् इतना क्रोधाकुल था कि अभयकुमार कुछ भी बोल नहीं सका और उसे स्वीकार करना ही पड़ा।

सम्राट् भगवान् के समवसरण में पहुंचा। वन्दना की। भगवान् ने चेलना के शील की प्रशंसा की। श्रेणिक ने सुना तो अवाक् रह गया। अधीर हो उठा—भगवान् की वाणी तीनों कालों में भी असत्य नहीं हो सकती। आकृति पर अवसाद की रेखा अंकित हो गई। वह तुरन्त वहां से चला। मार्ग में अभयकुमार मिला। श्रेणिक ने पूछा—"क्या महल जला दिये ?"

अभयकुमार ने कहा—"राजन् ! जो आदेश मिला था, वह काम पूरा हो गया है। देखिये महलों से धुआं निकल रहा है।" सहसा श्रेणिक के मुंह से निकला—"जा रे।"

अभयकुमार—"अच्छा पिताजी ! मैं जाता हूं।"

श्रेणिक—"पुत्र ! कहां जाता है ?"

अभयकुमार—"भगवान् के चरणों में दीक्षा लेने के लिए। आपने ही फरमाया था कि जिस दिन 'जा' शब्द निकल जाये उस दिन दीक्षा ले लेना।"

श्रेणिक—"पुत्र ! अन्याय हो गया। भगवान् ने फरमाया है कि चेलना शीलवती है। क्या उसने कुछ कहा था ?"

अभयकुमार—"माताजी ने कहा कि कल मैं और सम्राट भगवान् को वन्दना कर शाम को वापस लौट रहे थे। मार्ग में एक साधु कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा था। शीत से रक्षा के लिए उस साधु के पास कोई वस्त्र नहीं था। घोर परीषह को समभाव से सहन कर रहा था। मैंने उसे देखा। आज रात्रि में मेरा हाथ ठिठुरने पर मुझे उस मुनि की स्मृति हो आई और मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा—"वह क्या करता होगा ?"

श्रेणिक—पुत्र ! "क्या उसने ऐसा कहा था ? हाय ! अर्थ का अनर्थ हो गया। मैंने संदेह भरी दृष्टि से उसे देखा, पर वह तो सती है।"

अभयकुमार - "पिताजी ! दुःख मत कीजिए। माताजी आनन्द में हैं।"

श्रेणिक—"पुत्र ! तेरे जैसा बुद्धिमान् दुनिया में कोई नहीं है।"

किसी को भी संदेहभरी दृष्टि से नहीं देखना चाहिए और हर शब्द की वास्तविकता पर पहुंचने का प्रयास करना चाहिए।

केवल झूठे वहम से, होते बड़े अनर्थ।
श्रेणिक पछताता रहा, मिला सही जब अर्थ ॥

त्रियाचरित्र

लाला बलिराम का लड़का जिनेश माता-पिता का बड़ा विनीत पुत्र था। पिता ने अच्छा खानदान व सुशील लड़की देखकर जिनेश का विवाह कर दिया। जिनेश की बहू (स्वर्णा) कुछ दिन तो ससुराल में अच्छी तरह रही, किन्तु उसका स्वभाव अच्छा नही होने से वह हर एक के साथ झगड़ा कर लेती थी और प्रतिदिन यही रट लगाती थी कि कब मेरी सास और ये दो ननदें मरें और कब मैं सुख से रोटी खाऊं। घर के सामने एक 'सोवन्नफुल्ली' नाम का वृक्ष था। अपने कार्य की सिद्धि के लिए वह प्रतिदिन उसकी पूजा करती और धीरे-धीरे बोलती—

"हूं तने पूंजूं सोवन्नफुल्ली, मरज्यो सासु दोय ननदुली।"

जिनेश को इस प्रपंच का पता लग गया। वह उससे अधिक चतुर था। वह भी प्रतिदिन घर के पीछे जो 'ऊंटकटाला' नाम का वृक्ष था उसकी पूजा करने लगा और जोर-जोर से बोलने लगा—

"हूं तने पूंजूं ऊंटकटाला, मरज्यो सासू बलि दोय साला।"

स्वर्णा को जिनेश के जाल का पता लगते ही उसने सोचा—अब तो कोई और ही जाल रचना पड़ेगा क्योंकि ये मुझसे बहुत होशियार है। एक दिन जिनेश तो दूकान गया हुआ था, पीछे से उसने एक भयंकर ढोंग रचा। वह सभी कमरे में रोती, कभी उछलती, और कभी शरीर को कंपाती मानो शरीर में कोई देवी प्रविष्ट हो गई हो। सास बेचारी भोली-भाली थी। वह घबराती हुई बोली—"देवी ! जैसा तुम कहोगी वैसा ही करने को तैयार हूं। किन्तु मेरी बहू को अच्छा कर दो।"

देवी उस बहू के मुंह से बोली—"देखो, अगर बहू को जीवित रखना है तो मैं जैसा कहती हूं वैसा करना। सबसे पहले तुम सिर को मुड़ाओ, मुख को काला और पैरों को नीला करो। तुम स्वयं गधी बन कर इस बहू को अपने ऊपर बैठाओ। बस, ऐसे करने से तुम्हारी बहू जीवित रह जायेगी अन्यथा इसे मैं मार दूंगी।" सास बेचारी सरल थी। उसने सब स्वीकार कर लिया। इतने में जिनेश आ गया। माता ने सारी हकीकत सुनाई। जिनेश बोला—"मां ! तुम बाहर बैठो, अभी इसका इलाज करता हूं।" उसी समय जिनेश अपने ससुराल पहुंचा। सास को सारी बात से अवगत कर वह बोला—"यदि आप अपनी पुत्री को जीवित देखना चाहती हो तो जल्दी चलो।" सास शीघ्र उठी। सिर को मुंड़ाकर, मुंह को काला करके कमरे में जा वह गधी बन गई। देवी (बहू) तुरन्त उठी और उस पर बैठ गई। लातों से मारती हुई बोली--

"देख बन्दी का चाला, सिर मुंड़ाया मुंह काला।"

"हे सास ! मेरी चालाकी देख। मैंने तेरा मुंह काला करवाया। तुझे गधी

बनाकर मैं ऊपर बैठ गई हूं। अब मुझे सुख की नींद आयेगी।"

जिनेश वहां खड़ा-खड़ा सब सुन ही रहा था। उससे रहा नहीं गया, वह जोरों से बोला—"देख बन्दे की फेरी, आ अम्मा मेरी कि तेरी।"

यह सुनते ही जिनेश की बहू चौंकी, शीघ्र नीचे उतर कर बोली—"क्या मां तू है ? मैंने तो समझा था कि मेरी सास है। तू यहां कैसे आ गई ?" मां ने सब कह दी। और आखिर सारा भेद खुल गया। स्वर्णा ने सोचा—मेरे पति मुझसे अधिक चालाक हैं। अब यदि तीन-पांच करूंगी तो मुझे बेमौत मरना पड़ेगा। मेरी दाल इनके आगे नहीं गलेगी। क्रमशः उसने अपनी प्रकृति सुधार ली और घर में वह विनय-भक्ति से रहने लगी।

जो मनुष्य मतिमान हैं, वे स्त्रियों के चक्रजाल में कभी नहीं फंसते, प्रत्युत उनको नियंत्रण में रखते हैं। हर कार्य में अपने ही चिंतन को प्रधानता देते हैं। स्त्रियों के चरित्र का पार नहीं है अतः चिंतनशील व्यक्तियों को त्रियाचरित्र से दूर ही रहना चाहिए।

नहीं स्त्रियों के चक्र में, फंसते हैं मतिमान्।
बुद्धिमान् जिस बुद्धि से, करते काम महान्॥

अति लोभ से अनिष्ट

एक दर्जी धन कमाने के लिए परदेश जा रहा था। रास्ते में कोई देवी का मंदिर आ गया। दर्जी ने देवी की भक्तिभाव से पूजा की और बोला—"हे देवि ! यदि परदेश में मेरा व्यापार अच्छा चलेगा, और अच्छी कमाई होगी तो वापस आते समय तेरे चरणों में एक नारियल अवश्य चढ़ाऊंगा।"

बस, वह कलकत्ता जैसे शहर में जा पहुंचा। उसने अच्छा मुहूर्त देखकर कपड़े का व्यापार शुरू कर दिया। उस दर्जी की किस्मत अच्छी होने के कारण व्यापार काफी जोर से चला। कुछ ही समय में अच्छी पूंजी कमाकर वह अपने देश के लिए रवाना हो गया। रास्ते में वही देवी का मंदिर आया। अचानक उसको याद आते ही समीपस्थ गांव में नारियल खरीदने के लिए गया। दुकानदार ने कहा—"एक नारियल के दो आने लगेंगे।" उसने कहा—"डेढ़ आना ले लो।" सौदा नहीं पटने के कारण दूसरी-तीसरी दुकान पर गया। एक नारियल डेढ़ आने का बताया गया। उसने कहा—"एक आना दूंगा।" फिर आगे चला। कई दुकानदार दो पैसे में नारियल देने लगे, फिर भी उसने नहीं लिया क्योंकि अति लोभी होने के कारण वह एक ही पैसे में लेना चाहता था। व्यापारियों ने कहा—"जंगल निकट ही है। नारियल के काफी वृक्ष हैं, वहां मुफ्त में ही मिल

जायेगा।"

वह दर्जी जंगल में गया और अच्छा सा वृक्ष देखकर नारियल तोड़ने के लिए ऊपर चढ़ा। ज्योंही हाथों से डाली को पकड़ा त्योंही पैर फिसल गये और वह एक डाली में जा फंसा, जिसे पकड़कर वह लटक गया। पास ही में एक कुंआ था। वह विचार कर रहा है—हाय! दो पैसे के लोभ में फंसकर मैंने बहुत ही बड़ी गलती की। अब इस दुःख से छुटकारा कैसे होगा। इतने में एक ऊंट वाला आया और उसने कहा—"यदि तू मुझे नीचे उतार देगा तो मैं तुझे सौ रुपया इनाम दूंगा।" रुपयों का नाम सुनते ही अब ऊंट पर खड़े होकर उसने उसके पैर पकड़े तो इतने में वह ऊंट खिसक कर आगे बढ़ गया। ऊंटवाला भी लटक गया और उसने कहा—"भाई! तू छोड़ मत देना नहीं तो हम दोनों ही मरेंगे।"

इतने में एक घोड़ी वाला आ पहुंचा। दोनों ने आवाज दी—"भाई! हम तेरा उपकार नहीं भूलेंगे। यदि तुम हमें इस संकट से बचा दोगे, तो हम तुझे एक-एक हजार रुपये इनाम में देंगे।"

वह भी घोड़ी पर चढ़ा, उसकी टांग पकड़ी ही थी कि घोड़ी चमककर दूर चली गई और वह भी लटक गया। दोनों ने उस दर्जी से कहा—"भाई! हाथ छोड़ मत देना, अब तो तेरे ही चरणों में जीवन है। हम दोनों तुमको एक-एक हजार मुहरें देंगे।" मोहरों की बात सुनते ही उस दर्जी ने सोचा अब तो महल बनाऊंगा। वह इस खुशी में तो फूल गया और अपने भान को भी भूल गया। अचानक हाथ छूटे और तीनों ही कुंए में जा गिरे।

"अति लोभो न कर्तव्यः" अति लोभ किसी को भी नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य लालच के पंजे में फंस जाते हैं उनको तीनों महाशयों की भांति दुःख-महासागरों में गोते खाने पड़ते हैं।

लोभी मानव हर कदम, पाते दुःख महान्।
लोभ न करना चाहिए, कहते संत महान्॥

पहल मैं अब तुम

सेठ की कन्या कौशल्या एक योगी के पास अध्ययन किया करती थी, कौशल्या का रूप-लावण्य देखकर योगी का मन विचलित हो गया, इन्द्रियां विश्रृंखलित हो गईं। योगी से रहा नहीं गया। वाणी का संयम टूटा। मधुर भाषा में कहा, कौशल्या! तेरी मोहक आकृति से मेरा मन मुग्ध हो रहा है, अतः तेरा स्पर्श करना चाहता हूं।"

कन्या घबराई, मन ही मन चिन्तन चला—अरे यह क्या? योगी, गुरु होकर

ऐसी बुरी भावना रखते हैं, हाय ! कन्या ने अपनी ओज भरी वाणी में कहा—"योगीराज ! आप अपने कर्तव्य को संभालें। मन को अडिग रखें। विचलित होना अच्छा नहीं है। माता-पिता को पता लगेगा, तो उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?"

योगी ने कहा—"कौशल्या ! मेरे तप का प्रभाव ऐसा है कि मैं तुम्हारे माता-पिता को जड़ बना दूंगा, तब फिर किसका डर है ?"

कन्या बोली—"अभी दिन है, लोक-लज्जा भी परम अपेक्षित है।"

योगी—"योगबल से दिन को भी रात बना दूंगा। मेरे पास अनेकों लब्धियां हैं। मैं जल को स्थल, पशु को मानव बना सकता हूं। भयभीत होने की जरूरत नहीं है।"

कन्या—"योगीराज ! आप बड़े दक्ष हैं। हर कला में कुशल हैं आपकी तपस्या का अद्वितीय तेज है। सब कुछ होते हुए भी आपको वासना ने पराभूत कर रखा है। विषयासक्त होकर आप सन्मार्ग का परित्याग कर रहे हैं। आत्मनिरीक्षण कीजिए। क्या इसी में आपका महत्त्व है ? साधना को क्यों भूल रहे हैं ?"

कन्या की वाणी सुनते ही योगी की विचारधारा बदल गई। योगी को नया आलोक मिला। कन्या के चरणों में सिर झुक गया। अपने आपको धिक्कारता हुआ बोला—"कन्या ! धन्य है तुम्हारे जीवन को, धन्य है तुम्हारी विचारधारा को ! पूर्व में मैं तुम्हारा गुरु था, किन्तु अब से मैं तुम्हें गुरु के रूप में मानूंगा क्योंकि तुम मुझे गिरते हुए को उठाने वाली हो। तुम्हारा पावन चिन्तन ही मेरे लिए सम्बल बना। मैं तुम्हारे उपकार से कभी भी उऋण होने वाला नहीं हूं। कोटि-कोटि अभिनन्दन।"

प्रत्येक मनुष्य को अपना मन पवित्र रखना चाहिए। मानसिक पवित्रता ही मानव की अमूल्य संपदा है इसके अभाव में मानव दरिद्री कहलाता है।

पावन चिन्तन मनुज का, है सच्चा पाथेय।
बुरे भाव को सज्जनो, समझो पल-पल हेय॥

अंगुलीमाल

श्रावस्ती के जंगल में एक लुटेरा रहता था। मनुष्य मारना व तृण तोड़ना उसकी दृष्टि में एक था। वह मनुष्यों को लूटमार कर उनकी अंगुलियां काट लेता और उनकी माला बना, पहन लेता था। इस कारण वह सारे शहर में 'अंगुलीमाल' नाम से प्रसिद्ध हो गया ! श्रावस्ती की सारी जनता उससे बहुत भयभीत रहती थी। वहां का राजा भी उसे वश में नहीं कर सका। भगवान् बुद्ध ने जब यह सुना तो वे उस भयंकर जंगल में जाने को तैयार हुए जहां वह लुटेरा रहता था। क्योंकि

'परोपकाराय सतां विभूतयः' महापुरुषों का जीवन परोपकार के लिए ही होता है। वे दूसरों की दुर्गति नहीं देख सकते, दूसरों की भलाई के लिए वे हमेशा विहरण करते रहते हैं। उन्हें उस भीषण अटवी में जाते देख, ग्वाले कहने लगे—"महाराज! आप किधर जा रहे हैं? इस गहन वन में तो एक भयंकर लुटेरा रहता है जो सबको लूटकर मार डालता है। अतः यदि आपको जीवन प्रिय है तो यहां से वापस लौट जाइये।" भगवान् बुद्ध उन भोले-भाले ग्वालों की बात सुन चकित होने लगे और मन ही मन चिन्तन करने लगे—मनुष्य प्रकृति के कितने भद्र होते हैं। वे हृदयस्थ भयंकर लुटेरों से तो डरते नही बल्कि बाहरी लुटेरों से भय खाते हैं। ग्वालों की बात सुनी-अनसुनी कर वे आगे चले। अंगुलीमाल ने जब दूर से ही भगवान् बुद्ध को आते देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह सोचने लगा—इस जंगल में अकेला साधु कैसे आ रहा है? मेरा इतना प्रभाव है कि इस जंगल मे अकेला कोई आ ही नही सकता, पर यह कौन? क्या इसे अपना जीवन प्यारा नहीं है? वह बुद्ध के सामने आया और स्थिर खड़ा होकर जोर से बोला—"ठहर जाओ, आगे मत बढ़ो, वही खड़े रहो।" बुद्ध ने चलते-चलते कहा—"भाई! मैं तो खड़ा हूं किन्तु तुम भी खड़े रहो।" अंगुलीमाल ने सोचा—यह कैसा साधु है, जो मेरे स्थिर खड़े रहने पर भी खड़े रहने को कहता है और स्वयं चलते हुए भी कहता है कि मैं तो खड़ा हूं। भगवान् बुद्ध का यह निराला उत्तर सुनकर वह भ्रम में पड़ गया और बुद्ध से कहा—"ऐसे तुम कैसे कह रहे हो? देखते नही, मैं तो खडा ही हूं।" तब भगवान् बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा—"भाई! मैं तो प्रेम और मैत्री में स्थिर हूं लेकिन तुम अभी स्थिर नही हो अतः स्थिर हो जाओ।" भगवान् बुद्ध के उपदेश का यह परिणाम निकला कि वह बुद्ध का शिष्य बन गया और उन्हीं के साथ विहरण करता हुआ श्रावस्ती के उद्यान में आया।

नगर का सम्राट प्रसेनजित सेना लेकर जंगल में रहने वाले अंगुलीमाल को पकड़ने के लिए अदम्य साहस लिए चला। ज्योंही मार्गस्थ उस बगीचे मे पहुंचा तो वह भगवान् बुद्ध के चरणों में नतमस्तक हो वन्दन करने लगा। भगवान ने जब उसकी सशस्त्र सेना देखी तो कहा—"राजन्! आज सेना लेकर कहां जा रहे हो? किस पर चढ़ाई कर रहे हो?" राजा ने उत्तर दिया—"महाराज! आपको पता ही है कि इस जंगल में एक लुटेरा रहता है, आने-जाने वालों को वह लूटता है दुःख देता है। अतः मैं उसे पकड़ने जा रहा हूं। भगवान् बुद्ध ने कहा—"राजन्! जिसे तुम पकड़ने जा रहे हो वह यदि साधु बन जाये तो तुम क्या करोगे?" राजा ने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! मैं उसे नमस्कार करूंगा, उसका सत्कार करूंगा अपना सिर उसके चरणों में झुका दूंगा।" तब भगवान् ने निकट ही बैठे हुए अंगुलीमाल को बताते हुए कहा—"राजन्! तनिक क्रोध दूर करो, शान्ति से

देखो, यह वही लुटेरा है, जिसे तुम सेना लेकर पकड़ने जा रहे हो"। यह सब सुनते ही राजा चौंका और तत्क्षण नतमस्तक हो अंगुलीमाल को पुनः पुनः वन्दना करने लगा। राजा प्रसेनजित भगवान् से प्रार्थना करने लगा—"अहो महाभाग ! धन्य है आपका त्याग, धन्य है आपका आत्मबल और धन्य है आपका जीवन ! जो कार्य आपने किया है वह हम सशस्त्र सैन्यशक्ति से भी नहीं कर सकते। आपके इस अपरिमित उपकार से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकते। सारे शहर को आपने अभय बना दिया। जीवनदान दे दिया प्रभो ! जो प्रभाव सत्संगति में है वह न तो सेना में है और न अस्त्र-आयुधों में और न हम में।"

कवि ने ठीक ही लिखा है—"सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।" महापुरुषों की संगति से चोर भी साहूकार बन जाते हैं, पापी भी धर्मिष्ठ बन जाते हैं अतः हर एक को कुसंग से दूर रहना चाहिए और सत्संग में अपना सारा जीवन खपा देना चाहिए।

लोहा पारस योग से, बने स्वर्ण तत्काल।
सुधर गया सत्संग से, चोर अंगुलीमाल॥

किस्मत से सब अच्छा

एक टिडा नाम का पण्डित था। अधिक अध्ययन नहीं होने के कारण उसे कोई भी नहीं पूछता था। उसने लोकप्रिय बनने की सोची। एक दिन वह जंगल जाकर आ रहा था। मार्ग में कुम्हार का गधा खड़ा था। उसने उसके पैर बांधकर गांव से दूर छोड़ दिया। वापस आते समय कुम्हार मिल गया। कुम्हार ने पूछा—"पण्डित जी महाराज ! आप ज्योतिष विद्या के जानकार हैं, मेरा गधा गुम हो गया है उसकी तलाश करते-करते मैं थक गया, किन्तु गधा नहीं मिला। आप बताइये गधा कहां मिलेगा ?" पण्डित ने काफी गणित कर सोच-विचार कहा—"भाई ! तेरा गधा अमुक स्थान पर मिल जायेगा।" कुम्हार गया, उसे गधा मिल गया। उसने खुश होकर पण्डित जी को चार रोटियों का आटा दिया। पण्डित वहां से आगे चला।

आगे जाते-जाते एक कुम्हारी मिल गई। पण्डित को भूख लगी हुई थी, अतः कुम्हारी से वह बोला—"बेटी ! यह लो आटा और रोटियां पका दो।" पण्डित बाहर बैठ गया और रोटियों के ठबके गिनने लगा। कुम्हारी ने परीक्षा के लिए तीन रोटियां लाकर पण्डित को दे दीं। पण्डित ने कहा—"बेटी ! मेरी ज्योतिष के हिसाब से रोटियां चार होनी चाहिए। एक रोटी और कहां है ? उसने चुपचाप

रोटी पण्डित को दे दी और बोली—"मैंने आपकी ज्योतिष विद्या की परीक्षा के लिए ऐसा किया था। किन्तु आप तो बड़े विद्वान हैं। विद्या के बल से हर बात बता देते हैं।"

अब उस पण्डित की महिमा वायु की भांति सारे शहर में फैल गई। राजा के कानों में भी यह बात पहुंची कि अमुक पण्डित बहुत विद्वान है। भूत-भविष्य की बात भी बताने में बड़ा दक्ष है। एक दिन महारानी का हार गुम हो गया, सब जगह उसकी खोज करली, सबको पूछ लिया, किन्तु हार नहीं मिला आखिर राजा ने उसी पंडित को बुलाकर कहा—"आप ज्योतिषी हैं। हर एक की सही-सही बात बता देते हैं। किन्तु अब बताइये महारानी का हार किसने लिया? रात भर का समय है, यह आपकी कसौटी है।" पण्डित बेचारा दुविधा में पड़ गया। बड़ी समस्या खड़ी हो गई। उसने सोचा—बस, आज सारी पोल खुलेगी। चिन्ता-चिन्ता में सारा दिन पूरा हो गया। रात्रि में सब सो गये। किन्तु चिताग्रस्त उस पण्डित को नींद नहीं आने से वह जोर-जोर से निद्रा को निमन्त्रण देने लगा—"निद्रा आजा, निद्रा आजा।" नृप की एक दासी का नाम निद्रा था। उसने सोचा—पण्डित जी को मेरा पता लग गया। वह शीघ्र आई और बोली—"यह लीजिए हार। आप किसी को मेरा नाम मत बताना।"

पण्डित का काम बन गया, सुबह होते ही उसने नृप के आगे हार रख दिया। नृप के आश्चर्य का पार नहीं रहा। राजा ने साक्षात् उसकी परीक्षा लेने की इच्छा से कहा—"पण्डित जी! बताओ मेरी मुट्ठी में क्या है?"

पण्डित ने सोचा—बस, अब तो बिना मौत मरना पड़ेगा। इतने दिन तो तुक्के मिलते गये। बेचारा मन ही मन गाने लगा—

"अकुरड़यां चरता गधा बताया, ठबके रोटी पाई।
निद्रा पुकारत हार मंगाए, टिडा मुट्ठी में मौत आई॥"

राजा और सब बातों से तो अनभिज्ञ था, अतः उसे कुछ भी नहीं लगा, किंतु टिडा का नाम सुनते ही मुट्ठी खोल दी। मुट्ठी में टिडा (पतंगा) ही था। नृपति उसकी बुद्धि पर दंग रह गया। पुनः उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगा और हजारों का दान दे, उसे सम्मानित कर विदा किया।

इन्सान की किस्मत जब अच्छी होती है तब सब योग स्वतः ही मिल जाते हैं।

भाग्य-योग से मूढ़ भी, बन जाता धनवान।
अनपढ़ पण्डित का किया, नरपति ने सम्मान॥

कर सो भरे

ऊंट और सियार में परस्पर अच्छा प्रेम था। जंगल में प्रायः साथ ही घूमते थे। एक दिन सियार ने ऊंट से कहा—"मित्र ऊंट! यदि तेरी इच्छा हो तो नदी के उस पार चलें।"

ऊंट—"क्यों भाई! वहां क्या विशेषता है?"

सियार—"वहां अपने को खाने के लिए काफी सामग्री मिल जायेगी, किन्तु नदी में पानी का बाहुल्य होने के कारण मैं तेरे सहयोग के बिना अकेला नहीं जा सकता। चलो हरे-भरे खेतों में फल भी खा लेंगे और साथ-साथ सैर भी हो जायेगी।

सियार ऊंट की पीठ पर बैठ गया। दोनों रवाना हुए और उन खेतों में जा पहुंचे। खेत का मालिक सोया हुआ था। दोनों के मौज बन गई। खेत को तहस-नहस करते हुए फल-फूल खाने लगे। सियार का पेट छोटा होने से शीघ्र ही भर गया। सियार बोला—"मित्र! मुझे तो कुल-कुली आती है।" ऊंट ने कहा—"भाई! अभी कुछ समय के लिए चुप रहना अन्यथा खेत का मालिक जग जायेगा, तो दोनों को मार खानी पड़ेगी।"

सियार से रहा नहीं गया। वह तो जोर-जोर से बोलने लगा। खेत के स्वामी की आंखें खुली और हाथ में लाठी लेकर दोनों को मारने के लिए दौड़ा। सियार तो चालाक था। वह शीघ्र वहां से भाग गया किन्तु ऊंट को काफी मार खानी पड़ी। नदी के किनारे पर बैठा-बैठा सियार ऊंट की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में ही ऊंट आया। सियार ने पूछा—"क्या बात है दोस्त?" ऊंट बोला—"मित्र! आज तो उल्टे लेने के देने पड़ गये। अब तो कभी भी इस खेत में आना नहीं है। यदि तू तनिक समय के लिए मौन रख लेता तो मार क्यों खानी पड़ती?"

सियार—"खैर, जो हुआ सो हुआ। अब यहां अधिक समय लगाना अच्छा नहीं है। शीघ्र चलो। कहीं वह खेत का मालिक पीछे से आ जायेगा, तो फिर कड़ाकड़ मार खानी पड़ेगी।"

दोनों ही चले। ज्योंही नदी के मध्य भाग में पहुंचे त्योंही ऊंट बोला—"मित्र सियार! मुझे तो लटलटी आती है।" सियार घबड़ाता हुआ बोला—"भाई! अभी अगर तू लट-लटी लेगा तो, मुझे बेमौत मरना पड़ेगा। नदी में पानी बहुत है मैं तो डूब जाऊंगा। तू मेरा पुराना साथी है। मित्रता निभाना तेरा परम कर्तव्य है। अतः अभी लटलटी मत लेना। नदी पार होने के बाद ले लेना।"

ऊंट बोला—"दूसरों को उपदेश देना सरल है। मैंने कहा था—थोड़ी देर के लिए तू चुप रहना, तथापि तुझसे कुल-कुली लिये बिना नहीं रहा गया तो मेरे से

भी लट-लटी बिना नहीं रहा जाता।" आखिर उसने वैसा ही किया।

ऊंट अपने इच्छित स्थान पर पहुंच गया, उसकी किंचित् भी हानि नहीं हुई, किन्तु सियार पानी में डूबकर मर गया।

जो करता है वह भरता है, जो हंसता है वह रोता है, स्वयं की गल्ती का नुकसान स्वयं को ही उठाना पड़ता है। अतः कोई भी काम करना पड़े तो हर दृष्टि से सोच-समझकर ही करना चाहिए।

करता जो भरता वही, निश्चित यह सिद्धान्त।
उपनय ऊंट-सियार का, सुनो सभी हो शान्त ॥

झूठा अहंकार

एक श्रीधर नाम का महाजन था। उसके तीन पुत्र थे। घरेलू स्थिति कमजोर होने के कारण श्रीधर काफी चिंतित रहता था। तेल, गुड़, शक्कर आदि बेचने के लिए हमेशा छोटे-छोटे गांवों में जाता था। काफी दौड़-धूप करने पर जो मजदूरी होती थी, उससे घर का खर्च निकलता था। एक दिन उसको मार्ग में एक महात्मा मिल गये। महात्मा बोले—"भाई! तुम तो सत्संग में कभी भी नहीं आते हो। क्या बात है?"

श्रीधर—"महात्मा जी! सत्संग में आने की इच्छा तो होती है किंतु समय बिल्कुल नहीं मिलता है। घर की सारी जिम्मेदारी मेरे कन्धों पर है। प्रतिदिन कमाई करके लाता हूं तब घर का काम चलता है, मेरे बिना एक पलक भी घर का काम नहीं चल सकता है। यहां की कमाई से भी खर्च पूरा नहीं पड़ता, अतः कल परदेश जाऊंगा।"

महात्मा—"अच्छा परदेश जाते समय मुझसे मिलकर जाना।"

श्रीधर परदेश जाने के लिए घरवालों से विदाई लेकर मठ में आया। महात्मा ने उसे एक मन्त्र बताकर कहा—"अच्छा! बारह वर्ष तक घर मत आना। तुम्हारा सब काम सिद्ध हो जायेगा। जिस दिन आओ उस दिन पहले मेरे से मिलना, फिर घर जाना।" वह परदेश के लिए रवाना हो गया।

पीछे से महात्मा ने उसके परिवार वालों के नाम एक झूठा पत्र लिखा। उसमें एक पंक्ति यह लिख दी कि "श्रीधर परदेश जा रहा था, रास्ते में उसको सिंह खा गया।" पत्र को बन्द कर नौकर के द्वारा उसके घर पहुंचा दिया। घर वालों ने उसको दिवंगत समझ कर सांसारिक सभी काम कर लिए। श्रीधर के पुत्र बड़े हुए। पड़ोसी की दूकान में नौकरी करने लगे। एक दिन महात्मा ने श्रीधर के घर वालों से पूछा—"जीवन आराम में है?" वे बोले—"बाबाजी महाराज! आपकी कृपा

से हम बहुत सुखी हैं। पिताजी का देहावसान हुए कई वर्ष हो गये, फिर भी हम घर का खर्च अच्छी तरह चलाते हैं।"

इधर श्रीधर काफी कमाई करके बारह वर्षों बाद अपने नगर में आया। सबसे पहले महात्मा जी के मठ में पहुंचा। महात्मा बोले—"बच्चा! अभी मुहूर्त अच्छा नहीं है रात को दस बजे घर जाना।" महात्मा जी ने घरवालों से कह दिया—"श्रीधर का जीव मरकर भूत बन गया है, आज वह रात को दस बजे घर आयेगा, सब सावधानी रखें।"

श्रीधर दस बजे घर पहुंचा। घरवालों ने दरवाजे बन्द कर रखे थे। भूत आया जानकर उसको निकालने के लिए ऊपर से पत्थर फेंकने शुरू किये। "हमको जरू-रत नहीं है तेरी, निकल जा यहां से।" उसने कहा—"मेरे बिना घर का काम कैसे चलेगा?" सबने कहा—"हमारा काम अच्छी तरह चलता है। पहले से भी हम अधिक सुखी हैं।" अचानक वहां महात्मा आये और बोले—"श्रीधर! बोल, तेरे बिना घर का काम चलता है या नहीं?"

श्रीधर महात्मा के चरणों में पड़ गया और बोला—"भगवन्! मैं झूठा अहं-कार कर रहा था। आपकी वाणी सत्य है।" आखिर महात्मा ने सारा भेद खोल दिया और श्रीधर ने अपना जीवन सत्संग में खपा दिया।

किसी को भी झूठा अहंकार नहीं करना चाहिए कि मेरे बिना घर का काम चल ही नहीं सकता। अनेकों मनुष्य अचानक चले जाते हैं। क्या उनके बिना घरेलू काम रुक जाते हैं? कदापि नहीं।

पल भर भी मेरे बिना, चले न घर का काम।
श्रीधर सम अभिमान का, होता विलय तमाम॥

काला अक्षर भैंस बराबर

एक सेठ था। उसके घनश्याम नाम का एक पुत्र था। इकलौता पुत्र होने के कारण वह लाड़-प्यार में बिगड़ गया। सेठ ने अच्छा घर और अच्छी लड़की देखकर पुत्र का विवाह कर दिया। एक दिन घनश्याम ससुराल भोजन करने के लिए गया। सास ने विविध पकवानों द्वारा दामाद की बड़ी खातिरदारी की। घनश्याम अपने घर जाने की तैयारी में था। इतने में सास को याद आ गया कि परदेश से पत्र आया हुआ है। मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूं, मौका अच्छा मिल गया कुंवर जी पधारे हुए हैं। सास ने कहा—"कुंवर साहब! यह पत्र आपके श्वसुर जी का आया हुआ है, पढ़कर सुना दीजिए।"

घनश्याम पढ़ा-लिखा नहीं था। वह चक्कर में पड़ गया और मन ही मन सोचने लगा—पत्र कैसे पढूं? मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। पिताजी ने मुझे पढ़ाया नहीं। उसे अपनी निरक्षरता पर बहुत दुःख हुआ और आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। मुंह से कुछ भी नहीं बोल सका। सेठ की स्त्री ने सोचा—पत्र पढ़कर ये रो रहे हैं हो न हो दाल में कुछ काला है अवश्य ही मेरा सुहाग लुट गया है। यह सोचकर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका विलाप भरा रुदन सुनकर आसपास की स्त्रियां भी आ गईं। सभी अपनी समवेदना प्रकट करने के लिए स्वर से स्वर मिलाने लग गईं। घर में कुहराम मच गया। पड़ोस के कुछ पुरुष भी आ गये। उन्होंने पूछा—"क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि सेठ जी कुशल से हैं और अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है?" पत्र उनको दिखाया गया। पत्र में लिखा था—"हम मजे मे हैं और भगवान् की कृपा से अच्छी कमाई भी हो रही है।"

पत्र का सही अर्थ मालूम होते ही सब अवाक् रह गये। घर का सब वातावरण बदल गया। सबकी आकृति पर खुशी छा गई। और दामाद से पूछा गया कि आपने पत्र कैसे पढ़ा? श्याम ने दुःख भरी भाषा में कहा—"भाइयो अगर मैं पढ़ा हुआ होता तो आंखों से आंसू क्यों निकलते? मैं तो अपने पिताजी को रो रहा हूं कि उन्होंने मुझे पढ़ाया क्यों नहीं।"

निरक्षर व्यक्ति को कदम-कदम पर दुःख उठाना पड़ता है। साक्षर व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है, अतः हर व्यक्ति को ज्ञानार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बिना पढ़ाई जड़ मनुज, करता रुदन अपार।
अर्थ सही नहीं पा सका, जिससे हाहाकार॥

क्षमा की पराकाष्ठा

कुड़गडुक मुनि गुरु के बड़े विनीत एवं आज्ञाकारी शिष्य थे। कदम-कदम पर वे गुरु के इंगित आकार को ध्यान में रखते थे। चातुर्मासिक चतुर्दशी का शुभपर्व आने पर गुरु ने समस्त श्रावक समाज व साधु समाज को आह्वान करते हुए फरमाया—"आज का दिन चतुर्मास आरम्भ होने की दृष्टि से काफी महत्त्व रखता है। आज प्रत्येक भाई-बहन को तथा साधु साध्वी को उपवास करना चाहिए।" गुरुदेव के निर्देश पर अनेकों भाई-बहनों तथा सभी साधु-साध्वियों ने उपवास रखे किन्तु कुड़गडुक मुनि उपवास करने में असमर्थ थे। इसलिए गुरु के पास आये और हाथ जोड़कर विनम्र भाव से बोले—"पूज्यवर! मुझसा कायर व कमजोर इस साधु

समाज में कोई नहीं होगा। उपवास करने की इच्छा होते हुए भी मैं भूख नहीं सह सकता, अतः गोचरी की आज्ञा दें।"

यह सुनते ही गुरु के क्रोध का पार नहीं रहा। मुनि को कठोर शब्दों में ललकारते हुए कहा—"अरे पेटू! एक दिन में क्या होता है?" मुनि बोले—"गुरुदेव! आपकी शिक्षाएं बड़ी अनमोल हैं, किन्तु मैं विवश हूं।" आखिर गुरु की आज्ञा लेकर वे भिक्षा के लिए रवाना हो गये। किन्तु सर्वत्र उपवास होने के कारण भिक्षा दुष्प्राप्य हो गई। एक घर में ठंडी खिचड़ी का संयोग मिला। मुनिराज उसे लेकर आये और गुरु को दिखाया। देखते ही अति भर्त्सनापूर्वक उस खिचड़ी में थूककर गुरु बोले—"आ गया अन्न का कीड़ा, हम सबने तो उपवास किया है, तू खाएगा।"

मुनि क्षमा के झूले में झूलते हुए बोले—"गुरुवर! धन्य है आपके तप को। वह दिन मेरा भी धन्य होगा, जिस दिन मैं उपवास करूंगा।" शान्त रस का आस्वाद लेते हुए मुनि नीचे के कमरे में आये और मन ही मन विचार करने लगे—आज तो बहुत ही अच्छा हुआ। घी का योग नहीं मिला था, किन्तु गुरुदेव ने खिचड़ी में घी डाल दिया। ऐसा शुभ अवसर तो किस्मत वालों को ही मिलता है। इस तरह समभाव से खिचड़ी खाते-खाते मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। कैवल्यउत्सव करने के लिए देवता आए और कूड़गडूक मुनि की पुनः-पुनः प्रशंसा करने लगे।

मुनि शीघ्र ही गुरु के पास गये और बोले—"गुरुवर! आपकी शुभ कृपा से मुझे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।" गुरु अपने आपको धिक्कारते हुए बोले—"शिष्य! मैंने तेरा इतना अपमान किया फिर भी तूने क्षमाधर्म का परित्याग नहीं किया। तुझे कोटि-कोटि धन्यवाद है।"

क्षमाशील मनुष्य ही अपने जीवन का उच्चतम विकास कर सकते हैं। अतः जीवन के हर पहलू में क्षमाधर्म को अपनाकर अपने साध्य को प्राप्त करना चाहिए।

सब धर्मों में श्रेष्ठ है, क्षमाधर्म अनमोल।
क्षमाशील गुणवान का, बढ़े विश्व में तोल॥

दृष्टि-संयम

एक पथिक कहीं जा रहा था। उसकी आंखों ने दूर से वृक्ष से गिरते हुए आम को देखा। वह वहां गया। आम को खाने लगा। इतने में ही वृक्ष का मालिक आ गया। उसने उस पथिक को दो थप्पड़ मारते हुए कहा—"बिना इजाजत आम कैसे खा रहा

है ?" पथिक की आंखों से पानी गिरने लग गया और जोर से बोला—"जो देखता है वह रोता है।" इसलिए कहा—

"आंबो पड़ियो पेड़ स्यूं, देख्यो दो जणा।
देख्या सो दौड़्या नहीं, दौड़्या दो जणा।
दौड़्या सो पाया नहीं, पाया दो जणा।
पाया सो खाया नहीं, खाया घणा जणा।
खाया सो रस पाया नहीं, पाया एक जणा।
पाया सो पकड़ीज्या नहीं, पकड़ीज्या दो जणा।
पकड़ीज्या सो कुटीज्या नहीं, कुटीज्या दो जणा।
कुटीज्या सो रोया नहीं, रोया दो जणा।।"

पेड़ से गिरते हुए आम को दो आंखों ने देखा किंतु देखने वाली नहीं दौड़ी, दो पैर दौड़े। दौड़ने वालों ने नहीं उठाया किंतु दो हाथों ने उठाया। उठाने वालों ने नही खाया किंतु अनेकों दांतों ने खाया। खाने वालों को रस नहीं मिला किंतु जीभ को रस मिला। [अचानक मालिक आ जाता है] रस ग्रहण करने वाली जीभ को वह नहीं पकड़ सका। पथिक के दो कंधे पकड़े गये। पकड़े गये को मार नहीं खानी पड़ी, दो गालों पर मार (थप्पड़) पड़ी। मार खाने वालों को रोना नहीं पड़ा, आखिर शुरूआत करने वाली आंखों को ही रोना पड़ा।

पथिक को प्रकाश हुआ, गति मिली और अन्तर्द्रष्टा बनने का अवसर प्राप्त हुआ कि वास्तव में जो करता है, वह भरता है। जो देखता है, वह रोता है अतः दृष्टि-संयम ही जीवन का अमूल्य तत्त्व है।

तरु की द्रष्टा आंख थी, रोने वाली आंख।
संयम सुखकर दृष्टि का, किसको भी मत झांक।।

आज नहीं कल

एक दिन एक ब्राह्मण काफी आशाएं लेकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास आया और नम्र-भाव से हाथ जोड़कर बोला—"देव ! आप बड़े दानवीर हैं। जन-जन के दुःख को दूर करने वाले हैं। मैं आपका नाम सुनकर काफी दूर से आया हूं। आप मेरी कामना को सफल करें। मैं भूखा हूं, कुछ न कुछ दान दीजिए।"

युधिष्ठिर ने कहा—"बन्धुवर ! आज नहीं कल तुम्हें दान दूंगा।" यह सुनते ही ब्राह्मण हताश हो गया। समस्त आशाओं पर पानी फिर गया। मुख पर दुःख की रेखा अंकित हो गई। चिन्तातुर और व्याकुलमना हो वह वापस आने लगा।

भीम बाहर बैठे थे। उन्होंने पूछा—"क्यों भाई ब्राह्मण ! चेहरे पर खुशी नहीं है, उदासी क्यों ?" ब्राह्मण—"क्या कहूं ? मेरी तकदीर ही ऐसी है। मैं तो लम्बी आशा लेकर आया था, किन्तु अब निराश होकर जाता हूं।"

भीम—"क्या भाई साहब ने तुझे दान नहीं दिया ?"

ब्राह्मण—"एक कौड़ी भी नहीं दी।"

भीम—"तो फिर उन्होंने क्या कहा ?"

ब्राह्मण—"उन्होंने तो सिर्फ इतना ही कहा—आज नहीं कल दूंगा।"

भीम—"भाई ! दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। कल तुझे अवश्य दान मिल जाएगा। क्योंकि मेरे भाई साहब बड़े सत्यवादी हैं। उनके कहने में तनिक भी फर्क नहीं पड़ सकता।"

भीम ने सोचा—इस धरा पर काल को जीतने वाला आज तक कोई नहीं हुआ। मेरे बड़े बन्धुवर ने काल को भी जीत लिया है। इस खुशी में भीम ने जोर-जोर से ढोल बजाना आरम्भ कर दिया। हृदय में आनन्द की कल्लोलें कल्लोलित होने लगीं।

युधिष्ठिर ने जब ढोल की आवाज सुनी तो भीम को बुलाकर पूछा—"भीम, ढोल किस खुशी में बजा रहे हो ?"

भीम—"अभी आपने उस ब्राह्मण को कहा था, दान कल दूंगा।" आपको कल का भरोसा है। आप असत्य बोलते नहीं। काल को पराजित करने के लिए आज तक संसार में किसी ने जन्म नहीं लिया, लेकिन आपने काल को भी परास्त कर दिया। इसी आनन्द के उपलक्ष में ढोल बजा रहा हूं।

युधिष्ठिर सहसा चौंके, भान हुआ, आंखें खुलीं और बोले—"अरे भीम ! मैं तो गलती पर हूं। उस ब्राह्मण को वापस बुलाओ। दान अभी दूंगा। बिना सोचे-समझे मैंने कह दिया कि कल दूंगा। लेकिन काल को जीतने वाला न तो कोई हुआ और न कोई होगा। कल का किसी को भी पता नहीं है।" आखिर उस ब्राह्मण को उसी समय बुलाया गया और युधिष्ठिर ने अपने हाथों से दान दिया।

जो कर्य करना है उसे शीघ्रता से कर लेना चाहिए कल पर छोड़ना बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि कल का किसी को भी विश्वास नहीं है। काल सब पर घूम रहा है, कौन जाने कब आ जाए ?

करना है सो झट करो, कल का नहीं विश्वास।
कौन जानता किस समय, रुक जायेगा श्वास ॥

मुरली के तीन गुण

यमुना नदी के तट पर एक दिन श्रीकृष्ण मुरली बजा रहे थे। मुरली की मधुर तान से जनता मुग्ध हो रही थी। मृग तथा मणिधर फनों को फैलाये हुए एकाग्रता से मुरली की मुग्ध आवाज सुनने में तल्लीन थे। इतने में सोलह शृंगार सजकर पानी भरने वहां गोपियां आ गई। कृष्ण भगवान् को नमस्कार करके मुरली की तान सुनने लग गई और साथ-साथ ईर्ष्या के कारण सबके मुख लाल हो गये। श्रीकृष्ण भगवान् ने पूछा– "सब खुश हो रहे हैं। किंतु तुम सब लाल क्यों हो रही हो ?"

अधरावली को चबाती हुई बोलीं—"हम आपको प्यारी नहीं हैं। प्राणों से भी अधिक प्यारी आप मुरली को समझ रहे हैं जो इसको साथ लेकर सोते हैं। कहीं पर भी जाते हैं तो हमेशा इसे साथ लेकर जाते हैं किंतु इस मुरली में अवगुणों का पार नहीं है। देखिए—यह निर्वस्त्रा नारी है, पोली है, आकृति से भी काली है। इससे हम कितनी सुन्दर तथा मनमोहक हैं। फिर भी आप हम सबको छोड़कर इस मुरली को ही सर्वे-सर्वा क्यों मान रहे हैं? यह हम सबकी दुश्मन है।" श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर देते हुए कहा—"चाहे यह मुरली पोली है, काली है किन्तु इस तरह ईर्ष्या करने से कभी यह अप्रिय नहीं हो सकती। किसी के पास यदि एक भी गुण होता है, तो संसार में उसकी पूजा होती है। मुरली में तो तीन गुण हैं।"

गोपियां चौंककर बोलीं—"नाथ ! कौन-से तीन गुण हैं? श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—"संसार में बिना बतलाये नहीं बोलना, यह बहुत बड़ा गुण है उसको लोग पूज्य दृष्टि से देखते हैं। वाचाल की कहीं भी इज्जत नहीं होती। मुरली का पहला गुण तो यही है कि 'बिना बुलाये नहीं बोलती'। मधुर बोलने वाला हर एक को अच्छा लगता है। जहां जाता है वहां उसका आदर-सत्कार होता है, जग को वश में करने वाला यह महामंत्र है। कटुवाणी किसी को भी प्रिय नहीं लगती। मुरली में दूसरा गुण यह है कि 'जब भी बोलेगी तो मधुर बोलेगी'।"

जिसके हृदय में गांठ होती है, दांव-पेच होते हैं वह कभी भी उच्चपद को प्राप्त नहीं कर सकता। सरलता के गुण से जो अलंकृत है, उसे सर्वत्र महत्त्व मिलता है। मुरली में तीसरा गुण 'सरलता' का है। यह बिल्कुल सरल है, इसके दिल में एक भी गांठ नहीं है।"

मुरली के तीनों गुणों को सुन गोपियां निरुत्तर हो गईं, नशा उतर गया। श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में झुककर बोलीं—"नाथ ! आपने हमें सच्चा ज्ञान दिया। हम मुरली के गुणों से पूर्णतया अनभिज्ञ थीं। वस्तुतः इन गुणों से हर एक की पूजा होती है।"

इन्सान को गुणग्राही बनना चाहिए। दूसरों के गुणों को देखकर जलना मानव की दुर्बलता है। गुण चाहे छोटों में हो चाहे बड़ों में हो, सबको संग्राह्य हैं। मुरली के तीन गुणों को स्वीकार करने वाला व्यक्ति गुणी बन सकता है।

बनना सबको है सुखद, मुरली के अनुसार।
गुणवानों का हर जगह, होता है सत्कार॥

रात्रि-भोजन का दुष्परिणाम

चार मित्र थे। चारों ही आधुनिक समाज में पले हुए थे। एक दिन चारों ही अपने साथी महेश के घर गये। रात्रि के ग्यारह बज रहे थे। महेश ने आगन्तुक मित्रों से कहा—"दोस्तो! आज तो बहुत दिनों से मिलन हुआ है। चाय पीये बिना नहीं जाने दूंगा।" चारों ही चाय के आदी थे। गरम मसाले डालकर मित्र ने चाय बनाई। सबने बड़ी रुचि के साथ चाय पी ली, परन्तु उन सब में एक मित्र ऐसा था, जो रात में कुछ भी खाता-पीता नहीं था। उसने चाय नहीं पी। अन्य मित्रों ने उससे कहा—"चाय पीने में क्या दोष है?" वह बोला—"मुझे रात्रि-भोजन का त्याग है। मैं मेरे नियम को कभी नहीं तोड़ूंगा। अटल हूं।" साथियों ने कहा—"यार! तुम तो अभी तक पुराने जमाने के वातावरण में पल रहे हो। क्या पड़ा है नियम में, तोड़ दो। गरम चाय थकावट मिटाती है, स्फूर्ति देती है। कम से कम एक कप तो जरूर ही पीओ।"

अत्याग्रह होने पर भी उसने चाय पीना स्वीकार नहीं किया। शेष सब चाय पीकर सो गए। सबको लम्बी नींद आ गई। सूर्योदय होने पर भी वे नहीं उठे। सबको निर्जीव देखकर चाय नहीं पीने वाला मित्र घबराया। उसने सोचा—कहीं मुझ पर ही कोई आफत न आ पड़े। अपना बचाव करने के लिए थाने में इतला कर दी। पुलिस वाले जांच-पड़ताल के लिए आये। उस मित्र ने कहा—"ये सब लोग चाय पीकर सोए थे। मुझे ऐसा आभास होता है कि चाय में कोई विषैली चीज मिली हुई होगी जिससे इन सबकी मृत्यु हो गई।" पुलिस अफसर बड़ा दक्ष था। उसने चायदानी मंगवाई और उसको ध्यानपूर्वक देखा।

चायदानी की नली में एक छिपकली जमी हुई थी। अफसर ने कहा—"इन सबकी मृत्यु का कारण समझ में आ गया। वह छिपकली चाय के साथ उबल गई और उसी का जहर इन सबके शरीर में व्याप्त हो गया, जिससे ये परलोक सिधार गये।"

रात्रिभोजन अन्धा भोजन कहा जाता है। पुराणों में सूर्य डूबने के पश्चात् अन्न को मांस और पानी को रुधिर समान बतलाया गया है, अतः हर एक को

रात्रिभोजन का परित्याग कर देना चाहिए।

अन्धा भोजन रात्रि का, कहते ग्रन्थ तमाम।
बढ़ता इससे रोग है, होता दुष्परिणाम ॥

निष्काम भक्ति…

रामू और शिव दो भाई थे। दोनों में मेल-मिलाप अच्छा था। किन्तु स्त्रियों के वैमनस्य तथा मन-मुटाव के कारण दोनों को अलग होना पड़ा। रामू की पत्नी सुशीला स्वभाव की अच्छी एवं पतिभक्ता थी। रामू जो भी शिक्षा देता, सुशीला उसको अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करती और पति को प्राणों से भी अधिक परमेश्वर के तुल्य समझती थी। शिव की पत्नी का नाम गंगा था। उसकी प्रकृति ठीक नहीं थी। पति-पत्नी के परस्पर कलह-कदाग्रह होता ही रहता था। गंगा अपने पति को कभी सुख से रोटी भी नहीं खाने देती और बात-बात पर बक-बक करती ही रहती थी।

रामू की पत्नी एक दिन मध्याह्न के समय ओखली में बाजरा कूट रही थी। अचानक रामू दुकान से घर आया और जोर से बोला—"पानी पिलाओ।" पति के शब्द सुनते ही सुशीला बाजरा कूटती हुई बीच में ही मूसल को छोड़कर सहसा पानी पिलाने के लिए उठी और ठण्डा-ठण्डा पानी छानकर पति को पिला दिया, किन्तु वह मूसल सुशीला के सत्य-शील के प्रभाव से जमीन पर नहीं गिरा, शून्य में लटका रहा।

यह देख गंगा ने पूछा—"जिठानीजी! आज यह मूसल निरालंब कैसे रहा? मेरे तो कुछ भी समझ में नहीं आया।"

सुशीला ने अपनी सहज भाषा में कहा—"देवरानी! मैं पतिव्रत धर्म का पालन करती हूं। पतिदेव की आज्ञा में चलती हूं। यह सब उसी का प्रभाव है।"

देवरानी—"अच्छा! बताओ पतिव्रत-धर्म क्या है?"

जिठानी—"(१) अपने पति के अतिरिक्त संसार के समस्त पुरुषों को पिता व भाई की दृष्टि से देखना (२) तन, मन, धन से पति की सेवा करना (३) पति की आज्ञा का तन-मन से पालन करना और उसके मनोनुकूल भोजन पकाना।"

देवरानी गंगा भी मूसल को अधर रखने के लिए अपने पति शिव की सेवा-चाकरी करने लगी और उसको प्रतिदिन तरह-तरह के पकवान खिलाने लगी। एक दिन उसने पति से कहा—"आज आप मध्याह्न (बारह बजे) में घर आना और पानी पिलाओ शब्द जोर से बोलना।" शिव ने कहा—"बहुत अच्छा।"

गंगा मूसल लेकर बाजरा कूटने बैठ गई। बार-बार पति की प्रतीक्षा करने

लगी, किन्तु शिव व्यापार में इतना फंसा कि वह घर आना भूल गया। शाम को जब वह घर आया तब वह बोली—"पतिदेव आज तो आप भूल गए, कल जरूर पधारना।" दो-तीन दिन तो ऐसे ही बीत गए। चौथे दिन वह ठीक बारह बजे घर आया और बोला—"पानी पिलाओ।" गंगा बीच में ही मूसल को छोड़कर पानी पिलाने के लिए उठी, किन्तु मूसल अधर न रहा, जमीन पर गिर गया। गंगा गुस्से में आकर बोली—"पतिदेव! इतने दिन मैंने आपको तरह-तरह के पकवान खिलाए, आपकी तन, मन से सेवा की, फिर भी मेरा मूसल अधर नहीं रहा।"

शिव बोला—"फल की कामना से की हुई भक्ति, भक्ति नहीं है। वस्तुतः सच्ची भक्ति तो वह है जो निष्काम की जाए। निष्काम भक्ति ही यथेष्ट की उपलब्धि मे निमित्त बनती है।

किसी को भी फल की आशा से काम नहीं करना चाहिए। निष्काम भक्ति ही जीवन उन्नति में सहायक हो सकती है। काम करो, नाम स्वतः होगा, किन्तु नाम की कामना से काम मत करो।

रखकर फल की भावना, करो न कोई काम।
सब शास्त्रों में श्रेष्ठ है, भक्ति भव्य निष्काम ॥

पाठ याद हो गया

पाण्डव और कौरव द्रोणाचार्य के पास प्रतिदिन अध्ययन करते थे। एक दिन द्रोणाचार्य ने सब लड़कों को याद करने के लिए पाठ दिया 'क्रोधं मा कुरु' क्रोध मत करो। दूसरे दिन सभी लड़कों ने पाठ याद कर लिया और गुरु को सुना दिया। लेकिन युधिष्ठिर ने पाठ नहीं सुनाया। तीन दिन पश्चात् द्रोणाचार्य ने उससे पूछा—"क्या पाठ याद हो गया?" हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक युधिष्ठिर ने कहा—"पूज्यवर! अभी तक पाठ याद नहीं हुआ है। इस प्रकार चार-पांच दिन बीत गये किन्तु युधिष्ठिर ने पाठ नहीं सुनाया। तब द्रोणाचार्य आंखें लाल कर बोले—"अरे युधिष्ठिर! तू पाठ को याद करने के लिए तनिक भी प्रयास नहीं करता है, तेरे सभी साथियों ने पाठ सुना दिया और तू अभी तक पीछे ही लटक रहा है।" इस प्रकार शब्दों की तर्जना देते हुए गुरु ने उसके एक थप्पड़ लगा दी। फिर भी युधिष्ठिर शांत रहा, क्रोध नहीं किया प्रत्युत नम्र शब्दों में वह बोला—"पूज्यवर! अब मुझे पाठ याद हो गया है।"

द्रोणाचार्य ने कहा—"इतने दिन तक तो नहीं हुआ था और आज मार पड़ते ही तुझे पाठ याद हो गया?"

युधिष्ठिर ने कहा—"गुरुदेव ! इस छोटे से पाठ को कंठस्थ करना कुछ भी कठिन नहीं है। किन्तु कठिन है—जीवन में उतारना। अतः मैंने सोचा—मुझे कोई मारे, पीटे या मुझ पर गुस्सा करे उस प्रतिकूल स्थिति में भी मैं शान्त रहूं, क्षमा रखूं तब मेरा पाठ याद करना सार्थक होगा। आज आपने मुझे मारा, पीटा और मुझ पर क्रोध भी किया। फिर भी मुझे क्रोध नहीं आया तब मैंने सोचा—सही माने में आज यह पाठ—'क्रोधं मा कुरु' मुझे याद हुआ है।"

द्रोणाचार्य ने सब लड़कों को आह्वान करते हुए कहा—छात्रो ! युधिष्ठिर ने इस पाठ को आचरण में उतारा है, इसे मैं सही रूप में कण्ठस्थ किया मानता हूं। चन्द ही क्षणों में यदि किसी ने पाठ को याद भी कर लिया, किन्तु उसे जीवन में क्रियान्वित नहीं किया तो वह याद करना केवल याद करना ही है न कि जीवन उपयोगी, अतः सभी विद्यार्थी युधिष्ठिर की भांति पाठ याद करने का प्रयत्न करें जिससे जीवन का विकास हो सके।

ज्ञान क्रिया ही मोक्ष का, समझो सच्चा द्वार।
करो ज्ञान-अनुकूल सब, जीवन का आचार ॥

सबसे बड़ा अनुभव

विमलकुमार ने पिताजी से निवेदन करते हुए कहा—"पूज्यवर ! आज मेरा मानस-मयूर आनन्द-उपवन में नृत्य कर रहा है। क्योंकि चिरकाल से मैं जिस ज्योतिष-विद्या का अध्ययन कर रहा था, उसमें मुझे आपकी शुभ कृपा से आशातीत सफलता मिली है। और ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड मनीषियों में मेरी गणना होने लग गई है। यदि आपकी इच्छा हो तो आप मुझसे कोई भी प्रश्न कर सकते हैं। मैं उसका सही सही उत्तर दे सकूंगा। भूत और भविष्य का हाल बताना तो मेरे लिए बहुत ही सरल है।

पिता ने पुत्र की परीक्षा करने के लिए पूछा—"पुत्र! बतलाओ मेर इस मुट्ठी में क्या है ?" विमलकुमार ने बुद्धि दौड़ाई, मस्तिष्क घुमाया और काफी समय तक गणित करने के पश्चात् उत्तर देते हुए कहा—"पिता जी ! आपकी मुट्ठी में जो वस्तु है, वह गोलाकार होनी चाहिए, गोक्षीर की भांति सफेद होनी चाहिए और उसमें पत्थर भी जड़ा होना चाहिए।"

पिता रंनी राम के हृदय में आश्चर्य का पार न रहा। पुत्र की पुनः-पुनः प्रशंसा करते हुए कहा—"वत्स ! तुमने जो उत्तर दिया वह शतशः ठीक है। पर यह बताओ उस वस्तु का नाम क्या है ?" विमलकुमार प्रशंसा से फूल गया और अभिमानपूर्वक बोला—"आपकी मट्ठी में चक्की का पाट है।"

सेठ रंगीराम ने कहा—"पुत्र ! तुमने अध्ययन तो अवश्य किया परन्तु अनुभव प्राप्त नहीं किया है। तुम तनिक चिन्तन करो, क्या मुट्ठी में चक्की का पाट समा सकता है ? यदि तुम अंगूठी बताते तो सोने में सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ कर देते।"

विद्या का धनी होते हुए भी अनुभवशून्य होने के कारण विमलकुमार को लज्जा का पात्र बनना पड़ा। उसके पास ज्ञान की कमी नहीं थी, पर अनुभव की कमी थी, जिससे वह सफलता प्राप्त करने में असफल रहा।

संसार में सबसे बड़ा अनुभव होता है। अनुभव के अभाव में बड़े-बड़े विद्वान शास्त्रज्ञ भी पराजित हो जाते हैं। अतः पढ़ने के साथ-साथ गुनना भी आवश्यक है।

पढ़कर बी० ए० बैरिस्ट्री, बनते कई होशियार।
किन्तु एक अनुभव बिना, पढ़ना सब बेकार ॥

माया और छाया

पूर्व दिशा में जब दिनकर उदय हुआ तब ज्ञानचन्द पश्चिम की ओर मुंह करके खड़ा-खड़ा चिन्तन करने लगा—क्या मैं मेरी परछाईं को नहीं पकड़ सकता ? अवश्य ही पकड़ूंगा। आखिर इसने सोच-विचार कर अपनी परछाईं को पकड़ने के लिए दौड़ना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता, त्यों-त्यों उसकी परछाईं भी आगे बढ़ने लगी। हृदय में झुंझलाहट पैदा हुई और आंखों में शोणित का प्रवाह बहने लगा। अरे ! यह क्या ? इतना श्रम करने पर भी परछाईं तो आगे ही आगे दौड़ती जाती है। मुझे इसको पकड़ने में सफलता कैसे मिलेगी ? इसी चिन्तन के गहरे सागर में वह डुबकियां लगाने लगा।

इतने में उसका परम मित्र प्रकाण्ड विद्वान रामकुमार वहां आ पहुंचा और पूछा—"अरे साथी ! क्या चिंतन चल रहा है ? क्यों इस तरह दौड़ा-दौड़ लगा रहा है ?"

ज्ञानचन्द—"मित्रवर ! मैं मेरी प्रतिच्छाया को पकड़ने का प्रयत्न कर रहा हूं। और उसके लिए ही इतना दौड़ रहा हूं। लेकिन वह हाथ नहीं आ रही है। मैं जितना दौड़ता हूं वह मुझसे आगे निकल जाती है।"

रामकुमार—"मित्र ! छाया को पकड़ने का तुमने जो प्रयत्न किया, वह वस्तुतः युक्तिसंगत नहीं। अगर तू अपना रास्ता बदल पूर्व की ओर मुंह कर आगे बढ़ेगा, तो तुझे अवश्य ही सफलता मिलेगी अर्थात् छाया के पीछे-पीछे भागने की नौबत नहीं आयेगी। प्रत्युत छाया तेरे पीछे-पीछे दौड़ेगी।" ज्योंही वह मुड़कर पूर्व

की ओर मुंह कर दौड़ने लगा, त्योंहीं परछाई भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी। ज्ञानचन्द की आंखें खुलीं, ज्ञान हुआ—अरे! इतने समय तक व्यर्थ ही परेशान हुआ, शक्ति लगाई फिर भी मैं छाया को पकड़ नहीं सका अब छाया मेरे पीछे-पीछे दौड़ रही है।

छाया की भांति ही माया को समझना चाहिए। माया के पीछे दौड़कर यदि कोई उसे पकड़ना चाहेगा, तो माया को पकड़ नहीं सकेगा अर्थात् तृष्णा (माया) दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती रहेगी। यदि कोई माया को पीठ देकर चलेगा, तो छाया की भांति ही माया भी उसके पीछे-पीछे दौड़ेगी।

पीठ दिखाते जो मनुज, माया को दिन रात।
माया पीछे दौड़ती, छाया सम साक्षात्॥

कष्ट-सहिष्णुता

भगवान् बुद्ध का शिष्य 'पूर्ण' बड़ा ही धैर्यवान् तथा क्षमाशील था। जब वह अनार्य क्षेत्र में धर्म प्रचार के लिए जाने लगा तो भगवान् बुद्ध ने उससे कहा—"शिष्यवर! अगर तुझे वहां कोई गाली देगा तो तू क्या करेगा?"

शिष्य—"गुरुदेव! मैं क्षमा रख सब सहन करूंगा।"

बुद्ध—"शिष्य! अगर तुझे हाथों से मारेगा तो?"

शिष्य—"पूज्यवर! मैं उसका उपकार मानूंगा कि उसने शस्त्रों से तो नहीं मारा है।"

बुद्ध—"पूर्ण! अगर कोई शस्त्रों से मारेगा तो क्या करेगा?"

शिष्य—"आर्यवर! मैं सब कष्टों को सहने में निर्भय हूं। मैं यही सोचूंगा उसने मुझे मृत्युदण्ड तो नहीं दिया।"

बुद्ध—"शिष्य! कोई तुझे मार डालेगा तो?"

शिष्य—"भगवन्! उस समय मैं यह चिंतन करूंगा कि यह शरीर तो मेरा है नहीं। मैं इस पर ममत्व क्यों करूं? एक दिन इसका नाश अवश्य होगा। इसे यदि कोई मारे तो भले ही मारे, मुझे किंचित् भी भय नहीं है। जो मेरी वस्तु नहीं है यदि वह एक दिन चली जाये, तो इसमें क्या आश्चर्य है? जो मेरी (आत्मा) है, वह अजर है, अमर है। उसे कोई छीन नहीं सकता, भेद नहीं सकता, तो फिर घबड़ाने की क्या बात है?"

शिष्य का पूर्ण उत्तर सुनते ही बुद्ध के मुंह से सहसा ही ये शब्द निकले—"ऐसे क्षमाशील व्यक्ति ही संसार का कल्याण कर सकेंगे।"

परोपकार के लिए संत जन अपने जीवन का बलिदान करने को भी सजग

रहते हैं। भयंकर दुत्कार और तिरस्कार से भी वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। ऐसे महापुरुषों के जीवन से कष्ट सहिष्णुता एवं क्षमाशीलता अवश्य ही सीखनी चाहिए।

> सीखो कष्ट सहिष्णुता, सन्तों से हर बार।
> क्षमाशील बन पूर्ण सम, करना है उद्धार॥

सुधार का केन्द्र

एक सेठ था। उसकी धर्मपत्नी स्वभाव से बड़ी कर्कशा एवं लड़ाकू थी। बात-बात पर सेठ के साथ झगड़ा करती थी। सारे दिन भर में कलह की चिनगारियां प्रज्वलित होती थीं। सेठ बहुत दुःखी था। भाग्ययोग से उसके घर एक लड़की पैदा हुई। जैसा स्वभाव माता का था वैसा ही स्वभाव उस लड़की का हो गया। 'घड़े जिसी ठीकरी, मां जिसी डीकरी' इस कहावत का उसने अक्षरशः पालन किया। लड़की बड़ी हुई। सारे शहर के आस-पास के गांवों के व्यक्ति इसके कर्कश स्वभाव से परिचित थे। सेठानी के स्वभाव को भी जानते थे, जिससे कोई भी इसके साथ संबंध करना नहीं चाहता था। सेठ बहुत चिंतित था कि कब इस लड़की के भार से मुक्ति मिलेगी?

एक दिन एक परदेशी वहां आया। कुछ धन का प्रलोभन पाकर उसने सेठ की लड़की से शादी करना स्वीकार कर लिया। सेठ ने उसी दिन अच्छा समय देखकर उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया। परदेशी को उसके कर्कश स्वभाव का कुछ पता लग गया। हजारों का दहेज ले बैलगाड़ी में बैठ दम्पति गांव की ओर चले। मार्ग बड़ा उबड़-खाबड़ होने से बर्तनों में खड़खड़ाहट होने लगी। उसने गाड़ी चलाने वाले से कहा—"यह खड़खड़ाहट मुझे पसन्द नहीं है। इसे बन्द करो।" उसने बर्तनों को अच्छी तरह जमाया, किन्तु मार्ग में अधिक गड्ढे होने के कारण खड़खड़ाहट फिर शुरू हो गई। परदेशी से रहा नहीं गया। लाठी से उन बर्तनों को फोड़ने लगा।

गाड़ी वाले ने कहा—"सेठ साहब! यह क्या कर रहे हैं?"

सेठ—"मुझे यह खड़खड़ाहट पसन्द नहीं है। ये तो मिट्टी के बर्तन हैं। यदि कोई मनुष्य भी मेरे सामने खड़खड़ाहट करता है तो चाहे वह नारी हो; चाहे पुत्र, उसका भी सिर फोड़ देना चाहिए, ऐसा मेरा अटल सिद्धान्त है।" बहू ने यह खेल देखा और मन ही मन सोचा—यहां तो चुपचाप रहना होगा। यदि मां की तरह यहां तीन-पांच करूंगी तो मरम्मत हुए बिना नहीं रहेगी। घर पहुंचते ही उसने

अपनी पत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—"देखो, मेरी आज्ञा बिना कोई काम मत करना। सुबह जल्दी उठना, घर सफाई आदि स्फूर्ति से करना। किसी से बोलना पड़े तो नीची दृष्टि रखते हुए मीठा बोलना।" इस प्रकार उसने घर की अन्य परम्पराओं से उसे अवगत करा दिया।

एक दिन बेटी से मिलने बाप आया। वहां की शान्ति देखकर सेठ के मन में आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बेटी ने पिता के लिए खिचड़ा बनाया। पिताजी को परोसा, उसने मन में सोचा—खिचड़े में घी डालूं या तेल। उसका पति खिड़की में बैठा था। स्त्री ने पति की ओर निहारा। पति ने बांई आंख का इशारा किया। वह धीरे से बोली—"बाप से भी बांई।" तब उसने दाहिनी आंख चलाई। घी परोसा गया। भोजन के पश्चात् सेठ ने जंवाई से पूछा—"बाप से बांई का क्या अर्थ है?" जंवाई ने कहा—"ससुर जी! मैंने आपकी लड़की को पहिले ही दिन ऐसी शिक्षा दे दी थी कि वह सुधर गई। मेरी आज्ञा के बिना वह कोई भी कार्य नहीं कर सकती।" आगे उसने सब विस्तार से बताया।

सेठ ने कहा—"जंवाइंजी! आप अपनी सास को सुधार दें तो मैं आपका उपकार नहीं भूलूंगा।"

जंवाई हंसा और घर में जा, तेल से पकी हुई संलिप्त (निगली हुई) हांडी जिसका एक किनारा टूटा हुआ था, लाया और बोला—"आपके नगर में कुम्हार बहुत हैं इसे ठीक करवा दें।"

सेठ बोला—"पकी हुई हांडी ठीक नहीं हो सकती।"

जवांई—"मेरी सास भी तो पकी हुई हांडी है तो फिर उसका सुधार कैसे हो सकता है? जिस तरह नरम डाली को जिधर चाहे मोड़ सकते हैं किन्तु सूखे हुए काठ को नहीं, उसी प्रकार बालक को जिस सांचे में ढालना चाहें ढाल सकते हैं पर वृद्ध को नहीं। अतः बाल्यावस्था ही सुधार का केन्द्र माना गया है।

खंडित घट नही संधता, पल जाने के बाद।
नहीं सुधार हो सके, बुड्ढों का अविवाद॥

जैसा दिया वैसा पाया

एक चालाक जाट ने पांच सेर के घड़े में साढ़े चार सेर गोबर के ऊपर आधा सेर ताजा घी फैलाकर एक गांव की ओर बेचने जा रहा था। रास्ते में उसे एक आदमी मिल गया। उसने पूछा—"तुम कहां जा रहे हो? तुम्हारी जाति क्या है?" उसने उत्तर दिया—"मैं राजपूत हूं। यह तलवार बेचने जा रहा हूं।" तलवार के ऊपर उसने चमकदार पत्ती चिपका रखी थी। जिससे वह तलवार बहुत चमक रही

घी। हाथ में सुन्दर लग रही थी। उसे देख जाट का मन ललचाया और कहा—"यह तलवार मैं खरीदूंगा। कितने रुपयों में दोगे? मेरे पास रुपए तो नहीं हैं, यह घी का घड़ा अवश्य है। तुम यह घड़ा ले लो और तलवार मुझे दे दो।" बस, बातों-बात में सौदा तय हो गया। वे अदला-बदली कर अपने घर की ओर रवाना हो गये। राजपूत ने सोचा—आज तो मेरी बहुत बड़ी जीत हुई है। काठ की तलवार देकर पांच सेर घी का घड़ा ले आया। जाट को उल्लू बना दिया। वह अपनी बुद्धि पर घमण्ड करने लगा।

उधर जाट ने सोचा—आज मेरी बहुत बड़ी विजय हुई है। मैंने राजपूत को ही ठग लिया। गोबर के बदले चमकीली तलवार ले ली। घर जाकर जब दोनों ने देखा तब दोनों की आंखें खुलीं और मन ही मन सोचने लगे—हाय! जैसा दिया वैसा पाया।

जो दूसरे को ठगते हैं वे स्वयं को ठगते हैं, जो दूसरों को मारते हैं वे स्वयं को मारते हैं। जो जैसा करेगा उसको वैसा ही फल भुगतना पड़ेगा। अतः हर एक व्यक्ति को सत्कार्य करने के लिए सजग रहना चाहिए।

जैसा को तैसा मिले, है यह सच्ची बात।
राजपूत और जाट का, सुनो सभी वृत्तान्त॥

सत्य-निष्ठ बनो

एक गरीब लकड़हारा था। लकड़ियां काटने वह प्रतिदिन जंगल जाता और लकड़ियों को बेच-बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता था। एक दिन वह नदी के तट पर पहुंचा। तीरस्थ सघन वृक्ष को काटने वह ऊपर चढ़ा। वृक्ष को काट ही रहा था कि अचानक कुल्हाड़ी हाथ से छूट गई। नदी के गहरे जल में गिर गई। वह नीचे उतरा। आक्रन्दन करने लगा—"हाय! जीवन-निर्वाह का साधन पानी में गिर गया। अब कैसे घर का भरण-पोषण होगा? कुल्हाड़ी के अभाव में मैं लकड़ियां नहीं काट सकता।" नदी देवी को नम्र शब्दों में प्रार्थना करता हुआ बोला "हे देवी! तुम्हारा उपकार नहीं भूलूंगा। मेरे जैसे गरीब पर दया करो। करुणा करो। हृदय का दुःख दूर करो। मुझे मेरी कुल्हाड़ी मिल जानी चाहिए।"

अन्तर् की पुकार कौन नहीं सुनता? हृदय की आर्द्र चीख से किसका दिल नहीं पिघलता? देवी झन-झनाहट करती हुई बोली—"यह लो तुम्हारी कुल्हाड़ी।" लकड़हारा बोला—"माता! तुम मुझे जो स्वर्ण की कुल्हाड़ी दे रही हो, यह मेरी नहीं है, मुझे तो मेरी ही चाहिए।"

दूसरी बार चांदी की कुल्हाड़ी लेकर बोली—"बेटा ! यह तो तेरी है ?"

लकड़हारा बोला—"माता ! यह भी मेरी नहीं है, मेरे जैसे हतभागी के पास चांदी की कुल्हाड़ी कहां रखी है। यह और किसी की होगी। मुझे तो मेरी ही मिलनी चाहिए।"

तीसरी बार उस लोहे की कुल्हाड़ी को हाथ में लेकर बोली—"बेटे ! यह तो तेरी है ?"

लकड़हारा—"हां माता ! यह मेरी है, मुझे मिल जानी चाहिए।"

उसकी सच्चाई पर देवी बहुत प्रसन्न हुई और बोली—"बेटे ! तेरी सत्य-निष्ठा का मेरे दिल पर बहुत प्रभाव पड़ा है, तेरी शुद्ध-नीति के आगे मैं अवनत हूं। कोटि-कोटि धन्यवाद के साथ ये तीनों कुल्हाड़ियां तुझे देती हूं। सुख से रहना।" यों कह देवी अन्तर्धान हो गई।

लकड़हारा तीनों कुल्हाड़ियों को लेकर घर पहुंचा और समग्र घटनाचक्र से अपनी पत्नी को अवगत किया। अब उसकी दरिद्रावस्था दूर हो गई। आलीशान भवन भी बनवा लिया। ठाठ से रहने लगा जीवन सुखी हो गया। एक दिन पड़ोसी महाजन ने उससे पूछा—"भाई ! तूने ऐसा कौन कारोबार किया था कि थोड़े ही समय में तू मालोमाल बन गया। मकान भी अच्छा बनवा लिया। ऐसा क्या प्रयोग ?"

लकड़हारा निश्छल था। वचन में मीठा था। पेट में पाप नहीं था। मुस्कराता हुआ बोला—"सेठ साहब ! मैंने तो कुछ भी धन्धा नहीं किया यह सब तकदीर से ऐसे ही मिल गया।"

सेठ बोला—"अरे ! ऐसे कैसे ? टाल-मटोल क्यों करता है ? सही-सही बात बता।"

उसने आदि से अन्त तक की कहानी सेठ साहब को सुना दी। सेठ ने मन में सोचा—मुझे भी इसके जैसा प्रयोग करना चाहिए। दूसरे दिन प्रातः वह कुल्हाड़ी लेकर उसी वृक्ष पर चढ़ा। कुल्हाड़ी को नदी में डाल नीचे उतरा, बोला—"हे नदी देवी ! मेरी कुल्हाड़ी मुझे मिल जानी चाहिए। इसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता।"

देवी प्रकट हुई। हाथ में कुल्हाड़ी लेकर उससे पूछा—क्या यही है तेरी कुल्हाड़ी ?

स्वर्ण की चमकती हुई कुल्हाड़ी को देख सेठ का मन ललचाया। और जोर से बोला—"हे देवी ! यही है मेरी कुल्हाड़ी। मुझे मिलनी चाहिए। मैं आपका उपकार नहीं भूलूंगा।"

देवी ने ललकारते हुए उससे कहा—"अरे बनिये ! तू उस लकड़हारे की बराबरी करने चला है। पर कहां वह सत्यवादी और 'कहां तू झूठबोला। मत

बाहर मेरे सामने। भविष्य में कभी भी यहां मत आना। अन्यथा मारे बिना नहीं छोडूंगी।" यों कह देवी अन्तर्धान हो गई।

सच्चाई में बहुत बड़ी ताकत होती है। सत्यवादी के सामने सारा संसार अवनत रहता है। सत्य-निष्ठ व्यक्ति अपना चतुर्मुखी विकास कर सकते हैं, अतः जीवन की हर दशा में सत्य को महत्त्व मिलना चाहिए।

> अमित शक्ति है सत्य में, सत्य बड़ा बलवान्।
> सत्यनिष्ठ को सर्वथा, मिलता है सम्मान॥

सरलता का प्रभाव

एक सेठ था। उसका स्वभाव बहुत ही सरल एवं नम्र था। व्यापार में व्यस्त होने के कारण सेठ रात को दस बजे घर आता था। सेठानी के कोई काम-काज नहीं था जिससे वह शहर में भटकती रहती थी। एक दिन सेठ ने उसे शिक्षा देते हुए कहा—"ऐसे बिना मतलब भटकना अच्छा नहीं है।" लेकिन उस उद्धत औरत पर क्या असर हो सकता था? एक दिन सेठ ने हिम्मत करके दरवाजे की सांकल लगा दी और स्वयं अन्दर सो गया।

अपने समय पर सेठानी आई, दरवाजे पर धक्का मारा, दरवाजा नहीं खुलने से वह जोर से बोली—"दरवाजा खोलो।" सेठ ने कहा—"दरवाजा, नहीं खुलेगा, ऐसे घूमना-फिरना अच्छा नहीं, लिखकर दो कि अब कभी घूमने-फिरने नहीं जाऊंगी। तभी दरवाजा खुलेगा।"

सेठानी तड़ककर बोली—"दरवाजा खोलो अन्यथा कुएं में गिरकर मरूंगी, लेकिन तुम्हें लिखकर तो नहीं दूंगी।" सेठ घबराया। सोचा, कहीं गिर न जाये। इतने में सेठानी ने एक बड़ा पत्थर उठाकर कुएं में पटका। उसके धमाके से सेठ को भरोसा हो गया कि वह तो कुएं में गिर गई। झट दरवाजा खोला और कुएं की ओर दौड़ा। सेठानी बड़ी चालाक थी। दीवार की आड़ में खड़ी थी। दरवाजा खुलते ही वह अन्दर घुस गई और दरवाजा बन्द कर लिया। सेठ दौड़ता हुआ वापस आया और जोर से बोला—"खोल दरवाजा।" सेठानी मान के नशे में चूर थी। वह बोली—"सारी रात घूमते हो और मुझे जागरण करवाते हो। शर्म नहीं आती। अब लिखकर दो कि इस तरह रात में नहीं फिरूंगा, तभी दरवाजा खुलेगा।" 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' अपराध स्वयं का है और दोष बताती है सेठ का। सेठ ने काफी नम्र भाव से कहा। पर वह कहां समझने वाली थी। आखिर सेठ हताश हो गया। दुःख भरी जिन्दगी से तो मर जाना अच्छा है। यों कह कर वह कुएं की तरफ बढ़ने लगा।

सेठानी का विचार सेठ को अपनी ओर आकर्षित करने का था। दरवाजा खोला और दौड़कर सेठ को कुएं की तरफ जाने से रोका। ज्यों-त्यों कर सेठ को घर में ले आई। 'रस्सी जल जाये तो भी उसकी ऐंठन नहीं जाती।' वह सेठ से कहने लगी "तुम्हें लिखकर देने में क्या नुकसान है? केवल इतना ही लिख दो कि रात्रि में नहीं घूमूंगा।"

सेठ बड़ा सरल था। घर का झगड़ा शांत करना था। इसलिए उसने लिखकर दे दिया। सेठ की इस सहिष्णुता एवं उदार वृत्ति का सेठानी पर बहुत ही असर पड़ा। उसने झट वह कागज फाड़ डाला और स्वयं को धिक्कारती हुई सेठ के चरणों में गिर पड़ी। अपनी भूल की माफी मांगती हुई बोली—"पतिदेव! आपका कोई दोष नहीं है। दोष सब मेरे हैं। अब मैं इधर-उधर नहीं भटकूंगी और आपकी सेवा-परिचर्या में हर समय तैयार रहूंगी।"

दूसरों को वश में करने के लिए सरलता एवं नम्रता रामबाण दवा है। इससे बड़ी से बड़ी बीमारी दूर हो सकती है। अतः हर एक के जीवन में सरलता एवं नम्रता आवश्यक है।

> वश में करने जगत को, दो हैं मार्ग सुरम्य।
> हृदय सरलता नम्रता, स्वीकृत करो अगम्य॥

सहजानन्द कब ?

एक सरोवर के किनारे पर एक भौंरा और कुछ ही दूर पर एक गुबरीला रहता था। दोनों में अच्छी मैत्री हो गई। भंवरा गुबरीला के पास जाता था। किन्तु गोबर की दुर्गन्ध उससे सहन नहीं होती थी। एक दिन मौका देखकर भौंरे ने गुबरीले से कहा—"मित्र! तेरा यह निवास स्थान मुझे अच्छा नहीं लगता। एक बार मेरा घर देख कितना स्वच्छ सुन्दर एवं मोहक बना हुआ है। रहने को जी करता है। एक बार तू चला जायेगा तो वहां से वापस लौटने का तेरा दिल नहीं करेगा।"

गुबरीले ने अपनी मुस्कराहट में कहा—"साथी! मैं तो यह मानता हूं कि दुनिया में गोबर के ढेर से बढ़कर कोई भी सुन्दर स्थान नहीं है। जो आनन्दानुभूति मुझे यहां पर हो रही है वैसी अन्यत्र कहां?" भौंरा जरा हंसता हुआ बोला—"मित्र! कल्पना के मोदकों से भूख नहीं मिटती। मेरे साथ चल। मेरे निवास स्थान पर कुछ आराम कर। तुझे स्वतः अनुभव हो जायेगा कि वास्तव में सुरम्य एवं सुखप्रद स्थान कौन सा है।"

भौंरे के अत्याग्रह से गुबरीला वहां जाने को तैयार हुआ, पर वह गोबर बिना

क्षणिक समय भी नहीं रह सकता था। इसलिए गोबर की एक गोली मुंह में दबा ली। भौंरे के घर पहुंचा। भौंरे ने तन-मन से अपूर्व स्वागत किया और उसे एक कमल पर बैठाया। कुछ देर बाद भौंरे ने गुबरीले से पूछा—"मित्र ! कैसा अनुभव हो रहा है।" पर गुबरीले की हालत अजीब हो गई। कमल की सुगन्ध के कारण उसे गोबर की दुर्गन्ध बराबर नहीं आ रही थी और गोबर की दुर्गन्ध के कारण कमल की सुगन्ध नहीं मिल रही थी। उसने सोचा—यहां कहां फंस गया? इससे तो मेरा स्थान बहुत ही सुन्दर था। वह बोला—"मित्र भौंरा ! अब मैं मेरे घर जा रहा हूं।" भौंरा बोला—"मित्र ! पहले उसे थूक दो जो कि तुमने मुंह में दबा रखा है।" गुबरीले ने गोबर की गोली थूक दी। भौंरे ने उसे सरोवर में कुल्ला-स्नान कराया और फिर कमल पर बैठाया।

अब गुबरीले को कमल की सुगन्ध आने लगी और उसे स्वर्गीय सुख का अनुभव होने लगा। कुछ समय के बाद भौंरा ने पूछा—"मित्र ! अब घर जाने की इच्छा है?" गुबरीला बोला—"दोस्त ! मैं मूर्ख थोड़ा ही हूं जो स्वर्ग को छोड़कर नरक में जाऊं। अब तो निरन्तर यहीं वास करना चाहता हूं।"

भौतिक सुख गोबर की गोली जैसा है। जब तक इसको दूर नहीं किया जायेगा तब तक कमल की सुगन्ध नहीं आयेगी। अर्थात् सहजानन्द की अनुभूति नहीं होगी। अतः सबसे पहले गोबर की गोली को दूर करो।

गोबर की गोली सदृश, भौतिक सुख पहचान।
आत्मिक सुख में रमणकर, करके अन्तर् ज्ञान॥

न्याय का पक्ष

राजमहल मे कुछ बन्दर पाले गये थे। राजसेवक उनकी परिचर्या में नियुक्त हुए। राजकुमार उन्हें अच्छे-अच्छे पकवान देते और उनके साथ क्रीड़ा करते। ऐसी सेवा एवं ऐसा भोजन देखकर सभी बन्दरों ने सोचा यहां से कभी भी अन्यत्र नहीं जाना है। बड़ी मौज है यहां पर।

राजभवन में घेंटों का एक टोला भी पाला गया। राजकुमार उन पर चढ़कर घूमने जाते और खूब आनन्द मनाते। उन घेंटों में एक घेंटा बड़ा दुष्ट था। वह राजा के रसोड़ों में घुस जाता। और जो देखता वही खाकर भाग जाता। रसोइये उसे पत्थर मारकर भगाते, पर वह अपनी आदत को कहां छोड़ने वाला था।

एक दिन बन्दर ने यह सब देखकर सोचा अब राजमहल में रहना अच्छा नहीं है क्योंकि राजा का रसोइया क्रोधी है और घेंटा हठीला है। सम्भव है वह रसोइया इसे जलती लकड़ी से मारे और जलता हुआ घेंटा पास वाली अश्वशाला

में घुस आये। वहां घास में आग लगेगी और घोड़े जलेंगे। घोड़ों के उपचार में बन्दर की चर्बी बहुत लाभप्रद बताई जायेगी।

वृद्ध बन्दर ने अपने साथियों की सभा में हृदयस्थ विचार रखते हुए कहा—"अब यहां रहना अच्छा नहीं है। वन में चलो। वहां फल-फूल खायेंगे और आनन्द से रहेंगे।"

एक युवक बन्दर हंसता हुआ बोला—"यह तो अजीब बात है। घेंटा और रसोइये की लड़ाई में हमारा क्या नुकसान?" एक दूसरे बन्दर ने कहा—"अगर इनकी लड़ाई से ही अपने पर कोई संकट उत्पन्न होता तो कब का ही हो सकता था।" तीसरे ने कहा—"जो सुखानुभूति यहां हो रही है, वह वन में कहां। अतः जान-बूझकर दुःख में पड़ना बहुत बड़ी मूर्खता है।" वृद्ध बन्दर ने कहा—"आप लोग कुछ गम्भीरता से चिंतन करें। मैंने गहराई से इस विषय में सोचा है मानना हो तो मानिये।"

एक बन्दर ने कहा—'यह विषय बड़ा गम्भीर है। अतः एक के कथन पर चलना अच्छा नहीं है। सब बन्दरों के मत (वोट) लेने चाहिए।"

आखिर सब बन्दरों के मत लिए। सबने वृद्ध बन्दर की बात को हवा की तरह उड़ा दिया। किसी ने भी उसका समर्थन नहीं किया। सबने एकमत से यह प्रस्ताव पास किया कि हम राजमहल को छोड़कर कहीं भी नहीं जायेंगे। वहीं आनन्द से रहेंगे।

अपने भाइयों का यह निर्णय देखकर बूढ़े बन्दर के दिल में बहुत दुःख हुआ। किसी ने भी उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। आखिर वह अकेला ही राजमहल को छोड़कर वन में चला गया। कुछ ही दिनों के बाद वही हुआ जो वृद्ध बन्दर ने कहा था। राजा ने पशु-चिकित्सकों को बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा—"राजन्! बन्दरों की ताजी चर्बी लगायी जाय तो ये घोड़े ठीक हो सकते हैं। राजा के आदेशानुसार सब बन्दरों को मारने के लिए इकट्ठा किया गया। बन्दर घबड़ाये। मन ही मन सोचने लगे—"हाय! वृद्ध बन्दर की बात मान लेते तो आज बिना मौत क्यों मरना पड़ता, किन्तु अब क्या···?" सभी बन्दरों को बिना मौत मरना पड़ा। उनकी ताजी चर्बी का उपयोग औषधि के रूप में किया गया जिससे झुलसे हुए घोड़े स्वस्थ हो गये।

बहुमत का पक्ष हमेशा सत्य नहीं होता और अल्प मत भी हमेशा गलती पर नहीं होता। जो बात न्याय की होती है, वह सच्ची होती है। अतः हर एक व्यक्ति को न्याय के पक्ष में रहना चाहिए।

सदा न्याय के पक्ष में, रहना है मतिमान।
पक्षपात के मोह से, होता है नुकसान॥

मोह का पर्दा

एक बाबाजी थे। उनके पास पारसमणि थी। नगर सेठ को पता लगा कि बाबा के पास अमूल्य पारसमणि है। अपना सारा धन्धा छोड़कर सेठ बाबा के पास गया और उनकी सेवा-परिचर्या में रहने लगा। बाबा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह हर प्रकार से भक्ति करता था। सेवा-चाकरी करते-करते बारह वर्ष बीत गये। बाबाजी प्रसन्न हुए और बोले—"सेठ! तुम्हारी भक्ति-परिचर्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं मैं तुझे वर देता हूं। मांगना है सो मांगो, देने को तैयार हूं।" सेठ बोला—योगीराज! मुझे तो और कुछ नहीं चाहिए। कृपया पारस मणि दे दीजिए।" बाबाजी ने कहा—"भक्त! मैं तुम्हारी भावना पूरी करूंगा। पारसमणि उस झोली में लोहे की डिब्बी में पड़ी है, उस झोली को यहां लाओ।"

सेठ ने सोचा—यह क्या बात? पारसमणि के संस्पर्श से लोहा सोना बन जाता है और इधर बाबाजी कह रहे हैं कि लोहे की डिब्बी में पारसमणि पड़ी है। सेठ के मन में संशय उत्पन्न हुआ कि पारसमणि है या नहीं अथवा बाबा मुझे दूसरी चीज देकर टाल न दे। बारह वर्ष तक की हुई सेवा-जाप निष्फल न हो। आखिर सेठ उठा। झोली लाया और बाबा को दे दी।

बाबा ने झोली में से डिब्बी निकाली। डिब्बी में कपड़ा था। कपड़े में कोई चीज थी। सेठ हताश हो गया। बाबा के चक्रजाल में न फंसता तो क्यों मेरे जीवन के बारह वर्ष व्यर्थ ही में नष्ट होते। पर अब क्या? बाबाजी ने कपड़े की पोटली खोली तो चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। कपड़ा हटाकर मणि को ज्योंही उस लोहे की डिब्बी में रखा त्योंही वह लोहा सोना हो गया। यह दृश्य देखकर सेठ बहुत खुश हुआ। गुलाब के फूल की भांति आकृति खिल उठी। निराशा आशा में परिणत हो गई। सेठ को विश्वास हो गया कि वास्तव में यह पारसमणि है।

बाबाजी ने कहा—"भक्त! यह लो पारसमणि, इसे संभाल कर रखना। ऐसी बहुमूल्य वस्तु बार-बार हाथ में नहीं आती।" सेठ की इच्छा पूरी हो गई। पारसमणि लेकर सेठ अपने घर की ओर······

लोहे और पारसमणि के बीच कपड़े का व्यवधान था। इसलिए लोहे का सोना नहीं होता था। उसी प्रकार जब तक मोह का कपड़ा दूर नहीं होगा तब तक आत्मज्ञान नहीं होगा। अतः आत्म-साक्षात्कार करना हो तो सबसे पहले मोह का पर्दा दूर करो जिससे सहजानन्द की प्राप्ति हो सके।

जब तक पर्दा मोह का, तब तक नहिं स्वज्ञान।
अब पर्दे का शीघ्र ही, करना पर्यवसान॥

सत्यवादी का अचूक प्रभाव

सेठ शांतिलाल बड़े सत्यवादी थे। उनकी नस-नस में सत्य समाया हुआ था। सत्य के प्रति अडिग निष्ठा थी। झूठ को गरल के समान समझते थे। सत्य के प्रभाव से व्यापार भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। चन्द ही दिनों में सेठ शांतिलाल करोड़पति बन गये। जहाजों को माल-टाल से भरकर सेठ साहब अपने देश की ओर रवाना हुए। साथ में अनेक संरक्षक भी थे। जहाज द्रुत गति से चल रहे थे। अचानक डाकुओं का गिरोह आ पहुंचा। सशस्त्र धावा बोल कर सेठ को लूटने लगे। डाकुओं के मुखिया शेरसिंह ने कहा—"सेठ साहब! अब आपके पास और क्या है?"

सेठ ने कहा—"बस, अब मेरे पास कुछ नहीं है जो था वह तुमने ले लिया। वर्षों की कमाई चन्द ही पलकों में चली जायेगी, ऐसा मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।"

लुटेरे सब माल लेकर जाने की तैयारी करने लगे कि सेठ की नजर अपनी अंगुली में पहनी हुई अंगूठी पर पड़ी उसकी कीमत कम से कम ५०००० थी। सेठ के हृदय में वेदना की लहरें दौड़ने लगीं। आकृति पर उदासी की रेखा अंकित हो गई। मन ही मन सेठजी सोचने लगे—हाय! गजब हो गया। आज अनजान में झूठ बोल दिया कि मेरे पास कुछ नहीं है। सेठ ने शेरसिंह को पुकारते हुए कहा—"भैया! तनिक ठहर जाओ। मेरी भूल हो गई। घबराहट में मुझे कुछ भी ध्यान नहीं रहा। मैं झूठ बोल गया कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, किन्तु मेरे पास अंगूठी है इसे भी लेते जाओ।"

शेरसिंह अंगूठी को हाथ में लेकर चारों तरफ से घुमा-फिराकर उसे देखने लगा। धीरे-धीरे उसकी विचारधारा में भी परिवर्तन आने लगा। मन ही मन चिन्तन चला—कहां यह सत्यवादी सेठ? कहां हम जैसे पापी लुटेरे? कहां इनका आदर्श और कहां हमारा धूर्त्तत्व? अपना सब कुछ चले जाने पर भी सेठ ने अपने सत्य को नहीं छोड़ा और हम अपनी उदर पूर्ति के लिए मनुष्यता को भी छोड़ देते हैं। पराए धन को लूटने के लिए सजग रहते हैं, डाका डालते हैं। निर्मम हत्याएं करने के लिए नृशंस बन जाते हैं। हिंसक पशुओं की भांति हिंसक हो जाते हैं। धिक्कार है इस क्रूर जीवन को।

शेरसिंह कुछ देर तक सोचता रहा। आखिर सेठ के चरणों में मस्तक झुकाता हुआ वह अपने साथियों से बोला—"सेठ का धन वापस लौटा दो। इस सत्यवादी के धन को हम नहीं पचा सकते। इससे हमारा कभी भी भला नहीं हो सकता।"

शेरसिंह का उद्घोष सुनते ही डाकू हताश हो गये। सेठ का समग्र वैभव लौटा

दिया और साथ-साथ अपने निन्द्य एवं घृणित कृत्यों का प्रायश्चित करते हुए बोले—"सेठ साहब ! अब हम भविष्य में ऐसा निम्न कार्य कभी भी नहीं करेंगे और आत्म-साक्षी से यह प्रतिज्ञा करते हैं कि कभी भी डाका नहीं डालेंगे।"

सेठ ने चोरी न करने के लिए उनको कोई भी उपदेश नहीं दिया था। फिर भी सब नियम-बद्ध हो गये। यह था सत्य-आचरण का अचूक प्रभाव। क्योंकि कहने का असर पड़े या न पड़े, किंतु आचरण का असर तो अवश्य ही पड़ता है, अतः कहने की अपेक्षा आचरणों को सुधारो।

आचरणों का अन्य पर, पड़ता असर विशाल।
सत्य-वचन से सेठजी, रह गये मालो-माल ॥

विश्वास का फल

चम्पा नगर में दो मित्र रहते थे। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता था।

एक बार दोनों चम्पानगर के बाहर वनभ्रमण को निकले। उस समय वर्षा ऋतु थी। आकाश पर काले-काले मेघ आच्छादित थे और धरातल पर था वन हरियाली का समारोह। ऐसे वातावरण में मन स्वतः ही उल्लसित हो उठता है। अतः वे दोनों भी मन के उसी आनन्द से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की ओर एवं झाड़ी से दूसरी झाड़ी की ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते अचानक उन्होंने धरती पर पड़े मयूर के दो अण्डे देखे। उनके पैरों की आहट पाकर मयूरी तत्काल वहां से उड़कर समीप के एक वृक्ष पर जा बैठी और वहीं से उन्हें टुकुर-टुकुर निहारने लगी।

मयूर के वे दोनों अण्डे उन्हें इतने अच्छे लगे कि एक बोल उठा, 'अहा ! कितने सुन्दर हैं, दोनों अण्डे। इन्हें हम घर ले चलें और मुर्गी के अण्डों में रख दें। फिर इनमें से दो बच्चे निकलेंगे। नाच सिखाने पर वे खूब सुन्दर नाच करेंगे। कितना आनन्द आएगा तब।'

दूसरा मित्र बोला, 'तब चलो, दोनों अण्डे उठा लें।'

आखिर, उन्होंने वही किया, जो कहा था। बेचारी मयूरी डाल पर बैठी-बैठी करुण नेत्रों से उन दोनों को निहारती रही। शायद उसकी आंखों से अश्रु-जल की दो बूंदें भी ढुलक पड़ी थीं।…पर, क्या कर सकती थी वह। उन्हें रोकने की सामर्थ्य उसमें कहां थी।

दोनों मित्र एक-एक अण्डा अपने घर ले गए और उन्हें मुर्गी के अण्डों के मध्य रख दिया।

कुछ दिन इसी प्रकार बीते। एक मित्र ने सोचा—जरा देखूं तो सही, अण्डा सही-सलामत है या नहीं। अतः उसने अंडे के समीप आकर उसे हाथ में उठाया, कान के समीप ले जाकर बजाया, ठोंककर देखा। सोचा—नहीं, अभी अंडा नहीं पका है, अतः पुनः उसे वहीं रख दिया।

दो दिन भी नहीं हुए कि वह फिर उसे देखने पहुंचा, कान के पास ले जाकर बजाया, ठोंका, आभास हुआ—अभी भी अंडा पका नहीं है। उसके मन में कुछ संदेह हुआ। अब वह रोज आने लगा और रोज ही उसे ठोंक बजाकर देखने लगा, किन्तु अण्डा पकता ही नही था। पकना तो दूर, इस प्रकार नित्य ठोंकने बजाने से वह नष्ट हो गया।

दूसरा वाला मित्र भी नित्य अपने वाला अंडा देखने जाता। किन्तु उसे हाथ से स्पर्श नहीं करता। सिर्फ दूर से अवलोकन करता। उसे पूरा विश्वास था कि अण्डा एक दिन अवश्य पकेगा और उसमें से बच्चा निकलेगा। हुआ भी वही।

जैसे ही वह बच्चा बड़ा हुआ, उसे नृत्य सिखाने के लिए एक शिक्षक नियुक्त कर दिया। वह दोनों वक्त उसे नाच सिखाता।

जब वह मयूर शावक खूब अच्छा नाचने लगा, तो उसने अपने बन्धु-बान्धव, परिजन आत्मीयों को उसका नाच देखने बुलवाया। सभी ने मयूर शावक के साथ-साथ उसकी खूब प्रशंसा की। अपनी प्रशंसा को सुनकर उसका मन भी मयूर की भांति ही नाच उठा। तभी उसकी दृष्टि अपने मित्र पर पड़ी। देखा—उसकी दोनों आंखें अश्रुपूरित थीं।

वह उठकर उसके पास गया। उसकी पीठ को सहलाते हुए सांत्वनापूर्ण शब्दों में बोला—भाई, तुम्हारी त्रुटि के फलस्वरूप ही तो अण्डा नष्ट हो गया। किन्तु दुःख मानने से क्या होगा? तुम्हें विश्वास ही तो नहीं था कि अण्डा पकेगा और उसमें से बच्चा निकलेगा, तभी तो तुम बार-बार उसे बजाते, ठोकते रहे। परिणामतः अण्डा नष्ट हो गया।'

श्रमण भगवान् महावीर ने अपने छोटे-बड़े शिष्यों को यह कहानी सुनाकर कहा—'आयुष्मन्, साधना का पथ दीर्घ होता है। इस पथ पर चलते हुए यदि कोई विश्वास खोकर शंकाकुल हो उठे और सोचने लगे कि सिद्धि प्राप्त होगी या नहीं, तो वह साधना-पथ से भ्रष्ट हो जायेगा और उसी प्रथम मित्र की भांति प्रायश्चित्त करेगा। इसके विपरीत जो धैर्य और निष्ठा से अपने पथ पर अग्रसर होता रहेगा, वह अवश्य सिद्धि प्राप्त कर दूसरे मित्र की भांति मनोकामना-पूर्ति के उल्लास से आनन्दित होगा।

अपने को देखो

एक आचार्य ग्रामोनुग्राम विहरण करते हुए नगर में पधारे व उद्यान में ठहरे। शिष्य-मण्डली साथ थी। उन सब शिष्यों में एक छोटा शिष्य बड़ा चंचल था। उद्यान के एक तरफ कुम्भकार घड़ा बना-बना कर बर्तनों को सुखा रहा था। वह छोटा चेला जब बाहर जाता तो उससे रहा नहीं जाता। उस बालक मुनि ने निशाना ताक कर एक कंकड़ घड़ों पर मारा, घड़े फूट गये। कुम्हार को गुस्सा आया, ललकारते हुए कुत्सित भाषा में जोर से बोला—महाराज ! घड़ों को क्यों फोड़ रहे हैं ? शिष्य धीरे से बोला—'मिच्छामि दुक्कड़ं'।

कुम्हार ने आई-गई कर दी। ध्यान नहीं दिया। कुछ ही समय के पश्चात् वे बालक मुनि क्रीड़ा करते हुए बाहर आए। कंकड़ फेंका। बर्तन खण्डित होने लगे। कुम्हार ने सोचा—ये फिर आ गये। वह उठा और जोर-शोर से बोलने लगा—महाराज ! अभी तो आपको मैंने मनाही की थी, बर्तनों का नुकसान क्यों कर रहे हो ? शिष्य बोला—'मिच्छामि दुक्कड़ं'। इस प्रकार कंकड़ फेंकता गया और 'मिच्छामि दुक्कड़ं' लेता गया। आखिर कुम्हार से रहा नहीं गया। वह क्रोधारुण होकर उठा। मुनि का कान पकड़ कर पीटने लगा। मुनि चिल्लाने लगे—अरे, मूर्ख ! क्या कर रहा है ? साधु को पीटता है। कुम्हार बोला—'मिच्छामि दुक्कड़ं'। बालक मुनि बोले—अरे ! कुम्हार तेरी बड़ी विचित्र लीला है। मेरा कान तो खींचता रहता है और 'मिच्छामि दुक्कड़ं' बोलता रहता है। इस 'मिच्छामि दुक्कड़ं' में क्या पड़ा है ? बेकार बोलता रहता है।

कुम्हार धीरे से बोला—महाराज ! दूसरों को देखना सरल है, अपना निरीक्षण करना कठिन है। जैसे आप बर्तन फोड़ते गये और 'मिच्छामि दुक्कड़ं' बोलते गये, आपने जैसा व्यवहार किया वैसा ही मैंने किया। जैसा तुम्हारा 'मिच्छामि दुक्कड़ं' वैसा मेरा 'मिच्छामि दुक्कड़ं' है। बालक मुनि ने सोचा—कुम्हार के सामने मेरा तर्क निस्तेज है। यहां मेरी दाल नहीं गलेगी। निराश होकर अपने उपाश्रय की राह पकड़ी।

अविनय करते रहना, पाप करते रहना, धोखा देते रहना और 'मिच्छामि दुक्कड़ं' बोलते रहना, इस कुम्हार वाले 'मिच्छामि दुक्कड़ं' से तनिक भी लाभ होने वाला नहीं है। पाप के प्रति ग्लानि उत्पन्न होनी चाहिए। अपनी त्रुटि का भान होना चाहिए। अपनी गलती पर पश्चाताप होना ही 'मिच्छामि दुक्कड़ं' की सार्थकता है।

केवल 'मिच्छामि दुक्कड़ं' से, नहीं तनिक भी लाभ।
रखो घृणा निज पाप प्रति, जिससे जीवन आभ ॥

राग कर्म बन्धन का हेतु है

भगवान् ऋषभ देव के युग में संत बहुत ही ऋजु-जड़ थे। उनके मन में कुटिलता का लवलेश भी नहीं होता था। यथार्थ कहने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं था। एकदा शिष्य बाहर शौच के लिए गया। देरी से आया, गुरु ने पूछा—शिष्य! आज इतनी देर से क्यों आया? शिष्य बोला—गुरुदेव! मार्ग में एक बहुत ही सुन्दर नृत्य हो रहा था, मेरा मन चंचल हो उठा, मैं देखने लग गया अतः विलम्ब हो गया।

गुरु ने अपने शिष्य को कोमल शब्दों में प्रशिक्षण देते हुए कहा—शिष्य! हम श्रमण हैं, हमारा पद बहुत ऊंचा है। श्रमणों को नट-नृत्य देखना नहीं कल्पता है।

शिष्य ने हाथ जोड़कर "तहत्त" कहकर गुरुदेव के आदेश को स्वीकार किया और वह विनयपूर्वक बोला—भविष्य में ध्यान रखूंगा, गलती नहीं होगी।

कुछ दिनों बाद एक दिन वही शिष्य किसी कार्यवश बाहर गया। देरी से आया। गुरुजी ने पूछ लिया—शिष्य! आज फिर देरी से कैसे आया? शिष्य बोला—गुरुदेव! मैं तो आ रहा था। मार्ग में एक नर्तकी का नृत्य बहुत ही आकर्षक व मनोरंजक हो रहा था उसे देखने लग गया।

गुरु ने उपालम्भ की भाषा में कहा—मैंने पहिले निषेध किया था, नाटक नहीं देखना है। आदेश का ध्यान नहीं रखता है।

शिष्य—आचार्य देव! आपने नट का नृत्य देखने के लिए निषेध किया था किन्तु नर्तकी के नृत्य का निषेध नहीं किया था। अतः मैंने तो नर्तकी का नृत्य…।

शिष्य की सरलता व जड़ता पर गुरु अवाक् रह गये और बोले—चाहे नाटक नट का हो या नटनी का, किसी का भी नहीं देखना है। नृत्य के अवलोकन से मन में रागोत्पत्ति होती है। राग कर्म बन्धन का हेतु है।

शिष्य ने विनम्रता से मधुर वाणी द्वारा निवेदन करते हुए कहा—महाराज! प्रमादवश मेरी गलती हो गई। भविष्य में पूरा ध्यान रखूंगा।

बात शिष्य की श्रवण कर, हुए दंग गुरुराज।
'मुनि कन्हैया' तरस है, सरल बुद्धि पर आज॥

हिम्मत निष्पत्ति

एक छोटा-सा गांव। भोलू नाम का ब्राह्मण। बात बनाने में दक्ष। आस-पास के गांवों में तेल-गुड़, घी-आटा बेच-बेच कर किसी तरह उदर-पोषण करता। बीहड़ मार्ग में डाकुओं का भय, हरदम अपने पास तलवार रखता था। भोलू की धर्मपत्नी घर-घर जाकर अपने प्राण प्रिय पति की प्रशंसा करती कि वे बड़े जीवट वाले साहसी, वीर हैं।

हर दृष्टि से योग्य हैं। चारों तरफ भोलू मशहूर हो गया। एक दिन तेल आदि बेचकर थका-मांदा वह घर पहुंचा। थकावट अधिक थी। लेट गया और लेटते ही गहरी नींद आ गई, पर मुंह पर मक्खियां भिन-भिनाने लगीं। वह क्रोध में लाल-पीला हो गया और कपड़ा डालकर एक साथ तीस मक्खियों के प्राण ले लिये। ब्राह्मणी को पता चला तो उसने सर्वत्र प्रसारित कर दिया कि 'पंडितजी' ने एक ही बार में तीस वीरों को हताहत कर दिया। भोलू की सर्वत्र पूछ होने लगी। 'तीस मार खां' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। राजभवन तक खबर पहुंची। राजा प्रसन्न हुए व भोलू को आमन्त्रित किया गया। वीरता का चक्र प्रदान करते हुए राजा ने घोषणा की—तेरे जैसे साहसिक उद्भट वीर पर मुझे बड़ा नाज है। अतः मैं तुझे लड़ाई के मैदान में सेनापति के पद पर नियुक्त कर भेजता हूं। भोलू घबड़ा गया, रात भर नींद नहीं आई, किन्तु प्रातः सेना के साथ भोलू चल पड़ा। भय से आकुल-व्याकुल था, मार्ग में वृक्ष पर जा चढ़ा। डाली टूटी। कंधे पर डाली रखकर आगे बढ़ा। अधीनस्थ सैनिकों ने भी भोलू सेनापति की भांति वृक्षों की डालियां उखाड़-उखाड़ कर कंधों पर रख लीं। बड़े जोर-शोर से सैनिक और सेनापति समरांगण में पहुंचे। शत्रु की सेना ने सबके कंधों पर बड़ी-बड़ी डालियां देखकर गम्भीर चिन्तन किया। ये लोग तो बड़े वीर, बलशाली हैं। खूब बलिष्ठ, बलवान हैं। बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकते हैं। हमको तो चुटकी में मसल देंगे। अब यहां हमें रहना उचित नहीं। सभी सैनिक उल्टे पांव भाग चले।

भोलू जीत का डंका बजाते अपने गांव पहुंचा, सर्वत्र उत्साहपूर्ण स्वागत हुआ। राजाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। अनेक पुरस्कार प्रदान किये गये। आस-पास के सभी गांवों में भोलू की विजय-दुंदुभि बजने लगी, चारों ओर महिमा प्रसारित हुई। उसी दिन से भोलू 'तीस मार खां' की सभी प्रशंसा करने लगे।

जो हिम्मती होते हैं वे किसी न किसी रूप में अपना काम बना ही लेते हैं। हिम्मत उद्यम के साथ भाग्य की भी परम अपेक्षा रहती है।

'तीस मार खां' नाम से, भोलू हुआ प्रसिद्ध।
'मुनि कन्हैया' भाग्य से, पाया अनुपम सिद्ध॥

हर स्थिति में सम रहो

एक अद्भुत योगी था। उसके वचन में सिद्धि थी। एकदा तीन मित्र उसके पास पहुंचे। साष्टांग दंडवत करते हुए तीनों ने योगी से वरदान मांगा। एक ने कहा—नदी को दूधमय बना दो। दूसरे ने कहा—योगीराज ! मुझे बैरिस्टर बना दो। तीसरे ने कहा—मेरा विवाह राजकन्या से करवा दीजिए।

योगी बड़ा परोपकारी था। उसने तीसरे मित्र से कहा—भैया ! राजकुमारी प्रश्न पूछेगी उसका उत्तर इस प्रकार होशियारी से देना। योगी उसे लेकर राज-भवन में पहुंचा। बातचीत हुई। कन्या आई और बोली—मेरा पति वही बनेगा जो मेरे प्रश्न का उत्तर देगा।

प्रश्न—'क्या नहीं तिरिया कर सके, सिंधु क्या न समाय।
आग न किसको खा सके, किसको काल न खाय।।'

उस लड़के ने बड़ी तरकीब से उत्तर देते हुए कहा—

'त्रिया सुत नहीं कर सके, जस जल निधि न समाय।
शील न आग जला सके, नाम काल न खाय।।'

प्रश्न का उत्तर मिलते लड़की ने वरमाला पहिना दी। राजा ने अपनी दुलारी पुत्री का विवाह बड़े ठाठ से किया। योगी ने तीनों मित्रों की इच्छा को पूर्ण कर दी शिक्षायें देते हुए कहा—बन्धुओं (१) सम्पत्ति में फूलना मत (२) धर्म को भूलना मत। योगी अदृश्य हो गया।

कुछ ही दिनों पश्चात् योगी याचक के रूप में परीक्षार्थ आ पहुंचा। सबसे पहले उस दूध वाले के पास गया और बोला—पाव दूध दीजिये। उसने पैसे मांगे। योगी के आश्चर्य का पार नहीं रहा। सोचा यह सम्पत्ति के नशे में चूर है। धर्म-कर्म सब भूल गया। उसने सारा दूध बन्द कर दिया।

योगी बैरिस्टर के पास पहुंचा और बोला—साहब ! मैं केस के मामले में फंस गया, मुझे बचाइये। वह बोला पैसे बिना मैं किसी का भी केस नहीं लेता। यह सुनते ही योगी ने उसकी भी सारी जायदाद व आय खत्म कर दी। अब वह तीसरे के पास गया और सर्दी से ठिठुरता-कांपता हुआ बोला—मुझे कपड़ा दीजिए। रहने के लिए मकान दीजिए। उसने योगी को सब कुछ दिया। सम्मान भी दिया। योगी बहुत प्रसन्न हुआ। बोला—इच्छित वर मांगो, तैयार हूं देने के लिए। योगी के प्रसाद से सातवें दिन उसे राज्य मिल गया। योगी अदृश्य होते-होते जोर से बोल पड़ा—जो व्यक्ति सम्पत्ति में फूलता है और धर्म को भूलता है उस व्यक्ति का पतन-ह्रास अवश्यंभावी है। जो हर एक स्थिति में सम

रहता है, परोपकार की भावना रखता है, वह अपनी उन्नति में सफल होता है।

सम्पत्ति और विपत्ति जीवन के दो अंग हैं। महापुरुष वही होते हैं जो दोनों में समभाव रखते हैं। सम्पत्ति का अहं आते ही दोनों मित्रों की भांति ह्रास होने में तनिक भी विलम्ब नहीं है।

फूलो मत सम्पत्ति में, भूलो मत जिन धर्म।
दोनों मित्रों का सुनो, सही-सही सब मर्म॥

एक से अनेक

रमेश बहुत वर्षों के पश्चात् अपने गांव आया। समस्त क्रियाओं से निवृत्त होकर, अपने अनन्य मित्र सुरेश के यहां पहुंचा। सालों बाद पारस्परिक मिलन से दोनों के हृदय खिल उठे। वार्तालाप प्रारम्भ हुआ कि सुरेश के मुंह से दुर्गन्ध आने लगी। तब रमेश से रहा नहीं गया, जोर से बोला—मित्र! तुम आखिर शराब कब से पीने लग गये। इस पर सुरेश बोला—मैं कोई रोजाना शराब नहीं पीता हूं। जब मांस-भक्षण करता हूं, सारी इन्द्रियां प्रबल हो जाती हैं, मानसिक उद्वेग बढ़ जाता है, तब विवश होकर मुझे मद्य का प्रयोग करना पड़ता है।

रमेश—धिक्कार! क्या मांसाहारी भी बन गये?

सुरेश—अरे! चौंक क्यों रहे हो? मैं प्रतिदिन मांस का प्रयोग नहीं करता हूं। जब वेश्या के पास जाता हूं तब मांस-भक्षण की इच्छा हो जाती है।

रमेश—(साश्चर्य) क्या तू वेश्यागामी भी है?

सुरेश—वेश्या के यहां जाना, ऐसा मेरा व्यसन नहीं है, जब कभी जुए में एकाएक धन आ जाता है तो वेश्या के यहां जाने की इच्छा होती है।

रमेश—हाय! हाय!! जुआ भी खेलते हो! लानत है तेरे जीवन पर। सारी बुराइयों का तू सरताज बन गया। याद रख, इससे तेरी जिन्दगी कभी भी शांत नहीं रहेगी। हर जगह पतन-अधोगति-दुर्गति।

क्या यही हमारा जीवन-लक्ष्य है? स्मरण रहे, व्यसन-मुक्त मानव ही स्व-पर-निर्माण में सफल हो सकता है।

एक के पीछे अनेक बुराइयां अपने आप आती हैं। बुराइयां तो अक्षम्य होती हैं, लेकिन उससे भी बुरे होते हैं संस्कार और ये बुरे संस्कार ही नई-नई बुराइयों को जन्म देते रहते हैं। अतः हर व्यक्ति को अपने संस्कार हर प्रकार से पवित्र रखना चाहिए। प्रत्येक बुराई पर निरन्तर अंकुश रखना, उनसे सदैव बचते रहने में ही मानव-जीवन की वास्तविक सफलता है, यथार्थ कल्याण है।

एक व्यसन के योग से, पनपे व्यसन अनेक।
सहसा हुआ सुरेश का, सारा भ्रष्ट विवेक॥

झूठा अहं

राजा भोज अपने प्रासाद में सोये हुए थे। पहरेदार चारों तरफ पहरा दे रहे थे। फिर भी चोर बड़े होशियार होते हैं। पहरेदार निद्रालीन थे। अचानक एक चोर आता है। सैंध लगाकर राजभवन में घुस जाता है। हीरे, पन्ने, माणक, मोती आदि विभिन्न प्रकार की धनराशि को चुरा कर ले जाने की तैयारी करने लगता है। इतने में उसके हृदय में वैराग्य भावना की लहर दौड़ी। विरक्ति का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। मन ही मन सोचने लगा—मनुष्य पूर्व जन्म के पापों से कोई अंग-हीन बन जाता है। कोई कोढ़ी, अंधे, लंगड़े तथा दरिद्री बन जाते हैं। उसी अवसर पर राजा की निद्रा भंग हो गई और अपनी सुकोमल शैया पर बैठा-बैठा निहार रहा है, चिन्तन कर रहा है—मेरे जैसा सम्पत्तिशाली इस धरा पर कोई नहीं है। रथ, घोड़े, हाथी आदि सम्पदा का कोई पार नहीं है। अहं भरी भाषा में अपनी सम्पन्नता का उल्लेख करते हुए बोल पड़ा—

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्याः
वल्गन्ति दन्ति निवहास्तरला स्तुरङ्गा

मेरे मित्रगण मेरे अनुकूल हैं तथा मनोहरा मेरी युवती रानियां हैं। सुयोग्य बांधव हैं तथा मधुरभाषी दास-दासियां हैं, मदोन्मत्त हाथी हैं और चंचल घोड़े हैं।

उक्त तीन चरण राजा ने कहे तथा चौथा चरण बनाने का प्रयास होते हुए भी राजा से बन नहीं पा रहा था। तब उस चोर ने श्लोक का चौथा चरण बोलते हुए कहा—

"सम्मीलने नयनयो र्न हि किञ्चिदस्ति"।

नेत्रों के बन्द होने पर कुछ भी नहीं।

यह चरण सुनते ही राजा उद्‌बोधित हुआ। साश्चर्य उसने पूछा—भैया! तुम कौन हो? वह बोला—देव! मैं चोरी करने के लिये आया था। किन्तु चोरी करना तो मैं भूल गया और आपके मुख से निःसृत पद्यों को सुनने में लीन बन गया। चौथा चरण बनाने का मौका मुझे मिला, अतः मैं भी सौभाग्यशाली हूं। राजा खुश होकर बोला—इस चौथे चरण ने मुझे झकझोर डाला। उद्‌बोधन मिला। असत्य अहंकार पर सत्य का प्रहार हुआ। यह लो पारितोषिक।

किसी व्यक्ति को अपनी दौलत व सम्पदा पर झूठा अहंकार नहीं करना चाहिये। आंखें बन्द हो जाने के पश्चात् कुछ भी किसी का नहीं है। अतः अध्यात्म में रमण करना ही श्रेयस्कर है।

झूठी यौवन सम्पदा, झूठा सब संसार।
'मुनि कन्हैया' धर्म में, रमण करो हर बार॥

हिम्मत की कीमत

बैलगाड़ी में बैठकर चौधरी भूणाराम अपनी ससुराल जा रहा था। बैल धीरे-धीरे चल रहा था। चौधरी ने कहा—अरे बैल ! क्या बात है ? धीमी गति से गति कैसे कर रहा है ? बैल बोला—स्वामिन् ! आपको विदित है कि मेरा जन्म आपके हाथों में हुआ, आपकी देखरेख में मेरा पालन-पोषण हुआ। आपके देखते-देखते अब मैं वृद्ध हो गया। दांत गिर गए। सारे शरीर में शिथिलता छा गई। घुटनों में दर्द रहने लगा। खुर खोखले हो गए। सींगों की जड़ें भी ढीली पड़ गईं। इधर गाड़ी कीचड़ में फंस गई। गाड़ी को खींचकर बाहर निकालने की शक्ति अब मेरे में नहीं है। अब आप ऐसा करें कि मेरे गले में बंधा घंटा अब किसी युवक बैल के गले में बांध दें।

चौधरी ने कहा—वृषभराज ! आपका कहना बिलकुल उचित है। किन्तु जो काम आप कर सकते हैं, वह काम नवयुवक वृषभों से नहीं हो सकता।

वृषभ बोला— स्वामिन् ! आप मेरी बात पर विश्वास करें। कीचड़ में फंसी गाड़ी को निकालने में युवक बैल बहुत ही सक्षम है। आप प्रयोग करें। मेरे से अब कुछ भी नहीं हो सकता।

चौधरी बोला—हे धवल वृषभ ! संसार में हिम्मत की कीमत है। हिम्मत के सहारे कठोर से कठोर कार्य भी सरल बन जाता है।

यह सुनते ही बैल के मानस में उत्साह द्विगुणित हो जाता है और चौधरी को इच्छित स्थल पर पहुंचा देता है। चौधरी द्वारा वृषभ का सम्मान होता है।

संसार में हिम्मत की कीमत होती है। हिम्मत के अभाव में किसी भी व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता। हिम्मत के अमित बल से दुःसाध्य कार्य भी सुसाध्य बन जाता है।

सुखकर होगा हर समय, हिम्मत का व्यवहार।
'मुनि कन्हैया' हिम्मती, बनता जग शृंगार॥

'शब्द' का सही अर्थ

एक कमजोर व्यक्ति था। वह जीभ का बड़ा लोलुप था। खाने-पीने में संयम नहीं रखता था। पेट की नाड़ियां शिथिल हो गई थीं। भोजन खूब रिष्ठ-गरिष्ठ करता था। लेकिन पचता नहीं था। डाक्टर के पास पहुंचा। बोला—डाक्टर साहब ! दिनों-दिन कमजोर हो रहा हूं। स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। नींद भी नहीं

आती है । कृपया कोई ऐसी औषधि दीजिए जिससे मैं स्वस्थ बन जाऊं। डाक्टर साहब ने हर दृष्टि से अच्छी तरह से उसका निरीक्षण किया और कहा— आप पन्द्रह दिनों तक अमुक-अमुक केप्सूल व टेब्लेट का सेवन करें, अवश्य आपकी बीमारी शान्त हो जायेगी।

डाक्टर साहब के कथनानुसार दवा प्रारम्भ हुई। पन्द्रह दिनों तक दवा का सेवन करने पर भी स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ। आखिर उसने किसी वैद्य की शरण ली। हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से बोला—वैद्य जी ! मैंने कई दिनों तक अंग्रेजी दवा का आसेवन किया, फिर भी रोग शान्त नहीं हुआ । कृपया अब आयुर्वेदिक उपचार प्रारम्भ करें जिससे स्वास्थ्य-लाभ हो सके। वैद्य जी ने निरीक्षण कर कहा—शहद के साथ सितोपलादि चूर्ण दो महीनों तक लीजिये, स्वस्थ बन जाओगे ।

बीमारी में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा। दिनों दिन रोग पुनः बढ़ने लगा। आखिर वह हास्पिटल के प्रमुख चिकित्सक के पास पहुंचा और गद्‌गद्‌ स्वर में बोला—डाक्टर साहब ! इलाज कराते-कराते थक गया। लेकिन अभी तक स्व-स्थता नहीं आ रही है। अब आपकी शरण में हूं । डाक्टर साहब ने अच्छी तरह निरीक्षण कर कहा – तुम और खाना एक बार छोड़ दो, केवल डबल रोटी खाओ। उसने किसी आदमी से पूछा– भाई साहब ! डबल का क्या अर्थ होता है ? उस आदमी ने कहा— भैया ! डबल का अर्थ होता है दूना। वह अपने घर आया। चिन्तन करने लगा—प्रतिदिन मैं चार रोटी खाता हूं किन्तु अब मुझे दुगुनी रोटी खानी चाहिए। धर्मपत्नी से कहने लगा—आज मैं वरिष्ठ चिकित्सक के पास चला गया था। उन्होंने मेरा उपचार प्रारम्भ कर दिया है। दवाई भी ले आया हूं। डाक्टर साहब ने एक बात और कही है कि डबल रोटी खाना है। अतः आज आठ रोटी खिलाना, जिससे मैं स्वस्थ बन जाऊं।

संसार में कई ऐसे अनभिज्ञ व जिद्दी व्यक्ति हैं कि शब्द के सही अर्थ को तो पकड़ नहीं पाते, प्रत्युत उल्टा समझकर अपना नुकसान कर बैठते हैं। शब्द की गहराई में न जाकर मूल बात को भूल जाते हैं और बिना मतलब शब्दों में उलझ जाते हैं। वे कभी भी अपने जीवन में स्वस्थता का अनुभव नहीं कर सकते।

शब्दों में मत उलझिये, पकड़ो सच्चा अर्थ ।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, होगा बड़ा अनर्थ ॥

नाम से कल्याण नहीं

स्थानकवासी सम्प्रदाय में अलग-अलग टोले के अलग-अलग आचार्य होते हैं। पूज्य रूघनाथजी और पूज्य श्यामजी महाराज दोनों का चातुर्मास एकदा एक ही नगर में था। संवत्सरी महापर्व का सुन्दर समय आया। इस शुभ अवसर पर पौषध अधिक से अधिक होने चाहिये। दोनों ही सम्प्रदायों की ओर से प्रबल प्रयास होने लगा। पूज्य रूघनाथजी के श्रावक घूम-घूम कर एक-एक व्यक्ति को समझाने लगे कि तुम सब को पौषध पूज्य रूघनाथजी के सान्निध्य में करने हैं। इधर पूज्य श्यामजी महाराज के श्रावक-गण भी अपने स्थान में अधिक से अधिक पौषध हो ऐसा भरसक प्रयास करने लगे। दोनों ही तरफ के दलाल अपनी-अपनी दलाली में जुटे हुए थे। हर व्यक्ति अपनी रोटी के नीचे अंगारे देते हैं, यह लोकोक्ति असत्य कैसे हो सकती है?

संवत्सरी महापर्व का स्वर्णिम दिवस उदित हुआ। लोग दोनों ही तरफ पौषध करने लगे। एक भीमजी नामक श्रावक भी अपने उपकरण लेकर पौषध के लिए आया। ज्योंही वह चौराहे पर पहुंचा, देखा कि दोनों ही तरफ के श्रावक वहां पर थे। अपने-अपने स्थानक में पौषध हेतु लोग उससे मनुहार करने लगे। आखिर रूघनाथजी के श्रावक ने कहा—भीमजी! तुम श्यामजी के स्थानक में पौषध कर लो। एक से क्या फर्क पड़ेगा? खींचातानी में क्या लाभ? आखिर भीमजी ने श्यामजी महाराज के स्थानक में पौषध कर लिया। अन्त में पौषधों की गिनती की गई तो श्यामजी महाराज के सान्निध्य में एक पौषध अधिक हो गया।

दूर किसी नगर में किसी एक आचार्य का चातुर्मास था। उन्होंने जब सुना कि खींचातानी में श्यामजी महाराज एक नम्बर से आगे निकल गये तो उन्होंने एक दोहे में कहा—

धर्म तो छै जठै छै, बड़ो काम है नाम रो।
एक भीम ने खींचतां, सिक्को रह्यो श्याम रो॥

धर्म तो होगा जहां होगा, आज बड़ा काम है नाम का। एक भीम को अपनी ओर खींचने से श्यामजी महाराज का नाम सबसे ऊंचा हो गया। सब कहने लगे श्यामजी महाराज के सान्निध्य में पौषध अधिक हुए हैं।

वास्तव में धर्म आत्म-साधना में होता है, केवल नाम की भावना रखने से आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं है। अतः नाम की भावना को छोड़कर जो व्यक्ति आत्मा में रमण करता है वही धार्मिक कहलाता है।

नाम कामना त्याग कर, बनो सभी ध्यानस्थ।
'मुनि कन्हैया' सहज सुख, पाता है आत्मस्थ॥

हमारी नैतिक प्रतिष्ठा किधर

एक भारतीय विद्यार्थी उच्च शिक्षा हेतु इंग्लैण्ड पहुंचा। वहां किसी ग्वाले के घर में ठहरा। एक दिन की बात है, गृह स्वामी की लड़की उस विद्यार्थी के पास आई। उसकी आकृति पीड़ा-रेखा से अंकित थी। चेहरा एकदम उदास था। भारतीय छात्र ने जिज्ञासा की—बहिन क्या समस्या है ? आज वदन पर विषाद इतना प्रबल क्यों ? उसने कहा—भैया ! मेरे पिताजी दूध बेचते हैं। दूकान अच्छी चलती है। सभी ग्राहकों के दिल में गहरा विश्वास जम गया है, लेकिन न जाने क्यों आज दस सेर दूध घट रहा है। अनेक ग्राहकों को खाली हाथ लौटाना पड़ेगा। यही है विषाद।

भारतीय विद्यार्थी बोला—इसका समाधान तो मैं ही बता सकता हूं। आश्चर्य, बड़ा आश्चर्य कि लाखों-लाख जनों पर प्रशासन करने वाली अंग्रेज जाति समस्या का हल ढूंढने में असमर्थ। इससे बढ़कर अचरज और लज्जा क्या ? आपके पिताजी दक्ष बुद्धि वाले नहीं। बहिन ! जल्दी जाओ और पिताजी से कहो—दूध में १० (दस) पौंड पानी मिला दें—चिन्ता की कोई जरूरत नहीं।

लड़की दौड़ी। पिताजी के पास पहुंची। हाथ जोड़कर बोली—पिताजी ! उस भारतीय विद्यार्थी का सुझाव है कि दूध में पानी मिला दो। और यही है समस्या का सही समाधान। इस पर वह अंग्रेज ग्वाला आग-बबूला हो गया। विद्यार्थी के पास तेजी से लपका और ललकारते हुए तीक्ष्ण स्वर में कहा—देखो, यह तुम्हारा भारत नहीं है। ग्राहकों को खाली हाथ लौटाना मंजूर, किन्तु जनता के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा कर देश की जनता के साथ गद्दारी करना किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं। यह दानवीय व्यवहार है, मानवता के साथ सरासर धोखा है। ग्वाला अत्यन्त क्रुद्ध था। उसने उस भारतीय छात्र को तत्काल वहां से बाहर निकाल दिया।

यह है भौतिकवादी पश्चिम की प्रामाणिकता। इससे स्पष्ट है कि भारतीय वृत्ति में नैतिकता का सर्वथा अभाव है। राष्ट्र की नैतिक प्रतिष्ठा पर काला धब्बा हमारे पतन की पराकाष्ठा है जिसका उन्मूलन अनिवार्य है। नैतिकता व प्रामाणिकता ही जीवन की सही सम्पदा है।

भारतीय उस छात्र को, घर से दिया निकाल।
'मुनि कन्हैया' नीति से, चमक गया वह ग्वाल ॥

पात्र देखकर ही शिक्षा दो

गुरु और शिष्य एक गांव में ठहरे हुए थे। एक दिन गुरुदेव ने महती कृपा कर अपने शिष्य को शिक्षामृत पिलाते हुए कहा—चेला! कहीं भी बाहर जाते हो तो सिर पर पगड़ी बांध कर जाने से कदम-कदम पर तेरा सम्मान बढ़ेगा। नंगे सिर बाहर जाना अच्छा नहीं लगता।

शिष्य ने विनय पूर्वक हाथ जोड़कर कहा—गुरुवर! आपने जो शिक्षा फरमाई, उसी के अनुसार मेरी गति होगी।

अचानक किसी कार्यवश चेला बाजार गया पर चेले ने सोचा—गजब हो गया, पगड़ी बांधकर नहीं आया। उपालम्भ मिलेगा, अब क्या करना चाहिए? अगर गुरुदेव की शिक्षा को याद रखता तो मेरा अवश्य ही सम्मान बढ़ता। आखिर उसने अपनी धोती खोलकर सिर पर बांध ली। दिल में गहरा विश्वास था—अब मेरी पूजा होगी। सर्वत्र प्रतिष्ठा बढ़ेगी। जो भी देखेगा, मुझे महामहोपाध्याय समझेगा। आगे बढ़ा, मुख्य बाजार में पहुंचा। लोगों ने उपहास करना प्रारम्भ कर दिया—अरे! यह कौन महामूर्ख है? इस प्रकार नग्न फिर रहा है। चेला कड़क कर जोर से बोला—जरा सम्भल कर बोलो। बोली का विवेक ही मानवता है। अपशब्दों का प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं है। अपने गुरुदेव की शिक्षानुसार ही मैंने यह कार्य किया है!

लोग तेजी से दौड़ पड़े, गुरु के पास पहुंचे। सविनय बोले—आपने अपने शिष्य को यह क्या शिक्षा दी? गुरु सारा हाल सुनकर एकदम चौंक पड़े और बोले—मूर्ख मनुष्य को शिक्षा नहीं देनी चाहिए। मूर्ख को दी हुई हितकर शिक्षा भी नुकसान का हेतु बन जाती है। बेमतलब अन्यों को उपहास का अवसर मिलता है, अतः पात्र देख कर ही शिक्षा देनी चाहिए, अन्यथा लाभ के बदले अलाभ की सम्भावना बनती है।

राजस्थानी कहावत चरितार्थ हो रही है—'मूरख नै टको देणो पण अकल नहीं देणी'। मूर्ख मानव को दिया हुआ शास्त्रीय ज्ञान भी प्रत्युत घातक सिद्ध होता है। इसलिए मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना ही क्षेमकर है, लाभकर है, हितकर है।

शिक्षा मत दो मूर्ख को, प्रत्युत है नुकसान।
'मुनि कन्हैया' पात्र बिन, नहीं तनिक निर्माण॥

विवेकी राजा

एक बहुत बड़ा नगर था। नगरी के सम्राट का अकस्मात् देहावसान हो जाने से सर्वत्र सन्नाटा छा गया। राज्य का संचालन सुचारु रूप से अब कैसे होगा? कुशल नेता के अभाव में सारी जनता पीड़ित व चिंतित हुए बिना कैसे रह सकती थी। राजा संतानहीन था। राज्याभिषेक किसे किया जाये? राज्य का भार कौन सम्भालेगा? राज्य के अधिकारियों ने गहराई से चिन्तन किया, अब क्या करना चाहिये। अधिकारीगण समस्या का समाधान खोजने के लिए एकत्रित हुये। मन्त्री ने अपने बुद्धि-बल से कहा—मेरे पास एक बाज है, जो पढ़ाया हुआ है। आप सबको उचित लगे तो उड़ा दूं। वह जिसके सिर पर बैठेगा, उसे ही राजा बना दें।

सभी सभासदों ने एक ही स्वर में कहा—मन्त्रीवर! आपका कथन अक्षरशः सत्य है, आप जैसा उचित समझें वैसा ही प्रयोग करें। अपन सबको राजा चाहिये। सबकी सहमति पाकर बाज उड़ाया गया। वह बाज उड़ता-उड़ता शहर के बाहर नदी के किनारे पर बैठे हुए एक लकड़हारे के सिर पर जा बैठा। सबके हृदय में प्रसन्नता का पार न रहा। जय-जय की ध्वनि से गगन गूंजने लगा। मन्त्री ने अपनी स्पष्ट व सुकोमल भाषा में कहा—यही व्यक्ति हमारे नगर का राजा होगा। उसे महलों में ले जाकर स्नान करवाया गया, सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाये गये। मंगल वेला व मंगल घड़ी देखकर राज्य सिंहासन पर बैठा कर राज्याभिषेक कर दिया गया।

कुछ ही समय के बाद राजा उठने लगा तब वयोवृद्ध मन्त्री के कंधे का सहारा लेकर उठा। यह अनोखा दृश्य देख कर मन ही मन सब हंसने लगे। स्वयं मन्त्री भी हंसा। एकान्त का समय देखकर राजा ने मन्त्री से पूछा—मन्त्रीवर! बात समझ में नहीं आ रही है। आप सबको हंसी क्यों आई? मन्त्री ने कहा—मुझे हंसी इसलिए आई कि कल तक तो आप लकड़ियों को उठाकर लाते थे और आज उठने में भी मेरे जैसे बूढ़े के कंधों का सहारा ले रहे हैं। राजा ने कहा—मैं कन्धों का सहारा इसलिए ले रहा था कि मैं तो अनपढ़ और शासन संचालन करने में असमर्थ हूं, पर इन कंधों के सहारे राज्य शासन को चला सकूंगा या नहीं। राजा के इस विवेक भरे कथन से मन्त्री के हृदय में विस्मय का ठिकाना न रहा। सोचा। समझा। गद्दी का अचूक प्रभाव। गद्दी पर बैठते ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरने लगता है।

गुरु चाहे उम्र से छोटा हो या बड़ा। गुरु तो महान ही हुआ करते हैं। सिंह का बच्चा, क्या छोटा क्या बड़ा। यदि कोई अल्पज्ञ व्यक्ति अपने अहं में गुरु को

अल्पज्ञ व छोटा मानता है तो वह उचित व श्रेयस्कर नहीं होता।

गुरु चाहे छोटे बड़े, समझो पूज्य सुपात्र।
करना मत आशातना, गुरु की किञ्चिद् मात्र॥

गुरु द्वारा ज्ञान

लुकमान नाम का एक बहुत बड़ा सुप्रसिद्ध हकीम था। वह विविध क्षेत्रों में निष्णात था। उसकी प्रतिभा के सामने बड़े-बड़े पंडित लोग भी अवनत शीष रहते थे। वह विविध रासायनिक प्रयोग करने में सिद्धहस्त था। उसने अपने अनुभव के आधार पर एक ग्रन्थ का सुन्दर निर्माण किया, जिसमें रासायनिक विद्या के बहुत से नुस्खे सन्निहित थे। एक दिन उसका लड़का उस पुस्तक को पढ़ रहा था। इस पुस्तक की जानकारी किसी व्यक्ति को मिली। उसने सोचा यह पुस्तक मेरे पास आ जाये, ऐसा प्रयास करूं। मौका देखते-देखते एक दिन उसने उस पुस्तक को चुरा लिया। पुस्तक का अध्ययन किया। सोना बनाने की विधि को देखकर सोना बनाने लगा। वह बहुत गरीब था, फिर भी बहुत-सी वस्तुएं नष्ट करने पर भी जब सोना नहीं बना, तब उसके हृदय में आश्चर्य के साथ-साथ क्रोधानल की भभकने लगा। उसने गालियां देनी प्रारम्भ कर दी— यह लुकमान बड़ा धोखेबाज है, चालाक है। बाजार के बीच मे हकीम का पुतला बनाया। सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्ति एकत्रित हो गये। सबके सामने उस पुतले के सिर पर जूते मारने लगे। सर्वत्र लुकमान की अपनिंदा होने लगी।

संयोग से अचानक लुकमान का वहां आगमन हो जाता है। उसने रंग-ढंग देखा। सारा भेद जाना। तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ। हकीम ने कहा—मैंने जो लिखा है, वह बिल्कुल सत्य है। इसी पुस्तक के आधार पर मैं सबके सामने सोना बना रहा हूं। जैसा कहा वैसा कर दिखाया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और सब लुकमान की प्रशंसा करने लगे। हकीम बोला—बन्धुओं! नुस्खा लिखने में दोष नहीं है। दोष है इसके समझने में। वह व्यक्ति लज्जित होकर बड़ी विनम्र भाषा में बोला— हकीम साहब आप सच्चे हैं। आपने जो भी लिखा है, वह यथार्थ है। मेरी समझ का ही दोष है। मेरे अज्ञान को आप ही दूर कर सकते हैं।

लुकमान उस पुस्तक को सोना बनाने वाली भट्ठी में सबके सामने डाल देता है। सबने आश्चर्य से पूछा— ऐसा आपने क्यों किया? हकीम बोला—अभी तक तो ऐसे कुपात्र के हाथ में पुस्तक गई, मुझे जूतों की चोटें सहनी पड़ीं। कल न जाने

यह पुस्तक किसके हाथ में पहुंच जाये, वह कुपात्र क्या कर बैठे। अतः इस पुस्तक को जलाना ही उचित समझा। पुस्तक जलकर राख हो गई।

कोई कितना ही पुस्तकों से अध्ययन कर ले, उसका अध्ययन सफल नहीं होता। गुरु गम से प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है। केवल किताबी पंडित प्रायः अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं। अतः पात्र देखकर ही विद्या दान करना श्रेयस्कर होता है।

गुरु गम से संप्राप्त जो, ज्ञान वही सद्ज्ञान।
'मुनि कन्हैया' पुस्तकीय, ज्ञान नहीं फलवान ।।

दुष्कृत अनुरूप सजा

वेनातट नगर में मूलदेव नाम का राजा राज्य करता था। उस नगर में मंडित नाम का चोर रहता था। वह चोर बिना दर्द ही पैरों पर पट्टा बांधकर पंगु की भांति घर-घर फिरता और स्वर्णकार का काम करता। दिन में घर की सारी जानकारी कर लेता और रात्रि में उसी घर में चोरी करता। गांव के बाहर तहखाना बनाया हुआ था। वहां पर वह सारा धन भेज देता था। तहखाने में उस चोर की बहिन रहती थी। वहां पर एक प्रपंच रचा हुआ था। धन माल किसी मजदूर के साथ तहखाने में रखने के लिए भेजता था। बहिन कहती—धन यहां रख दो। तुम बाहर चलो कुएं पर। वहां पर मैं आतिथ्य सत्कार करूंगी। ऐसा कह कर कुएं के तट पर उसे बिठा कर पैर धोती और धक्का मारकर कुएं में डाल देती। ऐसा क्रम निरन्तर चलता रहा। लेकिन चोर पकड़ में नहीं आया।

राजा काफी चिंतित—क्या करूं। चोर कैसे पकड़ा जाये। इसी चिंता-चिंता में डूबने लगा। आखिर वह मजदूर रूप बना कर शहर में घूमने लगा। एक दिन मंडित चोर से भेंट हो गई। चोर ने उसी मजदूर के साथ तहखाने में रखने हेतु धन भेजा। वह श्रमिक (राजा) चला। तहखाने में धन रखा। बाहर आया। कुएं के तट पर बैठा। बहिन पैर धोने लगी। चरणांकित पद्मरेखा देखकर उसने सोचा—यह मजदूर नहीं है, राजा है। इसके साथ मेरी शादी हो जाय तो अच्छा। वह उससे मोहित व प्रभावित होकर बोली—देव! मैं समझ गई। आप राजा हैं। यदि आप मेरे भाई को जीवित छोड़ दें तो मैं आपके साथ विवाह करना चाहती हूं। मेरा भाई सुनार का रूप बदल कर घर-घर में फिरता है, रात्रि में चोरी करता है। धन लेकर मजदूर यहां आता है, मैं उसको कुएं के तट पर बिठा-कर आतिथ्य सत्कार करती हुई कुएं में ढकेल देती हूं। आप शहर में पधारें। मेरे

भाई से विवाह के सम्बन्ध में बात कर लीजिए। यह सारा धन का खजाना आपश्री के चरणों में अर्पित।

राजा शहर में गया। मंडित चोर को पकड़ा। वार्तालाप करते हुए राजा ने कहा—तेरी बहिन मेरे साथ शादी करना चाहती है। मैं अभी बात करके आया हूं। दोनों के विचार एक होते ही राजा के साथ उसका विवाह हो जाता है। धन का मालिक भी वह बन जाता है।

आखिर राजा ने मंडित चोर को शूली का दण्ड देते हुए कहा—तेरे भयंकर अपराध को क्षमा कैसे कर सकता हूं। चोरी के साथ-साथ तूने अनेक व्यक्तियों के प्राण लूटे हैं। तेरा जैसा लुंटाक मैंने आज तक नहीं देखा। मंडित चोर ने जैसा दुष्कृत किया वैसा उसे फल मिल गया। वह मर कर नरकवासी बन जाता है।

जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिल जाता है। "पर धन धूलि समान" पराये धन को जो धूल के समान समझता है वह हर एक के लिए विश्वास का पात्र बन जाता है। विश्वासी मानव जहां जाता है वहां उसका सम्मान होता है। अतः हर व्यक्ति को इन दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहना चाहिए।

तस्कर नर लुंटाक का, होता दुर्गति वास।
निम्न मनुज का जगत में, जम न सके विश्वास॥

गुस्से की अचूक दवा

एक महिला को बहुत गुस्सा आता था। बड़ा तेज स्वभाव। आंखें हर दम लाल। अधरावली में कम्पन। सास कोई भी बात पूरी नहीं कह पाती, उससे पहले ही वह उछलने लग जाती, बन्दर की भांति। घर में कलह कदाग्रह होता रहता। सर्वत्र अशांति। सब परेशान हो गए। क्या करें, इसको कहां छोड़ें। सुख से खाना भी नहीं खाने देती, न ही पूरी नींद लेने देती है। ऐसी कर्कश महिला से छुटकारा कब! हर वक्त कौवे की भांति कां-कां करती रहती है। खाने के लिए डायन की भांति दौड़ती है।

पास में एक समझदार पड़ोसी रहता था। रोगों की चिकित्सा करने में बड़ा दक्ष था। अनुभवी था। सुख-दुःख में सहायता करता था। वह बहिन एक दिन उस चिकित्सक के घर जा पहुंची। हाथ जोड़कर बोली—पिताजी! बड़ी समस्या है। घर में कदाग्रह होता रहता है। लड़ाइयां भी चलती रहती हैं। मैं परेशान, मेरी सास परेशान, घर के सारे सदस्य परेशान, घर का सारा वातावरण बिगड़ रहा है। आप एक कुशल चिकित्सक हैं। कृपया मेरी चिकित्सा आरम्भ करें। मुझे कोई

ऐसी दवा दें, जिससे मेरा क्रोध शांत हो जाए। घर का वातावरण शांत बन जाए।

अनुभवी वैद्य ने कहा—बेटी ! एक दवा देता हूं। पर उसका पथ्य कड़ा है। अगर तू ध्यान रखेगी तो तेरा सारा रोग शांत हो जायेगा। वह बोली—महोदय ! आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगी। वैद्य अन्दर कमरे में गया, बोतल लाया और बोला—पुत्री ! यह लो दवा, इससे तुम्हारी सारी बीमारी दूर हो (मिट) जायेगी। जिस समय तुम्हें गुस्सा आये, उस समय यह दवा ले लेना, किन्तु पथ्य का ध्यान रखना। पन्द्रह मिनट तक इस दवा को मुंह में रखना पड़ेगा, जिससे अच्छी तरह पूरी लार उसके साथ मिल जाए। जो भी खाया जाता है, पीया जाता है, उसमें लार नहीं मिलती तो ठीक से पाचन नहीं होता। यह दवा तभी काम करेगी जब पन्द्रह मिनट तक मुंह मे इसे घुमाती रहो। जब पूरी लार मिल आएगी तो यह ऐसी कीमती दवा है कि पहले ही दिन अपना प्रभाव डाल देगी। विनयपूर्वक वह महिला बोली—वैद्य जी ! आपने मुझ पर बहुत अच्छी कृपा की। पथ्य का ध्यान रखूगी। दवा लेकर वह अपने घर चली गई। प्रतिदिन की भांति झगड़ा होना तो स्वाभाविक ही था। ऐसा क्रम बना हुआ था कि सास को बहू से, बहू को सास से लड़े बिना शांति नहीं मिलती थी। परस्पर झगड़ा आरम्भ हुआ। किसी तुच्छ बात पर सास को गुस्सा आया। बहू भला कब चूकने वाली थी परन्तु आज तो दवा ले आई, सोचा दवा ले लूं। भीतर गई। दो घूंट मुंह में डाल कर वापिस बाहर आ गई। मुंह भरा था। बोले तो कैसे बोले। बोलने वाली तो थी किन्तु पन्द्रह मिनट तक तो पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। पन्द्रह मिनट तक बिलकुल नहीं बोली। सास का गुस्सा पांच-सात मिनट में ही शांत हो गया। गुस्सा तब बढ़ता है जब ईंधन मिले। ईंधन न मिलने से आग अपने आप बुझ जाती है। ईंधन न मिलने के कारण सास भी बोलती-बोलती बंद हो गई।

बहू ने सोचा—दवा तो बहुत ही अच्छी है। पहले ही दिन चमत्कार। इसी प्रकार दो-चार दिन दवा का प्रयोग चालू रखा। झगड़ा बंद। गुस्सा बंद। सब कुछ समाप्त हो गया। वह दौड़ी-दौड़ी चिकित्सक के पास गई और बोली—पिताजी ! दवा तो बहुत बढ़िया दी। आपने कहा था कि पांच-दस दिन में शांति हो जायेगी। लेकिन दवा ने तो पहले ही दिन अपना प्रभाव दिखला दिया। अब कुछ भी समस्या नहीं है। घर में मानो स्वर्ग उतर कर आ गया हो। बड़ी शांति। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द।

वैद्य ने पूछा—बेटी ! पथ्य का पालन सम्यक् प्रकार किया ? उसने कहा—पिताजी ! जैसा आपने कहा वैसा ही किया।

गुस्से की अचूक दवा है मौन। समय पर जो व्यक्ति मौन को स्वीकार कर लेता है उसका बहुत ही सुमधुर फल मिलता है। गुस्सा आने पर दूर व्यक्ति को

दो-चार मिनट का मौन लेना चाहिए, जिससे घर का वातावरण अपने आप शांत हो जाता है।

गुस्सा आने पर त्वरित, मौनी रहो नितान्त।
'मुनि कन्हैया' क्रोध लो, होगा पुनः प्रशान्त ॥

बैंक में सम्पत्ति

सेठ बुलाकीराम करोड़पति सेठ था। घर में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। हर दृष्टि से सम्पन्न था। सेठजी ने अपने पुत्र का नाम रखा अमीरचन्द। कुछ दिनों पश्चात् मोटर दुर्घटना में माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। अमीरचन्द घर में अकेला रह गया। नाम से वह अमीरचन्द अवश्य था, किन्तु खर्चा करने में बड़ा कंजूस था। उसकी कंजूसी को देखकर साथियों ने उसका नाम कंजूसचन्द रख दिया। जो भी आय होती वह उसे बैंक में जमा करता जाता। समय-समय पर साथी उससे कहते रहते—मित्र ! धन क्या साथ जाएगा ? इतनी कंजूसी करना उचित नहीं है। वह कहता—यह मेरी घरेलू बात है। किसी को भी हस्तक्षेप करने की अपेक्षा नहीं है। तुम लोगों की तरह मैं फालतू खर्च करने वाला नहीं हूं और अधिक खर्च करना भी मुझे पसन्द नही है।

लोभी व्यक्ति का धन स्वयं के उपभोग में नहीं आता है, अन्य के ही उपभोग मे आता है। अमीरचन्द के नौकर-चाकर भी परेशान होकर बोले—बाबूजी ! खान-पान में इतनी कंजूसी बरतना बुद्धिमत्ता नहीं है। लेकिन वह किसकी मानने वाला था ! धीरे-धीरे सारे नौकर बाबूजी से विदा हो गए। उसके सामने खाना बनाने की नई समस्या उत्पन्न हो गई। भूख लगी। बाबू होटल में पहुंचा। उच्च स्तर का भोजन चाहिए, ऑर्डर दिया। भोजन समाप्ति के पश्चात् जब बिल देखा तो घबड़ा गया। इधर-उधर दौड़ जाने की सोचने लगा। होटल के मालिक ने कहा—बाबूजी ! बिल पेमेंट कीजिए। उसने कहा—मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं। इसके बदले में बर्तन साफ करवा लीजिए।

लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति का अधिनायक कंजूसी के कारण जूठे बर्तन साफ करने लगा। अब वह वहीं रहने लगा और होटल का बचा-खुचा खाना खाकर उदरपूर्ति करने लगा। उसके एवज में प्रतिदिन बर्तन साफ करना प्रारम्भ कर दिया। अब उसने धीरे-धीरे अपना सारा इस्टेट बेच कर रुपये बैंक में जमा कर दिए और टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहने लगा। कपड़े तार-तार हो गए, फिर भी नये कपड़े नहीं खरीदे। कंजूसचन्द अब भयंकर रोग से संग्रस्त हो गया। उपचार के लिए पैसा खर्च करना उसने उचित नहीं समझा। सही इलाज नहीं होने के कारण वह

यमराज का अतिथि बन गया। उसकी सारी सम्पत्ति बैंक में रह गई।

जो व्यक्ति कंजूस व लोभी होता है वह यहां पर भी सुखी नहीं होता और परलोक में भी सुखी नहीं होता है। अतः लोभ सर्वथा त्याज्य है। लोभी आदमी न सुख से जी सकता है न ही शयन कर सकता है।

नहीं सौख्य को पा सके, लोभी नर कंजूस।
भोग न सकता वित्त को, मानव मक्खीचूस ॥

क्षमाशील बनो

संत तुकाराम बड़े निस्पृही थे। शांत स्वभावी एवं क्षमाशील। भ्रमण करते-करते अचानक एक गन्ने के खेत में जा पहुंचे। खूब गन्ने काटे व सिर पर गन्नों का गठ्ठर लादकर चल पड़े पर मार्ग में बच्चे पीछे लग गये व उनसे गन्नों की मांग करने लगे। संत तुकाराम बड़े उदार प्रकृति के थे—वे किसी को क्या अस्वीकार करते ! और फिर अबोध बच्चों का आग्रह। सभी को गन्ने देते चले गए—बच्चे भी गन्ने का रसास्वादन करते रहे। घर पहुंचते-पहुंचते महात्मा तुकाराम के पास सिर्फ एक गन्ना ही शेष रहा।

लेकिन संत श्री की धर्मपत्नी रंखुबाई बड़े ही तेज चिड़चिड़े स्वभाव की महिला थी। वाणी में कर्कश, व्यवहार में तीखी। माधुर्य व विनम्रता का उसमें नितान्त अभाव था। पतिदेव के कन्धे पर सिर्फ एक ही गन्ना देखकर गुस्से में लाल हो गई। बुरी तरह जल-भुन गई। लगी अनर्गल बकवास करने। आपे से बाहर थी कि गन्ना छीन कर संत जी की पीठ पर मारा। गन्ना टूट गया, दो टुकड़े हो गये।

परन्तु, संत हृदय तुकाराम जी हंसने लगे। पुलकित वचन बोल पड़े—बहुत अच्छा हुआ। तुम समझदार हो, चिंतनशील हो। दोनों के लिए गन्ने के दो टुकड़े मुझे करने पड़ते। तुमने बिना कहे मेरा यह कार्य कर दिया। बड़ी शांत साध्वी हो तुम। धन्य है तुम्हारे ज्ञान-व्यवहार को।

संत श्री का ऐसा कोमल मृदुल बर्ताव देख रंखुबाई पानी-पानी हो गई। पतिदेव के चरणों में उसका सिर झुक गया। एकदम अवाक् हो गई।

यह है क्षमा की पराकाष्ठा। क्रोध पर क्षमा की अद्भुत विजय। किसी भी स्थिति में इन्सान को क्रोध नहीं करना चाहिए। क्षमाशील मानव लोकप्रिय बन सकता है। क्षमा मानव का आभूषण है। अतः क्षमाशील बनो।

सुन कर तुक्का राम का, अनुपम नव दृष्टांत।
'मुनि कन्हैया' हर कदम रखना क्षमा नितांत ॥

बुद्धिमान

एक नगर में एक बड़े सेठजी थे। परोपकारी, गम्भीर और अत्यन्त बुद्धिमान। उनकी धर्मपत्नी भी वैसी ही चतुर, धर्म प्रवीण व गृह कार्य में दक्ष-निपुण। बड़ी हवेली, नौकर-चाकर, चपरासी सब हर क्षण ड्यूटी पर तैनात, किन्तु संतान के अभाव में सभी कुछ नीरस शुष्क।

एक दिन सेठानी सेठ पर बिगड़ पड़ी कि मैं एक लखपति नहीं, करोड़पति की पत्नी हूं, पर घर में बेटा नहीं। नौकरों के भरोसे कब तक घर की चौकीदारी होगी? कैसे भी हो एक पुत्र तो होना ही चाहिए। बढ़ते व्यवसाय की रखवाली तभी हो सकेगी। उस दिन चोर आए, नौकर सो रहे थे अतः मनमाना धन लूटकर अपनी जेबें गरम कर गए।

आखिर दोनों ही पुत्र की खोज में एक प्रख्यात साधु के पास पहुंचे। साधु ध्यान मग्न थे। गहरी इन्तजारी के उपरान्त जब साधु ध्यान-मुक्त हुए तो अपनी समस्या साधु के समक्ष प्रस्तुत की। साधु ने वरदान दिया। साल भर के उपरांत एक पुत्र की उत्पत्ति हुई।

बड़ी धूमधाम से पुत्र का नाम संस्कार हुआ। नाम रखा गया बाघसिंह। बाघसिंह बचपन में ही होनहार था, कुशाग्र बुद्धि, चरित्र-निष्ठ, आदर्शवादी।

एकदा रात्रि में चोर घुस पड़े। कोतवाल का नाम भी बाघसिंह था, सेठजी ने चातुर्य से कोतवाल को आमंत्रित किया।

> बाघाजी ओ बाघाजी, थोड़ा आओ आघा जी।
> साठ वर्ष की खजूरां के, ए कांइ फल लागा जी॥

कोतवाल आ धमका, चोर पकड़ा गया। सेठजी की बुद्धिमत्ता पर लोग दंग थे। सेठ के पुत्र बाघसिंह ने सोचा— पिताजी मुझे बुला रहे हैं। वह भी आया। रहस्य खुला। सारे घर में हर्ष की लहर दौड़ गई।

मूर्ख पुत्र

एक वृद्ध मानव था। उसके पांच पुत्र थे। पांचों की प्रकृति अलग-अलग थी। बुड्ढा अचानक बीमार पड़ गया। एक पुत्र ने कहा—डॉक्टर साहब को बुलाया जाये। दूसरे ने कहा—डॉक्टर की अपेक्षा आयुर्वेदिक उपचार लाभकर होता है। हिंग्वाष्टक चूर्ण से पिताजी स्वस्थ बन जायेंगे। तीसरे सुत ने कहा—होम्योपैथिक दवा से तत्काल लाभ होता है। चौथे ने कहा—बायोकेमिक उचित रहेगा। इस प्रकार

परस्पर झगड़ा हो गया। अपने-अपने चिन्तन पर सब भाई अडिग थे। पांचवां भाई, देख ही रहा था चारों की आपसी खींचातानी। वह जोर से बोल पड़ा—झगड़ो मत ! इस तनाव व लड़ाई का मूल कारण है यह बुड्ढा। यह बुड्ढा क्या काम आता है, निकम्मा है। इसे परलोक पहुंचा दो। सारा झगड़ा खत्म हो जाएगा।

बुड्ढा सुन ही रहा था। वह धीमे स्वर में बोल पड़ा—पुत्रों ! आपस में लड़ो मत। मैं अपने आप स्वस्थ हो जाऊंगा। मुझे किसी भी औषधि की अपेक्षा नहीं है। पुत्रों ! मुझे मार मत देना।

चारों पुत्रों ने कहा—पिताजी ! घबराइये मत। आप हमारे जन्मदाता हैं। पिता की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। हम तो आपस में इसीलिए विचार-विनिमय कर रहे हैं कि कौन सी दवा से पिताजी का शरीर स्वस्थ बना रहे।

इतने में ही पांचवा पुत्र उछल पड़ा। विवेकहीन बन कर बोला—क्यों इतनी बेकार बातें कर रहे हैं ? सचमुच वह मूर्ख बन्दूक लेकर पहुंचा और पिता का कल्याण कर दिया। सब देखते ही रह गये।

यह है विवेकहीनता की पराकाष्ठा। यह है नृशंसता और निर्दयता का दुष्परिणाम। मूर्ख पुत्र के कारण बुड्ढे को बिना मौत मरना पड़ा। शिक्षा के अभाव में पुत्र भी शत्रु बन जाता है।

ज्ञान बिना सुत तात का, बनता शत्रु महान्।
'मुनि कन्हैया' हो गया, बुड्ढे का अवसान ।।

दक्षता से सफलता

एक छोटे जागीरदार थे ठाकर रणजीतसिंहजी। बुद्धि की स्फुरणा उनमें अधिक नहीं थी। एकदा वे ससुराल जा रहे थे। मार्ग में सोचा—ससुराल में तलवार की अपेक्षा नहीं रहेगी। अब इसको कहां रखूं ? आखिर उन्होंने एक गड्ढा खोदा। तलवार को छिपा कर वे अपनी ससुराल चले गये। दूरस्थ चौधरी नानूराम ठाकर साहब की चालाकी को देख रहा था। उसने मन ही मन सोचा—तलवार तो बड़ी कीमत वाली है, ऐसी कोई कला दिखाऊं कि तलवार हजम हो जाए।

चौधरी हाथ में दतारी थामे वहां पहुंचा। चिन्तन करने लगा। आखिर उसने गड्ढे को खोदकर तलवार निकाल ली और उसकी जगह अपनी दतारी रख दी। घर चला गया। मन में प्रसन्नता का पार नहीं। अच्छी कमाई हो गई।

इधर ठाकर साहब ससुराल से वापिस चल पड़े। अपने गांव की ओर आते-आते वहां पहुंचे जहां तलवार को गड्ढे में रखा था। गड्ढा खोदा तो तलवार के बदले में दतारी को देख कर जोर से बोलने लगे—

"सीधा-साधा गल मेलग्यो आंकी बांकी कुण करग्यो।" सीधी सरल तलवार रख कर गया था, इसे टेढ़ी-मेढ़ी किसने कर दी ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

वह चौधरी कहीं आस-पास छिपा हुआ बैठा ही था। आगे बढ़ कर ठाकर साहब के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोला—

"बैसाखां रा पड़या तावड़ा, काचो लोहो पिघलग्यो।" बैसाख महीने में भयंकर धूप पड़ती है, ऐसा अनुभव कर रहा हूं कि कच्चा लोहा पिघल कर वक्रत्व मे परिणत हो गया।

ठाकर साहब से रहा नहीं गया, वे अपनी भाषा में बोल पड़े—

"पिघलग्यो सो पिघलग्यो, लारै लकड़ो कुण धरग्यो।" लोहा पिघला सो पिघला; किन्तु इसके पीछे यह लक्कड़ किसने बांध दिया।

चौधरी साहब ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर देते हुए कहा—जिस पर जिसका नाम लिखा हुआ होता है, वही व्यक्ति उसका उपयोग कर सकता है। इतना कह कर वह अपने घर चला गया।

जो व्यक्ति दक्ष होता है, वह हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर लेता है। सफलता का उपादान कारण है बुद्धि चातुर्य। अतः हर व्यक्ति को हर क्षेत्र में निपुण बनने का प्रयास करना चाहिये।

निपुण व्यक्ति का हर समय, होता सफल प्रयास।
'मुनि कन्हैया' बुद्धि से, मिलता नया प्रकाश॥

नीति का महत्त्व

राजा भोज संस्कृत का प्रकांड विद्वान था। विद्वता के साथ-साथ वह बड़ा दानवीर था। हर याचक को कुछ न कुछ देना अपना कर्तव्य समझता था। किसी कुम्हारिन ने राजा भोज की प्रशंसा सुनी। राजभवन पर आकर बड़ी विनम्रता से द्वारपाल को निवेदन करते हुए कहा—हे द्वार-रक्षक ! मैं राजा भोज के दर्शनार्थ आई हूं। कृपया इजाजत दीजिये। द्वारपाल ने कहा—तुम्हें राजा से क्या काम ? उसने कहा—मैं मेरी विचारधारा राजा भोज के सामने रखना चाहती हूं, आपके सामने नहीं।

द्वारपाल सभा में पहुंचा। हाथ जोड़कर बोला—राजन् ! किसी कुम्भकार की धर्मपत्नी आपका दर्शन करना चाहती है। द्वार पर खड़ी है। आपको कुछ

निवेदन करने की भावना लेकर आई है। राजा ने कहा—आने दो, रोको मत। वह आई नमस्कार कर बोली—

देव ! भूखननाद् दृष्टं, निधानं वल्लभेन मे।
स पश्यन्नेव तत्रास्ते, त्वां ज्ञापयितुमभ्यगाम् ॥

हे प्रभो ! खेत में मिट्टी खोदते हुए मेरे पति को धन मिला है। वे उसी खेत में उस धन की सुरक्षा में पहरा दे रहे हैं। मैं आपके पास सूचना देने के लिये आई हूं।

राजा के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं था। धन से भरे हुए घड़े को मंगाया। उसके मुंह को खोलकर देखा। रत्नों से भरा हुआ था। रत्नों की उद्दीप्त ज्योति देखकर राजा ने कुम्हार से पूछा—हे कुम्भकार ! यह क्या ? वह कुम्हार बोला—

राजचन्द्रं समालोक्य, त्वां तु भूतलमागतम्।
रत्न श्रेणीमिषान्मन्ये, नक्षत्राण्यभ्युपागमन् ॥

हे प्रभो ! मेरी समझ में चन्द्ररूपी आपको मृत्यु लोक में आया जानकर सब नक्षत्र गण भी रत्नों की पंक्ति रूप में आपके पास आये हैं।

ऐसी उज्जवल प्रशंसा सुनकर राजा ने सोचा—यह कुम्हार बड़ा संस्कृतज्ञ है। दक्ष है। उसके मुख से ऐसे लोकोत्तर श्लोकों को सुनकर बड़ा खुश हुआ। रत्न से भरा वह घड़ा (कलश) उसी को दे दिया, क्योंकि कुम्हार की नैतिकता व प्रामाणिकता देखकर राजा बड़ा प्रभावित हुआ।

जो व्यक्ति नैतिक और ईमानदार होता है, उसकी पूजा सर्वत्र होती है। उसका विकास होता है। सम्मान मिलता है। अतः हर व्यक्ति को नैतिकता के प्रति निष्ठा रखनी चाहिये।

नैतिक मानव का अमित, होता दिव्य विकास।
'मुनि कन्हैया' नीति से, जम जाता विश्वास ॥

मूर्ख से दूर

पुत्र नीलम ने अपनी मां से पूछा—माताजी ! मेरे पिताजी कहां गये ? मां ने गद्गद् स्वर में कहा—बेटा ! वे परलोक पहुंच गये। पुत्र ने कहा—मां ! पिताजी क्या कारोबार करते थे ? मां बोली—पुत्र ! वे नौकरी किया करते थे। पुत्र—मैं भी नौकरी करूंगा। मां—पुत्र ! अभी तेरी अवस्था बहुत छोटी है। नौकरी करने

वालों में निम्नोक्त गुण अवश्य होने चाहिये—

(१) नम्रतापूर्वक व्यवहार करना।

(२) मालिक की आज्ञानुसार चलना।

(३) अपने आपको छोटा समझना।

(४) मालिक की जय-जयकार करना।

पुत्र ने हाथ जोड़कर कहा—माताजी ! इन चारों ही शिक्षाओं को मैं कभी नहीं भूलूंगा। मां का आशीर्वाद लेकर वह नौकरी के लिए रवाना हो गया।

चलते-चलते वह जंगल में पहुंचा। अनेक शिकारी मिलजुल कर हरिणों की खोज में बैठे थे। उस लड़के ने उन्हें देखकर जोर से जय-जयकार किया। हरिण सब भाग गये। उन्हें बहुत क्रोध आया। पकड़कर लड़के को पीटा। नीलम ने सारी बात बता दी। शिकारियों ने उसको शिक्षा देते हुए कहा—ऐसे अवसरों पर जोर से नहीं चिल्लाना चाहिए। चुपचाप मन्द गति से आना चाहिए।

वह आगे बढ़ा। नदी के घाट पर धोबी कपड़े धो रहे थे। लड़का दबे पांवों धोबियों की ओर चला। कपड़ों की प्रतिदिन चोरी होती थी। चोर का पता लग नहीं रहा था। उस नीलम को दबे पांव आते देख कर धोबियों ने सोचा—यह चोर होना चाहिए। धोबियों ने उसे पकड़ कर पीटना शुरू किया। उसने सारी बात सुनाई। धोबियों ने शिक्षा देते हुए कहा—ऐसे अवसर पर ऐसा बोलना चाहिए—'ऐसे प्रसंग कभी न आयें।'

वह आगे चला। बारात मिली। दुल्हा और दुल्हन को देख कर वह बोल पड़ा—ऐसे प्रसंग कभी न आयें। वहां भी उसको पीटा गया। लोगों ने समझाते हुए कहा कि ऐसे समय पर कहना चाहिए—'ऐसे प्रसंग बहुत से आयें, हमेशा मैं यही देखूं।'

आगे चलते-चलते मार्ग में एक कैदी मिला। पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई थीं। उसे देखकर वह जोर से बोला—ऐसे प्रसंग बार-बार आयें। उसकी फिर मरम्मत हो गयी।

वह चलता-चलता किसी नगर में पहुंचा। ठाकुर साहब के घर पर नौकरी कर ली। एक दिन ठकुरानी ने उस लड़के को कहा—ठाकुर साहब को बुला लो भोजन ठण्डा हो रहा है। वह गया। ठाकुर साहब अपने मित्रों में बैठे गपशप कर रहे थे। लड़के ने दूर से ही जोर से कहा—चलिये ठाकुर साहब, ठकुरानी जी भोजन के लिए बुला रही हैं। वे बड़े लज्जित हुए। घर में आकर बोले—अरे मूर्ख ! अनेक व्यक्ति बैठे हों, धीरे से कान में कहना चाहिये। घर में अचानक आग लग गयी। लड़का ठाकुर के पास पहुंचा। धीरे से कान में कहा—ठाकुर साहब, चलिये, घर में आग लग गयी है। ठकुराइन आपको बुला रही है। ठाकुर लड़के की मूर्खता पर

बड़ा बिगड़ा। अरे मूर्ख ! ऐसे समय में घर को छोड़ कर कहीं भी नहीं जाना चाहिये बल्कि हो सके तो पानी से, गोबर से, गो-मूत्र से वहीं रहकर आग बुझाना चाहिये। उसने कहा—अच्छा आपकी बात को कभी नहीं भूलूंगा। कदम-कदम पर ध्यान रखूंगा। एक दिन सर्दी के मौसम में ठाकुर साहब स्नान कर रहे थे। सर्दी के कारण उनके शरीर में से भाप निकल रही थी। उस लड़के ने समझा कि ठाकुर के शरीर मे आग लग गयी है। बस वह गोबर, गो मूत्र, मिट्टी, पानी जो कुछ भी हाथ लगा, उठा-उठा कर ठाकुर साहब के शरीर पर फेंकने लगा। ठाकुर जोर से चिल्लाया। अनेक व्यक्ति एकत्रित हो गये। सब बात का पता लगते ही हंसते-हंसते सबके पेट दुखने लगे। संसार में कहावत है कि 'मूर्ख ने टको देणो पर अक्ल नहीं देणी'। मूर्ख मनुष्य से हरदम दूर रहना चाहिये। मूर्ख को जो नौकरी पर रख लेता है उसे ठाकुर साहब की तरह पश्चाताप करना पड़ता है।

मूर्ख मनुज से सर्वदा, रहता है जो दूर।
'मुनि कन्हैया' विज्ञ वह, होता सफल जरूर ।।

प्रकृति के अनुरूप गति

एक ब्राह्मण था। उसके तीन लड़कियां थीं। ब्राह्मण की अपेक्षा ब्राह्मणी बड़ी समझदार एवं दक्ष महिला थी। वह चाहती थी कि तीनों को अच्छा घर व अच्छा वर मिले, जिससे मेरी लड़कियां अपने जीवन को सुख से व्यतीत कर सकें। लड़कियों का बाल्यकाल जवानी में परिणत हुआ, तीनों सयानी बनी। एक दिन अच्छा समय देखकर मां ने अपनी बेटियों को प्रशिक्षण देते हुए कहा—प्यारी पुत्रियों ! अब तुम तीनों ससुराल में जाने वाली हो। सास-ससुर की सेवा के साथ-साथ विवाह होते ही अपने पति को लात से मारना।

माता-पिता ने उचित घर व सुयोग्य वर देखकर तीनों की शादी कर दी। तीनों कन्याएं अपने-अपने ससुराल पहुंचीं। माता की शिक्षा के अनुसार पहली लड़की ने अपने पतिदेव को लात मारी तो वह उसके चरणों को हाथ से पकड़कर दबाने लगा और मधुर भाषा में बोलते हुए कहा—हे देवी ! हे चक्रेश्वरी ! तुम्हारे चरण फूल जैसे कोमल हैं और मेरे पैर पाषाण जैसे कठोर हैं। तुझे तकलीफ हुई होगी। लड़की ने मां को सारी बात बता दी। मां ने उसकी बात सुनकर कहा — बिटिया ! तुझे किसी भी प्रकार की चिंता करने की अपेक्षा नही है, पति तेरा दास बनकर रहेगा।

दूसरी लड़की ने भी वैसा ही प्रयोग किया। अपने पति को लात मारी। पति के सिर पर साधारण सा क्रोध छा गया। कुछ ही समय के पश्चात् उसका गुस्सा शांत

हो गया। लड़की ने आकर मां के सामने सारी घटना प्रस्तुत कर दी। मां बोली—बेटी ! तू बड़ी किस्मत वाली है। पति तेरा दास बनकर रहेगा। लेकिन तुझे कुछ ध्यान रखना है। तेरे द्वारा ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिये जिससे तेरा पति अप्रसन्न हो जाये। पति की आज्ञा में चलते रहना तेरे लिए श्रेयस्कर होगा।

तीसरी लड़की ने भी उसी प्रकार मां के आदेश का पालन किया। जब उसने पति के ऊपर पाद-प्रहार किया तो उसके पति ने रुष्ट होकर उसको खूब पीटा। और वह गुस्से में लाल-पीला होकर वहां से उठकर चल पड़ा। लड़की अपनी मां के पास घबराती हुई आई और बीती घटना से अवगति कराई। मां ने कहा—बेटी ! तनिक भी चिंता करने की जरूरत नहीं है। तुझे सर्वोत्तम वर मिला है। तू दक्षता से रहना। अपने पति की कभी भी अवज्ञा मत करना। उसकी देवता के समान पूजा करना, क्योंकि नारी के लिए पति ही देवता है। आखिर अपने पति के पास जाकर क्षमा मांगते हुए उसने कहा—हे प्राणदेव ! मैंने आपका अविनय किया। कृपया आप मुझे क्षमा करेंगे, ऐसा आत्म-विश्वास है। हमारे कुल की परम्परा चली आ रही है, इसलिए मैंने ऐसा किया है। अन्यथा ऐसा दुर्व्यवहार कभी नहीं करती। पति-पत्नी दोनों आनन्द से रहने लगे।

जिसकी जैसी प्रकृति होती है उसी के अनुरूप जो गति करता है, वह हर क्रिया में सफल होता है। मानव सामाजिक एवं सांसारिक क्षेत्र में पारस्परिक प्रेम व शांति से तभी रह सकता है जब व्यक्ति अन्य की प्रकृति के अनुसार अपनी प्रकृति को मिलाकर चलता है।

प्रकृति मिलाकर प्रकृति से, चलता जो इन्सान।
'मुनि कन्हैया' सुख सही, मिलता उसे महान ॥

त्याग की पूजा

मगध देश में खानुमुत्त ग्राम का राजा कूटदन्त विप्र बहुत बड़ा विद्वान था। वेदों का ज्ञाता था। उसके मधुर व सरस व्यवहार से सारा नगर बहुत ही प्रसन्न था। एकदा वहां पर बुद्ध भगवान् का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिए परिवार के परिवार आने लगे। नृप भी तैयारी करने लगा। ज्ञाति जनों ने कहा—राजन् ! आप बुद्ध के पास क्यों जाते हैं ? वहां जाना श्रेयस्कर नहीं है। बुद्ध का गौरव बढ़ेगा। अतः आपको कुछ चिंतन करना चाहिए।

नृप ने कहा—ऐसा क्यों होगा ? वे बोले—राजन् ! आप वेदों के ज्ञाता हैं, नगर के सम्राट् हैं, सम्पत्तिशाली हैं, सर्व-शक्तिमान हैं। नृप ने मुस्कुराहट की भाषा में कहा—आपने केवल स्वार्थ भरी दृष्टि से सोचा है। बुद्ध मेरे से बहुत

महान हैं। मैं वेदों का ज्ञाता हूं और उन्होंने वेदों को जीवन में उतारा है। वेदों के अनुरूप उनके आचरण हैं। वे संसार से निर्लिप्त हैं, मैं लिप्त हूं। उन्होंने वैभव और सम्पदा का त्याग किया है। संग्रह करने वालों की अपेक्षा त्याग करने वाला व्यक्ति महान होता है। उन्होंने आगे कहा—बुद्ध राजकुमार थे। उनका परिवार हर दृष्टि से शालीन था, फिर भी उन्होंने सब कुछ छोड़ा। आदर्श के पथ पर चल पड़े। महात्मा बने। अध्यात्म में रमण करते हुए जनता को दिशा-उद्‌बोधन देते हुए यहां पधारे हैं। हजारों लोग उनके सतसंग से लाभ उठा रहे हैं। मैं भी वहां जा रहा हूं।

नृप भगवान् बुद्ध के पास गया और सतसंग करने लगा।

इस आख्यान से यह प्रतीत होता है कि उस युग में भी चरित्र का कितना सम्मान था, महत्व था। चरित्र ही मानव की सही सम्पदा है, निधि है। चरित्रवान की सर्वत्र पूजा है, प्रतिष्ठा है। अतः हर मानव को अपनी चारित्रिक विशुद्धि का ख्याल रखना चाहिए।

पूजा होती त्याग से, मिलता अति सत्कार।
बुद्ध-चरण में झुक गया, कूटदन्त नरपाल॥

दामाद का विवेक

एक बुद्धिशील दामाद था। स्वसुर का स्वर्गवास होने पर वह ससुराल गया। साले तथा उसकी धर्मपत्नी ने उसका बड़ा स्वागत किया। सम्मान दिया। भोजन के उपरान्त वह पलंग पर लेटा-लेटा बोल पड़ा—स्वसुर गृह निवासः स्वर्ग तुल्यो नराणां। ससुराल में निवास करना स्वर्ग के समान सुखकर है। न तो यहां कमाई करनी पड़ती है और न ही कभी दुकान में भी जाना पड़ता है। बड़े सुख से नींद आती है। यहां जीवन बड़ा बेफिक्र रहता है। अब तो मुझे घर जाना ही नहीं चाहिए। यहीं पर स्थायी रहने में आनन्द है।

साले की धर्मपत्नी बड़ी विदुषी थी। समझदार व विवेकशील थी। उसने सोचा—कहीं यह यहीं पर न जम जाये। बड़ी दक्षता से उत्तर देते हुए कहा—"यदि वा विवेकी पंच वा षट् दिनानी" अर्थात् जो विवेकशील दामाद होते हैं, वे तो अपने ससुराल में पांच या छह दिन ही रहते हैं, अधिक नहीं। किन्तु वह दामाद पक्का पावणा था, इस छोटे से वाक्य से वह कहां हिलने वाला था? जोर से बोल पड़ा—'दधि, घृत मधु लोभाद् मासमेकं वसेज्येत्' अर्थात् जिस ससुराल में दही, घृत व पकवान मिलते हैं, वहां तो दामाद को एक महीना रहना चाहिए।

उसने सोचा ये तो एक महीना यहां रहने चाहते हैं। फिर भी उन्हें चतुराई से

समझाना मेरा कर्तव्य है। बड़े कोमल शब्दों में प्रत्युत्तर देते हुए कहा—वीर ! एक महीना तो आप बड़े आनन्द से रहें, किन्तु एक दिन भी अगर ऊपर रह गये तो— "तदुपरि यदि दिनमेकं पाद-रक्षा प्रयोग:" आपका सत्कार जूतों से ही होगा। यहां अधिक रहने में कोई लाभ नहीं है।

दामाद समझ गया। रहना किसको था ? दिल की बात निकालनी थी। उदारता का परिचय मिला। एक दो दिन रहकर ससुराल से विदाई ली। घर पहुंचा। यह है बुद्धिमत्ता का परिणाम। यह है विवेक का दिव्य उदाहरण।

भगवान महावीर ने कहा है—"विवेगे धम्म माहिए" विवेक में ही धर्म है। हर क्रिया में, हर प्रवृत्ति में विवेक की महती आवश्यकता है। विवेक मानव का मोल बढ़ाता है। विवेक ही मानव जीवन की अमूल्य सम्पदा है, निधि है।

> रखता जो हर कार्य में, प्रतिदिन हृदय विवेक।
> 'मुनि कन्हैया' विश्व में, बन जाता नर छेक॥

लक्ष्मी स्थिर नहीं

राजा भोज दानवीर था। जो भी आता उसे मुक्त हाथों से दान देता। किसी को भी रिक्त हाथों नहीं लौटाता। प्रतिदिन लाखों-लाखों का दान देते हुए देखकर मुख्यमंत्री ने सोचा—क्या करें, कैसे नृप को समझायें, इस प्रकार दान देना उचित नहीं है। राजा को साक्षात् कहने में वह असमर्थ था। राजा के शयनागार की दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में उसने लिखा—

"अपदर्थं धनं रक्षेत्" आपत्ति के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये। राजा नींद से उठा। राज्य सभा में जाते-जाते दीवार पर अक्षरों को पढ़ा। उसके नीचे स्वयं दूसरा चरण लिख देता है—

"श्रीमत्तामापद: कुत:" श्रीमानों को आपत्ति कहां ? दूसरे दिन मंत्री ने दूसरा चरण लिखा देखकर तीसरा चरण लिख दिया—

"साचेदपगता लक्ष्मी:" यदि वह लक्ष्मी चली आये तब ! फिर अगले दिन राजा ने चौथा चरण भी लिखा—

"सञ्चितार्थो विनश्यति" संग्रह किया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है।

मुख्यमंत्री राजा के श्रीचरणों में उपस्थित होता है। हाथ जोड़ कर अवनत-शिरसा बड़े विनय भाव से बोला—राजन् ! मेरी बुद्धि पर ध्यान देने की अपेक्षा नहीं है। आप तीक्ष्ण बुद्धि के धनी हैं। विशेषज्ञ हैं। चिन्तनशील हैं। मेरे जैसे अल्पज्ञ के अपराध को क्षमा कीजिये। आपकी गहरी तत्त्व भरी विचारधारा का स्वागत कौन नहीं करेगा ?

लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती। कभी कहीं, कभी कहीं! चाहे लाखों-करोड़ों का धन संचय कर लीजिये। उसका भी एक दिन विनाश अवश्य होता है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति धन का संग्रह कभी भी नहीं करते।

संचित धन का एक दिन, होगा स्वतः विनाश।
लक्ष्मी चपला सम चपल, वीर वचन यह खास॥

मुनि-चर्या में अटल

उज्जयिनी नगरी में धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। उसके एक पुत्र था। दोनों के दिल में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। पिता ने पुत्र सहित दीक्षा ग्रहण की। शुद्ध मन से संयम का पालन करते हुए दोनों ही मुनि ग्रामानुग्राम विहरण कर रहे हैं। एकदा विहार करते-करते मार्ग में भयंकर अटवी आ गई। गरमी का समय था। पानी के अभाव मे बालक मुनि आकुल-व्याकुल हो गया। गला सूखने लगा। आगे जाते-जाते नदी आ गई। पिता के मन में पुत्र के प्रति मोह था, उन्होंने सोचा—मैं आगे चला जाऊं, पीछे से यह चेला नदी में से पानी पी लेगा तो जीवित रह जायेगा। प्रायश्चित देकर शुद्ध कर दूंगा।

गुरु ने शिष्य से कहा—तू धीरे-धीरे आ जाना। मैं आगे जाता हूं। शिष्य पीछे रह गया। तृषा से अशांत शिष्य नदी के पास आते ही विचलित हो गया। नदी के तट पर बैठा। निज पात्र से पानी निकालता हुआ चारो तरफ देखने लगा, कोई देख न ले। झट आत्म ज्ञान से चिंतन करने लगा—अरे! तू यह क्या कर रहा है? मुझे कोई नही देख रहा है, किन्तु तीर्थंकर देव व सिद्ध भगवान तो देख ही रहे हैं। यह सचित पानी है, इसकी एक बूंद में असंख्यात जीव हैं। असंख्यात जीवों की हत्या करना बुद्धिमत्ता नहीं है। मरना स्वीकार है परन्तु सचित पानी श्रेयस्कर नहीं है। ऐसा चिंतन कर धीरे से पानी को वापिस नदी में उडेल दिया और हाथों को सुखाकर वहीं पर अनशन कर दिया। आखिर काल धर्म को प्राप्त कर स्वर्ग में पहुंच गया।

अवधि ज्ञान के माध्यम से उसने अपना पूर्व भव देखा। सोचा तृषा परिषह में अटल रहा उससे यह देव ऋद्धि संप्राप्त हुई। वह मृत कलेवर में प्रविष्ट होकर संतों के पास पहुंचा, सबको वन्दना करने लगा, किन्तु वह अपने पिता मुनि को वन्दना नहीं करता है। उन्होंने कहा—तू सब सन्तों को वन्दना करता है किन्तु मुझे नहीं कर रहा है, इसका क्या कारण? वह बोला—आपने मुझे सचित पानी पिलाने की दृष्टि से पीछे छोड़ा। यह मोह आपके लिए उचित नहीं था। जब तक आप इसका प्रायश्चित नहीं कर लोगे तब तक मैं वन्दना नहीं करता। पिता मुनि

ने गहराई से चिंतन किया कि वास्तव में इसका कहना यथार्थ है। झट प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुए।

उसी कलेवर में से निकल कर वह देव प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुआ और बोला—गुरुदेव! मैंने मेरे नियम को खण्डित नहीं किया। तृषा परिषह को समाधिपूर्वक सहन करता हुआ अनशन कर लिया। उसी दृढ़ धर्मानुष्ठान के कारण मैं उच्च ऋद्धि सम्पत्ति वाला देव बना और आपके भी चरणों में हाजिर हुआ हूं। वह देव इतना कह कर अपने स्थान में चला गया।

उपसर्ग व कष्ट आने पर भी जो साधु अपनी चर्या में मजबूत रहता है, संयम के नियमों में अडिग रहता है वह निश्चित रूप से धर्माराधक बनकर अपनी आत्मा का कल्याण करता है।

मुनि-चर्या में अटल जो, रहता मुनि मतिमान।
धर्माराधक बन वही, करता आत्मोत्थान॥

धन का लोभी

एक चोर था। उसने अपने घर में एक बहुत बड़ा कुआ खोदा। चोरी करके जो भी धन लाता वह उसे कुए में छिपा देता। कुछ ही समय बाद उस चोर की शादी हुई। सांसारिक सुखों का उपभोग करते-करते उसकी स्त्री गर्भवती बन गई। चोर ने सोचा—अगर उसके पुत्र हो गया तो वह मेरा अधिकार छीन कर घर पर आधिपत्य जमा लेगा। तब मैं क्या करूंगा? ऐसा दुष्ट चिंतन कर उसने गर्भ सहित स्त्री को मारकर कुए में डाल दिया।

चोर ने फिर दूसरा विवाह कर लिया। वह स्त्री भी गर्भवती बनी। उसको भी वैसे ही मारकर कुए में डाल देता है। फिर तीसरी बार उसने अति सुन्दर कन्या के साथ विवाह किया। वह गर्भवती बनी। उसके साथ अत्यधिक मोह एवं प्रेम होने के कारण वह विषय भोग में इतना विह्वल बन गया कि मारने की इच्छा होते हुए भी वह उसे मार नहीं सका।

स्त्री के पुत्र उत्पन्न हुआ। क्रमशः वह बड़ा होने लगा। कुछ ही समय में वह हर प्रवृत्ति में दक्ष व निपुण बन गया। चोर मन ही मन सोचने लगा—हाय! काम अच्छा नहीं हुआ। अब वह मेरी स्त्री और मेरा लड़का मेरे धन के कुए पर कब्जा कर लेंगे। बड़ी समस्या हो गई। अब क्या करूं? यदि मैं इस नारी को भी पूर्ववत मारकर कुए में डाल देता तो लड़का होता ही नहीं। तब आज मुझे चिंता का शिकार क्यों होना पड़ता?

वीर! घबराने की जरूरत नहीं है। हुआ सो हुआ "गते शोको न कर्तव्यः"।

अब भी समय है। दोनों को मारकर कुएं में डाल दूं। वह धन का लोभी कर्तव्य को भूलकर अपनी स्त्री को मारकर कुए में डाल रहा है। उस नव वर्षीय बालक ने यह घटना देखी। जोर से चिल्लाया, आक्रन्दन करता हुआ वह वहां से दौड़ता-दौड़ता राज दरबार में पहुंचा। राजा ने सारी हकीकत पूछी। बालक द्वारा यथार्थ स्थिति का बोध होते ही राज सिपाही वहां पहुंचे। चोर को पकड़ा। कुए की तलाशी ली गई। कुए में से अथाह धन मिला और मनुष्य की हड्डियां भी प्राप्त हुई।

राजा ने चोर को ललकारते हुए कहा—अरे अधम ! अरे पापिष्ठ ! स्त्री को मारकर कुए में डाला। ऐसा जघन्य काम करते तुझे तनिक भी संकोच नहीं हुआ ! धिक्कार है तेरे जीवन को। धिक्कार है तेरे लोभ को। क्या यह धन तेरे साथ जायेगा ? आखिर राजा के आदेशानुसार उसे शूली पर चढ़ा दिया गया। मरकर वह नरक में चला गया। सारी सम्पत्ति उस बालक को मिल गई।

जो लोभ करता है उसको इह भव और पर भव दोनों जगह दुःख पाना पड़ता है। अतः धन का लोभी कभी भी नहीं बनना चाहिए।

मानव धन का लालची, पाता दुःख महान्।
इह भव पर भव बिगड़ता, होता अति अपमान ॥

बुढ़िया के प्रश्नोत्तर

एक दिन राजा भोज और माघजी पंडित दोनों पर्यटन हेतु शहर से काफी दूर चले गए। वापस आते समय नगर का मार्ग भूल गए। राजा भोज ने माघजी से कहा—किसी से मार्ग पूछने में ही लाभ है। माघजी ने कहा—राजन् ! खेत में बुढ़िया दिखाई दे रही है। वहां चलें। अवश्य वह मार्ग बतला देगी। दोनों वहां पहुंचे। पूछा—बहिन ! यह मार्ग कहां जाता है ?

बुढ़िया—भाई साहब ! मार्ग तो यहीं रहेगा, इस मार्ग से लोग इच्छित स्थल पर पहुंच सकते हैं। मुझे बताइये, आप दोनों कौन हैं ?

माघजी—हम दोनों बटाऊ (मुसाफिर) हैं।

बुढ़िया—संसार में बटाऊ तो दो हैं—सूरज और चन्द्रमा। आप कौन हैं ?

माघजी—बहिन ! हम मेहमान हैं।

बुढ़िया—आप मेहमान नहीं हैं। मेहमान तो संसार में दो ही हैं—धन और यौवन।

माघजी—हम राजा हैं।

बुढ़िया—आप कौन से राजा हैं ? राजा तो दो हैं—पहला इन्द्र और दूसरा यम। वास्तव में आप कौन हैं ?

माघजी—हम हैं भारी क्षमा।

बुढ़िया—वास्तव में क्षमाशील है धरती और दूसरी है नारी। हर स्थिति में क्षमा रखती है। बताइये तो सही कि आप कौन हैं ?

माघजी—बहिन ! हम साधु हैं।

बुढ़िया—साधु तो संसार में दो हैं—एक शील और दूसरा संतोष। मेरी समझ में नहीं आ रहा आप कौन हैं ?

माघजी—हम हैं चोर।

बुढ़िया—आप कौन से चोर हैं ? चोर तो वास्तव में दो ही हैं—एक व्यभिचारी और दूसरा चुगलखोर। बताइये आप कौन हैं ?

माघजी—हम परदेशी हैं।

बुढ़िया—दुनिया में परदेशी दो हैं—एक पवन और दूसरा जीव। आप बोलिये कौन हैं ?

माघजी—हम चतुर हैं।

बुढ़िया—आप कौन से चतुर हैं ? चतुर तो वास्तव में दो हैं—एक धनी और दूसरा पाजी। बताइये आप कौन हैं ?

माघजी—हम कौन हैं, हम नहीं जानते। तू ही जानती है।

बुढ़िया—हां, मैं समझ गई आप कौन हैं। आप एक तो राजा भोज हैं, दूसरे माघजी पंडित हैं।

राजा भोज और माघजी पंडित दोनों ही बुढ़िया की अनुपम बुद्धि से बहुत ही प्रभावित हुए। बुढ़िया को अपने साथ नगर में ले गए और राज्य सभा में उसे सम्मानित करते हुए उसकी कमाल कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

पावन प्रज्ञा की चतुरता ही मानव को आकर्षित करने में सक्षम होती है। बुद्धि के बिना मानव किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता। बुद्धिमान का कदम-कदम पर सम्मान होता है।

बुढ़िया को चातुर्य से, मिला अमित सम्मान।
'मुनि कन्हैया' बुद्धि का, है वैशिष्ट्य महान॥

मति-नैपुण्य

राजा भोज के राज्य में संस्कृत भाषा का प्रचुरतम प्रचार था। केवल विप्र समाज में ही नहीं, अन्य समाज में भी संस्कृत मनीषियों की कमी नहीं थी। राजा भोज

को संस्कृत भाषा बड़ी प्रिय लगती थी। इस भाषा के प्रचार-प्रसार में महीपति का अपूर्व योगदान था।

एकदा राजा भोज स्नान करने के लिए तैयार हो रहे थे। दासी स्नान आदि की सामग्री लेकर आ रही थी। कामदेव-बाण से प्रताड़ित मद-विह्वला उस दासी के हाथ से अचानक स्वर्ण का घड़ा गिर पड़ा। तब राजा सभा में उपस्थित होता है। अनेकों-अनेक प्रकांड विद्वानों से सभा-हॉल खचाखच भर जाता है। राजा भोज ने कवि कालिदास को सम्बोधित करते हुए कहा—हे कविराज ! मैं एक समस्या दे रहा हूं। इसकी पूर्ति सम्यग्तया होनी चाहिए। राजा ने समस्या पढ़ते हुए कहा—"टटं ट टंटं टट टं टटं टम्"।

कवि कालिदास की प्रतिभा अद्वितीय थी। उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा चिंतन किया। गहराई से सोचा व अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते हुए उस समस्या की पूर्ति ऐसे की—

राजाभिषेक मदविह्वलाया, हस्ताच्च्युतो हेम घटो युवत्याः।
सोपान मार्गे प्रकटोति शब्दं, टटं ट टंटं टट टं टटं टम्॥

यह सुनते ही राजा भोज के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा। मन ही मन सोचने लगा—कालिदास जैसा कवि संसार में विरला ही मिलेगा। महाराज को स्नान कराती हुई कामपीड़िता तरुणी के हाथ से स्वर्ण का घड़ा सीढ़ियों से गिर पड़ा जिससे जोर से शब्द हुआ—ट टं ट ट······।

कविराज के मति-नैपुण्य से प्रभावित होकर उसको यथेच्छित पारितोषिक देते हुए राजा भोज ने राज्य सभा के उच्चतम सदस्यों में मुक्त कंठ से प्रशंसा व स्तवना की व कहा—मुझे बड़ा गौरव है कालिदास जैसे तेजस्वी आशु कवि पर। ऐसे कवियों से राज्य की शोभा बढ़ती है। संसार में मति-नैपुण्य वाले व्यक्ति की सर्वत्र पूजा होती है। कदम-कदम पर उसे सम्मान मिलता है।

जग में मति-नैपुण्य की, श्लाघा हुवे विशेष।
'मुनि कन्हैया' स्तुत्य है, पंडित हृदय हमेश॥

बहरों से परहेज

सुन्दरपुर नगर में मोटूराम नाम का एक कृषिकार रहता था। उसके परिवार में चार ही व्यक्ति थे। मोटूराम तथा उसकी धर्मपत्नी, तीसरा उसका पुत्र एवं पुत्र-वधू। चारों व्यक्ति बहरे थे। कानों से बिलकुल ही सुनाई नहीं देता था। एक दिन मोटू का पुत्र खेत में हल चला रहा था। एक पथिक इधर-उधर भटकता हुआ खेत

में आ पहुंचा। उस पथिक ने मृदु भाषा में नगर का मार्ग पूछा। वह किसान-पुत्र बहरा था ही, उसने सोचा कि मुसाफिर कह रहा है कि तुम्हारा बैल लड़ाकू है। हल-वाहक ने कहा—अरे मूर्ख! ऐसे कैसे बोलता है। मेरा बैल तनिक भी लड़ाकू नहीं है। फालतू बकवास करने की जरूरत नहीं है। मेरा बैल तनिक भी लड़ाकू नहीं है। पथिक ने कहा—भैया! मैं तो नगर का मार्ग पूछ रहा हूं। बैल के विषय में मैंने कुछ नहीं कहा लेकिन वह प्रत्युत अपना हल उठाकर बटोही को मारने दौड़ा। पथिक ने सोचा—यहां ठहरने में लाभ नहीं है। यह तो पागल है। वह वहां से चल पड़ा।

कुछ ही दिनों पश्चात किसान-पुत्र की पतिव्रता अपने बल्लभ के लिये खाना लेकर आयी। वह किसान-पुत्र जोर से बोला—देरी से क्यों आई? उस महिला ने सोचा पतिदेव फरमा रहे हैं कि खाने में नमक बहुत ही स्वल्प है। उसने कहा—मैं कुछ नहीं जानती। यह खाना तुम्हारी मां ने बनाया है।

वह औरत घर पहुंची। सास को कहने लगी—तुम्हारा पुत्र कहता है कि खाने में नमक कम है। उस समय उसकी सास सूत काट रही थी। उसने समझा बहू कह रही है कि सूत मोटा है। उसने कहा—मेरी बात सुनो। सूत पतला हो या मोटा बूढ़े के काम में आ जायेगा। उसने बूढ़े को बुलाकर कहा—यह सूत बहुत मोटा है, तुम्हारे काम आ जायेगा। बूढ़ा उस समय तिलों की रखवाली कर रहा था। उसने समझा बुढ़िया कह रही है—तुमने तिल खा लिये हैं। बूढ़े ने कहा—मैं तुम्हारी कसम खाकर कहता हूं मैंने एक भी तिल का भक्षण नहीं किया है।

ऐसे बहरे मनुष्यों के सामने किसी प्रकार का प्रलाप करना वृथा है।

जो व्यक्ति सोचे बिना, देखे बिना बोलते हैं उनको पश्चाताप करना पड़ता है। बहरों के सामने बोलना, उनको शिक्षा देना राख में घृत उंडेलना है।

बहरे नर के सामने, करना वृथा प्रलाप।
बिन सोचे जो बोलते, करते पश्चाताप॥

मूल में पानी

एक बुढ़िया थी। उसके एक ही लड़का था। वह बड़ा विनीत व आज्ञाकारी था। बेटे ने मां से निवेदन करते हुए कहा—माताजी! आप वृद्ध हैं। मेरे लायक किसी भी प्रकार का काम हो तो फरमाने की कृपा करना। मां बूढ़ी तो थी ही, बीमार भी हो गई। मां को फूलों की वाड़ी बहुत प्रिय थी। उसने कहा—बेटा! अब मेरी शक्ति क्षीण हो गई है। अधिक लम्बा चौड़ा काम अब मेरे से नहीं हो सकता। इसलिए फूलों की वाड़ी में जाओ और उसकी सार-सम्हाल करो।

बेटा बाड़ी में पहुंचा और मन ही मन सोचने लगा—मां तो अनपढ़ है। मैं हूं पढ़ा लिखा। मैं हर कार्य मेरी बुद्धि से करूंगा। मुझे किसी की सलाह लेने की अपेक्षा नहीं है। सुन्दर-सुन्दर फूल खिल रहे थे। मनमोहक सौरभ से दिशा-मण्डल सुरभित हो रहा था। उस लड़के ने फूलों को सींचना प्रारम्भ कर दिया। पांच-सात दिनों के बाद वह बुढ़िया अचानक बगीचे में पहुंच जाती है, उसने बगीचे को ध्यानपूर्वक देखा, फूलों के पौधे सूख रहे हैं। फूल भी मूर्छित जैसे लगते हैं। बुढ़िया ने पूछा—बेटा! क्या तूने पौधों को पानी नहीं पिलाया?

बेटे ने बड़े विनम्र भाव से कहा—मां! मैंने मेरे दिमाग से सभी वृक्षों को पानी पिलाया है। मैंने तुम्हारी तरह फालतू पानी तनिक भी नहीं बहाया है। मां ने पूछा—बेटा! पानी कैसे पिलाया है? बेटा बोला—मां! तुम पानी पिलाती हो नीचे और मैं पिलाता हूं ऊपर। तुम्हारा पानी मिट्टी में फालतू जाता है। और मैंने सारा का सारा पानी फूलों पर उंडेला है।

मां मुस्कराहट की भाषा में बोली—बेटे! तुम बिलकुल अनभिज्ञ हो। वृक्षों को पानी कैसे सींचा जाता है, तुम नहीं जानते। पानी फूलों को नहीं सींचा जाता है। सींचा जाता है मूल को। जो व्यक्ति मूल को सींचता है, उसके फूल अवश्य ही खिलते हैं, फलते हैं। जो मानव फूलों को सींचता है, उसके फूल मुरझा जाते हैं।

मूल को सींचने वाला व्यक्ति हर दृष्टि से सफल होता है। मूल को सींचे बिना बगीचा नहीं खिल सकता है, न ही फल सकता है। अतः बुद्धिमान मानव तो मूल को सींचने में ही अपना समय लगाता है।

कभी मूल को सींचना, नहीं भूलता दक्ष।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, फल पाता प्रत्यक्ष॥

मूर्खता की पराकाष्ठा

एक गरीब स्त्री किसी सेठ जी के घर जा पहुंची। दीपमालिका का सुन्दर व मंगल दिन था। इस शुभ अवसर पर सेठानी ने चूड़ा पहना। वह चूड़ा बहुत ही कीमती व हाथी दांत का था। हाथी दांत से निर्मित चूड़े को देखकर आस-पास की महिलाएं उसे बधाइयां देने लगीं। उस चूड़े को देखने के लिए सैकड़ों महिलाओं का याता-यात चालू रहा। यह सब रौनक देखकर वह गरीब की स्त्री भी सोचने लगी—मैं भी हाथी दांत का चूड़ा पहनूं और आस-पास की स्त्रियों की बधाइयां प्राप्त करूं। मेरे चूड़े को भी देखने के लिए बहुत से लोग आयेंगे। मेरी इज्जत व प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

वह अपने घर पहुंची। पतिदेव के चरणों में बड़ी विनम्रता पूर्वक निवेदन

करती हुई बोली—पतिदेव ! मुझे हाथी दांत का चूड़ा चाहिए। कृपया बाजार से खरीद कर जल्दी लाकर दीजिये। पति बोला—तेरे में विवेक व अक्ल नहीं है। घर में खाने के लिए पूरी रोटी नहीं है। कितनी कठिनाई से परिवार का पालन-पोषण कर रहा हूं, मैं ही जान सकता हूं। तुझे क्या पता ? हाथी दांत का चूड़ा काफी मंहगा है। इसलिए चूड़ा नहीं ला सकता। फालतू बात करने में कुछ भी लाभ नहीं है। समझदार व्यक्ति वही कहलाता है जो अपने घर की स्थिति को देखकर खर्चा करता है, अन्यथा उसे नुकसान उठाना पड़ता है।

पत्नी आवेश में आकर जोर से बोली—पतिदेव ! सुन लीजिए मेरा निर्णय। यदि चूड़ा नहीं आयेगा तो घर में चूल्हा नहीं जलेगा। घर का कोई भी काम नहीं करूंगी। पति ने मीठे-मीठे स्वर में समझाते हुए कहा—देखो, आग्रह करना अच्छा नहीं है। गहराई से सोचो। घर का काम किए बिना जीवन की गाड़ी कैसे चल सकती है ! बहुत कहने पर भी वह कहां मानने वाली थी। बेचारा बाजार में गया और किसी सेठ से कर्ज लेकर चूड़ा लाया। स्त्री ने बड़े प्रेम से चूड़ा पहना, झोंपड़ी के दरवाजे पर आकर बैठ गई। हाथों को सामने लटका रही है। काफी समय तक वहां बैठी रही किन्तु कोई भी व्यक्ति उसे देखने के लिए नहीं आया। चार-पांच दिन तक यही क्रम चला, कोई नहीं आया। तब उसके मन में प्रदर्शन की भूख जागृत हुई। उसने झोंपड़ी के आग लगा दी। देखते-देखते आग बढ़ने लगी। चारों ओर से लोग दौड़े। लोगों ने आग पर तो काबू प्राप्त किया, किन्तु उसकी झोंपड़ी जल कर राख हो गई। लोगों ने संवेदन प्रकट करते हुए पूछा—बहन जी ! आपके घर में कुछ बचा या नहीं।

वह बोली—और कुछ भी नहीं बचा। केवल एक चूड़ा बचा है। लोग बोले—कब पहन लिया ? वह बोली—यदि यह बात आप लोग पहले ही पूछ लेते तो झोंपड़ी में आग क्यों लगती ? लोगों ने कहा—क्या, जान बूझकर आग लगायी है ? उसने कहा—हां जी ! मेरा चूड़ा देखने के लिए कोई आया नहीं इसलिए यह काम किया। लोग उसकी मूर्खता पर हंसने लगे।

जो व्यक्ति मूर्ख होते हैं, उनमें हिताहित के चिन्तन की शक्ति नहीं होती है। वे कभी-कभी अपना नुकसान कर बैठते हैं। अपना वैशिष्ट्य दूसरों को दिखाने के लिए जो अपने घर को जला देते हैं, उससे बढ़कर और क्या मूर्खता ?

कई प्रदर्शन के लिए, करते निज नुकसान।
उनसे बढ़कर कौन है, जग में मूर्ख महान ?

अमूल्य सम्पदा

धनवंत नाम का व्यापारी था। उसके तीन पुत्र थे। तीनों की परीक्षा हेतु पिता ने तीनों पुत्रों को हजार-हजार रुपये देकर कहा— तुम तीनों परदेश जाओ। वहां व्यापार करो। धन वृद्धि के लिए प्रयास करो। जब मैं तुम्हें वापिस बुलाऊं तब वापिस आ जाना। तीनों पुत्रों को सम्यग्तया प्रशिक्षण देकर सेठ ने तीनों को एक साथ रवाना कर दिया। तीनों चल पड़े। तीनों ने आलग-अलग राह पकड़ी।

सबसे बड़ा पुत्र बड़ा होशियार था। बुद्धिमान था। उसने किसी शहर में जाकर व्यापार आरम्भ किया। स्वल्प ही समय में हजारों रुपये कमा लिए। दूसरे पुत्र ने सोचा—पिताजी द्वारा संप्राप्त मूल पूंजी की सुरक्षा करना मेरा परम धर्म है। इसका मुझे कदम-कदम पर ध्यान रखना है। खाने-पीने में जितना खर्च होता है, उतना वह कमा लेता है किन्तु मूल की पूंजी को सुरक्षित रख ली। तीसरे पुत्र ने सोचा—मेरे घर में धन की कोई कमी नहीं है। अभी ऐश आराम करने का समय है। खाना-पीना और मौज उड़ाना जीवन का सार है। क्या करना है व्यापार करके? पिताजी की मृत्यु हो जाने के बाद धन का तीसरा हिस्सा तो मुझे मिलेगा ही। क्यों फालतू परिश्रम करूं? इसी विचार-विचार में खा पीकर उसने हजार रुपये समाप्त कर दिए।

कई वर्षों के बाद सेठ ने तीनों पुत्रों को वापिस बुला लिया। तीनों आये। सेठजी को नमस्कार किया। आपस में वार्तालाप चला। स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ हुई। सेठ बोला—मैंने जो हजार-हजार रुपये की सम्पत्ति दी थी, वह वापिस लाओ। बड़े पुत्र ने कहा—पिताजी! आपकी कृपा से व्यापार अच्छा चला। यह लीजिये लाख रुपये। दूसरे पुत्र ने कहा—पिताजी! जितना खर्चा लगा उतना ही मैंने कमाया है मूल पूंजी सुरक्षित है। यह लीजिये हजार रुपये। तीसरे ने कहा—मैंने तो सारी पूंजी खाने-पीने में लगा दी।

सेठ ने मन ही मन सोचा—तीनों की परीक्षा हो गई। ज्येष्ठ पुत्र को सारे घर का आधिपत्य सौंप दिया। दूसरे पुत्र को खजाने की चाबियां सौंप दी। तीसरे पुत्र को कुछ भी नहीं मिला। अब वह पश्चाताप करता है—हाय! ऐसा पता होता तो मैं भी···।

मानव जन्म रूपी अमूल्य सम्पदा को प्राप्त कर जो व्यक्ति गंवा देता है उसे भव-भव में दुःख पाना पड़ता है। चतुर व विलक्षण वही कहलायेगा जो मूल सम्पदा को सुरक्षित रखता हुआ आगे बढ़ता है।

दुर्लभ मानव जन्म का, खूब उठाओ लाभ।
आत्म सम्पदा नाशकर, क्यों खोते हो आब॥

ज्ञानी की अवहेलना

गंगा नदी के तट पर दो भाई रहते थे। उनके हृदय में वैराग्य जागृत हुआ। दोनों ने किसी साधु के पास आकर दीक्षा ग्रहण कर ली। एक भाई पढ़-लिखकर होशियार व विज्ञ बन गया। शास्त्रों का पारगामी होकर दूसरों को भी अध्ययन कराने में रुचि रखता था। दूसरा भाई बिलकुल अनपढ़ रहा। उसे अध्ययन करने में तनिक भी रुचि नहीं थी। वह दोनों समय आहार पानी कर सुख से सो जाता। रात-दिन आराम करता। उसे किसी प्रकार की चिंता नहीं थी। एक दिन उस विद्वान ज्ञानी ने चिन्तन किया—मेरा सारा समय दूसरों को पढ़ाने में व संयम की चर्या बताने में ही पूरा हो जाता है। मैं सुख से पूरी नींद भी नहीं ले सकता। भूख लगती है तो खाने के लिए भी मुझे समय नहीं मिलता। विश्राम के लिए एक पल भी नहीं है। अच्छा तो यह होता कि मैं ज्ञानार्जन करता ही नहीं। यह मेरा भाई खा-पीकर सो जाता है, मौज उड़ाता है, क्योंकि इसने अध्ययन नहीं किया। अज्ञानी मनुष्यों का शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है, क्योंकि उनके दिमाग में जरा भी चिन्ता व उलझन नहीं होती। ज्ञानी पुरुष चिन्ताग्रस्त होते हैं, उनका शरीर भी दुर्बल रहता है। अतः अध्ययन करना अच्छा नहीं है। ऐसी विचारधारा में अवगाहन करता हुआ वह आयुष्य पूर्णकर देवलोक में चला गया।

वहां से आयुष्य पूर्णकर वह किसी गोपालक के घर पर जन्म लेता है। वहां साधु समागम से वैराग्य उत्पन्न हुआ। साधु बना। गुरु के पास अध्ययन करता है किन्तु अध्ययन में सफलता नहीं मिलती है। वह बहुत परिश्रम करता है परन्तु एक भी अक्षर याद नहीं हो पाता। गुरु ने कहा—शिष्य! पूर्व जन्म में तुमने ज्ञान की आशातना की, वह ज्ञानावरणीय कर्म उदय में आ रहा है, इसलिए तू अध्ययन नहीं कर सकता।

शिष्य ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछा—गुरुदेव! ज्ञानावरणीय कर्म को खपाने का क्या उपाय है?

शास्त्रों के पारगामी गुरु ने कहा—शिष्य! आयंबिल करो। ज्ञानी सन्तों की परिचर्या करो। ज्ञानवान की स्तुति व प्रशंसा करो। जिससे अवश्य कर्मों की निर्जरा होगी। गुरु-वाणी को अंगीकार करते हुए शिष्य ने विभिन्न प्रकार की तपस्या प्रारम्भ की। ज्ञानी पुरुषों की सेवा-शुश्रूषा में ही अपने जीवन का अधिकतम भाग लगाना शुरू कर दिया। ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना व चारित्राराधना करते-करते बारह वर्ष पूरे हो गये। आखिर शुभ परिणामों की श्रेणी पर चढ़े, कर्मों का अवसान किया। केवली बने। मोक्ष में पहुंचे।

ज्ञान और ज्ञानवान की कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। अवहेलना

से कर्मों का बंध होता है और कर्मों के योग से जीव को संसार में भटकना पड़ता है।

ज्ञानी की अवहेलना, करने से नुकसान।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसका पतन महान ।।

समर्पण का महत्त्व

हकीम लुकमान प्रारम्भ से ही गुलाम थे। उनके हृदय में अपने स्वामी के प्रति अच्छी श्रद्धा थी। वे बड़े निरहंकारी व सरल स्वभावी थे। उनका सारा जीवन समत्व की भावना से ओत-प्रोत था। अपने आराध्य देव के प्रति वे सर्वदा पूर्ण समर्पित थे। गुरु के इंगित पर चलने के लिए वे अपना जीवन भी न्यौछावर कर देते थे। एक दिन की बात है, उनके स्वामी ने खाने के लिए ककड़ी मंगाई।

हकीम लुकमान बाजार पहुंचे। सब्जी बेचने वाले से कहा—मुझे ककड़ी चाहिये। उन्होंने ककड़ी तोली। वे लेकर आये। स्वामी ने ककड़ी का एक टुकड़ा तोड़कर मुंह में रखा तो वह बहुत ही कड़वा लगा। स्वामी ने ककड़ी को छोड़ते हुए कहा—लुकमान ! यह ककड़ी तुम खा लो। लुकमान ने हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक कहा—जो आज्ञा आपकी। वे बहुत ही प्रसन्नता पूर्वक हंसते-हंसते ककड़ी खा गये। उनके स्वामी ने सोचा—शिष्य बड़ा सुपात्र है। नत्रु नच किए बिना ही कड़वी ककड़ी को हंसते-हंसते खा लेना यह बहुत बड़ी विशेषता है। हृदय में विस्मय का पार न रहा, वे मुस्कराहट की भाषा में बोले—अरे लुकमान ! तुझे यह ककड़ी खारी नहीं लगी।

लुकमान ने सुकोमल शब्दावली में कहा—स्वामिन् ! खारी तो लगी। स्वामी—शिष्य ! तुम उसे कैसे खा गये ? स्वामी के इस गहरे प्रश्न का उत्तर देते हुए लुकमान ने जिह्वा पर अमृत टपकाते हुए कहा—हे मेरे प्राणदेव ! मेरे पर आपकी असीम कृपा है। जन्म जन्मान्तर में भी उसे विस्मृत नहीं कर सकता। मेरे जैसे तुच्छ शिष्य पर आपका वात्सल्य भाव अनन्त है। आप प्रतिदिन मुझे अच्छी-अच्छी स्वाद भरी चीजें देते हैं और मैं उन्हें प्रमुदित मन खा लेता हूं। आज आपने मेरे पर मेहरबानी करा कर मुझे खाने के लिए ककड़ी दी, वह खारी है इसलिए यदि फैंक दूं तो फिर मुझे मीठे-मीठे पदार्थ कौन देगा ?

स्वामी ने कहा—शिष्य लुकमान ! तेरे जैसा पूर्ण समर्पित व्यक्ति संसार में कोई विरला ही होगा। तेरी नम्रता व विवेकशीलता देख कर मेरा हृदय गद्‌गद् हो रहा है। तुमने जो साम्य भाव का विकास किया है वास्तव में वह प्रशंसनीय है। लुकमान बोला—प्रभो ! मैं आपकी महानता के सामने तुच्छ हूं। आप मेरे

मालिक हैं। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा प्रसाद मुझे देते रहिये। उससे मेरे जीवन को पावन पोषण मिलता रहे, बस मेरी यही आंतरिक तमन्ना है। सुनते हैं कि लुकमान के इस समर्पण व समता भाव भरे उत्तर से मालिक ने सदा-सदा के लिए उसे गुलामी से मुक्त कर दिया।

समता और समर्पण जीवन के दो पहलू हैं। इन दोनों में जो व्यक्ति विकास कर लेता है वह अपनी साधना में अवश्य ही सफल होकर साध्य को प्राप्त कर लेता है।

समता रस का पानकर, करना आत्म विकास।
सूत्र समर्पण का सुखद, करता परम प्रकाश।।

मन खाली : पिशाच

लाला धनीराम का पुत्र विजयकुमार बड़ा विवेकशील, विनीत और नीतिवान लड़का था। विजयकुमार की धर्मपत्नी का नाम था सुप्रभा। धनार्जन के लिए विजयकुमार परदेश चला जाता है। सुप्रभा घर पर ही थी। वह बड़ी शौकीन थी। स्वादिष्ट भोजन करती थी, पान खाती, इत्र-फुलेल लगाती। विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषणों से सुसज्जित रहती थी। सारा समय साज-सज्जा में व्यतीत करती थी। घर के काम में उसका मन बिल्कुल भी नहीं लगता था। प्रतिदिन पतिदेव की माला फेरती थी, परदेश से कब आयेंगे? आंखें फाड़-फाड़कर देखती रहती थी।

एक दिन सुप्रभा का मन बहुत चंचल हो उठा। उसने अपनी दासी को बुलाकर कहा—किसी पुरुष को बुलाकर लाओ। मेरा मन वश में नहीं है, न जाने मेरे पतिदेव कब आयेंगे।

दासी सेठ के पास गई। हाथ जोड़कर बोली—सेठ साहब! आपकी पुत्र वधू का मन चंचल हो गया। बहूजी ने किसी पुरुष को बुलाने के लिए कहा है। पुत्रवधू की भावना को सुनकर सेठजी बड़े चिंतित हुए। उन्होंने सेठानी को बुलाकर कहा—तुम कुछ समय के लिए अन्यत्र जाकर विश्राम करो। सेठानी ने अपने पति की बात मान ली। दूसरे दिन सेठजी घर आये और सेठानी से भोजन मांगा। सेठानी ने प्रत्युत्तर में कहा—अभी भोजन तैयार नहीं है। सेठजी ने सेठानी को मारपीट कर घर से बाहर निकाल दिया।

सास-ससुर में झगड़ा देखकर उनकी पुत्रवधू दौड़ी-दौड़ी आई और बोली—पिताजी! क्या बात है? सेठ ने कहा—बेटी! आज से मैंने तुमको घर की मालकिन बना दी है। घर का सारा उत्तरदायित्व तेरे कंधों पर है। पुत्रवधू सुप्रभा ने समधुर भाषा में कहा—पिताजी! आपकी जैसी आज्ञा हो। अब वह काम में इतनी व्यस्त

रहने लगी कि उसे भोजन करने का भी समय मुश्किल से मिलता। साज-श्रृंगार करना वह सारा गई। एक दिन दासी ने हाथ जोड़कर कहा—बहूजी! आपकी कामना को क्रियान्वित करने हेतु मैंने एक पुरुष की खोज कर ली है। आपकी आज्ञा हो तो उसे बुलाऊं।

बहू ने कहा—दासी! घर की सारी जिम्मेवारी मेरे पर है। सुबह से सायं तक इतनी व्यस्त रहती हूं कि इस समय तो मुझे मरने की भी फुरसत नहीं है, तू पुरुष की बात करती है।

खाली मन पिशाच का घर है। इस कहावत के अनुसार मेधावी लोग अपने आपको कभी भी खाली नहीं रखते। किसी न किसी कार्य में अपने मन को जो व्यस्त रखते हैं। वे हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते हैं। मानसिक चंचलता व बुराई को दूर करने के लिए मन को कभी भी खाली मत छोड़ो।

खाली मन इन्सान का, बहुत बड़ा शैतान।
'मुनि कन्हैया' कार्य में, रखता मन अम्लान॥

समस्या का समाधान

महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी यात्रा कर रहे थे। रास्ते में ईख के खेत आये। उनके मन में ईख चूसने की भावना जागृत हुई और उन्होंने दो-चार ईख तोड़ लिये। खेत का मालिक देख ही रहा था, वह दौड़ा-दौड़ा आया। वह क्रोध के नशे में चूर था। उसे भान नहीं रहा। क्रोध में अन्धा होकर व्यक्ति कृत्याकृत्य को भूल जाता है, विवेकहीन बन जाता है। खेत के मालिक ने उनको पहचाना नहीं। वह आवेश में आकर अकबक बोलने लगा—मेरी आज्ञा के बिना ईख को तोड़कर ले लेना, क्या मानवता है? प्रामाणिकता है? उसने गुरु रामदास के दो-चार चांटे जड़ दिये।

यह बात फैलती-फैलती शिवाजी के पास पहुंची। दिल में बड़ा दुःख हुआ और उस किसान को बुलाया। किसान थर-थर कांप रहा है। पास में गुरु रामदासजी बैठे हैं। महाराज शिवाजी ने कहा—तूने बहुत बड़ा अपराध किया है। तूने मेरे गुरु को बिना मतलब पीटा है। अपमान किया है। बोल, तुझे क्या दण्ड दिया जाए?

वह किसान भयभीत सा खड़ा है। थर-थर कांप रहा है। बोले तो बिचारा क्या बोले? पहले वह क्रोध के आवेश में था अब वह भय के आवेश में है। शिवाजी के भी आवेश की कमी नहीं थी। गुरुदेव के अपमान को वे कैसे सहन कर सकते थे? गुरु का तिरस्कार स्वयं का तिरस्कार कहलाता है। शिवाजी ने दण्ड देते हुए कहा—इसका अपराध निम्न स्तर का अपराध है। इसने बहुत निंदित व घृणित

कार्य किया है। अतः इसको फांसी के तख्ते पर लटका दिया जावे।

गुरु रामदास के कर्ण कुहरों में जब यह शब्दावली टकराई तो उन्होंने अपने सुशिष्य को सम्बोधित करते हुए कहा—शिष्य शिवा ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम इसको दण्ड नहीं दे सकते। इसने मुझे मारा है मैं ही इसको दण्ड दूंगा। शिवाजी मौन हो गये। गुरु के सामने वे क्या बोल सकते थे ! उन्होंने बड़े विनम्र व सुकोमल शब्दों में कहा—गुरुदेव ! आप ही इसे दण्ड दें। रामदास ने कहा—शिष्य ! तू मेरा कथन स्वीकार करेगा ? शिवाजी बोले—हां, गुरुदेव ! जैसा आप कहेंगे वैसा ही मैं करूंगा। रामदास ने कहा—शिष्य ! इस गरीब किसान ने मुझे पीटा है। मैं उसके पीटने के कारण को जानता हूं, समझता हूं। इसे इस अपराध के फलस्वरूप पांच बीघा जमीन दान में दे दी जाए।

रामदास के कथन को सुनकर सब अवाक् रह गये। शिवाजी के हृदय में भी आश्चर्य का पार नहीं रहा। चांटे मारने वाले को पारितोषिक रूप में पांच बीघा जमीन। यह विचित्र दण्ड। यदि यह दस चांटे मारता तो सम्भव है दस बीघा जमीन इसे मिलती। ऐसा आश्चर्यकारी निर्णय ! शिवाजी समझ नहीं सके कि गुरुदेव ने यह निर्णय क्यों किया ? अपने को पीटने वाले के प्रति ऐसा सुन्दर बर्ताव ! शिवाजी रहस्य को समझ नहीं सके। समझते भी कैसे ? उनका चिंतन दूसरे प्रकार का था। वे दण्डशक्ति में विश्वास करते थे। रामदास का चिंतन भिन्न था। वे करुणा में विश्वास करते थे।

रामदास ने रहस्य को समझाते हुए कहा—शिवा ! बात समझ में नहीं आई होगी। किसान गरीब है, यदि गरीबी से ग्रस्त नहीं होता तो ऐसा व्यवहार कभी नहीं करता। यदि इसकी अपराध वृत्ति को मिटाना है तो इसकी गरीबी को मिटाना होगा। इसको पांच बीघा जमीन दे दो, फिर यह ऐसा व्यवहार कभी नहीं करेगा।

समस्या का समाधान तभी मिल सकता है जब मानव अन्तर रहस्य को प्राप्त करने का प्रयास करे। गहराई में डुबकियां लगाने से ही समाधान रूपी मोती मिल सकते हैं, अन्यथा नहीं।

सकल समस्या मिट सके, यदि हो गहरा ज्ञान।
समाधान हर विषय का, देते हैं विद्वान ॥

आत्म निन्दा

चन्द्ररुद्र नाम के आचार्य अपनी शिष्य सम्पदा के साथ एक दिन उज्जयिनी नगरी में पधारे। गुरुजी अधिक क्रोधी होने के कारण शिष्यों ने सोचा गुरुजी के लिए अलग प्रवास की व्यवस्था हो जाये तो अच्छा। साथ में प्रवास होने से कदाचित्

कोई न कोई दुविधा उत्पन्न होने की आशंका रहेगी। गुरुजी के मन इच्छित मकान की व्यवस्था हुई। समय-समय पर गुरुजी की सेवा में शिष्यगण उपस्थित हो जाते। समता की साधना करते हुए गुरु एकांत में ध्यान करते। जप-अनुष्ठान में गतिशील बने।

एक दिन की बात है कि गुरुजी ने अपने अन्तेवासी शिष्य से कहा—शिष्य ! मैं वृद्ध हो गया हूं। आंखों से मुझे सम्यग्तया दिखता नहीं और न ही घुटनों से चल सकता हूं। अब मेरे जीवन में समाधि नहीं रह पायेगी।

शिष्य ने कहा—गुरुदेव ! मेरे पर आपका अनन्त उपकार है। भव-भव में भी आपके उपकार से उपकृत नहीं हो सकता। आपकी सेवा शुश्रूषा के लिए मेरा समस्त जीवन आपके श्री चरणों में समर्पित है, रहेगा।

गुरु ने कहा—शिष्य ! मैं इस नगरी में रहना नहीं चाहता। मुझे अन्यत्र कैसे ले जायेगा। क्या व्यवस्था है ? शिष्य ने करबद्ध होकर विनम्र भाषा में कहा—पूज्य चरण ! आपको तनिक भी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। बैठ जाइये मेरे कंधों पर। जहां आपकी इच्छा होगी वहीं मैं ले जाने का प्रयत्न करूंगा।

गुरुजी शिष्य के कंधों पर आरूढ़ हुए। शिष्य चला। आगे जाते-जाते एक गड्ढा आ गया। शिष्य की कुछ स्खलना होने के कारण पैर गड्ढे में पड़ गया। जोर से धक्का लगा, तब गुरुजी गुस्से में लाल पीले होकर अधरावली को कंपाते हुए उच्च स्वर से आक्रोश पूर्वक बोले—अरे पापिष्ठ शिष्य ! ऐसे कैसे चल रहा है ?

शिष्य ने बड़ी विनम्रता से कहा—आचार्य प्रवर ! मेरी त्रुटि पर आप ध्यान न दें। आप प्रभु हैं। अब भविष्य में ध्यानपूर्वक चलूंगा। किसी भी प्रकार की स्खलना नहीं होगी मेरी। इतना विनय करने पर भी गुरुजी कहां शान्त रहने वाले थे। उन्होंने क्रुद्धित होकर शिष्य के सिर पर यष्ठि का प्रहार किया। शिष्य के सिर से शोणित धारा बहने लगी। शिष्य मन ही मन पश्चाताप करने लगा—हाय ! मेरे योग से गुरुदेव को क्लान्त होना पड़ा। इस प्रकार स्वयं धिक्कार करते हुए आत्मा में रमण करने लगा। क्षमा सागर में झूलता-झूलता केवल ज्ञान को उपार्जित कर लिया। शिष्य ने कहा—हे गुरुदेव ! आपकी कृपा से मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ है।

गुरु ने पूछा—शिष्य ! ज्ञान प्रतिपाती हुआ है या अप्रतिपाती ?

शिष्य बोला—प्रभो ! अप्रतिपाती हुआ है। गुरु ने सोचा—क्या केवल ज्ञान हो गया। झट कंधे से नीचे उतरे और नमस्कार करते हुए पश्चाताप करने लगे। काश ! मेरे योग से केवल ज्ञानी की आशातना हो गई। ऐसे आत्म-निन्दा करते वे भी केवल ज्ञानी बन गये।

शास्त्रों में आत्म-निन्दा का बहुत बड़ा फल बताया है। आत्म-निन्दा हर एक

व्यक्ति नहीं कर सकता। जिसमें आत्मबल होता वही व्यक्ति आत्म-निन्दा कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

आत्मालोचन से अमित, मिलता सबको लाभ।
पर-निंदा से जगत में, मिटती मानव-आब ॥

खाद्य-असंयम

एक मूर्ख किसान था। खाने-पीने में बड़ा होशियार था। जब कभी मुफ्त का भोजन मिल जाता तो खूब डाट लगा-लगा कर खाता। अधिक भोजन करना ही अपनी जिन्दगी का सार समझता था। कभी-कभी अजीर्ण हो जाता तो भी वह सोचता रहता—

भोजनं कुरु दुर्बुद्धे !, का चिन्ता मरणे तव।
मृते च प्राप्यसि जन्म, परान्नं न पुनः पुनः ॥

मरने की मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। क्योंकि जो जन्मता है वह मरता ही है, यह सृष्टि का नियम है। मरूंगा तो अगले भव में अवश्य जन्म लूंगा, लेकिन ये मधुर पकवान बार-बार नहीं मिलते हैं।

कभी-कभी तो वह जीभ का लोलुप बन कर इतना खा लेता कि रात्रि में नींद भी नहीं आती। करवटें बदलता रहता। कभी-कभी पेट में दर्द हो जाता। हाय हाय करता। अचानक एक समझदार व्यक्ति वहां आ पहुंचा। उसने पूछा—भाई किसान ! क्या बात है ? कैसे आलाप-विलाप कर रहा है ? संसार में धनी और गरीब सभी बसते हैं। अपने-अपने स्थान पर सबका महत्त्व है। पांचों अंगुलियों में कौन छोटी कौन बड़ी। छोटी का भी महत्त्व है बड़ी का भी महत्त्व है। तू कैसे आक्रन्दन कर रहा है, क्या बात है ?

किसान बोला—पेट में कुछ दर्द हो रहा है।

उस विज्ञ व्यक्ति ने अच्छी सलाह देते हुए कहा—भैया ! भोजन करो तो बीच में पानी पी लिया करो, जिससे तुम्हारी पेट की क्रिया अपने आप ठीक हो जायेगी। किसान बोला—बहुत अच्छी बात कही आपने। अनपढ़ आदमी बात को बहुत जल्दी पकड़ता है। पकड़ लेने के बाद उसे छोड़ता भी नहीं। अब वह बीच में पानी पीने लगा। चार रोटी खाता था, दो रोटी खाता और बीच में पानी पी लेता। एक दिन वह भूल गया और मोटी-मोटी चार रोटियां खा गया। पत्नी से बोला—आज तो बीच में पानी पीना भूल गया, याद नहीं दिलाया। खैर ! कोई खास बात नहीं है, पानी ले आओ। पानी पीया और फिर चार रोटियां और

ली, क्योंकि उसे शिक्षा मिली हुई है कि बीच में पानी पीना। अब उसका पेट फटने लगा। दुःख करने लगा—हाय ! ऐसा मुझे पता होता तो मैं चार रोटी और क्यों खाता ? अब बिना मौत मरना पड़ेगा। कुछ ही समय के पश्चात् वह यमराज का अतिथि बन गया।

जो व्यक्ति खाने में संयम नहीं रखता है, जो व्यक्ति सही शिक्षा को उल्टे रूप में ग्रहण करता है उसे हर दृष्टि से पश्चात्ताप करना पड़ता है। अतः सुखाभिलाषी इन्सान को खाने में संयम रखना चाहिए।

संयम रखता खाद्य में, जो मानव मतिमान।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसके लाभ महान ॥

राजा भोज का भाग्य

धारा नगरी में सिन्धुल नाम के राजा ने वर्षों तक राज्य किया। वृद्धावस्था में उनके भोज नाम का पुत्र हुआ। नृप ने सोचा, भोज पांच ही वर्ष का है, अतः मुञ्ज नाम के छोटे भाई को राज्य का भार देना उचित होगा। मुञ्ज को राज्य देकर उसकी गोद में भोज को सौंप दिया। राजा सिन्धुल का स्वर्गवास होने के पश्चात् मुञ्ज ने मंत्री बुद्धिसागर को हटाकर उसके पद पर दूसरे को रखा। राज्य सभा में बहुत बड़े ज्योतिषविद् का समागम हुआ। राजा मुञ्ज ने पूछा— हे ज्योतिषाचार्य ! भोज की जन्म-पत्री पर अपना विचार प्रकट कीजिये। विप्र ने कहा—

पञ्चाशत पञ्च वर्षाणि, सप्तमास दिन त्रयम् ।
भोज राजेन भोक्तव्यः, सगौड़ो दक्षिणापथः ॥

पचपन वर्ष सात महीने और तीन दिनों तक गौड़ देशों के सहित दक्षिणपथ पर भोज राज्य करेंगे।

यह सुनते ही मुञ्ज नृप की आकृति निस्तेज हो गई। कुबुद्धि उत्पन्न हुई। ज्यों त्यों कर इसे मरवा दूं। बंगाल के राजा महाबली वत्सराज को आमन्त्रित किया। वह उपस्थित हुआ और बोला—फरमाइये मेरे लायक कार्य। मुञ्ज ने कहा—रात्रि के प्रथम प्रहर में भोज को मार दो तथा उसका सिर अंतः पुर में ले आओ। उसने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरा एक निवेदन है—

भोजे द्रव्यं न सेना वा, परिवारो बलान्वितः ।
परं पोत इवास्तेऽत्र, स हन्तव्यः कथं प्रभो !

हे प्रभो ! भोज के समीप न तो द्रव्य, न सेना, न बलवान परिवार ही है तो वह बालक आज क्यों मारा जा रहा है। राजन् ! पुत्रवध कभी हितकर नहीं !

वत्सराज के वाक्यों को सुनते ही मुञ्ज के क्रोध का पार न रहा। वह बोला—तुम मेरे सेवक होकर मालिक जैसा रोब जमाते हो। एक कवि ने कहा है—

स्वाम्युक्ते यो न यतते, स भृत्योभृत्य पाशकः।
तज्जीवनमपि व्यर्थं, मजागल कुचाविव॥

जो नौकर मालिक के आदेश को नहीं मानता वह नौकर अधम है। उसका जीना बकरे की गर्दन के कुचों के समान वृथा है।

वत्सराज का सिर लज्जा से झुक गया। नृप-आज्ञा-पालन में सजग बना। भोज के अध्यापक को बुलाने के लिये सेवक भेजा गया। वह जाकर बोला—हे तात्! आपको वत्सराज बुला रहे हैं। भोज के अध्यापक उसकी बात सुनकर उसी सेवक के हाथ को पकड़कर वज्राहत से उपस्थित हुए। वत्सराज ने प्रणाम करते हुए उनका स्वागत किया। हे पण्डित तात! बैठिये। राजकुमार जयन्त को बुला लीजिये। पाठशाला से आये हुए जयन्त को पूछा—क्या पढ़ते हो? पूछताछ करके उसे लौटा दिया। फिर उसने कहा—कुमार भोज को बुलाया जाय। भोज को समस्त समाचारों की जानकारी मिल गई। गुस्से में लाल होकर अधरावलि को कंपाता हुआ वहां आया और जोर से बोला—अरे पापिन्! वत्सराज! तुझे क्या अधिकार है? इस प्रकार का षड्यंत्र! धिक्कार! राजा भोज ने बायें पैर से खड़ाऊं निकालकर वत्सराज के तालू में मारी। तब वत्सराज ने कहा—भोज! हम राजा के आज्ञाकारी है। ऐसी बातें करते-करते भोज को रथ में बैठाकर वह महामाया के मन्दिर की ओर चला। "राजा भोज को पकड़ लिया गया"! हाहाकार मचा। सर्वत्र हवा फैल गई। भोज के वध की नति का पीता चलते ही सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों ने सेना का सामना किया। अनेक लोग यमराज के अतिथि बने। भोज की माता सावित्री ने पुत्र की दयनीय दशा को देखकर कहा—हे वत्स! तुम्हारे चाचा ने तुम्हारी क्या दशा की! सभी वैभव, ऐश्वर्य को नष्ट कर दिया। अनेकों महिलाओं का सुहाग लूटा। हाय! क्या हुआ! ऐसा कहकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। कुछ ही समय के पश्चात् चेतना प्रस्फुटित हुई।

वत्सराज बोला—"हे भोज! ज्योतिष शास्त्र के अध्येताओं ने कहा, अब इस देश का मालिक भोज बनने वाला है। इसी भय से राजा मुञ्ज ने तुम्हें मारने का आदेश दिया है।

भोज ने कहा—"यद्भाव्यं तद् भविष्यति"। उसके बाद बड़ वृक्ष के दो पत्तों का दोना बनाया। चाकू से जांघ काटकर उस दोने को खून से भरकर तृण से दूसरे पत्ते पर कुछ श्लोकों को लिखकर भोज बोला—हे वत्सराज! इस पत्र को मुञ्ज राजा को दे देना। तुम अब उनकी आज्ञा का पालन करो। वत्सराज का

छोटा बंधु भोज की मुखाकृति देखकर कहने लगा—यह जीवन क्षणभंगुर है। नाशवान है। दूसरों की हत्या स्वयं की हत्या है। दूसरों का बुरा स्वयं का बुरा है।

बान्धव वाणी से वत्सराज के हृदय में विरक्ति उत्पन्न हो गई। वह बोला—हे प्राणदेव भोज ! क्षमा करें। भोज को रथ में बैठाकर शहर के बाहर घोर अन्धकार वाले घर में नीचे की कोठरी में भोज को रखकर वहां उसकी रक्षा की। उसके बाद उसने बनावटी वस्तु बनाने वालों से भोज कुमार का सिर बनवाकर उसे लेकर राजभवन पहुंचा। मुञ्ज को प्रणाम कर कहने लगा—देव ! आपने जो आज्ञा दी थी, वह पूर्ण कर दी। मुञ्ज ने पुत्र मरा जानकर उससे पूछा—क्या प्रहार करते समय उस बालक ने कुछ कहा। वत्सराज ने उस पत्र को राजा को दे दिया। राजा ने अपनी धर्मपत्नी से दीपक मंगवाकर पत्र को पढ़ा—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालङ्कार भूतोगतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौदशास्यान्तकः
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतयो याता दिवं भूपते !
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति ॥

सतयुग का अलंकार रूप महीपति मान्धाता चला गया। समुद्र के ऊपर पुल बांधने वाले तथा रावण को मारने वाले राम कहां हैं ? अन्य युधिष्ठरादि नृपतिगण मर गये, परन्तु वसुधा किसी के साथ नहीं गई। हे मुञ्ज ! तुम्हारे साथ यह वसुधा जायेगी ?

पत्राशय को समझते ही राजा पलंग से पृथ्वी पर गिर पड़ा। रानी ने अपने अञ्चल द्वारा हवा डाली। राजा चैतन्य होकर कहने लगा—हे देवी ! मेरे जैसा अधम कोई नहीं है। मैंने पुत्र का वध करवाया। इस भयंकर पाप से छुटकारा कैसे मिलेगा ? ब्राह्मणों से पूछा गया कि मैंने पुत्र का वध किया है। अब इसका प्रायश्चित बतलाइये। उन्होंने कहा—आप और राजा वत्सराज को अग्नि में प्रवेश करना चाहिये। "पुत्र वध के प्रायश्चित में राजा अग्नि में प्रवेश करेंगे"। यह किंवदन्ती सर्वत्र फैल गई। बड़े-बड़े सामन्त पुर वासी एकत्रित हुये। मन्त्री बुद्धिसागर ने द्वारपालों को बुलाकार कहा—अब कुछ कड़ाई से पहरा देने की आवश्यकता है। कोई भी राजभवन में न आने पावे। राजा को रनिवास में बिठाकर स्वयं अकेला राज्य सभा में चिन्तित मुद्रा में बैठा है।

वत्सराज ने राजा के प्राण-त्याग की बात सुनी, वह सभा में आया। बुद्धिसागर को कहने लगा—मैंने भोजराज को सुरक्षित रखा है। अचानक एक कापासिक नाम का योगी आया। अपना परिचय देते हुए बोला—समस्त पृथ्वी-मण्डल में हम परिभ्रमण करते हैं। सर्प से काटे हुए प्राणी को, शस्त्र से कटे हुए सिर को,

विष से व्याकुलीभूत आदि को, एक ही क्षण में सर्व व्याधियों से निवृत्त कर देता हूं। दीवार के पीछे से राजा सब वृत्तान्त सुनकर सभा में उपस्थित हुआ। कापालिक को नमस्कार किया। हाथ जोड़कर बोला—हे योगीराज! मेरे जैसे महापापी द्वारा वध किये हुए पुत्र को चैतन्य कर दीजिये, आपका उपकार नहीं भूलूंगा। योगी ने कहा – राजन्! घबराइये मत! आपका पुत्र नहीं मरेगा। बुद्धिसागर के साथ श्मशान घाट पर हवन सामग्रियां भेज दीजिये। वैसा ही हुआ। रात्रि में भोज को गुप्त रूप से नदी तट पर लाया गया। "योगी ने कुमार को जीवित कर दिया।" यह बात सर्वत्र फैल गई। बड़े हर्षोल्लास से उसको राजभवन में लाया गया। राजा मुञ्ज ने उसे छाती से लगाकर विलाप किया। राजा ने प्रसन्न होकर सिंहासन पर बैठाकर उसको राज्य दे दिया। वह निवृत्त होकर अध्यात्म में रमण करने लगा।

जिस व्यक्ति की किस्मत अच्छी होती है, उसका कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता। उपचार, औषध, देव सहयोग आदि बाह्य साधन तभी काम आते हैं जबकि मानव का भाग्य प्रबल हो।

भाग्यवान नृप भोज का, उदाहरण प्राचीन।
'मुनि कन्हैया' भाग्य बिन, पात दुःख प्रवीण॥

गीदड़ का चातुर्य

गीदड़ जंगल में इधर-उधर भटक रहा था। अचानक किसी मरे हुए हाथी पर उसकी नजर टिकी। वह मन ही मन सोचने लगा—आज मेरा भाग्य अच्छा है। तकदीर के बिना ऐसे मंगल अवसर की उपलब्धि हो नहीं सकती। मृत हाथी को बड़े आराम से निश्चिन्त होकर खाऊंगा। वह दिमाग में विभिन्न प्रकार की कल्पना कर ही रहा था कि अचानक वहां पर एक सिंह आ गया। उसने कोमल शब्दों में कहा—अरे! भानजा! स्वास्थ्य कैसा है?

गीदड़ ने बड़ी विनम्र भाषा में उत्तर देते हुए कहा - मामाजी! आपकी दया दृष्टि से सब अच्छा है। सिंह ने पूछा—इस हाथी को किसने मारा? गीदड़ बोला—मामाजी महाराज! क्या कहूं, व्याघ्र आया और हाथी पर टूट पड़ा। मार दिया। सिंह की विचारधारा पलट गई सोचा, गहराई से चिन्तन करने लगा। छोटे द्वारा मारे हुए शिकार को नहीं खाना चाहिए, वह वहां से चला गया।

अचानक कुछ ही समय के पश्चात् वहां पर व्याघ्र आ टपका। व्याघ्र की पूछताछ पर गीदड़ अपनी मधुर भाषा में बोला—भैय्या! क्या कहूं। कहने जैसी बात नहीं है। बलवान के सामने दुर्बलों की दुर्गति ही होती है। सिंह के द्वारा हाथी के

प्राण पखेरू लूट लिए गये। क्या कहूं। शक्तिशाली की कदम-कदम पर विजय होती है। यह बात सुनते ही व्याघ्र ने अपना पथ पकड़ लिया।

कुछ ही समय के बाद वहां एक कौआ आ पहुंचा। गीदड़ ने सोचा—इस कौए को यदि कुछ भी नहीं दूंगा तो यह जोर-जोर से कां-कां करेगा। इसकी आवाज सुनकर अनेकों कौए एकत्रित हो जायेंगे। आस-पास के गीदड़ भी आ जायेंगे। मेरा भक्ष्य सब लेकर दौड़ जायेंगे। मैं भूखा का भूखा रह जाऊंगा। अतः इसे कुछ देकर टालना ही अच्छा है। बुद्धिमान अपनी चतुरता का प्रदर्शन किए बगैर नहीं रहता। गीदड़ ने कौए की तरफ मांस का टुकड़ा फेंक दिया। कौआ उसे लेकर आकाश में उड़ गया। तत्पश्चात वहां एक गीदड़ आ जाता है। उसे देखकर वह सोचने लगा—यह तो मेरे सदृश है। मेरे जैसा ही यह पराक्रमी है। हर दृष्टि से हम दोनों बराबर हैं। ज्यों-त्यों कर इसे यहां से ढकेलना ही मेरे लिए सुखद होगा। वह आक्रुद्ध होकर उसे ललकार सुनाता हुआ उस गीदड के जोर-जोर से लात जमाता है। वह गीदड़ आक्रन्दन करता हुआ वहां से भाग जाता है।

दक्षता से हर एक व्यक्ति अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। दक्षता जीवन का प्रशस्त पथ है। दक्षता व चतुरता के बिना कोई भी आदमी अपनी उन्नति नहीं कर सकता है।

इस दुनिया में दक्षता, है जीवन का पथ्य।
गीदड़ कथा प्रलाप से, मिलता निश्चित तथ्य ॥

धर्म का द्वेषी

मथुरा नगर में इन्द्रदत्त नाम का राज पुरोहित था! वह जैन धर्म का पक्का द्वेषी था। जैनी संतों के साथ में कुतर्क करने तैयार रहता था। एक दिन अपने भवन की ऊपरी मंजिल के गवाक्ष में बैठा-बैठा नगर का दृश्य देख रहा था। अचानक पांच महाव्रतधारी ईर्या समिति में सजग साधु इस पुरोहित के भवन के नीचे से कहीं आगे जा रहे थे। मुनिश्रेष्ठ को देखते ही पुरोहित के हृदय में द्वेष का पार नहीं रहा। वह अपनी पैरों की जूती हाथ में लेकर मुनिराज को दिखाने लगा और मन ही मन में सोचने लगा कि ऐसे संतों की पूजा तो जूतों से ही होनी चाहिए। इतना भयंकर अपमान होते हुए भी मुनिप्रवर तो समता रस का आस्वादन करते हुए आगे जाने के लिए रवाना हो गए।

तत्रस्थ एक जैन श्रावक ने देख लिया कि इस पुरोहित ने मुनि महाराज का कितना बड़ा अपमान किया है। उसके हृदय में रोष का पार नहीं रहा। उसने सोचा—इसका बदला अवश्य लेना चाहिए। संतों की इसने जो आशातना की है

उसका फल इसे मिलना चाहिए। उसने अपनी तपस्या के माध्यम से एक देव की आराधना की। देव उपस्थित होकर बोला —फरमाइये, मेरे लायक कोई काम। श्रावक ने कहा—देव ! इस पुरोहित ने मुनिवर का अपमान किया है इसका फल मिलना चाहिए।

देव बोला—पुरोहित ने नया मकान बनाया है। प्रवेश पर राजा भी आयेगा। ज्योंही राजाजी उसमे प्रवेश करें त्योंही तू कंधा खीच लेना। उसी समय मैं उस भवन को ढहा दूंगा। जिसमे नृपति तेरे वश में हो जायेंगे। राजाजी उसे अवश्य दंडित करेंगे। कुछ ही दिनों के बाद पुरोहित ने नव-निर्मित भवन के प्रवेश पर राजा को आमंत्रित किया। नृपति ज्योंहि भवन में प्रवेश करने लगे त्योंही उस श्रावक ने पीछे आकर नृप का कंधा खींचते हुए कहा—अभी इस मकान में मत जाइये। ऐसा कहते ही भवन ढह गया।

आश्चर्य के सागर में डुबकियां लगाते राजा ने सेठ के उपकार को मानते हुए कहा—श्रेष्ठिन्। तुमने मुझे मृत्यु की गोद में से बचा लिया, तुम्हें पता कैसे लगा ? सेठ बोला—यह सब मेरे देव द्वारा ज्ञात हुआ है। यह पुरोहित बड़ा जाली है, आपकी हत्या चाहता था।

आखिर राजा कुपित होकर उस पुरोहित को कारावास की सजा सुना देता है। पुरोहित बोला—अरे कोई आओ। मुझे इस कारावास के संकट से दूर करो। सेठ ने कहा—भाई पुरोहित ! जो व्यक्ति संतों का अविनय करता है, उसे अवश्य ही फल भुगतना पड़ता है। पुरोहित बोला—भविष्य मे अब ऐसी गलती नहीं करूंगा।

राजा ने कहा—तू मेरा राज पुरोहित होकर इस प्रकार का जघन्य कृत्य करेगा, विश्वास नही था। जैसा किया वैसा फल भोगना तो पड़ेगा ही।

जो व्यक्ति दूसरों को अपमानित करता है वह कदम-कदम पर स्वयं अपमानित होता है। हर एक की विचारधारा स्वतंत्र होती है। चाहे कोई किसी धर्म को माने या न माने, किन्तु किसी को तिरस्कृत करना मानवता नहीं है।

अभिमानी नर अन्य का, करता जो अपमान।
'मुनि कन्हैया' सब जगह, उसका अति नुकसान ॥

ज्ञान के अभाव में

एक बादशाह समुद्र की यात्रा कर रहा था। राज्य कर्मचारियों के अतिरिक्त अनेकों प्रतिष्ठित लोग भी जहाज में सब साथ बैठे थे। एक सिपाही भी साथ में था जो

कि बहुत कमजोर व कायर दिल का था। हर दृष्टि से वह डरपोक था। अब जहाज चलता है। समुद्र में तूफान आया। धक्के लगते हैं। जहाज कभी ऊंचा और कभी नीचा होता है। हिलोरे लेता है। सिपाही घबराया। थरथराने लगा। उच्च स्वर से रोने लगा—हाय, अब क्या करूं ? बिना मौत मरना पड़ेगा। इस भीषण परिस्थिति में कौन है मेरा संरक्षक ?

बादशाह ने मन्त्री से पूछा—यह सिपाही क्यों रोता है ? मन्त्री ने हाथ जोड़ कर विनय से कहा—जहांपनाह ! यह डरपोक है। इसे बड़ा भय लगता है। जैसे ही यह जहाज हिलता है, डगमगाता है, वह अपने दिमाग में कल्पना करता है, सोचता है, अब प्राण पंखेरू उड़ने वाले हैं। किसी का भी सहारा नहीं है। बादशाह ने कहा—उसे अच्छी तरह से समझाओ। मंत्री सिपाही को समझाते हुए बोला—भैया ! हाय-हाय करने की जरूरत नहीं है। समता रखो। हम तुम्हारे साथ हैं। अब कुछ ही समय के पश्चात् किनारा आने वाला है। तुम सिपाही हो। दूसरों को डराने वाले हो। अब तुम स्वयं डरने लग गये, यह क्या बुद्धिमत्ता है ?

थोड़ी देर बाद हवा फिर तेज हो गई। जहाज उलटता है, पलटता है, धक्के लगते हैं और वह जोर से चिल्लाने लगता है। उसे समझाते मंत्री परेशान हो गया। तत्रस्थित सभी बड़े लोग बड़े चिन्तित हो गये। कैसा यह पागल पन कर रहा है। उसकी चिल्लाहट कानों को बेंध रही है। मंत्री ने सोचा—क्या करें ? एक उपाय करूं, जिससे इसकी चिल्लाहट मिट जाये। मंत्री ने एक आदमी को समझाया। कुछ आदमी गये और उसे उठाकर समुद्र में फेंक दिया। अब वह ऊंचे स्वर से आक्रन्दन करने लगा—हाय ! अब मेरा क्या होगा ? डूबने लगा, डूबता है, तैरता है। आदमी कूदे, तैराक थे, उसे पकड़कर ले आए। बिठा दिया। उसका गुस्सा शांत हो गया, रोना भी बंद हो गया। जहाज चल रहा है किन्तु उसका रुदन बन्द। हलचल बन्द। बादशाह मन ही मन सोचने लगा—अरे यह क्या ? वह रोता नहीं है। बादशाह ने मंत्री से कहा—मंत्रिवर ! तुमने क्या कर दिया। इसका रोना बन्द कैसे हुआ ? मंत्री ने कोमलता भरे शब्दों में उत्तर देते हुए कहा—जहांपनाह ! अब यह नहीं रोयेगा। पहले उसे पता नही था कि जहाज में कितनी सुरक्षा है। हम अथाह पानी में जहाज में बैठे हैं। पहले उसे पता नहीं था कि अथाह पानी में जहाज हमारी कितनी सुरक्षा कर रहा है। इसका ज्ञान नहीं होने से जहाज के हिलोरे से ही वह रोता था। जब पानी में डूबने लगा, रोने लगा और डूबने की स्थिति का अनुभव हुआ तब पता चला कि जहाज का कितना मूल्य होता है। अब यह नहीं रोयेगा।

ज्ञान के अभाव में कई व्यक्ति बिना मतलब चिन्तित रहते हैं, पीड़ित रहते हैं। सही जानकारी मिलते ही वे अपने आप में तृप्त हो जाते हैं। अतः हर विषय में

गहरा चिन्तन होना चाहिए।

रहते ज्ञानाभाव में, मानव चिन्ताग्रस्त।
सही ज्ञान उपलब्धि में, बन जाता है स्वस्थ ।।

मद्यपान से पागल

एक शराबी था। प्रतिदिन नशे में चूर रहता था। एक दिन धर्मपत्नी ने उसे प्रशिक्षण देते हुए कहा—पतिदेव! शराब पीना स्वास्थ्य आदि हर दृष्टि से लाभकर नहीं है। जितनी भी आय होती है, आप उसे नशे में खत्म कर देते हैं। परिवार का पालन पोषण भी एक विषम समस्या हो रही है। मुझे विश्वास है कि मेरे इस स्वल्प कथन को आप अपने जीवन में क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे।

पति बोला— प्रिये! तेरा कथन अक्षरशः सही है। शराब पीना बहुत खराब है। मैं इसे त्याज्य समझता हूं। यदि किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं है। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं कि मैं भविष्य में अब कभी भी शराब नहीं पीऊंगा।

जिस व्यक्ति की जो आदत पड़ जाती है वह सहज में छूट नहीं सकती। रस्सी जल जाती है पर उसके बट नहीं जाते। वह शराब का बड़ा शौकीन था। लुक-छिप कर उसने शराब पी ली। पर उसे यह भय कदम-कदम पर सताता था कि कहीं पत्नी को पता न लग जाये। एक दिन वह शराब में धुत होकर आया। सोचा, आज पत्नी को बिल्कुल भी पता नहीं चलने दूंगा। वह घर में प्रवेश करता है। पत्नी दरवाजे के पास खड़ी थी। घर में भैंस बंधी थी। वह भैंस के पास गया और पूछ पकड़ कर बोला—पप्पू की मां! तुम सदा तो दो चोटियां बनाती हो, आज तो तुमने एक ही चोटी बनाई है। पत्नी अपने मन में समझ गई कि पतिदेव पीकर आये हैं। अभी उनसे अधिक बात करने में लाभ नहीं है। क्योंकि ये नशे में चूर हो रहे हैं। आखिर उस शराबी ने अपने सारे घर को बर्बाद कर दिया। पत्नी बेचारी रोती ही रह गयी।

जो व्यक्ति शराब पी लेता है, उस आदमी को कुछ भी पता नहीं चलता कि मैं क्या बोल रहा हूं। मेरा क्या कर्त्तव्य है। वह हिताहित के ज्ञान से भी बेभान बन जाता है।

पीकर मनुज शराब को, बन जाता बेभान।
नहीं हिताहित का उसे, रहता किंचिद् ज्ञान ।।

सच्ची भक्ति

शिवजी का एक मन्दिर था। वहां पर सैकड़ों व्यक्ति उपासना के लिए आते थे। शिवजी के मुख्य दो भक्त थे। एक था ब्राह्मण और दूसरा था भील। ब्राह्मण प्रतिदिन शिवजी का अभिषेक करता था। उन पर पुष्प आदि चढ़ाता। चन्दन से उन्हें चर्चित करता था। उस गरीब भील के पास पूजा योग्य सामग्री कहां थी? फिर भी भक्ति भाव से शिवजी की पूजा करने में बड़ी तन्मयता रखता था।

एक दिन ब्राह्मण मंदिर में शिवजी की उपासना करने गया तो देखा शिवजी भील से वार्तालाप कर रहे थे। यह देखकर ब्राह्मण जलने लगा। मन में ईर्ष्या का वेग बढ़ने लगा। उसने सोचा—शिवजी की मैं इतनी सेवा-उपासना करता हूं, विभिन्न प्रकार की अर्घ्य सामग्री चढ़ाता हूं, फिर भी मेरे पर शिवजी भगवान् की तनिक भी कृपा नहीं है। इस भील से वार्तालाप कर रहे हैं। उसने शिवजी से पूछा—भगवन्! आप मुझसे असंतुष्ट क्यों हैं? मैं आपकी इतनी परिचर्या करता हूं, फिर भी आप मेरे जैसे पवित्र व्यक्ति से वार्तालाप न करके इस गरीब व्यक्ति से बातचीत कर रहे हैं।

शिवजी ने उत्तर देते हुए कहा—प्रिय भक्त! तुम्हारा कथन अक्षरशः सत्य है परन्तु मेरे प्रति जितनी श्रद्धा-भक्ति इस भील की है उतनी तुम्हारे हृदय में नहीं है।

एक दिन शिवजी ने अपनी एक आंख फोड़ डाली। ब्राह्मण अपने निश्चित समय पर पूजा करने आया। उसने देखा शिवजी के एक आंख नहीं है। ब्राह्मण पूर्ववत शिवजी की पूजा कर अपने घर चला गया। उसके बाद भील आया। उसने देखा शिवजी के एक आंख नहीं है। भील के हृदय में पीड़ा का पार नहीं रहा। उसने आव देखा न ताव। उसने झट अपनी आंख निकालकर उनके लगा दी।

दूसरे दिन ब्राह्मण फिर उपासना हेतु आ पहुंचा। शिवजी के पूर्ववत् दोनों आंखें देखीं तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। शिवजी ने सारा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि जैसी श्रद्धा-भक्ति भील के हृदय में है वैसी भक्ति तेरे हृदय में नहीं है। इसकी परीक्षा आज हो गई। अधिक कहने की अपेक्षा नहीं है। मेरे दृष्टि में भील मेरा सच्चा भक्त है।

संसार में दिखावटी भक्ति करने वाले बहुत हैं किन्तु हार्दिक भक्ति करने वाले कम हैं। अपने लक्ष्य में वही व्यक्ति सफल होता है जो भगवान् की सच्ची भक्ति करता है।

शुद्धमना भगवान् की, करता सच्ची भक्ति।
'मुनि कन्हैया' भक्त वह, रखे धर्म अनुरक्ति॥

दृढ़ धर्मी

उदयपुर के महाराणा बड़े दानवीर थे। कोई भी याचक आता वह खाली हाथ नहीं जाता। सर्वत्र राणाजी की प्रसिद्धि हो गई। राणाजी प्रायः जंगल में ही रहते थे। एक दिन बादशाह फकीर का रूप बनाकर राणाजी के अथिति-सत्कार व दान-शीलता का परीक्षण करने के लिए आया। उसने बड़ी विनम्र भाषा में कहा—राणाजी! आपकी प्रशंसा मैंने बहुत सुनी है कि आप जैसे दाता संसार में बिरले होंगे। कृपया मुझे चांदी की थाली में मेवा की खिचड़ी खाने के लिए दीजिये। राणाजी की प्रतिज्ञा थी कि वह अपने अतिथि को निराश होकर नहीं जाने देते थे। राणाजी ने सोचा, क्या करूं? इस समय तो मेरे पास मुट्ठी-भर अनाज भी नहीं है। ऐसी विकट वेला में चांदी के थाल में मेवा की खिचड़ी का साधन कैसे बन पायेगा। इसी उधेड़बुन में चिंतातुर होकर राणाजी बैठे हैं।

राणाजी ने फकीर को पहचान लिया। चिंता-ही-चिंता में डूब गये। यह बादशाह फकीर बनकर बड़ी आशा लेकर मेरे पास आया है। समागत मेहमान का सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। लेकिन सत्कार कैसे करूं? सामग्री कुछ भी नहीं है। आज मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायेगी। प्रतिज्ञा-भंग की अपेक्षा तो मरना ही अच्छा है। ऐसा चिंतन कर राणाजी ने फकीर से कहा—आप विश्राम करें। बैठें। राणाजी पीछे के मार्ग से मरने के लिए रवाना हुए। जंगल में पहुंचे। वहां पर मार्ग में एक आदमी मिला। वह बैल पर माल लादे जा रहा था। उसने कहा—भाई साहब! मैं शारीरिक कार्य से निवृत्त होकर अभी आता हूं। थोड़ी देर इस बैल को पकड़कर रखना। राणाजी ने तो सोचा—मरना तो है ही, पहले इसका कार्य करना श्रेयस्कर है। ऐसा चिन्तन कर राणाजी ने बैल को पकड़ लिया।

वह व्यक्ति बैल को पकड़ाकर चला गया। घंटा, दो घंटा, पांच घंटे हो गये लेकिन वह मनुष्य लौटकर वापस आया ही नहीं। राणाजी खड़े-खड़े थक गये, निराश हो गये। सोचा—देखूं तो सही, इस बैल पर क्या-क्या माल लदा हुआ है? राणाजी ने देखा तो आश्चर्य का पार नहीं रहा। उस पर चांदी की थालियां और मेवा लदा हुआ था। अहो! यह किस्मत का चमत्कार। भाग्य ने सहारा दिया। राणाजी वहां से दौड़े। फकीर के पास आये। चांदी के थाल में मेवे की खिचड़ी परोसकर उनका अतिथि-सत्कार किया।

जो मनुष्य अपने नियम में मजबूत होता है, 'प्राण जाहि पर प्रण नहि जाहि' सूक्त को जिसने अपने जीवन में उतारा है, उसको हर तरफ से अनायास ही सहज में सहायता मिल जाती है। अतः हर व्यक्ति को दृढ़ प्रतिज्ञ बनकर आगे बढ़ना

चाहिए।

दृढ़ धर्मी को सहज में, मिल जाता सहयोग।
'मुनि कन्हैया' नियम से, मिटता अन्तर् रोग।।

बुरे का फल बुरा

हंसराज राजकुमार का दिल बड़ा उदार था। जो भी याचक आता उसे कुछ-न-कुछ दान अवश्य देता। कुछ चुगलखोरों ने राजा से निवेदन करते हुए कहा—राजन्! जो भी याचक आता है उसे हंसराज राजपुत्र दिल खोलकर खूब दान देता है। इससे लगता है कि आपका राज-भंडार खाली न हो जाये। राजा ने पुत्र को शिक्षा देते हुए कहा—पुत्र! भविष्य में किसी को कुछ भी नहीं देना है। एक दिन एक याचक आया। हंस ने सोचा—क्या दूं? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। किसी याचक को खाली लौटाना मेरा धर्म नहीं है। आखिर उसने अपने गले का हार निकालकर दे दिया।

चुगलखोर राजा के पास पहुंचे। कुंवर साहब ने हार का दान दिया है! नृप के दिल में क्रोध का पार न रहा। कुंवर को बुलाया गया। पूछा—दान में हार दिया? कुंवर ने स्वीकार की भाषा में कहा—क्या करूं, दान दिए बिना नहीं रह सकता। आखिर सोच-विचारकर कुंवर को देश-निकाला दे देता है। चुगलखोर सज्जन नाम का व्यक्ति हंसराज का दोस्त होने के नाते भी उसके साथ रवाना हो गया। ऊपर से तो वह हमदर्दी दिखा रहा था लेकिन सज्जन के हृदय में कुटिलता का पार नहीं था। दोनों आगे बढ़े। भयंकर जंगल आ गया। सज्जन ने अवसर देखकर हंसराज की आंखों को नष्ट कर घोड़े पर अपने नगर की राह पकड़ी। हंसराज इधर-उधर भटकता-भटकता वट-वृक्ष के नीचे बैठ जाता है। ऊपर से आवाज आई कि पक्षी की बीटों व वृक्ष के पत्तों को रगड़कर आंखों में डालने मे ज्योति आ जाती है। हंसराज ने प्रयोग किया। आंखें ठीक हो गयीं। पड़ोसी राजा ने घोषणा करते हुए कहा—यदि मेरी सुपुत्री कनकश्री की आंखों को ठीक कर देता है तो उसको अर्ध-राज्य देने के साथ-साथ सुपुत्री कनकश्री के साथ विवाह कर दूंगा। घोषणानुसार हंसराज वहां पहुंच जाता है। उपरोक्त औषध का प्रयोग करते ही राजकन्या की आंखों में ज्योति आ जाती है। अर्ध राज्य के साथ-साथ उसको राजकन्या मिल जाती है। अर्ध-राज्य का मालिक हंसराज अपनी धर्मपत्नी कनकश्री के साथ क्रीड़ा करता हुआ आनन्द से राजमहलों में रहने लगा।

एक दिन राजा हंसराज महलों के गवाक्ष में बैठा-बैठा नगर-अवलोकन कर रहा था। कार्यवश उस नगर में सज्जन का आगमन। हंसराज ने सज्जन को देखा।

पहचाना। अरे ! यह तो मेरा दोस्त है। नौकर के द्वारा उसे ऊपर बुलाया गया। सज्जन आया। बातचीत हुई। फिर भी सज्जन-मित्र हंसराज को पहचान नहीं सका। आखिर भेद खुलते ही सज्जन के हृदय में जलन उत्पन्न हो गई। मित्र हंसराज ने तो मित्र सज्जन को हर दृष्टि से सम्मानित किया। सहयोग दिया। किन्तु बुरा व्यक्ति अपनी बुराई को छोड़ नहीं सकता। वह कुबुद्धि का धनी नृप-दरबार में गया। बद्धांजलि प्रणमन करता हुआ बोला—राजन् ! आप अपने दामाद हंसराज के वंश को जानते हैं ? राजा बोला—मैं क्षत्रिय हूं। मेरा दामाद भी क्षत्रिय है। सज्जन बोला—राजन् ! वह क्षत्रिय नहीं, चमार है ! आपने चिन्तन नही किया, नहीं पूछा। कुल पर काला धब्बा लग गया ? इतना कहकर सज्जन हंसराज के पास चला गया। मनोरंजन क्रीड़ा व आमोद-प्रमोद करने लगा।

इधर राजा ने सोचा—ऐसे चमार दामाद को मैं आंखों से देख नही सकता। ज्यो-त्यों कर इसको मरवा दें ! पुत्री चाहे विधवा बने इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है ! चाण्डालों को आमंत्रित किया। राजा बोला—ओ चाण्डालो ! अमुक भवन के नीचे छिपकर रहना। रात्रि में दस बजे महलों से (मेरा दामाद) जो व्यक्ति नीचे आता है उसकी गर्दन पर तलवार चला देना। इस कार्य में सफल होते ही तीन हजार रुपये पारितोषिक !

राजा ने निजी सचिव के साथ अपने दामाद के पास संवाद भेजा—आज रात्रि मे दस बजे मेरे पास पहुंच जायें। इधर चाण्डाल सुसज्जित होकर सीढ़ियों के पीछे छिपकर उस व्यक्ति की टोह मे संस्थित है ! उधर हंसराज ने सज्जन से कहा—मित्र ! नृप (ससुर) ने आज रात्रि में कैसे मुझे याद किया ? इतना क्या आवश्यक कार्य है ? तुम जाओ ! पता कर आओ, कि किस कार्य के लिए राजाजी बुला रहे हैं ! सज्जन बहुत खुश हुआ। दस बजे ! घोर अंधेरा ! ज्यों ही वहां से रवाना हुआ, नीचे उतरा ! चाण्डालों की तलवार चली। गर्दन कटी। चाण्डाल दौड़े। राजा के पास आकर घटना से अवगत किया। पारितोषिक लिया।

सूर्य उदय हुआ। प्रपंच सामने आया। हंसराज ससुर राजाजी के चरणों में उपस्थित हुआ। बात चली। भेद खुला। राजा ने पूछा—क्या आप चमार कुल के हैं ! हंसराज बोला—मैं अमुक राजाजी का लड़का हूं ! क्षत्रिय वंश है ! उज्ज्वल आचार है ! उत्तम विचार है ! चमार की बात किसने कही। राजा द्वारा रहस्योद्‌घाटन ! बुरे का फल बुरा !

जो व्यक्ति दूसरों का बुरा सोचता है बुरा स्वयं का होता है। बुरे आदमी का कदम-कदम पर नुकसान होता है। इसलिए किसी भी क्षेत्र में दूसरों की बुराई-निन्दा नहीं करनी चाहिए। जो दूसरों का भला करते हैं उनका हर दृष्टि से

उत्थान व निर्माण होता है। वे संसार में पूजनीय महापुरुष बन सकते हैं।

बुरा सोचता अन्य का, उसका बुरा हवाल।
'मुनि कन्हैया' कह रहा, हंसराज का हाल ।।

राजा पोपसिंह

किसी एक नगर में राजा पोपसिंहजी का राज्य था। शासन व प्रशासन का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं था। अचानक एक मकान गिर गया। मकान मालिक ने राजाजी से फरियाद करते हुए कहा—राजन् ! अभी-अभी नया मकान बनाया था, वह गिर गया। राजा ने कारीगर को बुलाकर कहा—अभी तो तुमने मकान बनाया और अभी वह कैसे गिर गया ? लगता है दोष तुम्हारा ही है। दंड के लिए तैयार हो जाओ।

कारीगर क्रन्दन करता हुआ जोर से बोला—स्वामिन् ! मेरी प्रार्थना सुनिए। दोष मेरा नहीं है। चूना गीला अधिक था। दोष चूने वाले का है। राजा ने झट उसको बुलाकर कहा—दोष तुम्हारा है, चूना गीला क्यों किया ? वह बोला—गरीबनिवाज ! दोष मेरा नहीं है। चूने में जो पानी डाल रहा था, उसने पानी ज्यादा डाल दिया। चूना अधिक गीला हो गया, दोष उसका है।

राजा के आदेशानुसार पानी वाला हाजिर हुआ। वह बोला—स्वामीनाथ ! इसमें मेरा तनिक भी दोष नहीं है। जब मैं पानी डाल रहा था, उस समय उधर से बारात आ गई। सुमधुर तान में बाजे बज रहे थे। मेरा मन ललचा गया। मैं उधर देखने लगा। पानी ज्यादा गिर गया। अत: दोष बाजे बजाने वाले का है।

नरपति के निर्देश से वह उपस्थित हुआ और बोला—राजन् ! मेरी गलती नहीं है, बाजे बनाने वाले की गलती है। यदि वे इतना बढ़िया नहीं बनाते तो सुन्दर गाना गाते ही नहीं। राजा ने सोचा—वास्तव में इनका कहना न्यायसंगत है। उसे भी दंडित नहीं कर सके। अब इस शृंखला का अन्त कैसे हो सकता है ? सब एक-दूसरे पर दोष मढ़ रहे हैं। कोई भी अपना दोष स्वीकार करना नहीं चाहता। राजा से कुछ भी नहीं हुआ। एक-दूसरे का दोष बताते-बताते अन्त ही नहीं आया, किसे भी दंडित नहीं कर सके। सारे शहर में वातावरण फैल गया। लोगों ने मन-ही-मन सोचा—ऐसे राजा से कुछ भी होने वाला नहीं है। धीरे-धीरे पोपा बाई के नाम से राजाजी प्रसिद्ध हो गये।

प्रशासन एक कला है। राज्य का संचालन वही कर सकता है जो हर क्षेत्र में हर दृष्टि से निपुण है, दक्ष है, अनुभवी है, राज्य संचालक में यदि लचीलापन

होता है, यदि सोचने की शक्ति का अभाव होता है तो वह सर्वत्र असफल होता है।

अच्छे अनुभव के बिना, काम न होता सिद्ध।
'मुनि कन्हैया' राज्य का, भार वहेगा वृद्ध।।

सहृदयता का महत्त्व

एक दिन राजा भोज ने कवि कालीदास से कहा—हे कवि मूर्धन्य ! जब मैं यमराज का अतिथि बन जाऊंगा, तब आप क्या कविता बनायेंगे ? वे श्लोक अभी पढ़कर सुना दीजिए। यह सुनते ही कालीदास के क्रोध का पार नहीं रहा, उसी क्षण विलासवती के साथ उस नगर को छोड़कर शिला नगरी में चला गया। वहां आनन्द से रहने लगा। इधर राजा भोज शोकाकुल होकर कालीदास की खोज करने लगा। खोज करते-करते योगी के वेश में राजा भोज शिलानगरी में जा पहुंचा।

वहां पर परिभ्रमण करते हुए अचानक कालीदास से भेंट हो गई। कालीदास ने कहा—हे योगीराज ! आप कहां रहते हैं ? योगी—मेरा निवास-स्थल है 'धारा नगरी।' कवि—महाराज भोज सकुशल हैं ? योगी—मैं क्या कहूं, कहने जैसी बात नही है। कवि—और कोई विशेष बात हो तो सत्य कहिए। तब योगी ने कहा—भैया ! दिल में अत्यंत दर्द है। प्रजा आकुल व्याकुल हो गई। राजा भोज का अचानक स्वर्गवास हो गया। यह सुनते ही कवि कालीदास दुःखी होकर धरती पर गिर पड़ा व बिलखता हुआ हाय-हाय करने लगा। फिर करुण स्वर में बोला—हे देव ! आपके बिना मेरी स्थिति पृथ्वी पर क्षण भर भी नही, आपके बिना हम सब अनाथ हैं, अब किसका सहारा, किसका सहयोग व अब कौन कवियों की इज्जत करेगा ? अब मैं भी आपके समीप पहुंच जाऊं। इस प्रकार का आलाप-विलाप करता हुआ वह अंतिम समय के श्लोक की रचना करता हुआ बोला—

अद्य धारा निरा धारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे, भोज राजे दिवंगते।।

—आज भोज राजा के स्वर्गवासी होने पर धारा नगरी व सरस्वती आधार-रहित हो गई। समस्त पंडित मंडल खंडित हो गया।

जब कवि ने यह अन्तिम श्लोक पढ़ा तब योगी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कालीदास ने उसे बेहोश देखकर 'यह भोज राजा है' ऐसा निश्चय किया और गद्‌गद् स्वर में कहा—अहो महाराज ! आपने मुझे छला। ऐसा कहकर उसी

श्लोक को अन्य रीति से सुनाते हुए कहा—

अद्य धारा सदा धारा, सदा लम्बी सरस्वती।
पण्डिताः मण्डिताः सर्वे, भोज राजे भुवंगते॥

—'भोज राजा के आज धरा पर रहने के कारण धारा नगरी व सरस्वती आधारमयी व पंडित वर्गों से विभूषित हो रही है।'

यह श्लोक सुनते ही राजा भोज ने उनको नमस्कार कर धारा नगरी में प्रस्थान किया। नृप ने सोचा—मेरे प्रति कविराज के हृदय में जो सहृदयता है वह अवाच्य है। संसार में ऐसे स्वामिभक्त मिलने वाले कोई-कोई हैं।

जिसके हृदय में सहृदयता होती है उसका सर्वत्र सम्मान होता है अगर किसी को मित्र बनाना है तो अपने आपको सहृदयवान होना चाहिए।

भोज भूप के हृदय में, कवियों प्रति सम्मान।
'मुनि कन्हैया' हृदयता, है जीवन की शान॥

कष्टों में अडिग

मगध देश में राजगृह नाम की सुरम्य नगरी थी। बड़े-बड़े बाजारों व विशाल चोहट्टों से सुसज्जित थी। भगवान् महावीर ने जहां अनेकों चातुर्मास सम्पन्न किए। उसी नगरी में चतुर विद्वान व समझदार चार मित्र रहते थे। परस्पर में अच्छा प्रेम था। हर प्रवृत्ति में साथ रहते थे। एकदा उसी नगरी में जन-जन के त्राता, शास्त्रों के विज्ञाता, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए भद्र बाहुस्वामी पधारे। उनकी धर्म-देशना सुनने के लिए हजारों नर-नारी आये। चारों मित्र भी गये। प्रवचन सुना। वैराग्य अंकुर प्रस्फुटित हुआ। चारों ने दीक्षा ग्रहण की। साधना में रमण करते हुए चारों मुनि विहरण करने लगे। गुरुदेव के पास विद्याभ्यास करते-करते चारों विज्ञ व तत्त्वज्ञ बन गये।

गुरु की आज्ञा प्राप्त होते ही चारों मुनि बहिर्विहारी बन गये। धर्म संघ की प्रभावना करने लगे। जहां जाते वहां अच्छा उपकार होने लगा। चारों ने विशेष साधना का लक्ष्य बनाते हुए एक कठोर अभिग्रह स्वीकार किया। 'दिन के तृतीय प्रहर में भिक्षार्थ जाना अवशिष्ट सात प्रहर में कायोत्सर्ग व ध्यान कर समय को सफल बनाना।' ऐसा संकल्प कर वे विहरण करते-करते राजगृह में आ पहुंचे।

सर्दी का समय था। चारों तरफ शीत लहर ने अपना जाल बिछाना प्रारंभ कर दिया। चारों मुनियों ने वैभारगिरि पर्वत की गुफा में अपना धार्मिक अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। एक दिन की बात है दिन के तृतीय प्रहर में राजगृह नगरी में गोचरी के लिए गये। भिक्षा आदि की प्रमुख क्रिया से निवृत्त होकर वापस आने

लगे तो एक मुनि वैभारगिरि के ऊपर पहुंचे तो चौथा प्रहर प्रारम्भ हो गया। मुनि वहीं स्थित होकर ध्यान करने लगे। दूसरे मुनि ज्योंही उद्यान में पहुंचे, चौथा प्रहर आ गया। वहीं पर कायोत्सर्ग प्रारम्भ कर दिया। तीसरे मुनि उद्यान के पास पहुंचे। चौथा प्रहर शुरू हो गया। उन्होंने वहीं पर अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। चतुर्थ मुनि प्रवर का समय नगरी में परिभ्रमण करते-करते व्यतीत हो गया चौथा प्रहर आ गया। शहर में ही निरवद्य भूमि का प्रतिलेखन कर वे ध्यानस्थ हो गये।

शीत निशाचर ने चारों ही संतों को विचलित करना चाहा। किन्तु चारों ही मुनि मेरू की भांति अडिग थे। ठिठुरती हुई सर्दी में भी वे अपनी साधना पर चार चांद लगाने लगे। शीत परिषह को समाधिपूर्वक सहन कर लेना बहुत ही महत्त्व-पूर्ण कार्य है। चारों मुनियों ने सोचा 'चइज्ज देहं न हु धम्मं सासणं' इस वाक्य में रमण करते हुए स्थिर रहना है। परिषह को देखकर घबराना कायरता है। आखिर आयुष्य पूर्ण कर आराधक बनकर चारों ही मुनि स्वर्गवासी बन गये।

जिनका मन साधना में रम जाता है वे भयंकर से भी भयंकर कष्टों के सामने भी अस्थिर नहीं बनते और अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं।

सफल बनाते साधना, सहकर कष्ट अमाप।
'मुनि कन्हैया' विश्व में, विजयी थे सत्पात्र॥

दृढ़ संकल्प

सामाजिक उत्क्रान्ति के उपदेष्टा गुजरात-प्रवासी रविशंकर महाराज को तटस्थ जनता महापुरुष के रूप में निहारती है। उन्होंने समय-समय पर समाज-सुधार के लिए अनेक प्रयत्न किये और जगह-जगह पर भाषण भी दिये। महाराज के अनुपम प्रयास से अनेक ठाकुरों ने शराब व ताड़ी नहीं पीने का संकल्प कर लिया। एक ठाकुर बोला—महाराज! मैंने शराब छोड़ने की तो प्रतिज्ञा की है किन्तु शराब ने मेरी रग-रग पकड़ रखी है। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए?

महाराज ने सुकोमल शब्दों में उत्तर देते हुए कहा—भैया! अभी मुझे कहीं जाना है अतः मेरे पास समय नहीं है। कल आ जाना। बैठकर धीरजता से चर्चा करेंगे। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही सुबह-सुबह ठाकुर आया। झीणे-झीणे शब्दों में आवाज लगाई। महाराज ने भीतर से कहा—'ये छोड़ दे तो आता हूं।' ठाकुर ने समझा, किसी बच्चे ने महाराज को पकड़ रखा है। कुछ प्रतीक्षा की। खड़ा-खड़ा थक गया। फिर भी महाराज बाहर नहीं आये, तो ठाकुर ने फिर जोर से आवाज लगाई।

महाराज ने उत्तर की भाषा में कहा—'भैया ! मैं बाहर नहीं आ सकता, तुम अन्दर आ जाओ। यह मुझे नहीं छोड़ता है।' ठाकुर अन्दर गया। देखा, महाराज दोनों हाथों से एक खम्भे का पकड़े खड़े हैं। ठाकुर को हंसी आ गयी। उन्होंने कहा, 'आप खुद तो खम्भे का पकड़े खड़े हैं और कहते हैं कि खम्भे ने आपको पकड़ रखा है ! आप तो मेरे साथ मजाक कर रहे हैं।'

महाराज ने गंभीर भाषा में उत्तर देते हुए कहा—'ठाकुर ! आपने भी मेरे साथ मजाक क्यों की ? शराब को आपने पकड़ रखा है और आप कहते हैं कि शराब ने मेरी प्रत्येक रग को पकड़ रखा है।' ठाकुर साहब कुछ उत्तर न दे सके। असमंजस में पड़ गये। महाराज ने तो मुझे बड़ी निपुणता से समझाया है। धन्य है बुद्धि को। उसने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! मैं आपके बुद्धि-कौशल से बहुत प्रभावित हुआ हूं। अब दृढ़ संकल्प करता हूं कि शराब कभी भी नहीं पीऊंगा।'

हर व्यक्ति अपने स्वभाव को बदल सकता है। अपनी बुराइयों को भी धीरे-धीरे छोड़ सकता है। अपेक्षा है दृढ़ संकल्प की। संकल्प में बहुत बड़ी शक्ति होती है। वर्षों से आक्रान्त व्यसन भी दूर हो सकते हैं। अत: जीवन को पावन रखने के लिए संकल्प की महती आवश्यकता है।

मानव दृढ़ संकल्प से, बनें व्यसन से मुक्त।
ठाकुर साहब का सरस, उदाहरण है युक्त ॥

सहानुभूति

एक आदमी घूमने के लिए प्रतिदिन काफी दूर जाता था। उसको ऐसा नशा पड़ गया कि घूमे बगैर वह नाश्ता भी नहीं करता था, क्योंकि परिभ्रमण व पर्यटन स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी हितकर माना गया है। एक दिन की बात है कि वह व्यक्ति घूमकर अपने घर आ रहा था। रास्ते में अचानक एक बूढ़े को चिन्ताग्रस्त सिर झुकाये संत्रस्त-सा देखा तो उससे रहा नहीं गया। सुमधुर भाषा में हमदर्दी दिखाता हुआ बोला—भैया ! तुम्हारे बाह्य आकार-प्रकार की भाव-भंगिमा से पता लगता है तुम्हारे दिल में किसी-न-किसी प्रकार की चिन्ता घर कर रही है। इतने परेशान होने की जरूरत नहीं है। बतलाओ क्या चिन्ता है। मैं उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करूंगा। तनिक भी संकोच की अपेक्षा नहीं है।

बूढ़ा असमंजस में पड़ गया। क्या करूं ? अनजान व्यक्ति को दिल का दर्द कैसे बताऊं ? टालमटोल करता हुआ आगे बढ़ा। तब आगन्तुक ने उसे रोकते हुए कहा—भाई ! घबराओ मत, मेरी इच्छा है कि तुम्हारी हृदयस्थ पीड़ा को दूर

करने में कुछ हाथ बटा सकूं। उसकी सहानुभूति व सहृदयता देखकर बूढ़ा कुछ आश्वस्त होकर बोला—हे आर्यवर ! मैं एक गरीब ब्राह्मण हूं। बेटे के विवाह हेतु एक महाजन से कुछ कर्ज लिया था। लाख कोशिशें करने पर भी कर्ज नहीं चुका सका। अब उसने न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया है। क्या करूं, मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही है। उसका कर्ज कैसे चुकाऊं ?

उस महापुरुष ने उस गरीब ब्राह्मण से पूरा विवरण प्राप्त किया। न्यायालय का नाम व मुकदमे की अगली तारीख अपनी नोट-बुक में नोट कर ली।

मुकदमे की तारीख आयी। ब्राह्मण ने सोचा, अब न्यायालय में उपस्थित होना पड़ेगा। वह भयभीत-सा न्यायालय में पहुंच गया। हृदय में विभिन्न प्रकार की तरंगें उठने लगीं। अदालत के एक कोने में बैठकर अपने नाम का इन्तजार करने लगा। काफी समय हो गया। इन्तजार करते-करते वह थक गया। क्या हुआ, नाम की पुकार नहीं आ रही है। वह और भी चिन्तित हुआ। घबराने लगा। अदालत के अहलकारों से पूछा—क्या हुआ ? मेरा नाम कैसे नहीं आया ? राज कर्मचारियों ने कहा—भाई ! चिन्तातुर होने की जरूरत नहीं, किसी एक व्यक्ति ने तेरे कर्ज की पूरी रकम जमा करवा दी है और मुकदमा खारिज हो गया है। यह सुनते ही विप्र के हृदय में आश्चर्य का ठिकाना न रहा और खुशी भी हुई। ब्राह्मण ने पता लगाया तो उसको जानकारी मिली कि कर्ज उतारने वाले महापुरुष वही थे, उन्होंने एक दिन सड़क के किनारे पर मुझसे पूछा था कि इतने चिन्ताग्रस्त क्यों ?

महापुरुष वही होते हैं जो सबके प्रति सहानुभूति व सद्भावना रखते हैं। समय पर जो किसी का सहयोग करता है, उदारता का परिचय देता है, पीड़ित मनुष्यों को गले लगाता है—वह व्यक्ति इस धरातल पर दिवाकर की भांति चमक उठता है।

व्यथित मनुज का समय पर, करता जो उपकार।
वह मानव नक्षत्र सम, चमकेगा हर बार॥

गुरु-परिचर्या

एक बहुत बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। वृद्धावस्था आने के बाद शारीरिक बलनष्ट हो गया। इन्द्रियां हीन पड़ गयीं। जंघा में शिथिलता आने के कारण वे जंघाक्षीण आचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये। विहार करते-करते किसी शहर में गुरुदेव का पदार्पण हुआ। ज्ञान-सम्पन्न, अर्थ-सम्पन्न व श्रद्धा-सम्पन्न श्रावकों ने निवेदन करते हुए कहा—गुरुदेव ! आप वृद्ध हो गये, कृपया यहीं पर विराजने की अनुकंपा करें।

अब आपकी स्थिति विहरण योग्य नही है। श्रावक समाज की विशेष प्रार्थना पर गुरुदेव ने स्थिरवास का निर्णय ले लिया। अपना सेवा में कुछ साधुओं को रखकर अन्य संतों का विहरण का आदेश फरमा दिया।

जो संत आचार्यवर की सेवा मे रहे थे, वे बडे विनीत थे। गुरु इंगित पर चलने वाले थे। गुरु की परिचर्या मे वे हर दृष्टि मे पूर्ण समर्पित थे। अम्लान भाव से सेवा-सुश्रषा करने वाले संतों का प्रभाव श्रावकों पर बहुत पडा। सब कहने लगे—ऐसी परिचर्या करने वाले संत विरले ही मिलेंगे। चातुर्मास-परिसमाप्ति के बाद अन्य सभी संत भी वहां आ पहुंचे। उन संतों के सामने श्रावकों ने सेवा करने वाले संतों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा—चातुर्मास में संतों ने अनहद सेवासुश्रूषा की है. वह चिरकाल स्मरणीय रहेगी। इनका सुन्दर इतिहास बनेगा। ये शिष्य बहुत ही सुपात्र व सुयोग्य है।

जो आत्मार्थी संत थे वे उनकी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हुए किन्तु एक अविनीत शिष्य उन संतो की कीर्ति-गाथा सुनकर जल उठा, ईर्ष्या करने लगा और बोला—क्या हमको सेवा करनी नही आती है ! हम इनसे अच्छी सेवा कर सकते हैं। तुम तो केवल उनकी गौरव-गाथा गा रहे हो। श्रावको ने कहा—महाराज ! हाथी का भार हाथी उठा सकता है। आचार्यों की सेवा करना कोई सरल कार्य नही है। वह अविनीत शिष्य बोला—इसमें कोई विशेष बात नही है। इस वर्ष मैं अकेला ही गुरु की सेवा करूंगा। फिर तुम मेरी परीक्षा करना।

सब संतो को विहार कर दिया गया। वह अकेला गुरु-सेवा में रह गया। चार-पांच महीनो तक उसने सेवा बहुत अच्छी की, किन्तु आखिर में वह थक गया। मन मे सोचने लगा—गुरुजी कब मरेंगे ? मैं किसी से बात नहीं कर सकता, न ही सुख मे नीद ले सकता, एक मिनट तक भी विश्राम नही। अब तो गुरुजी मृत्यु की शरण मे पहुच जायें तो अच्छा।

अब हर दृष्टि से सेवा मे अन्तर पड जाता है। गोचरी जाता है, रूखा-सूखा लाकर दे देता है। श्रावकों के सामने बातें बनाता रहता है कि अब गुरुजी संथारा करने वाले हैं। इसलिए रस का परित्याग कर दिया है। भोजन मे काफी संयम रखते है। श्रावक सब असमंजस मे पड़ गये—क्या हो गया !

इधर वह उद्दंड अविनीत शिष्य गुरु को ऐसा शुष्क आहार लाकर देता, जो गुरु से खाया नहीं जाता। गुरु ने उसे कोमल शब्दों मे कहा—चेला ! मेरे दांत नहीं हैं। गोचरी में कुछ ध्यान रखना। चेला उछल पड़ा। जोर से बोला—गुरुजी ! आप ही व्याख्यान मे फरमाते थे—

स्त्री पीयर, नर सासरे, संयमी नो स्थिरवास।
एतो होय अलखामणा, जो रहे स्थिरवास॥

इसी प्रकार आप और मैं दोनों श्रावक समाज के लिए भारभूत बन रहे हैं। सरस व यथेष्ट भोजन सबके घर में बनता है, फिर भी श्रावक गण देना नहीं चाहते हैं और कहते हैं—ये संत यहां पर कब तक रहेंगे। एक दिन श्रावकों ने कहा—गुरुवर! आपका शिष्य कहता है कि गुरुदेव ने रस का परित्याग किया है और रूक्ष आहार मंगाते हैं। गुरुदेव, हम सब लोगों की यह इच्छा है कि आप अभी अनशन की न सोचें। जैन धर्म की प्रभावना करते रहें, आप संघ के श्रृंगार हैं। ऐसा सब सुनकर गुरुजी समझ गये—यह अविनीत शिष्य सेवा-परिचर्या करता थक गया है इसलिए सारा प्रपंच रच रहा है। मेरे योग से शिष्य पीड़ित हो रहा है, अब संथारा संलेखना करना ही श्रेयस्कर है।

ऐसा चिन्तन कर कुशिष्य के तनिक भी दुर्गुण प्रकट न करके आत्मालोचन करते हुए गुरुजी आत्मा में रमण करने लगे। शुभ समय देखकर उज्ज्वल परिणामों से अनशन शुरू कर दिया। परिणामों की श्रेणी पर चढ़ते-चढ़ते कर्मों का अवसान होते ही केवलज्ञान उपार्जन कर लिया और सिद्ध बन गये। वह अविनीत शिष्य मरकर दुर्गति में चला गया।

सेवा-सुश्रूषा वही साधक कर सकता है जो आत्मार्थी होता है। शास्त्रों में सेवाधर्म का बहुत बड़ा फल अंकित है। गुरुजी की जो सेवा करना नहीं चाहता है, वह अविनीत शिष्य की भांति प्रपंच रचता है।

शास्त्रों मे उल्लिखित है, सेवाधर्म महान।
आत्मार्थी सेवा करे, निज कर्तव्य पिछान॥

मित्र-परीक्षा

एक सेठ था। उसके एक ही पुत्र था। सेठ अपने व्यापार में व्यस्त रहता था। सेठ का पुत्र बड़ा हुआ। व्यापार में हाथ बंटाने लगा। सेठ ने अपने पुत्र को व्यापार आदि समस्त प्रवृत्तियों से अवगत करा दिया।

पुत्र का एक मित्र था। वह बड़ा चतुर व विलक्षण था। प्रतिदिन दुकान पर आ जाता था। सेठ का पुत्र भी उसके साथ इधर-उधर घूमने निकल जाता था। दोनों की मित्रता बढ़ती गयी। सेठ के पुत्र का अधिकतम समय मित्र के साथ व्यतीत होता था। एक दिन सेठ ने बात-ही-बात में बेटे से पूछा—यह जो तुम्हारा मित्र है, इसका स्वभाव कैसा है? यह क्या करता है? बेटा बोला—पिताजी, लगता है कोई छोटा-मोटा व्यापार करता होगा।

'क्या तुम्हें इसकी जानकारी अच्छी तरह से नहीं है?'

'बिलकुल भी जानकारी नहीं है।'

'पुत्र ! मेरी एक शिक्षा है कि यदि किसी को मित्र बनाना हो तो सबसे पहले उसके बारे में पूरी जानकारी ले लेनी चाहिए।' सेठ ने सुकोमल शब्दों में अपने पुत्र को प्रशिक्षण देते हुए कहा।

'पिताजी, आप तो बिना मतलब मेरे मित्र पर शक करते हैं। मैं अपने मित्र को अच्छी तरह जानता हूं। मेरा मित्र बड़ा ईमानदार है, प्रामाणिक है।'

सेठ ने सोचा—अब इसको बार-बार कहने में कोई लाभ नहीं है। काफी समय बीता। वह अपने मित्र के साथ घूमता रहा। इधर सेठ ने दूर-देश में जाकर व्यापार करने की सोची। सेठ ने पुत्र से कहा—पुत्र ! मैं परदेश जा रहा हूं। पीछे से चोरी का खतरा है। सोचता हूं तिजोरी किसी ईमानदार व्यक्ति के पास में रख दूं लेकिन ऐसा व्यक्ति कौन है? पुत्र बोला—पिताजी ! चिन्ता की क्या बात है, मेरा मित्र हर दृष्टि से योग्य है। वह तिजोरी मैं उसके पास रख आता हूं। सेठ ने तिजोरी दे दी। उसका बेटा अपने मित्र के घर पर तिजोरी रख आया। पिता-पुत्र दोनों परदेश के लिए रवाना हो गये। कई महीने बीते, सेठ ने काफी धन कमाया। फिर देश के लिए रवाना हुआ। घर पहुंचा। सेठ ने बेटे से कहा—मित्र के यहां से तिजोरी ले आओ। देख लेना उसका वजन उतना ही है जितना पहले था। सेठ का बेटा मित्र के यहां गया, वापस खाली हाथ आया और बोला—पिताजी ! आपने मेरे मित्र के साथ धोखा क्यों किया? आपने तिजोरी में धन रखने के बजाय पत्थर क्यों रख दिये थे? मेरा मित्र बहुत नाराज है। कहता था कि क्या मुझे चोर समझा है?

सेठ ने शान्त भाव से कहा—बेटा ! परीक्षा हो गयी। तेरे मित्र को धोखा मैंने नहीं दिया है, धोखा दिया है तेरे मित्र ने। उसने बिना पूछे ताला तोड़ा है। धन को साफ करने का प्रयास किया है। अगर उसने तिजोरी नहीं खोली तो उसे कैसे पता चला कि अन्दर पत्थर हैं। वह नैतिक नहीं है, धोखेबाज है। अब इस परीक्षा से तुम समझ गये होगे कि तुम्हारा मित्र कैसा है? इसलिए मैंने कहा था कि किसी को मित्र बनाने के पहले उसे परख लेना चाहिए।

समय पर मित्र की परीक्षा होती है। जो मित्र अनैतिक व धोखेबाज होता है, उसका किसी भी क्षेत्र में विश्वास नहीं जमता है। आखिर उसको दुःख पाना पड़ता है।

मित्र-परीक्षा कर करो, मैत्री सबके साथ।
कुटिल जनों की मित्रता, मिट जाती साक्षात्॥

निन्दा-स्तुति में सम

पृथ्वीभूषण नगर में उदायन नाम का राजा राज्य करता था। नीतिनिष्ठ होने के साथ-साथ वह हर क्षेत्र में बहुत ही निपुण व दक्ष था। न्यायी राजा का योग मिलने से वहां की प्रजा बहुत ही सुखी थी। नगर की विशालता आकाश की विशालता को परास्त कर रही थी। नगर की सुन्दरता स्वर्ग की सुन्दरता को अपहृत कर रही थी। एक दिन शहर में प्लेग की भयंकर बीमारी फैल गयी। अनेक प्रयत्न करने पर भी रोग शान्त नहीं हुआ। राजा के हृदय में चिन्ता का पार नहीं था—कैसे रोग मिटेगा? कैसे शान्ति होगी? इतने में तीन मंत्रवादियों का आगमन हुआ। उन्हें सम्मानित करते हुए नृप ने पूछा—हमारा नगर रोग से संत्रस्त है। कैसे उपशान्त होगा? अगर इसका उपचार आप जानते हैं तो कृपया बताइये।

एक मंत्रवादी ने कहा—'मैंने एक देवता को वश में कर रखा है। वह आते ही नगर में परिभ्रमण करेगा रोग को शान्त कर देगा। किन्तु वह देव अति रूपवान है, सुन्दर है। कोई भी व्यक्ति अगर उसको नजर से देख लेगा तो उसी समय वह उसको मार देगा।' यह सुनकर राजा मौन रहा।

दूसरे मंत्रवादी ने कहा—'मैंने भी एक देव को साधा है। किन्तु वह कुरूप है। उसके एक पैर है, सिर पांच हैं, उदर में गड्ढा है, कूब निकली हुई है, महाभयंकर पिशाच के तुल्य डरावना है। वह घर-घर जायेगा, लोग यदि उसकी स्तुति करेंगे तो रोग शान्त हो जायेगा परन्तु बीभत्स रूप देखकर यदि कोई उसका उपहास करेगा तो वह परलोक पहुंच जायेगा।' राजा बिलकुल मौन।

सुकोमल शब्दों में तीसरे मंत्रवादी ने कहा—'राजन्! अपने देव की वस्तु-स्थिति से भी परिचित कराना चाहता हूं। प्रभो! मेरा देव न ही अधिक रूपवान है, न ही अधिक कुरूप। यह घर-घर में घूमेगा। चाहे कोई इसकी स्तुति करो चाहे कोई निन्दा, दोनों में यह सम रहेगा। सबके रोग को उपशान्त कर देगा।

राजा ने तीसरे मंत्रवादी को सम्मानित करते हुए आमन्त्रण दिया और रोग शान्त हुआ। सर्वत्र शान्ति की सौरभ महक उठी।

जो व्यक्ति निन्दा-स्तुति में सम रहता है, उसको हर क्षेत्र में सम्मान मिलता है।

निन्दा-स्तुति में सम रहे, मिलता उसे महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' साम्य ही, जीवन का शुभ तत्त्व॥

संयम में स्थिर

चंपानगरी में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। ऋषिभद्र नाम का राजकुंवर था। उसके हृदय में वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह दीक्षित हो गया। गुरुदेव के पास विनय भाव से उसने शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। पूर्वधारी बना। शिष्य ने कहा—गुरुदेव! मेरी इच्छा है कि मैं पडिमा को स्वीकार करूं, कृपया आज्ञा फरमायें। गुरु ने अपने शिष्य को योग्य समझकर आदेश देते हुए कहा—तुम जाओ और अपनी साधना में सफल बनो।

गुरु का आशीर्वाद लेकर वह चल पड़ा। वृक्ष के नीचे भिक्षु की प्रथम महापडिमा अंगीकार कर ध्यानस्थ हो गया। उसी वृक्ष पर मधुमक्खियों का छत्ता था। अचानक वे मक्खियां उड़-उड़कर मुनिवर के शरीर को डंक मारने लगीं। उससे वेदना का पार नहीं रहा। मुनिराज अपने मन में चिन्तन करने लगे—अरे जीव! घबराने की अपेक्षा नहीं है। यह जीव अनंत बार नरक निगोद में भटका है। वहां की वेदना को याद कर। परमाधामी देव ने तीक्ष्ण-तीक्ष्ण भालों से तेरा छेदन-भेदन किया, गरम-गरम तेल की कड़ाही में तुझे चनों की तरह भून दिया। परवशता से उन सब कष्टों को सहन किया। फिर भी जीव का कल्याण नहीं हुआ।

अरे ऋषिभद्र! आज तेरा अहोभाग्य है। ये मधुमक्खियां तेरे शरीर पर आकर बैठी हैं। डंक मार-मार तेरा खून पी रही हैं। किन्तु नरकालय की वेदना के सामने यह वेदना कुछ भी नहीं है। प्रतिमा स्वीकार करने पर जो यह असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई इसे देखकर मैं कभी भी विचलित होने वाला नहीं हूं। मैंने जो संयम स्वीकर किया है उसका कभी भी परित्याग नहीं करूंगा।

इसी प्रकार के और भी अनेक भयंकर उपसर्ग उत्पन्न हुए। मेरु पर्वत की भांति सम्पूर्ण रात्रि में मुनिराज अटल रहे। शुभ परिणामों की श्रेणी में झूलते हुए कर्मों की जंजीरों को तोड़ने लगे। समता से सभी परिषहों को सहकर समाधिपूर्वक मुनिराज देवलोक पधार गये।

संसार में महापुरुष वही होते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने नियमों पर अटल रहते हैं। कदाचित् समुद्र अपनी मर्यादा का परित्याग कर सकता है, हिमालय हिल सकता है, फिर भी संत-गण भयंकर उपसर्ग उत्पन्न होने पर अपनी साधना से नहीं हिल सकते।

साम्य भाव से सन्त-गण, सहते हैं उपसर्ग।
कर्मों का अवसान कर, पाते हैं अपवर्ग ॥

शास्त्रों का सार

बसंतपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। वह न्यायप्रिय था। एक दिन नृप के हृदय में शास्त्र-श्रवण की इच्छा जागृत हुई। राज्य-सभा में चार पंडित आये। ललाट पर तिलक छापे लगाये हुए थे। चारों ही अलग-अलग विषय के विशेषज्ञ थे। उनकी भिन्न-भिन्न विशेषता थी। उन्होंने बुद्धि-कौशल से चार महान ग्रन्थ बनाये। प्रत्येक के एक-एक लाख श्लोक थे। पंडितों ने कहा—राजन्! इन चारों ही ग्रन्थों में बहुत ही विस्तार से विभिन्न विषयों पर विश्लेषण किया हुआ है। कृपया इन चारों ग्रन्थों का आप गहराई से अध्ययन करें, जिससे देश की प्रजा को बड़ा लाभ मिलेगा।

राजा ने सुकोमल शब्दों में उत्तर देते हुए कहा—पंडितो! आपका कथन अक्षरशः सत्य है, किन्तु इतने महान ग्रन्थों को सुनने और अध्ययन करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। अतः इन चारों ग्रन्थों का सार स्वल्पाक्षरों में ही बताने का प्रयास करें। तब चारों ही पंडित सारभूत एक श्लोक बनाकर राजा के सामने उपस्थित हुए और बोले—स्वामिन्! एक श्लोक में सभी ग्रन्थों का सार भर गया है। कृपया ध्यान से सुनिये—

जीर्णे भोजन मात्रेयः, कपिलः प्राणिनां दया।
बृहस्पति रविश्वासः पंचालः स्त्रीषु मार्दवं॥

आग्नेय नाम के विद्वान् ने कहा—राजन्, भोजन पच जाने के बाद फिर दूसरी बार भोजन करना चाहिए। यह वैदिक ग्रन्थों का सारभूत तत्त्व है।

कपिल नाम के पंडित ने कहा—सम्राट! जगत् के समस्त प्राणियों के प्रति दया रखना धर्मशास्त्र का परमार्थ है।

बृहस्पति नाम का विद्वान बोला—किसी भी स्थिति में किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए, यह नीतिशास्त्र का सार है।

पंचाल नाम के विद्वान ने कहा—राजन्! स्त्रियों के साथ मृदुता का व्यवहार करना चाहिए और उनका अन्त नहीं लेना चाहिए, यह कामशास्त्र का रहस्य है।

स्वल्प अक्षरों में शास्त्रों का सार सुनकर राजा बहुत ही खुश हुआ और चारों ही पंडितों को दिल खोलकर पारितोषिक दिया, सम्मानित किया। मुक्तकंठ से चारों का गुण गाया।

थोड़े में शास्त्रों का सार बता देना यह बुद्धि-चातुर्य का फलित है। भगवान महावीर ने जो कुछ भी कहा, वह संक्षेप में कहा। उनकी संक्षिप्त रहस्यभरी वाणी से जनता आज भी लाभान्वित हो रही है। द्वादशांगी रूप संक्षेप सामायिक का भी बोध होना परम आवश्यक है।

जो कहते संक्षेप में, उसका अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, पाता अनुपम तत्त्व॥

प्रतिज्ञा का प्रताप

नेपोलियन एक विज्ञ व्यक्ति था। हर क्षेत्र में निपुण एवं समझदार था। ईमान व प्रामाणिकता को वह अपने जीवन का सुखद संबल मानता था। सत्य को अपनी सच्ची संपदा समझता था। सुना जाता है कि उसकी माता ने एक दिन उससे कहा—बेटे! अमुक कार्य करने के लिए मुझे इतनी धनराशि की परमावश्यकता है। नेपोलियन अपनी माता का विनीत व सुयोग्य अंगज था। वह किसी भी स्थिति में अपनी माता के आदेश का उल्लंघन करना नहीं चाहता था। किन्तु उसके पास माता को संतुष्ट करने योग्य धन नहीं था। वह चिन्तन करने लगा—माता की आज्ञा-पालन करने की प्रतिज्ञा पहले ही कर चुका हूं और इतना धन मेरे पास नहीं है। ऐसी स्थिति में प्राणों का विसर्जन ही श्रेयस्कर है।

मन में मरने की भावना लेकर वह घर से निकल पड़ा। चलता-चलता वह घने जंगल में जा पहुंचा। व्यथित-मन होकर वह इधर-उधर भटक ही रहा था, अचानक रास्ते में उसे एक अपरिचित व्यक्ति मिला। उस मुसाफिर ने एक थैली देते हुए कहा—भाई साहब! थोड़ी देर आप मेरी थैली को रखना, मैं शौचादि कार्य से निवृत्त होकर अभी आता हूं। मुझे आप पर विश्वास है अतः थैली संभलाकर जा रहा हूं।

नेपोलियन ने उसकी आकृति आभा देखकर सोचा—यह व्यक्ति वास्तव में भाग्यवान् है। चलो, मरना तो है ही, मरने से पहले इसका भी कुछ काम कर दूं यह निर्णय लिया। नेपोलियन ने थैली अपने हाथ में ले ली। उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करता-करता नेपोलियन थक गया। लेकिन थैली वाला वापस नहीं आया। समझ में नहीं आ रहा है, वह व्यक्ति कहां गायब हो गया। आस-पास खोज की किन्तु वह नहीं मिला। आखिर नेपोलियन ने थैली खोली और देखा तो उसमें उतना ही धन था जितना उसकी माता ने उससे मांगा था। नेपोलियन के हृदय में आश्चर्य का ठिकाना न रहा—अहो! यह क्या कोई देव-माया है अथवा किस्मत का चमत्कार!

प्रतिज्ञा-पालन में जो व्यक्ति दृढ़ता का परिचय देता है उसकी कदम-कदम पर विजय होती है। उसको यथेप्सित फल मिलता है। विश्व में सितारों की भांति वह चमकता है।

नियम निभाने में सतत जो नर दृढ़ सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' चमकता उसका नव-नक्षत्र॥

बुद्धि का नैपुण्य

राजा भोज ने एक आश्चर्यकारी घटना देखी—एक ब्राह्मण था। उसके पिता का श्राद्ध आया। भोजन-सामग्री तैयार हुई। उस विप्र की यह मान्यता थी कि पूर्वज लोग कौवा बनकर आते हैं। इसी चिंतन से वह कौवों को भोजन खिला रहा था। कौवे भोजन करने लगे। उस ब्राह्मण की स्त्री स्वभाव से कुछ कंजूस थी। वह भोजन-सामग्री कुछ बचाना चाहती थी, अतः कौवों को देखकर वह भयभीत होने लगी।

राजा भोज ने उस ब्राह्मणी को इस प्रकार कौवों से भयभीत होते देखकर विचार किया—जो स्त्री दिन में ही कौवों से डरती है, देखें इसका चरित्र कैसा है? राजा छिपे वेश में उस स्त्री के चरित्र का पता लगाने लगा।

ब्राह्मण जब कौवों को दे रहा था, तब उसकी पतिव्रता ने बड़े कोमल शब्दों में कहा—मुझे कौवों से डर लगता है, कौवों को देखते ही दिल थरथराने लगता है।

पति ने कहा—प्रिये! तुझे यदि इतना डर लगता है तो मैं कौवों को भोजन नहीं कराऊंगा। इस तरह ब्राह्मणी की कामना साकार हुई।

रात्रि का समय हुआ। ब्राह्मणी ने बची हुई भोजन-सामग्री एक डिब्बे में बंद की और डिब्बा सिर पर रखकर रवाना हुई। ब्राह्मणी अपने प्रेमी के पास जाना चाहती थी, मगर बीच में नदी आती थी और नदी में मगरमच्छ आदि जंतुओं का भय था। उस स्त्री ने साथ लायी हुई सामग्री एक ओर नदी में फेंक दी। मगरमच्छ आदि सभी जंतु भोजन-सामग्री खाने लगे। वह नदी के परले पार चली गई। अपने प्रेमी के पास पहुंचकर और मनोरथ पूर्ण कर वापस आ गई। राजा भोज ने यह सारी घटना देखी। राजा सोचने लगा—मैं तो इस घटना से परिचित हो गया, मगर इस प्रकार की घटना से लोगों की अवगति है या नहीं? राजा भोज राज्यसभा में पहुंचा। अपने प्रकांड मनीषियों के सामने युक्तिपूर्वक बोला—'दिवा काकस्य भयात्' अर्थात् दिन के समय काक से डरती है। पंडितो! इसका अगला पद्य आप लोग बनाएं। अन्य सब पंडित मौन रहे, किन्तु कवि कालिदास से रहा नहीं गया। वह खड़ा हुआ और बोला—'रात्रि तरति निर्मल जलं' अर्थात् वही रात्रि के समय में जल में तैरती है।

यह सुनकर राजा ने कालिदास से कहा—'तत्र वसन्ति ग्राहादयो।'

जल में तो ग्राह, मगरमच्छ आदि जल-जीव रहते हैं। इसके प्रत्युत्तर में कालिदास ने कहा—'मर्म जानन्ति सासतीन्द्रिका।'

अर्थात् जो दिन में कौवे से डरती है और रात्रि में नदी पार कर आती है, वह स्त्री ग्राह, मगर आदि जंतुओं से बचने का उपाय भी जानती है।

जैसे कवि कालिदास ने एक पद सुन दूसरा पद बना दिया और तीसरा पद सुनकर चौथा पद बना दिया था, यह सब विशिष्ट बुद्धिमत्ता का ही सुपरिणाम है। बुद्धि-नैपुण्य के बिना कोई भी पादपूर्ति कर नहीं पाता।

होता विज्ञ समाज में, मति-नैपुण्य महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' विज्ञ नर, पा सकता है तत्त्व॥

मृत्यु से पहले

एक ब्राह्मण था। अध्ययन करने के लिए काशी गया। पढ़-लिखकर वह होशियार हो गया। अपने ग्राम में आया। स्थानीय लोगों ने उस ब्राह्मण का अभिनंदन करते हुए कहा—'हमारा अहोभाग्य है कि पंडितजी संस्कृत विद्या में पारंगत होकर गांव में पधार गये हैं।' स्वागत और अभिनंदन के साथ-साथ कई महानुभावों ने इस खुशी में उन्हें रुपयों की थैलियां भेंट कीं। काफी मात्रा में द्रव्य देखकर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री के लिए स्वर्णाभूषण बनवा लिये। ब्राह्मणी के हृदय में प्रसन्नता का पार नहीं था। वह बांसों उछलती हुई रात-दिन उन आभूषणों को पहनकर गांव में भ्रमण करती रहती।

ब्राह्मण ने अपनी धर्मपत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—'प्रिये ! रात-दिन आभूषणों से लदे रहना उचित नहीं है। जमाना बहुत खराब है। कदम-कदम पर ध्यान रखना है क्योंकि ग्राम मे चोरों का भय बहुत है। कहावत है—डर काया को नहीं, माया को है। कोई त्योहार हो अथवा तू अपने पीहर जाने वाली हो या किसी शादी-विवाह में जाना हो तो गहने भले ही पहन लेना किन्तु इस प्रकार रात-दिन पहनकर आडम्बर प्रदर्शित करना बुद्धिमत्ता नहीं है।'

किन्तु ब्राह्मणी अपने पति की हितकारी शिक्षा को जीवन में कहां ढालने वाली थी ! वह पहले की भांति ही रात-दिन आभूषणों के नशे में चूर रहती। कुछ ही समय के बाद ब्राह्मणी शारीरिक दृष्टि से काफी मोटी हो गई। तब ब्राह्मण ने फिर अपनी धर्मपत्नी से कहा—'प्रिये ! तेरी शारीरिक मोटाई के कारण ये आभूषण जल्दी से खुल नहीं पायेंगे, अतः इन सबको अभी धीरे-धीरे खोलकर आलमारी में रख दे। इसी में लाभ है।' किन्तु वह मूर्खा कहां मानने वाली थी ! आवेश में आकर जोर से तड़ककर बोली—'आप तो बड़े डरपोक हैं। आपको तनिक भी घबराने की अपेक्षा नहीं है। कदाचित् चोर भी आ जायेंगे तो मैं उसी वक्त आभूषणों को निकाल लूंगी। किन्तु अभी मैं आभूषणों को नहीं खोलूंगी।'

कुछ ही दिनों के बाद घर में सचमुच चोर घुस गये। अब तो ब्राह्मणी घबरायी। चोर बोले—'जल्दी से आभूषण खोलकर हमको दे दो, अन्यथा हम

आभूषणों सहित तेरा ही अपहरण कर लेंगे।' ब्राह्मणी आभूषणों को जल्दी निकाल नहीं सकी, तब चोर ब्राह्मणी का ही अपहरण कर ले गये। बाद में आभूषण तो उन्होंने ले लिए, पर ब्राह्मणी के गले पर तलवार चला दी।

ज्ञानी संतों का कहना है कि मृत्यु आने से पहले-पहले जो व्यक्ति धर्म में प्रवृत्त हो जाता है, उसे कभी भी पछताना नहीं पड़ता। यदि ब्राह्मणी ब्राह्मण का कहना मान लेती तो उसे बिना मौत क्यों मरना पड़ता !

यम के आने से प्रथम, कर लेना कुछ धर्म।
पछताओगे अन्यथा, है यह सच्चा मर्म॥

धूर्त की धूर्तता

एक बहुत बड़ा जागीरदार था। हर क्षेत्र में वह निपुण एवं विलक्षण बुद्धि का धनी था। सैकड़ों बीघा जमीन थी। हजारों मन अनाज व कपास होता था। पंचायत समिति का होनहार पंच था। ईमानदारी व प्रामाणिकता को वह सर्वत्र महत्त्व देता था। सरल स्वभावी था। लोकप्रिय था। एक दिन किसी ठग से मुलाकात हो गई। ठग बड़ी सुमधुर भाषा में बोला—'जागीरदार साहब ! स्वास्थ्य कैसा है ? मेरे लायक कोई काम-काज हो तो कृपया फरमाइये।' जागीरदार के मन में तनिक भी कुटिलता नहीं थी। वह अपनी सहजता में रमण करता था। उसके हृदय में किसी भी प्रकार का छल-प्रपंच नहीं था। ठग ने कहा—'जागीरदारजी ! आपकी कृपा से मैं विभिन्न प्रकार की कलाओं में पारंगत हूं। मैं पीतल को सोना बना सकता हूं।'

जागीरदार ने कहा—'आज मेरी तकदीर खुल गई जो आप जैसे मेधावी मित्र का सहवास मिला।' ठग बोला—'आपके घर में जितना भी सोना हो, वह सब मेरे पास लाओ तो मैं उसका दुगुना कर दूंगा।' इस प्रकार का प्रलोभन देकर वह ठग जागीरदार को जंगल में ले गया और सारा सोना थाली में रखने के लिए कहा। जब जागीरदार ने सारा सोना थाली में रख दिया तो ठग बोला—'सोना दुगुना करने के लिए एक सुन्दर घोड़ी चाहिए, आपके पास हो तो ले आइये। इस सोने के चारों ओर घोड़ी की प्रदक्षिणा कराना आवश्यक है।'

जागीरदार बेचारा घर गया और सुन्दर-से-सुन्दर एक घोड़ी लेकर उपस्थित हुआ। ठग घोड़ी पर सवार होकर कुछ देर तो उसे सोने के चारों तरफ घूमता रहा, फिर सारा सोना उठाकर ऐसा भागा कि जागीरदार बेचारा आंखें फाड़कर देखता ही रह गया। मन-ही-मन पछताने लगा—हाय ! कैसा धूर्त ! कैसा ठग !

सोना भी गया। घोड़ी भी गई। ऐसा पता होता तो मैं ठग की छलना में कभी नहीं फंसता।

जो व्यक्ति ठग होते हैं, वे दूसरों को धोखा देने के लिए अपनी धूर्त्तता चलाए बिना नहीं रहते। किंतु बुद्धिमान वे हैं जो ठग व्यक्तियों के संसर्ग से हरदम दूर रहते हैं।

धोखा देने अन्य को, करते धूर्त्त प्रयास।
भूल-चूक ठग मनुज का मत करना सहवास ॥

प्रमादी मत बनो

एक महाजन था। व्यापार में बड़ा निपुण था। बुद्धिमान होने के साथ-साथ हर क्रिया में बड़ा व्यावहारिक था। परदेश जाते हुए महाजन ने धर्मपत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—'प्रिये ! घर का ध्यान रखना। पशु धन ही सच्चा धन है। सबकी सुरक्षा रखना तेरा परम कर्तव्य है।' इस तरह घर की सारी जिम्मेदारी देकर सेठ परदेश चला गया।

सेठानी का स्वभाव अच्छा नहीं था। बोली में माधुर्य नहीं था। वह नौकरों को बिना मतलब कोसती रहती थी। व्यापार में उसका दिल नहीं लगता था। खा-पीकर दिन में घंटों-घंटों सो जाती थी। ऐश-आराम में अपना समय बर्बाद करती थी। प्रमादवश नौकरों से भी अच्छी तरह से काम नहीं करा सकती थी। महीना पूरा होते ही नौकरों ने सेठानी से तनखाह मांगी। सेठानी तड़का-भड़का करने लगी—'तुम लोगों ने अच्छी तरह से काम नहीं किया है।' सेठानी का ऐसा व्यवहार देखकर नौकर धीरे-धीरे खिसकने लगे। पशुओं को पूरी खुराक नहीं मिलती थी। भूख से पीड़ित होकर काफी जानवरों ने परलोक की राह पकड़ी। व्यापार में भी काफी नुकासन हो गया।

कई महीनों के पश्चात् सेठजी लाखों की संपत्ति कमाकर घर पहुंचे। सेठानी से वार्तालाप हुआ। व्यापार में नुकसान देखकर सेठजी चमक उठे। अपनी अर्धांगिनी को ललकारते हुए कहा—'तुमने ध्यान नहीं रखा। तुम्हारे प्रमाद तथा आलस्य के कारण कितनी बड़ी क्षति हुई है।' सेठ ने गुस्से में आकर सेठानी का परित्याग कर दिया और दूसरा विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी को प्रशिक्षण देते हुए सेठ ने कहा—'अगर तुम भी प्रमाद व आलस्य रखोगी तो तुम्हारा भी वही परिणाम होगा।' स्त्री ने कहा—'पतिदेव ! आप जैसा फरमायेंगे, उसी के अनुरूप मेरी गति होगी।'

दस-पन्द्रह नौकरों की अच्छी व्यवस्था कर सेठजी परदेश चले गये। पीछे

दूसरी स्त्री घर की जिम्मेदारी अच्छी तरह निभाती। नौकरों की भी हर दृष्टि से अच्छी सार-संभाल करती। समय-समय पर उन्हें पूछती कि किसी भी वस्तु की दरकार हो, अथवा पशुओं की व्यवस्था में कुछ भी जरूरत हो तो बताते रहना। ऐसे मधुर व सुकोमल व्यवहार से सभी नौकर बड़े प्रसन्न थे। पशु-पालन-पोषण में दिल तोड़कर श्रम करते थे। इससे दूध के व्यापार में बहुत ही अच्छा लाभ होने लगा। कई महीनों के बाद सेठजी घर लौटे। व्यापार का निरीक्षण किया। इधर सभी नौकर सेठानी की प्रशंसा करने लगे। व्यापार में अच्छा लाभ देखकर सेठ बहुत खुश हुआ और घर की सारी बागडोर सेठानी के हाथों में सौंप दी।

इसी प्रकार जो प्राणी प्रमाद और आलस्य को छोड़कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उद्यमशील रहता है, वह हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

परम प्रमादी पुरुष का, होता नहीं विकास।
नहीं मिले सत्ता उसे, कदम-कदम पर ह्रास॥

अभयदान

राजगृह एक विशाल सुरम्य नगर था। वहां पर श्रेणिक राजा राज्य करता था। मंत्री आदि अनेक सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों से सभा-स्थल खचाखच भरा हुआ था। अनेक विद्वान भी बैठे हुए थे। राजा श्रेणिक ने उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए पूछा, 'इस नगर में कौन-सी वस्तु सुलभ व स्वादु है?'

मंत्रियों ने कहा—'इस नगर में स्वादु और सरस वस्तु यदि कोई है तो वह है मांस। मांस खाने से शरीर की पुष्टि होती है।'

अभयकुमार भी सभा में बैठा था। क्षत्रियों की बात सुनकर वह चमका। गह-राई से सोचने लगा—ये सभी लोग निर्दयी हैं। इनके हृदय में तनिक भी दया की भावना नहीं है। इन सबको ज्ञान के माध्यम से ऐसा समझाऊं कि वे पुन: मांस की सराहना भी न कर सकें। ऐसा चिन्तन कर अभयकुमार रात्रि में सभी क्षत्रियों के घर पृथक्-पृथक् रूप में जाकर बोला, 'ओ क्षत्रियो! राजपुत्र के शरीर में भयंकर महाव्याधि उत्पन्न हुई है। अनेक उपचार करने पर भी बीमारी अभी तक शान्त नहीं हुई है। आखिर एक वैद्य ने कहा है कि मनुष्य के कलेजे का मांस चाहिए। उस मांस के साथ औषधि देने से राजकुमार का रोग शांत हो जायेगा। कई दिनों तक औषधि का प्रयोग करना पड़ेगा। अर्थात् कम-से-कम से दो सेर मांसयुक्त दवा पेट में पहुंचनी चाहिए। ऐसा प्रयोग करने से राजपुत्र जीवित रह सकता है, अन्यथा नहीं। आप नृप के आश्रय से अपने जीवन का पालन-पोषण कर रहे हैं, अतः आपका कर्तव्य है कि आप अपना मांस दे राजकुमार का जीवन बचाएं।'

हर क्षत्रिय से अभयकुमार को एक ही उत्तर मिला—'मंत्रिवर ! बदले में एक हजार दीनार ले लीजिये, मुझे छोड़ दीजिये। मांस मैं दे नहीं सकता।' इस तरह लाखों दीनारें लेकर अभयकुमार नृप सभा में पहुंचा। उन धन को क्षत्रियों को दिखाकर बोला—'आप लोगों ने कहा था कि मांस सुलभ है किन्तु आज तो इतनी धनराशि में भी मांस नहीं मिला।' अभयकुमार द्वारा प्रताड़ित सारे क्षत्रिय लज्जित हो गये और सबने मांस-भक्षण का नियम ले लिया। सब जीवों के प्रति अभयदान !

सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं। संसार के समस्त जीवों को आत्म-तुल्य समझना, सबको अभयदान देना मानव का परम कर्तव्य है।

सब जीवों को सर्वदा, समझे आत्मसमान।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, करता निज कल्याण ।।

प्रतिबोध

तेतलीपुर में कनककेतु नामक राजा राज्य करता था। राज्य के लोभवश उत्पन्न होते ही वह अपने पुत्रों को मार देता था। उस राजा के तेतलीपुत्र नामक अमात्य था। उसकी पोट्टिल्ला नाम की स्त्री थी। वह मंत्री को पहले तो अत्यन्त प्रिय थी, पीछे कुछ कारणों से वह रुष्ट हो गया। एक दिन की बात है कि उसके घर में भिक्षा के लिए साध्वीश्री का पदार्पण हुआ। साध्वीश्री को वंदन करती हुई विनय-पूर्वक मंत्री की स्त्री ने कहा—'साध्वीश्वर ! मेरे पति मेरे वश में कैसे हो सकते हैं, कृपया इसका कोई उपाय बतायें।' साध्वीश्री ने उत्तर दिया—'धर्म का सेवन करो। धर्म ही जीवन की अमूल्य संपदा है। धर्म के प्रताप से यथेच्छित फल मिलता है।' साध्वीश्री के उपदेश का प्रभाव उस पर पड़े बिना कैसे रह सकता था ? हृदय में वैराग्य-भावना जागृत हुई। संसार से विरक्त होकर उसने दीक्षा ग्रहण करने के लिए पति से पूछा—'स्वामिन ! मैं दीक्षा लेना चाहती हूं, कृपया आदेश फरमायें।' मंत्री ने कहा—'तू दीक्षा ग्रहण कर। यदि तू देवलोक में चली जाती है तो मुझे प्रतिबोध जरूर देना।' दीक्षा ले, विभिन्न प्रकार की साधना कर, आयु को समाप्त कर, मंत्री-पत्नी स्वर्ग-लोक में पहुंच गयी।

मंत्री राजा के एक पुत्र को अपने घर पर ले गया। उसे प्रच्छन्न रूप से रखा। राजपुत्र बड़ा हुआ। कनककेतु नृप का अचानक देहान्त हो गया। तब मंत्रीश्वर ने कनकध्वज राजकुमार को सिंहासन पर बैठाया। छोटी वय होने के कारण राजा कनकध्वज ने राज्य का समस्त उत्तरदायित्व मंत्री को सौंप दिया। अब मंत्री रात-दिन राज्य की सार-संभाल व व्यवस्था में व्यस्त रहने लगा। धर्म-ध्यान में वह

तनिक भी समय नहीं लगाता। देव-गति प्राप्त पोट्टिला ने राज्यासक्त मंत्री को देखकर सोचा, 'मेरा कर्तव्य है कि मैं उसे प्रतिबोध दूं।'

देव संयोग से अचानक राजा स्वयं तथा अन्य कर्मचारी लोग मंत्री से पराङ्-मुख हो गये। मंत्री राजभवन में जाता, राज्य-सभा में जाता, कहीं भी उसको आदर-सत्कार नहीं मिलता। वह तिरस्कार को सहन नहीं कर सका। घर आया। आत्महत्या करने की सोचकर अपने हाथों से वह गले में फांसी खाने के लिए तैयार हुआ, लेकिन देव-योग से उसे सफलता नहीं मिली। मंत्रीश्वर को पीड़ित और व्यथित देखकर देव प्रकट होकर बोला—'ओ मंत्रिन्! ऐसा है संसार का स्वरूप! वास्तव में कोई किसी का स्वजन नहीं है। सब मतलब के साथी हैं। मतलब के अभाव में कोई किसी को नहीं पूछता। सारा समय प्रमाद में गंवा देना बुद्धिमत्ता नहीं है। जीवन को चंचल समझकर धर्म में समय लगाने से कल्याण होगा।' मंत्री को प्रतिबोध देकर देव अपने स्थान में चला गया।

मंत्री ने गहराई से सोचा। वैराग्य-भावना जागृत हुई। समस्त संपदा का परित्याग कर उसने दीक्षा ग्रहण की।

जैसे साध्वी पोट्टिला अपने कथन पर अटल रही, पति को आकर प्रतिबोध दिया, जिससे उसका उद्धार हो गया, वैसे ही हर व्यक्ति को अपने कथन पर कायम रहना चाहिए। कथनी और करनी में जिसके एकरूपता है, वह व्यक्ति हर क्षेत्र में अपने जीवन का विकास कर सकता है।

रहता अपने कथन पर, निश्चल जो मतिमान।
'मुनि कन्हैया' कर सके, वह नर निज निर्माण॥

नित्य नियम में अटल

विभिन्न प्रकार के बाजारों से सुसज्जित चंपा नाम की नगरी थी। प्रतिदिन लाखों रुपयों का व्यापार चलता था। नगर के चारों ओर विशाल एवं रमणीय उद्यान थे। जैन धर्म के अनुयायी हजारों परिवार वहां पर निवास करते थे। अनेक साधु-साध्वियों का समय-समय पर वहां पदार्पण होता रहता था। उनका प्रवचन सुनने के लिए सहस्त्रों लोग दौड़े-दौड़े आते थे। अमृत-भरी देसना से जनता लाभान्वित होती थी। चंपानगरी में साजनसिंह नामक एक सुप्रतिष्ठित एवं सुश्रावक श्रेष्ठि भी रहता था। वह जैन धर्म का विज्ञाता था। तत्त्वज्ञान के प्रति उसकी अच्छी अभिरुचि थी। स्वाध्याय-ध्यान में अपने समय को वह सार्थक बनाता था। दोनों समय सुनिश्चित वेला में प्रतिक्रमण किए बिना भोजन नहीं करूंगा, ऐसा उसने नियम ले रखा था।

सेठ साजनसिंह के हाथों से कुछ राजकीय अपराध हो गया। राजा पीरोज

बादशाह को पता लगते ही उसने सेठ साजनसिंह को दंड सुनाते हुए कहा—'यह सेठ बहुत बड़ा अपराधी है, इसे कारागार में डाल दो।' सेठ को कारागार का अतिथि बना दिया गया। सेठ ने सोचा—अब प्रतिक्रमण कैसे करूंगा? बड़ी विकट समस्या थी। बड़ी विनम्रता से सेठ ने आरक्षकों के सामने अपनी हृदयस्थ भावना को रखते हुए कहा—'बन्धुओ! मैं जैन हूं। सुबह और शाम दोनों समय नित्य नियम (प्रतिक्रमण) किए बिना पानी भी नहीं पी सकता। इस नियम को किसी भी स्थिति में मैं नहीं तोड़ूंगा। अतः आप लोग मेरे इस पवित्र कार्य में सहायक बनेंगे, ऐसा विश्वास है।' इसके बदले में पचास-पचास सुवर्ण मोहरें उन सबको सेठ ने दीं और प्रतिदिन की भांति प्रतिक्रमण करता रहा।

साजनसिंह सेठ की धार्मिक निष्ठा एवं अडिगता को देखकर धर्मसहायक देवता ने अपने सामर्थ्य से सेठ को निगड़ित बन्धनों से मुक्त कर दिया। देव द्वारा वह हर दृष्टि से सम्मानित हुआ। यह सारा दृश्य देखकर आरक्षक गण घबराये। सेठ को महापुरुष के रूप में समझकर सब बोले—'महाशय! आप द्वारा प्रदत्त ये मोहरें वापस ले लीजिए।' सेठ बोला—'घबराने की जरूरत नहीं है। आप लोग मेरे धर्म-सहायक उपकारी हैं। आपके उपकार को मैं कभी नहीं भूल सकता। आप लोगों की करुणा से ही मैं समय पर प्रतिक्रमण कर सका। अमूल्य प्रतिक्रमण संपदा के सामने यह धन कुछ भी नहीं है।'

जो व्यक्ति अपने नित्य नियम पर दृढ़ रहता है, उसकी सहायता करने के लिए देवता भी दौड़े-दौड़े आते हैं। अतः प्रत्येक मानव को भयंकर परिस्थिति में भी विचलित नहीं होना चाहिए।

मानव संकट समय पर, नहीं तजे जो धर्म।
उसने समझा है स्वतः, जीवन पावन मर्म॥

समन्वय का विकास

महाराजा रणजीतसिंहजी बहुत बड़े अनुभवी शासक थे। उनकी गौरव-गाथा दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे हर दृष्टि से सुयोग्य एवं उदार वृत्ति वाले महापुरुष थे। उनके राज्य में छोटे-बड़े का कोई भेद-भाव नहीं था। हिन्दू एवं मुसलमान भी उनके राज्य में सुख का अनुभव करते थे। मुसलमानों का त्योहार आया। ताजिया निकलने वाले थे, सारे शहर में बड़ी चहल-पहल थी। जिस मार्ग से ताजिया निकलने वाले थे, वहां एक स्थान पर बहुत बड़ा वट-वृक्ष था। मार्ग संकरा था। ताजिये का ऊपरी हिस्सा वट-वृक्ष से टकरा रहा था। मुसलमान भाइयों ने उस वट-वृक्ष की डाली को काटना चाहा, जिससे ताजिया वहां से निकल सके।

वट-वृक्ष की शाखा को काटने की बात हिन्दुओं को चुभ गयी। वे अकड़कर बोले—किसी भी स्थिति में शाखा को नहीं काट सकते। दोनों ओर से उत्तेजना बढ़ने लगी। मर-मिटने के लिए दोनों ओर से व्यक्ति तैयार हो गये। बात परस्पर में तन गयी। स्थिति ने भयंकर रूप ले लिया। महाराजा रणजीतसिंह जी को पता लगते ही वे तत्काल वहां पहुंचे और स्थिति का अध्ययन किया। दोनों का समन्वय कैसे हो, गहराई से चिन्तन चला। समस्या का समाधान खोजते-खोजते अचानक एक उपाय उनके मस्तिष्क में उभर आया। उन्होंने तेज आवाज में कहा, 'हिन्दू भाई अपने स्थान से सौ कदम पीछे हट जाएं और मुसलमान भाई भी अपने स्थान से सौ कदम पीछे हट जाएं !' यह सुनते ही दोनों दल वाले उछल पड़े, पर क्या किया जाये। आदेश आदेश होता है। इच्छा नहीं होते हुए भी दोनों पीछे हट गये।

महाराजा ने अपने कर्मचारियों को आदेश दिया कि जो सड़क ऊंची है, उसे खोदकर नीची कर दो। सड़क की खुदाई हुई। जमीन को ठीक कर दिया। फिर महाराजा ने मुसलमानों को आदेश देते हुए कहा—'अब ताजियों को धीरे-धीरे आगे बढ़ाएं।' ताजिये वट-वृक्ष की शाखा को बिना छुए आगे बढ़ गये। उनके हृदय-पटल में खुशी का पार न रहा। इधर हिन्दू भाइयों के दिल में भी तनाव नहीं रहा, सब में आनन्द छा गया।

शाखा को काटने की नौबत नहीं आयी। दोनों पक्षों को समाधान मिल गया। रास्ता ऊंचा था, तब तक वट-वृक्ष बाधक था। रास्ता नीचा होते ही बाधा समाप्त हो गयी। सारा तनाव मिट गया। आपस में सौहार्द बढ़ा।

जो व्यक्ति समन्वय की भावना से चिन्तन करता है, उसे अवश्य सफलता मिलती है। कठिन कार्य भी सरल बन जाता है, अतः समन्वय की चेतना का विकास परम आवश्यक है।

सुखद समन्वय भाव का, होता जहां विकास।
'मुनि कन्हैया' प्रेम का, मिलता वहां प्रकाश।।

पशु-हत्या

एक गोपालक था। उसके घर में एक बैल, एक गाय और गाय का बच्चा था। वह गोपालक गाय का दोहन कर छोड़ देता। बच्चे को भी खाने के लिए पूरा चारा नहीं डालता, न ही उसे समय पर पानी पिलाता। बैल की वह बड़ी सेवा करता। सुबह-शाम दोनों समय उसे स्नान कराता। अच्छा-अच्छा खाने को देता। क्रीड़ा-हेतु उद्यान में भी घुमाने के लिए ले जाता। इस प्रकार वह बैल का बड़ा सत्कार

और आदर करता। यह सब देखकर वह बछड़ा अपनी मां गाय से कहने लगा—'हे माता! यह ग्वाला कितना पक्षपात करता है! इस बैल की इतनी सेवा इतनी टहल! तेरी और मेरी तो कोई पूछ भी नहीं। तू दूध देती है, फिर भी तुझे पूरा खाना नहीं देता। मैं भी क्षुधाग्रस्त भटकता रहता हूं। यह अन्तर क्यों?'

गाय बोली—'हे लाल! हे अंगज! अपने को जो सूखा घास मिलता है, इसी में लाभ है। अपने को कुछ भी कहने की अपेक्षा नहीं है। बैल को जो अच्छा-अच्छा भरपेट भोजन मिलता है, इसके पीछे रहस्य है।'

धीरे-धीरे वह बैल खा-पीकर शरीर से हृष्ट-पुष्ट बन गया। शरीर से मानो शोणित की धारा बह रही हो। ग्वाला मन-ही-मन सोचने लगा—अब कोई मेहमान आ जाये तो मेरे पास खाद्य की अच्छी सामग्री है।

संयोग से कुछ ही समय के पश्चात् कोई मेहमान आ गया। गोपालक ने उस बैल को मारकर मेहमान को भोजन कराया। यह सब देखकर बछड़ा घबड़ाया और अपनी माता से कहने लगा—'अपने साथ में जो बैल रहता था, आज उसे मारकर उसका गोश्त पकाकर वह मेहमानों का स्वागत कर रहा है। क्या अपन को भी वह मारेगा?' गाय ने सान्त्वना भरे शब्दों में कहा—'वत्स! घबराने की जरूरत नहीं है। अपन को वह नहीं मारेगा, क्योंकि तुझे और मुझे सूखा खाद्य मिलता है। बदले में मैं दूध देती हूं। दूध की आशा से वह अपन पर तो दयावान ही सिद्ध होगा। बैल तो दूध नहीं देता था। अच्छा-अच्छा सरस भोजन भी उसे मिलता था। अतः अपन को तनिक भी डर नहीं है।'

पशु-हत्या के भयंकर पाप के फलस्वरूप आखिर वह ग्वाला मरकर नरक में चला गया।

स्वार्थी मानव अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए निरपराध प्राणी की जो हत्या करता है, उसे गोपालक की भांति दुर्गति में जाना पड़ता है।

इस दुनिया में है बड़ा, पशु-हत्या का पाप।
ग्वाला मरकर भोगता, नर्क धाम का ताप॥

समभाव

हस्तिशीर्ष नगर में दमदंत नाम का राजा राज्य करता था। हस्तिनापुर के स्वामी थे पांडव और कौरव। दोनों में राज्यों की सीमा आदि को लेकर परस्पर कुछ मनमुटाव और विवाद प्रारम्भ हो गया। कुछ ही समय के पश्चात् राजा दमदंत जरासंध नृप की सेवा के लिए चला गया। पीछे से पांडवों और कौरवों ने दमदंत के राज्य को तहस-नहस कर अपने अधिकार में करने का प्रयास किया। देश की

भग्नावस्था के बारे मे सुनते ही राजा दमदंत के क्रोध का पार न रहा। अपनी सेना लेकर उसने हस्तिनापुर पर चढ़ाई कर दी। भीषण संग्राम होने लगा। पांडवों-कौरवों की सेना के सामने दमदंत की सेना कुछ भी नहीं थी। बल, संख्या, शक्ति आदि हर दृष्टि से पांडव सेना का अपने आप में विशेष महत्त्व था, किन्तु भाग्यवश दमदंत राजा की विजय हो गयी। दमदंत विजय की पताका लहराता अपने महलों में लौट गया।

एक दिन राजा दमदत ने संध्या समय में पंच वर्ण बादलों का स्वरूप देखकर चिन्तन किया कि संसार का स्वरूप भी बादलों की भांति आसार है, क्षणभंगुर है। वैराग्य भावना जागृत हुई। उसने संयम ले लिया। दमदंत मुनि ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए एक बार हस्तिनापुर के बाहर पधारे और कायोत्सर्ग में संस्थित हुए।

संयोग की बात, पांडव लोग उसी मार्ग से कहीं जा रहे थे। घोड़ों से उतरकर पांडवों ने दमदंत राजर्षि को वंदन करते हुए उनके अध्यात्म-बल की प्रशंसा की और रवाना हो गये।

कुछ ही समय के पश्चात् दुर्योधन आदि कौरव भी उधर से कहीं जा रहे थे। दमदंत मुनि को देखा तो अनर्गल शब्दों द्वारा उनका तिरस्कार करते हुए, उनके सामने बीज, फल आदि सचित चीजें रखकर चले गये।

'यथा राजा तथा प्रजा'—इस कहावत को चरितार्थ करते हुए सभी सैनिकों ने मुनिवर के सामने काठ, पाषाण का ढेर लगा दिया जिससे बड़े चबूतरे जैसा बन गया।

पांडव उसी मार्ग से वापस आये। मुनिवर के सामने बड़े चबूतरे-सा ढेर देखा। लोगों द्वारा पता लगा कि यह सारी करतूत कौरवों की है। पांडवों ने पाषाणादि के ढेर को दूर किया। मुनिप्रवर को वंदन कर चले गये।

पांडवों द्वारा मुनिवर को सम्मान मिला, कौरवों द्वारा अपमान मिला। फिर भी मुनिराज दोनों ही स्थान पर सम रहे, तनिक भी रागद्वेष नहीं किया।

साम्य की साधना जीवन की साधना है। इसके अभाव में कोई भी व्यक्ति महान् नहीं बन सकता।

अतः हरेक को समता का व्यवहार करना चाहिए।

साम्यभाव की साधना, जीवन का शृंगार।
इस आभूषण के बिना, मानव भव बेकार॥

दाता का भाग्य

बसंतपुर नगर में जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। मूलदेव नाम का राजकुमार था। वह हृदय का बड़ा उदार था। जो भी उससे याचना करता, उसे यथेच्छ की उपलब्धि हुए बिना नहीं रहती। उसी नगरी में एक कृपण रहता था। उसे यह परम्परा उचित नहीं लगी। ईर्ष्या और जलन की चिनगारियां उछलने लगीं। उसने राजा से निवेदन करते हुए कहा—'राजन्! आपका पुत्र मुक्त हाथों से जो दान देता है वह मेरी दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं है। किसी भी समय में राज्य का बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है।' राजा ने कुंवर को बुलाकर कहा—'पुत्र! तू दान देता है किन्तु जो मांगता है उससे आधा दिया कर।'

पुत्र ने करबद्ध होकर कहा—'पिताजी! आपकी जो आज्ञा है, उसी के अनुरूप चलूंगा।' कुंवर मूलदेव की कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। ऐसा दानी संसार में विरला ही होगा। राजकुंवर की दानशीलता की कीर्ति सुनकर दूर देश से एक चारण आया। उस समय सवा लाख का हार पहने हुए राजकुंवर सिंहासन पर बैठा था। वह याचक चारण मुक्तकंठ से सुरम्य पद्यों में राजकुंवर की यशोगाथा गाने लगा। मूलदेव प्रसन्न मुद्रा में बोला—'अरे चारण! तेरी इच्छा हो वह मांग सकता है।' चारण ने कहा—'आपके गले में जो हार है, वह दे दीजिए।' राजकुंवर आधा हार देने लगा, तब चारण बोला—'हे गरीबनिवाज! हे दाता! आपकी उदारता की गाथा सुनकर बहुत दूर से यहां आया हूं। आप अपनी कीर्ति को कायम रखने के लिए याचित दान पूरा दीजिए।'

यह सुनकर मूलदेव राजपुत्र ने वह हार उसे दे दिया। दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ते। कुछ चुगलखोर राजा को कहने लगे—'राजपुत्र द्वारा आपकी आज्ञा का उल्लंघन हुआ है।' राजा ने गुस्से में आकर राजपुत्र को देश-निकाला दे दिया।

पिता के आदेशानुसार राजकुंवर वहां से रवाना हो गया। भयंकर अटवी को लांघता हुआ वह आगे बढ़ा। क्षुधा से आकुल-व्याकुल हो वह एक ग्राम में पहुंचा। याचना करना जानता नहीं था। जो कुछ भी कहीं से मिला, लिया। धर्मशाला में पहुंचा। सो गया। अर्धनिद्रा में स्वप्न आया। सूर्योदय होते ही किसी विद्वान स्वप्न-पाठक से स्वप्न का अर्थ पूछा। स्वप्न-पाठक ने कहा—आज से सातवें दिन तुम्हें नगरी का राज्य मिल जायेगा। यह स्वप्न शुभ है।'

नगरी के राजा का देहावसान हो गया। पुत्र नहीं होने के कारण मंत्री ने उद्घोषणा करवा दी—'जिसके गले में हथिनी माला डाल देगी, वही इस नगरी का राजा बन जायेगा।' हथिनी नगर में घूमने लगी। अनेक व्यक्ति बाजार में

खड़े थे। राजा बनने की उत्कंठा द्विगुणित हो रही थी। मूलदेव राजपुत्र भी मार्ग में आकर खड़ा हो गया। हथिनी आयी और उसके गले में माला डाल दी। मंत्री द्वारा मूलदेव का राज्याभिषेक हो गया। सारे शहर में घोषणा हो गयी कि इस नगरी का राजा मूलदेव है। मूलदेव आनन्द से रहने लगा और सारी दुविधाएं दूर हो गयीं।

हर व्यक्ति का भाग्य अपने-अपने पास होता है। भाग्यशाली कहीं पर भी चला जाता है, उसका सम्मान हुए बिना नहीं रहता। दिलदार दाता का दिल समुद्र की भांति विशाल होता है। वह अपने भाग्य के सहारे कुछ-न-कुछ देता ही रहता है। भाग्यवान की कदम-कदम पर अवश्य विजय होती है।

भाग्यवान की हर कदम, होती विजय महान्।
'मुनि कन्हैया' भाग्य ही, सुख-संपत आस्थान॥

सन्त-वाणी-सत्य

तुरीमणी नगरी में जितशत्रु नाम का एक राजा राज्य करता था। वहां पर भानेज-दत्त नाम का पुरोहित रहता था। वह बड़ा कपटी और धूर्त था। उसने भयंकर छल-प्रपंच रचकर अपने स्वामी जितशत्रु नृप को कारागार में डाल दिया और स्वयं राज्य-भार को ग्रहण कर नगर का अधिपति बन बैठा। अचानक उस नगरी में कालिकाचार्य का पदार्पण हुआ। मातुश्री की प्रेरणा से वह गुरुदेव के पास चला गया, लेकिन वह अपने आपको बहुत बड़ा समझता था। उसने अहंकार तथा क्रोधपूर्वक गुरुदेव से पूछा, 'भगवन्! अगर कोई व्यक्ति यज्ञ करता है तो उसका क्या फल मिलता है?'

आचार्यवर ने धैर्यपूर्वक उत्तर देते हुए कहा—'यज्ञ में विभिन्न प्रकार की हिंसा होती है, उसी भयंकर हिंसा के कारण मानव को नरक में जाना पड़ता है। यह बिलकुल सत्य है।'

दत्त पुरोहित ने कहा, 'आपकी बात पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? किसी ने आंखों से देखा नहीं कि याज्ञिक हिंसा से व्यक्ति को नरकालय में जाना पड़ता है।' गुरु ने कहा—'दत्त! आज से सातवें दिन तुझे कुम्भी में पकाया जायेगा और तेरे शव को कुत्ते खायेंगे।' दत्त ने कहा, 'गुरुवर! यह बात भी समझ में नहीं आती और आपके कथन पर भी विश्वास नहीं होता। इसका आपके पास क्या प्रमाण है। गुरु ने कहा, 'प्रमाण है। उसी दिन तेरे मुख में अकस्मात् विष्टा पड़ेगी।' यह सुनते ही दत्त के क्रोध का पार नहीं रहा। अधरावली को कंपाते हुए वह जोर से बोला, 'महाराज, आपकी मौत कैसे होगी?' बहुत ही शान्त मन

से उत्तर देते हुए गुरुवर ने कहा, 'दत्त ! मेरी मृत्यु हर दृष्टि से समाधिपूर्वक होगी और मरकर मैं स्वर्गलोक का अतिथि बनूंगा।'

दत्त राजमहल में पहुंचा। सैनिकों को निर्देश देते हुए कहा, 'उस गुरु के चारों तरफ से घेरा डाल दो। वह कहीं इधर-उधर भाग न जाए।' स्वयं अपने घर में आकर छिप गया। ऐसे करते-करते मति की मूढ़ता से सातवें दिन को आठवां दिन समझ घर से निकला। मन में सोचा—कुछ भी नहीं हुआ, गुरु की वाणी सब मिथ्या हो गई। अचानक उसी समय उसी मार्ग से एक माली ने नगरी में प्रवेश किया। पेट में अचानक गड़बड़ी होने के कारण राजमार्ग में ही मलोत्सर्ग कर उस मल को पुष्पों से आच्छादित कर दिया। उसी माग से जाते हुए दत्त के घोड़े के खुर से उछला हुआ विष्टा दत्त राजा के मुख में पड़ गया।

इधर दत्त नृप के दुष्कृत्यों और दुर्व्यवहार से सारा मन्त्रिमण्डल बहुत खिन्न था। उन्होंने जितशत्रु नृप को कैद से निकालकर राज्यासन पर पुनः स्थापित कर दिया। दत्त को बांधकर राजा के सामने हाजिर किया। जितशत्रु नृप ने दत्त को कुंभी में डाला। नीचे अग्नि जलाकर उसे भूनकर कुत्ते छोड़ दिए। कुत्ते उस परिपक्व शव को खाने लगे। वह मरकर नरक में गया।

संत, ऋषि और ज्ञानी जनोंकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। अतः संत-वाणी पर श्रद्धा रखना हर मनुष्य का कर्तव्य है।

संत वचन पर सर्वथा, रहता श्रद्धावान।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा, बहुत बड़ा नुकसान।।

युक्ति का सम्मान

राजा भोज को परिभ्रमण का बड़ा शौक था। एक दिन राजा भोज बगीचे में जा रहे थे। रास्ते में एक महिला मिल गई। मैले कपड़े पहने हुई थी। मुख पर उदासी की किरण थी। आकृति मूर्च्छित फूलों की भांति मुरझा रही थी। उसे व्यथित-मना देखकर राजा ने पूछा—'का त्वं पुत्रि इति ?'—हे वत्स ! तुम कौन हो ? उसने उनके मुख की रम्य प्रभा से उन्हें राजा भोज समझकर प्रसन्न मन से उत्तर देते हुए कहा—'नरेन्द्र ! लुब्धक वधूः'—हे राजन् ! लुब्धक की स्त्री हूं।

राजा ने उसके मुख से ऐसी सुरम्य रचना सुनकर मुग्ध व प्रभावित होकर पूछा—'हस्ते किमेतत्'—हाथ में क्या है ? उसने उत्तर दिया—'पलम् (मांस)।' राजा ने पूछा—'क्षाम किम्'—सूखा हुआ क्यों है ? उसने अपनी सुकोमल भाषा में उत्तर देते हुए कहा, "हे राजन् ! मैं मेरी भावना आपके सामने रखना चाहती हूं, यदि आप उसे आदरपूर्वक सुनें तो।' राजा ने कहा—'क्यों नहीं सुनूंगा ? ये दोनों

कान उतावले हो रहे हैं तेरी हृदय-भावना को सुनने हेतु।' वह बोली—

'गायन्ति त्वदरिप्रियाऽश्रुतटिनी, तीरेषु सिद्धाङ्गना।
गीतान्धा न तृणं चरन्ति, हरिणास्तेनामिषं दुर्बलम् ॥

—'आपके विपक्षियों की स्त्रियों के अश्रुओं की नदी के तट पर सुरांगनायें गीत गाती हैं, जिस गीत के श्रवण से मुग्ध होकर हिरण घास नहीं चरते हैं, इसलिए मांस सूखा हुआ है।'

राजा—'बात सजाकर रखने की तेरे में अनुपम युक्ति है, कला है। ये ले प्रति अक्षर लाख-लाख रुपये।'

संसार में युक्ति-शक्ति का अपूर्व महत्त्व है। युक्तिपूर्वक अलंकृत भाषा में बोलने से मानव का सर्वत्र सम्मान बढ़ता है।

सरस युक्ति युक्त वचन से, मानव का सम्मान।
'मुनि कन्हैया' युक्ति युत, वाणी सुधा समान ॥

कर्तव्य-बोध

एक राजा के मन में यह भावना जागृत हुई कि मेरी प्रजा हर दृष्टि से योग्य है, नियंत्रित है। आदेश-पालन के साथ-साथ इनमे कर्तव्य-बोध की चेतना जागृत हुई या नही, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। क्योंकि जिन नागरिकों में कर्तव्य-बोध का विकास नही है, उनका समाज कभी भी उन्नति नही कर सकता।

राजा ने मन्त्री को आमन्त्रित करते हुए कहा, 'मंत्रिश्वर ! समस्त नागरिकों की परीक्षा लेनी है कि इनमें कर्तव्य-बोध कितना है ? परीक्षा कैसे लें, कोई उपाय बताओ।' मंत्री ने चिन्तन कर एक मार्ग ढूंढ़ निकाला। दूसरे दिन सारे शहर में घोषणा करवा दी, 'नगर में जितने भी स्त्री-पुरुष हैं, वे आज रात्रि के प्रथम प्रहर बीतने से पूर्व नवनिर्मित तालाब में एक-एक लोटा दूध डालें। वहां कोई निरीक्षक नही रहेगा। न ही कोई राजकीय व्यवस्था रहेगी। यह आत्मानुशासन का परीक्षण है। कर्तव्य-बोध का परीक्षण है कि हर व्यक्ति अपने कर्तव्य-पालन में कितनी सजगता रखता है। राजा के निर्देश पर जनता कितनी न्योछावर है। एक-एक लोटा दूध तालाब में डालना कोई भी नहीं भूलेगा, ऐसा विश्वास है।'

यह घोषणा सर्वत्र हो गई। सबने सुनी। हर नागरिक के दिल में विकल्पों की लहरें उठने लगी—राजा की आज्ञा का पालन तो करना ही है, किन्तु शहर में हजारों स्त्री-पुरुष हैं। सब दूध डालेंगे, तालाब भर जायेगा। यदि मैं एक लोटा पानी डाल दूं तो क्या अन्तर पड़ेगा ? कौन देखेगा ? वह पानी से भरा लोटा लेकर

चला और तालाब में डाल दिया। इसी प्रकार का विकल्प हर नागरिक के दिमाग में उठ सकता है। दूसरे आदमी ने सोचा, तीसरे और चौथे ने भी यही सोचा। तालाब भर गया। हजारों लोटे उसमें उडेले गये।

प्रातःकाल हुआ। राजा मन-ही-मन फूल रहा था—सर्वत्र पानी का तालाब होता है किन्तु मेरे राज्य में दूध का तालाब होगा। यह इतिहास की एक अनुपम घटना कहलायेगी। मेरा नाम भी स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।

दूध से भरे तालाब को देखने के लिए सब उत्सुक थे। राजा मन्त्रिमडल के साथ वहां पहुंचा। राजा ने देखा, तालाब लबालब भरा है—लेकिन दूध से नहीं, पानी से। राजा ने मन्त्री से पूछा—'यह क्या ? क्या आदेश नहीं सुनाया गया ?' मन्त्री ने कहा—'स्वामी, आदेश सबने सुना है, आदेश-पालन सबने किया है। दूध के बदले पानी से तालाब भर गया है। ऐसा इसलिए हुआ है कि हम अपने नागरिकों में कर्तव्य-बोध की चेतना नहीं जगा पाए और जहां कर्तव्य-बोध की चेतना नहीं जागती, वहां ऐसा ही होता है, दूध के बदले पानी से तालाब भर जाता है।'

सामाजिक उन्नति तथा आत्मोन्नति के लिए कर्तव्य-बोध आवश्यक माना गया है। अपने दायित्व के पालन में जो व्यक्ति सजग रहते हैं, उनका सर्वत्र सम्मान होता है।

जिसे बोध कर्तव्य का, उसका अति सम्मान।
'मुनि कन्हैया' चमकता, वह नर सूर्य समान॥

काल्पनिक समस्या

पति-पत्नी में झगड़ा हो गया। पत्नी ने पति के चरणों में निवेदन करते हुए कहा, 'हे प्राणदेव ! मैं कहती हूं वह बहुत गहरी बात है। आप थोड़ा-सा गहराई से चिन्तन करें, जिससे आपसी झगड़ा अपने आप शान्त हो जायेगा। मैं लड़के को डॉक्टर बनाना चाहती हूं।' पति बोला—'नारी में चिन्तन करने की शक्ति नहीं होती। वह छोटी-छोटी बातों में अपने दिल को उलझा देती है। बुद्धि की स्फुरणा नहीं होने से बिना मतलब समस्या खड़ी कर देती है। हे प्रिये ! तेरा कहना सामयिक नहीं है। जिस कार्य में लाभ नहीं हो, उसे करना अबुद्धिमत्ता है। मैं लड़के को डॉक्टर न बनाकर वकील बनाना चाहता हूं।' इसी प्रकार दोनों में भयंकर विग्रह खड़ा हो गया। कोलाहल होने लगा। पड़ोसी इकट्ठे होने लगे। लोगों ने कहा, 'बात क्या है ?'

पत्नी ने अपना गहरा चिन्तन देते हुए कहा—'भाइयो ! सुनिये मेरी बात। पतिदेव तो अपनी अकड़ में फूले नहीं समा रहे हैं। मेरी बात पर तनिक भी ध्यान

नहीं दिया जा रहा है। मैंने उनके सामने एक ही बात रखी कि मैं अपने लड़के को डॉक्टर बनाऊंगी, क्योंकि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। आये दिन डॉक्टर बुलाना पड़ता है। हजारों रुपये खर्च हो गये। लड़का डॉक्टर बन जाये तो सारी समस्या अपने आप समाहित हो जायेगी। मैं कह-कह कर थक गयी किन्तु पतिदेव के दिमाग में जंच नहीं रहा है।'

पति ने कहा, 'केवल इनकी बात सुनकर आप फैसला न दे दें, मेरी बात भी आप लोग सुन लीजिए। आप लोग स्वयं व्यापारी हैं। आज के युग में वकीलों की महती आवश्यकता है। इन्कमटैक्स, सेल्सटैक्स आदि कई प्रकार के टैक्स हो गये हैं। रात-दिन दिमाग पर बहुत बोझ रहता है। दिनोंदिन इतनी समस्याएं बढ़ रही हैं जिनका कोई पार नहीं है। प्रतिदिन वकीलों के चक्कर में फंसा रहता हूं। इस चिन्ता से मैं अस्वस्थ भी रहने लगा। इसलिए मैंने यह निर्णय लिया है कि अगर मेरा लड़का वकील हो जाये तो मेरी सारी समस्या अपने आप समाहित हो जाये।'

लोगों ने कहा, 'हमने आप दोनों की बातें सुनीं। यह डॉक्टर बनाना चाहती है, आप उसे वकील बनाना चाहते हैं। पर लड़के की इच्छा क्या है हम उससे पहले बात कर लें, फिर फैसला सुनायेंगे। बताइये, लड़का कहां है?' तब दोनों ने कहा, 'लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ है।' सब हंसने लगे।

जीवन में वास्तविक समस्याएं बहुत थोड़ी होती हैं, किन्तु काल्पनिक समस्याओं का कहीं भी अन्त नहीं आता है। अतः बिना मतलब मनमुटाव करने में तनिक भी समझदारी नहीं है।

किंचित् भी कारण बिना, करते जो संघर्ष।
'मुनि कन्हैया' वे नहीं, पा सकते निष्कर्ष॥

गुरु-शिक्षा

तुंग देश में दत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था। उनके अरणिक नाम का पुत्र था। हर क्षेत्र में हर दृष्टि से वह सुखी था। धार्मिक संस्कारों से वह ओत-प्रोत था। एक बार वहां मित्राचार्य नामक संत-शिरोमणि पधारे। उनका उपदेश सुनने के लिए सैकड़ों लोग वहां पहुंचे। दत्त सेठ भी अपने परिवार-सहित गुरुदेव की शरण में पहुंचा। गुरुदेव ने संसार की नश्वरता व मनुष्य जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला। प्रवचन से प्रभावित होकर सेठ, सेठानी और पुत्र तीनों ने गुरुवर के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

पिता ने सोचा—'मैं वृद्ध हूं। विद्याध्ययन कर नहीं सकता, पुत्र पढ़कर विद्वान् हो सकता है। अतः इस दृष्टि से सहयोग करना मेरा कर्तव्य है।' गोचरी के लिए

भी उसे नहीं भेजते। आहारादि की सारी व्यवस्था वे ही करते। काफी समय व्यतीत होने के पश्चात् एक दिन अन्य साधुओं ने दत्त मुनि से कहा—'मुनिवर ! आप अपने पुत्र से गोचरी आदि कुछ भी नहीं कराते हैं, साधुत्व की अन्य क्रियाओं से भी उसे दूर रखते हैं, यह आपके लिए उचित नहीं है।'

दत्त मुनि ने कहा—आप सबका कहना बिलकुल ठीक है किन्तु लघु शिष्य की सेवा-सुश्रूषा करना बहुत बड़े लाभ का हेतु है। इसलिये इसका सारा कार्य मैं कर लेता हूं। यह अपना समय ज्ञानार्जन में लगा देता है।'

दत्त मुनि काफी वृद्ध हो गये। सोचा—काल का भरोसा नहीं है। आखिर अनशन करके देवलोक पधार गये। मोह के वशीभूत होकर मानव अपने कृत्याकृत्य को भूल जाता है। अरणिक मुनि से रहा नहीं गया। मोहाकुल होकर हाय-हाय करने लगा। 'हाय ! पिताश्री का स्वर्गवास हो गया, अब मेरी कौन परिचर्या करेगा ? अब मैं संयम की साधना कैसे कर पाऊंगा ? इस असहाय बालक का अब कौन सहायक बनेगा ?' इसी उधेड़बुन में वह कहीं भी स्थिर नहीं हो रहा था। ऐसी विचलित अवस्था देखकर ज्ञानचन्द मुनि ने कहा—'अरे अरणिक मुने ! घबराने की जरूरत नहीं है। संयम में स्थिर बनो। मैं हर दृष्टि से हर समय तुझे सहयोग देता रहूंगा। चलो मेरे साथ गोचरी।' दोनों गोचरी गये। ऊपर से दिनराज अपना प्रखर तेज बरसा रहा था। नीचे से धरती अंगारों की भांति तप्त हो रही थी। अरणिक मुनि के शरीर से स्वेद का स्रोत बहने लगा। ज्यों-त्यों कर स्थान पर पहुंचे। दिल में विभिन्न प्रकार की कल्पना उठने लगी।

वह गुरु के पास आकर बोला—'महाराज ! लम्बे काल तक संयम को नहीं निभा सकता। आप मुझे ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मैं स्वल्प समय में ही आत्मा का कल्याण कर सकूं।'

गुरुदेव ने कहा—'शिष्य ! यह जीव अनन्तकाल से संसार में भटक रहा है। बड़ी मुश्किल से संयमरत्न की उपलब्धि हुई है। नरक निगोद की असहाय वेदना के सामने संयम के कष्ट कुछ भी नहीं हैं। अतः तुम संयम में रमण करो। यदि तुम स्वल्प ही समय में जीवन का सार निकालना चाहते हो, तो पादोपगमन संथारा स्वीकार कर लो।'

गुरुदेव की शिक्षा को स्वीकार करता हुआ वह मध्याह्न में तप्त शिलापट्ट पर अनशन अंगीकार कर लेता है। अन्त में आराधक होकर देवलोक में पहुंच जाता है।

गुरु की शिक्षा को जो साधक अपने जीवन में ढाल लेता है, वह शिष्य हर क्षेत्र में उन्नति करता है। उसकी साधना पर चार चांद लग जाते हैं।

गुरु-शिक्षा के योग से, निश्चित है उत्थान।
अस्थिर मुनि भी स्थिर बने, मुनि अरणिक आख्यान॥

जैसे को तैसा

एक माली ककड़ियां बेचने के लिए चल पड़ा। मार्ग में एक धूर्त मिला। उसने माली से पूछा—'अरे माली ! यदि इन सब ककड़ियों को कोई खा ले तो तुम उसे क्या दोगे ?' माली ने अपनी मधुर भाषा में उत्तर देते हुए कहा—'उसको मैं इतना बड़ा लड्डू दूंगा जो दरवाजे के भीतर न जा सके।'

धूर्त ने उन सब ककड़ियों को चख-चख जूठा कर डाला और बड़ी प्रखर भाषा में जोर से बोला—'माली ! मैंने तुम्हारी सब ककड़ियां खा ली हैं। अब लड्डू लाओ।' माली ने कोमल शब्दों में कहा—'तुमने मेरी ककड़ियां खायीं ही नहीं तो फिर मैं लड्डू कैसे दूं ?' कपटाई से परिपूर्ण भाषा में धूर्त ने कहा—'मेरी बात पर यदि तुम्हें विश्वास नहीं है तो तुम इन ककड़ियों को बाजार में ले जाकर इनकी परीक्षा कर लो।'

माली अपनी सारी ककड़ियां लेकर बाजार पहुंचा। ग्राहक जब ककड़ियां खरीदने आये तो वे ककड़ियों को देखकर कहने लगे कि ये तो खायी हुई ककड़ियां हैं। उस धूर्त ने माली से लड्डू मांगा। माली उसे लड्डू के बदले एक रुपया देने लगा परन्तु वह धूर्त कहां मानने वाला था ! आपस में तकरार होने लगी। तू-तू की नौबत आ गयी। बेचारा माली सौ रुपया देने के लिए तैयार हो गया। लेकिन उस धूर्त ने कहा—'मुझे और कुछ नहीं चाहिए, मुझे तो लड्डू ही चाहिए।'

माली असमंजस में पड़ गया—क्या करूं ? मैं तो उल्टा फंस गया। इसी उधेड़बुन में उसकी अचानक एक दूसरे धूर्त से भेंट हो गयी। माली ने उससे अपनी दुविधा का समाधान पूछा तो उसने एक युक्ति बताई। माली हलवाई की दुकान से एक लड्डू मोल ले आया और उसे दरवाजे के बीच में देहली के ऊपर रखकर कहने लगा—'अरे लड्डू भाई ! चल !' परन्तु वह लड्डू अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ।

माली ने कई नीतिवान और मतिवान महानुभावों को बुला लिया और उनसे कहने लगा—'मैंने इस धूर्त को इतना बड़ा लड्डू देने का वादा किया था जो दरवाजे के अन्दर से नहीं जा सके। लड्डू आपके सामने है। मैंने कितनी बार कहा, फिर भी यह दरवाजे के अन्दर से नहीं जाता।-यह लड्डू मैं इसे देने को तैयार हूं, पर यह स्वीकार नहीं करता।' आखिर वह धूर्त अपना-सा मुंह लेकर अपने घर चला गया। माली की दुविधा खत्म हो गई।

जैसे को तैसा मिलने से ही समाधान मिलता है। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'—शठ के साथ शठता किये बिना कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, लेकिन धार्मिक पुरुष वह है जो सबके साथ सद्व्यवहार करे।

जैसे को तैसा मिले, बने काम सब सिद्ध।
'मुनि कन्हैया' अन्यथा सफल न होता बुद्ध ॥

वाक्-चातुर्य

राजा भोज ने किसी मनुष्य को देखा। सिर पर लकड़ियों का भार था। नदी को पार करता हुआ उस पार पहुंच जाता है। आकृति से ब्राह्मण जानकर राजा ने उससे पूछा—'कियज्मानं जलं विप्र !' हे विप्र ! जल कितना गहरा है ? वह बोला—'आनुदघ्नं नराधिपा—देव ! घुटने डूबने लायक। चकित होकर राजा बोला—'ईदृशी किमवस्था ते'—आपकी ऐसी स्थिति क्यों है ? उसने उत्तर देते हुए कहा—'न हि सर्वे भवादृशा'—सब आपके समान नहीं हो सकते।

राजा ने कुतूहलपूर्वक कहा—'हे पंडितजी ! तुम कोषाध्यक्ष के पास जाकर मेरा नाम लेकर एक लाख धन-राशि की याचना करो।' राजा के आदेशानुसार लकड़ियों का गठ्ठर जमीन पर रखकर कोषाध्यक्ष के पास आकर वह पंडित बोला—'मुझे राजा भोज ने भेजा है। उनकी आज्ञा है कि आप मुझे एक लाख रुपये दें।' कोषाध्यक्ष ने कुछ हंसकर कहा—'हे विप्र ! आपकी आकृति एक लाख के लायक नहीं है।' तब वह विप्र राजा के पास आकर बोला—'देव ! कोषाध्यक्ष तो मुझे देखकर हंसने लग गये। रुपये नहीं देते हैं।' तब फिर राजा ने आदेश दिया कि तुम जाओ। दो लाख मांगो, अवश्य देगा। फिर उसने कोषाध्यक्ष से आकर कहा—'मुझे दो लाख रुपयों की धन-राशि मिल जानी चाहिए, राजा का ऐसा आदेश है। कृपया दो लाख दीजिये।' कोषाध्यक्ष ने फिर उपहास किया। रुपये नहीं दिये। वह विप्र पुनः राजा के पास आकर बोला—'स्वामिन् ! वह तो वैसा ही उपहास करता है। रुपये नहीं मिले।' राजा ने फिर कहा—'भैया ! तुझे निराश होने की जरूरत नहीं है। आशा अमरधन है। फिर जाओ। तीन लाख मांगो। अवश्य देगा।' वह फिर चला। वहां पहुंचा। बोला—'तीन लाख की आज्ञा है। दीजिये।' कोषाध्यक्ष फिर हंस दिया। फिर वह क्रोधाकुल होकर राजा के पास आकर बोला—'हे प्रभो ! वे नहीं देते हैं।'

राजन् कनकधाराभि, स्त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्र संच्छन्ने मयि नायान्ति विन्दवः ॥

—हे राजन् ! आपके द्वारा सर्वत्र स्वर्णधारा बरस रही है। किन्तु अभाग्य-रूपी छतरी के आच्छादन से मेरे ऊपर एक बूंद भी नहीं पड़ती है।

राजा ने कहा—

क्रोधं माकुरु मद्वाक्याद्, गत्वा कोशाधिकारिणम्।
लक्षत्रयं गजेन्द्राश्च, दश ग्राह्या त्वया द्विज ॥

—हे विप्र ! रोष मत करो, मेरे वाक्य से पुनः कोषाध्यक्ष के पास जाओ। वे लाख और दस गजेन्द्र देंगे।' राजा ने कोषाध्यक्ष के पास नौकर भेजकर कहलाया। तब कोषाध्यक्ष ने धर्म-पत्र पर लिखा—

लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं मत्ताश्च दश दन्तिनः।
दश भोजेन तुष्टेन, जानुदघ्नं प्रभाषणात् ॥

—राजा ने लाख, लाख, पुनः लाख रुपये और दस हाथी केवल 'घुटने मात्र' इतना कहने वाले विप्र को दिया।

जिस व्यक्ति में बोलने की कला होती है, उस व्यक्ति का हर दृष्टि से सम्मान होता है। संसार में वाक्-चातुर्य का बहुत बड़ा महत्त्व है।

जग में वाक्-चातुर्य का, निश्चित अमित महत्त्व।
वचन-निपुणता का सुनो, उदाहरण नवतत्त्व ॥

शरीर में मत उलझो

युवराज भद्रबाहु अपने मित्र सुकेशी के साथ जा रहे थे। देखा, श्मशान में मुर्दा जल रहा है। भद्रबाहु ने अपने साथी से कहा—'अरे मित्र ! यह आग कहां लग गयी ? क्या बात है ? लोग खड़े-खड़े देख रहे हैं, कोई भी बुझा नहीं रहा है। यह दृश्य तो निराला ही है।' सुकेशी बड़े विनम्र शब्दों में बोला—'मित्र मुर्दे को जलाया जा रहा है।' भद्रबाहु के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा। नाक को सिकोड़ते हुए कुमार पुनः बोले—'कोई कुरूप होगा, इसलिए लोग इसे जला रहे होंगे।' सुकेशी ने मार्मिक शब्दों में उत्तर दिया—'मित्रवर ! वह तनिक भी कुरूप नहीं था, हर दृष्टि से वह बहुत ही सुन्दर था।' भद्रबाहु ने फिर पूछा—'तो फिर इसको क्यों जलाया जा रहा है ?

सुकेशी ने उत्तर दिया—'मित्र ! मरने के बाद जलाना ही होता है, चाहे कोई कामदेव के रूप को भी परास्त करने वाला हो। परन्तु जो मर गया, मरने के बाद उमसे दुर्गन्ध आने लग जाती है। शरीर गल जाता है। उसे जलाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।'

मित्र की रहस्यमयी वाणी सुनते ही भद्रबाहु का अहंकार चूर-चूर हो गया। उसे अपने सौंदर्य पर बहुत गर्व था। वह अपने आपको कामदेव का अवतार मानता था। दर्पण में जब स्वयं की मंजुल आकृति निहारता, अपने मन में सोचता—अहो ! मेरे-जैसा रूपवान मानव इस धरातल पर कोई नहीं है। मेरी सुन्दर और सौम्य रूपाकृति के सामने सब विद्रूप-से लगते हैं। अपने सौन्दर्य के प्रति मन में बड़ा अहं था। वह एकदम चूर हो गया।

उसने सोचा—क्या इस सुन्दर शरीर को भी जलाना होगा? क्या यह भी एक दिन जल जायेगा?

भद्रबाहु जो सदा प्रसन्न रहता था, जो फूल सदा विकस्वर था, वह मुरझा गया। उसमें सिकुड़न पैदा हो गयी। प्रतिदिन यह मनोदशा सताने लग गयी। मित्र सुकेशी ने सोचा—काम अच्छा नहीं हुआ। महाराज भी चिंतित हो गये कि राजकुमार को क्या हो गया? क्या किया जाय? बहुत समझाया, पर कुछ फल नहीं निकला। आखिर सिद्धाचार्य, सिद्धयोगी, महाचार्य के पास ले गये। उन्होंने सारी स्थिति जानी और कहा—'कुमार! तुम अभी भूल रहे हो। शरीर सुन्दर नहीं होता है, सुन्दर होता है शरीर में होने वाला चैतन्य। शरीर का क्या असुन्दर? थोड़ी गंभीरता से चिन्तन करो। शरीर में मत उलझो। यह मात्र उपकरण है, साधन है। इसे उतना ही मूल्य दो, जितना इसका मूल्य होता है।'

जो व्यक्ति शरीर में उलझ जाता है, बाह्य सुन्दर आकृति को देखकर जो अकड़ता है, अहंकार के नशे में जो चूर हो जाता है, वह चैतन्य को भूल जाता है और संसार में भटकता रहता है।

उलझो मत इस देह में, इसको देख सुरूप।
'मुनि कन्हैया' एक दिन, बनता रूप कुरूप ॥

अनाड़ी वैद्य

राजवैद्य का स्वर्गवास होने से राजा ने राजवैद्य के पुत्र से कहा कि देखो, यदि तुम कुछ पढ़-लिख लो तो हम तुम्हें तुम्हारे पिता के स्थान पर नियुक्त कर दें। वैद्य पुत्र के हृदय में आनन्द की तरंगें उछलने लगीं। अध्ययनार्थ वह परदेश चला गया।

वैद्य-पुत्र ने किसी वैद्य के पास रहकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। एक बार की बात है, एक बकरी के गले में ककड़ी अटक गयी। बकरी का मालिक अपनी बकरी को उस वैद्य के पास ले आया। बोला—'मेरी बकरी को ठीक कर दो।' वैद्यजी ने पूछा—'तुम्हारी बकरी कहां चरती थी? उसने कहा—'बाड़े में चरती थी, इसके गले में ककड़ी अटक गयी।' वैद्यजी ने बकरी के गले में एक कपड़ा बांधकर उसे खूब जोर से खींचा। ककड़ी टूटकर गले के बाहर आ गयी। वैद्य-पुत्र भी सारा दृश्य देख रहा था। उसने सोचा—यह कोई वैद्यक की विशेष प्रक्रिया होनी चाहिए, जो इतनी जल्दी बकरी के गले की ककड़ी टूटकर बाहर आ गयी।

वह वैद्य-पुत्र पढ़-लिखकर होशियार हो गया। आयुर्वेदाचार्य बनकर अपने नगर में आ गया। राजा ने वैद्य-पुत्र को सम्मानित कर राजवैद्य के पद पर नियुक्त कर दिया।

एक दिन रानीजी के गले में एक फोड़ा निकल आया। राजवैद्य को बुलाकर कहा गया कि रानीजी की बीमारी को जल्दी से दूर करें। राजवैद्य ने राजकर्मचारियों से पूछा—'बताओ, महारानी कहां चरती थी ?'

कर्मचारियों का दिमाग उलझ गया। वैद्यजी ऐसे कैसे पूछ रहे हैं, बात कुछ समझ में नहीं आ रही है। उत्तर दें, तो क्या दें ? सोच ही रहे थे कि इतने में वैद्यराजजी ने एक वस्त्र लेकर उसे रानी के गले में लपेटकर खूब जोर से खींचा कि रानी की सांस घुटने लगी और क्षण भर में वह परलोक सिधार गयी।

बिना विचारे इस प्रकार के व्यक्तियों को जो सम्मान देता है, उसे बार-बार पश्चाताप करना पड़ता है। सुयोग्य पात्र देखे बिना अगर कोई बढ़ावा दे देता है तो उसके द्वारा बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता है। अतः हर काम सोच-समझकर करना चाहिए।

वैद्यराज यमराज से, रहो निरन्तर दूर।
नरपति अपने हृदय में, करता दुख भरपूर॥

हवाई महल

बादशाह की सभा जुड़ी हुई थी। सभा का संचालन बीरबल द्वारा हो रहा था। किसी प्रसंग पर बादशाह ने कहा—बीरबल ! इस धरा पर तुम-जैसा बुद्धिमान और प्रज्ञाशील व्यक्ति कोई नहीं है। तुम कभी-कभी असंभव कार्य को भी संभव बना देते हो। मेरे मन में एक स्वप्न है, एक कल्पना है, उसे तुम अपनी विलक्षण मति से साकार करो।' बीरबल ने कहा, 'प्रभो ! फरमाइये। मेरे लायक कार्य होगा तो अवश्य ही क्रियान्वित करने का प्रयास करूंगा।' बादशाह बोला, 'मेरी इच्छा है कि तुम 'हवाई महल' बना दो।' बीरबल ने कहा—'जहांपनाह ! आपका आशीर्वाद मेरे साथ है। मैं जरूर बना दूंगा।'

बीरबल ही ऐसा प्रतिभावान व्यक्ति था कि कोई काम कह दो, अस्वीकार करना जानता ही नहीं था। बीरबल ने स्वीकार कर लिया। चिन्तन की गहरी सरिता में डुबकियां लगाते उसे उपाय सूझ गया। उसने चिड़ीमार बुलाए और उन्हें आदेश की भाषा में कहा—'सौ-दो सौ तोते पकड़कर लाओ।' स्वल्प समय में ही सैकड़ों तोते पकड़कर बीरबल के चरणों में वे उपस्थित हुए। बीरबल ने उनको पुरस्कृत किया और तोतों को सुरक्षित रखने के लिए पिंजड़े बना दिये।

बीरबल की लड़की भी बड़ी विदुषी थी। हर क्रिया में निपुण थी। बीरबल ने अपनी लड़की को बुलाकर कहा, 'बेटी ! इन तोतों को प्रशिक्षित करना है। ये आदमी की भाषा बोलना जानते हैं।' लड़की ने अपने बुद्धि-प्राबल्य से सब तोतों

को प्रशिक्षित कर दिया।

पूर्व-निर्णयानुसार दो महीने का समय बीता। बीरबल ने बादशाह से कहा, 'प्रभो ! हवाई महल का कार्य प्रारम्भ हो गया है। आपकी इच्छा हो तो एक बार चलकर देख लीजिए, कितना काम आगे बढ़ा है।' बादशाह के हृदय में आश्चर्य का पार न रहा। मन-ही-मन सोचने लगा—आकाशी महल कैसे बन सकता है ? बात समझ में नहीं आ रही है। कैसे बनाया है ? प्रकट में बोला—'चलो, अभी चलो।'

एक विशाल प्रांगण में बादशाह पहुंचे। सामन्त भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। बीरबल का आदेश होते ही भृत्यों ने सैकड़ों पिंजड़े लाकर रख दिये और पिंजड़ों के दरवाजे खुलते ही आकाश में तोते ही तोते छा गये। सब आपस में बोलने लगे—'जल्दी ईंटें लाओ ! जल्दी पत्थर लाओ, चूना लाओ, हथौड़ा लाओ, मकान जल्दी बनाओ !' ऐसी ध्वनियों से आकाश और धरती एक होने लगी। बादशाह ने पूछा—'बीरबल ! वह हवाई महल कहां है ?' बीरबल बोला—'सरकार ! ये मजदूर लगे हुए हैं, सारा काम हो रहा है।' बादशाह ने कहा, 'क्या ये ही हवाई महल बनायेंगे ?' बीरबल बोला, 'जहांपनाह ! ये ही बनायेंगे, क्योंकि आकाश में उड़ने वाला ही हवाई महल बना सकता है।'

संसार में बुद्धि-निपुणता का बहुत बड़ा महत्त्व है। बुद्धिमान व्यक्ति अकल्पित कार्य को भी कल्पित कर देता है। बीरबल जैसा आज्ञाशील मानव का सर्वत्र स्वागत तथा अभिनन्दन होता है।

बुद्धि-प्रबलता से हुए, अमित असंभव काम।
'मुनि कन्हैया' विश्व का, बढ़े सुयश हर धाम।।

मूर्ख से शास्त्रार्थ

एक पंडित था। संस्कृत भाषा का अध्ययन कर वह किसी गांव में जा पहुंचा। संस्कृत के कुछ श्लोक भी याद कर लिये। ग्रामीण जनता पर अपना रोब जमाने के लिए वह समय-समय पर संस्कृत भाषा का प्रयोग करता था। सारे गांव में पंडितजी की विद्वता की धाक जम गयी। गांव के लोगों ने मिल-जुलकर पंडितजी की आजीविका का सुन्दर प्रबंध कर दिया। उनके दिन बड़े सुख से बीतने लगे। अपने भाग्य की सराहना करते हुए पंडितजी ने कहा—'भाइयो, मेरे जैसा शास्त्रों का ज्ञाता इस संसार में बिरला ही मिलेगा। मैं हर मनीषी मानव के साथ शास्त्रार्थ कर सकता हूं।'

एक दिन उस गांव में पुस्तकों से लदे हुए अपने छात्रों को लेकर व्याकरण-

विज्ञाता एक विद्वान् आया। गांववालों ने पूछा—'आप कौन हैं ?' शिष्यों ने कहा—'ये धुरंधर विद्वान् हैं। सरस्वती कंठाभरण हैं। हर विषय का प्रतिपादन करने में बड़े निपुण हैं। व्याकरण के अद्वितीय मेधावी हैं।' गांववालों ने सोचा—'बहुत अच्छा मौका है। हमारे गांव में एक असाधारण विद्वान् है। क्यों नहीं आपस में शास्त्रार्थ हो ?'

शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित हो गयी। निर्णीत स्थल पर दोनों ही पंडितों का आगमन हुआ। किसी एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछते हुए कहा—'पंडितजी, कृपया बताइये काग को संस्कृत में क्या कहते हैं ?' व्याकरणज्ञाता पंडितजी ने उत्तर दिया कि काग को संस्कृत में 'काक' कहते हैं। गांव के पंडितजी जोर से हंस पड़े और बोले, 'महाशय ! काक तो सभी लोग कहते हैं। कृपया यह बताइये संस्कृत में उसे क्या कहते हैं ?'

व्याकरण-विज्ञाता ने वही उत्तर देते हुए कहा—'संस्कृत में ही तो कहते हैं 'काक'।'

पंडितजी करतल-ध्वनि के साथ और भी जोर से खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले—'बस, आपका यही पांडित्य है ? आपका संस्कृत का अध्ययन अधूरा है। संस्कृत में काक को कहते हैं 'श्रीकाक'।'

यह सुनते ही गांववाले जोर-जोर से पंडितजी महाराज की जय-जयकार बोलकर गगन-धरा को एक करने लगे— वास्तव में हमारे पंडितजी ही संस्कृत भाषा के सच्चे विज्ञाता हैं। व्याकरण-अध्येता का सिर लाज-शर्म से झुक गया। वह कुछ बोल नहीं सका और अपना-सा मुंह लेकर वहां से रवाना हो गया।

मूर्ख मनुष्य से हरदम दूर रहना चाहिए। जो व्यक्ति बिना विचारे, बिना चिन्तन किये किसी मूर्ख से शास्त्रार्थ कर लेता है तो वह तिरस्कृत हुए बिना नहीं रहता। उसे लज्जित होना पड़ता है।

मूर्ख मनुज के साथ में, जो करता शास्त्रार्थ।
उन मानव को तनिक भी, मिलता नहीं यथार्थ ॥

वचन की प्रामाणिकता

गुजरात-प्रवासी भैंसाशाह एक व्यापारी था। हर दृष्टि से वह प्रामाणिक था। उसे अनैतिक व्यापार कभी भी पसन्द नहीं था। वह राजस्थान से चलकर गुजरात में व्यापारार्थ गया वहां उसे अचानक एक लाख रुपये की आवश्यकता पड़ गयी। आज के युग में तो लाख रुपयों का कोई महत्त्व नहीं, किन्तु पांच-सात सौ वर्षों पहले एक लाख मुद्रा का बड़ा महत्त्व माना जाता था। भैंसाशाह एक बड़े सेठ के पास

जाकर बड़े विनय भाव से बोला—'हे उदार वृत्ति वाले दाता! मुझे व्यापारार्थ एक लाख मुद्रा की बहुत जरूरत है।' उसने पूछा—'आपका नाम क्या है?' 'मेरा नाम भैंसाशाह है।'

'आपका नाम तो सुप्रसिद्ध है, ले लीजिए लाख रुपये। लेकिन फिर भी मैं चाहता हूं कि कुछ आप अनुबन्ध कर लें तो अच्छा होगा।' उसने कहा—'कोई जरूरत नहीं। अगर आपको विश्वास न हो तो मेरी मूंछ का यह एक बाल रख लें और रुपया दे दें।' सेठ ने तत्काल एक लाख रुपया निकालकर दे दिया।

कुछ ही महीनों के बाद भैंसाशाह सेठजी के पास आकर बड़े सुकोमल शब्दों में बोला—'सेठजी! मैं आपके उपकार को भूल नहीं सकता, आपकी उदारता को देखकर दानवीर कर्ण की करुण कहानी याद आ जाती है। धन्य है आपके अवतार को। धन्य है आपकी गौरव गरिमा को। ये लीजिए अपना एक लाख रुपया वापस। आपके इस सहयोग की जितनी भी प्रशंसा करूं, थोड़ी है।'

सेठजी पर भैंसाशाह का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। सोचा—यह कितना नैतिक और प्रामाणिक व्यक्ति है। जैसा कहा, वैसा ही समय पर सब कुछ कर दिया। यह है वचन की प्रामाणिकता का सजीव चित्रण।

जो व्यक्ति अपने वचन की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखता है, वही विश्वास का पात्र बन जाता है। जो बात मुंह से कह दी, वह लोहे की लकीर बन गयी।

जो मानव निज वचन पर, अटल रहे सर्वत्र।
चमकेगा जग में वही, नभ में ज्यों नक्षत्र॥

उपसर्गों में अडिग

हस्तिनापुर नगर में कुलदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसके हृदय में धर्म के प्रति अच्छी श्रद्धा थी। नित्य नियम किए बिना वह पानी भी नहीं पीता था। एक बार वहां पर बहुश्रुत आचार्य का आगमन हुआ। सैकड़ों-सैकड़ों श्रद्धालु प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। राजा भी पहुंचा। गुरु-प्रवर ने अपने भाषण में कहा—

चलालक्ष्मी चला प्राणाः, चले जीवित मन्दिरे।
चलाचले च संसारे, धर्म-एको हि निश्चलः॥

—'लक्ष्मी चंचल है, जीवन चंचल है। इस चलायमान संसार में धर्म ही एक निश्चल तत्त्व है।' आगे अपने संयम की महत्ता पर प्रकाश डाला। गुरुदेव की आगमोक्त वाणी का कुलदत्त पर गहरा असर पड़ा। संसार का परित्याग कर वह दीक्षित हो गया। गुरुवर के चरणों में विनयपूर्वक अध्ययन करने लगा। बुद्धि का

प्राबल्य होने से स्वल्प ही समय में अच्छा ज्ञानार्जन प्राप्त कर लिया। शास्त्रों का सम्यक् अभ्यास होने के पश्चात् कुलदत्त मुनि ने करबद्ध होकर सुकोमल शब्दों में गुरुदेव के चरणों में निवेदन करते हुए कहा—'प्रभुवर! आपकी आज्ञा हो तो मैं एकल विहारी बनना चाहता हूं।

गुरु ने कहा—'शिष्य! एकल विहारी अवस्था में विभिन्न प्रकार के उपसर्ग उत्पन्न होने की आशंका रहती है। क्या उन उपसर्गों को सम्यक्तया सहन कर पायेगा?'

शिष्य ने सम्मानित भाषा में कहा, 'आचार्य देव! आपकी कृपा से सब सहन करने की क्षमता रखता हूं। आपके आशीर्वाद की परम अपेक्षा है।'

गुरु ने योग्य तथा उचित समझकर आज्ञा प्रदान की। गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त कर कुलदत्त मुनि अकेले ही विहरण करने लगे। एक बार किसी उद्यान में आकर पांच प्रहर का मौन लेकर पद्मासन में ध्यान करने लगे। उसी समय कई चोर गायों को चुराकर उसी मार्ग से जा रहे थे, जहां मुनिप्रवर ध्यान कर रहे थे।

गायों की खोज करते-करते गायों के मालिक वहां आये और मुनिराज से पूछने लगे—'महाराज! मेहरबानी कर बताइये, गौवों को चोर कौन से मार्ग से ले गये हैं?' मुनिराज बिलकुल मौन थे।

गौवों के मालिकों ने कहा—'ये महाराज उत्तर नहीं दे रहे हैं इसलिए इनके सिर पर धधकते हुए अंगारे रख दो, अभी उत्तर दे देंगे।' ऐसे वचन सुनकर भी मुनिराज अपनी ध्यान-साधना से विचलित नहीं हुए। मेरु पर्वत की भांति अडिग रहे। उन आचार्यों ने न आव देखा न ताव, मुनिराज के मस्तक पर मिट्टी की पाल बांधकर प्रज्वलित अंगारे रख दिये।

असह्य वेदना होने पर भी मुनिराज अन्यत्व-भावना में रमण करते हुए चिन्तन करने लगे—यह शरीर मेरा नहीं है, जड़ है, पुद्गल है। आग से जड़ का विनाश हो सकता है परन्तु चेतना का नहीं। इस पुद्गल के योग से जीव अनन्त काल से भटक रहा है। वह दिन धन्य होगा जब इस पुद्गल से मुक्ति मिल जायेगी। इस प्रकार आत्म-रमण करते-करते कर्मों को काटकर वह केवलज्ञानी बन गये। सिद्ध हो गये।

जो व्यक्ति कष्टों में स्थिर रहते हैं, उपसर्गों में अडिग रहते हैं, वे निश्चित ही अपने लक्ष्य की उपलब्धि में सफल होते हैं। अतः उपसर्ग तथा कष्ट आने पर भी मनुष्य को घबराना नहीं चाहिए।

उपसर्गों में जो मनुज, निश्चल है सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' एक दिन, वह बनता जग छत्र॥

सपनों से क्या ?

एक पुजारी था। वह प्रतिदिन मंदिर में भगवान की पूजा करता था। रात्रि में अर्धनिद्रा में उसे सपना आया—'आज मेरा मंदिर घेवरों से भर गया। अब क्या करूं ? इतने घेवर कौन खाएगा ? उसने सोचा—समूचे गांव को भोज दूं। छोटा गांव था। सबको खिलाऊं। योजना बना ही रहा था, अचानक नींद टूटी। सपना मिटा। तत्क्षण उठा और सबको निमंत्रण दे आया—आज किसी को खाना नहीं बनाना है सबका भोजन मेरे घर पर है। लोगों ने सोचा कि गरीब आदमी है, क्या खिलाएगा ? किसी ने पूछ भी लिया—'पुजारीजी ! आपका निमंत्रण भोजनार्थ मिला। क्या खिलाओगे ? उसने कहा—'तुम इसकी चिन्ता मत करो। ऐसे ही निमंत्रण देने थोड़े आया हूं। कुछ है तभी तो निमंत्रण दिया है। तुम चिन्ता क्यों करते हो ?'

लोगों ने सोचा—यह पुजारी तो सदा से ही गरीब है। भोजन की इतनी बड़ी व्यवस्था कैसे कर पायेगा ? बात समझ में नहीं आयी। सारे गांव को निमंत्रण देना कोई सुगम कार्य नहीं है। बड़ी हिम्मत ! बड़ा साहस ! बड़ा दिल ! लगता है कहीं से भेंट-पूजा आ गयी होगी। इसीलिए यह बड़ा भोज दिया गया है। सारे गांव में एक ही चर्चा, एक ही बात—चलो भाई पुजारी के घर। उस दिन गांव में कोई चूल्हा नहीं जला। पुराने जमाने की बात है, चाय-पानी होता नहीं था। चूल्हा जलाने की जरूरत नहीं हुई।

सब लोगों की दृष्टि भोजन पर टिकी हुई थी। न्योता मिला था। पुजारी मंदिर में आया। देखा, तो घेवर एक भी नहीं है। सोचा—अब क्या करूं ? सबको न्योता दे आया और घेवर हैं ही नहीं। समस्या खड़ी हो गयी। लोगों को मुंह कैसे दिखाऊंगा ? उदास होकर बैठ गया। दस बज गये। ग्यारह बज गये। बारह बजने को आये। सबने सोचा—निमंत्रण तो दे दिया, परन्तु अभी तक तो मंदिर में कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा है। क्या बात है ? जाकर देखें तो सही। दो-चार लोग आये। मंदिर के दरवाजे को खटखटाया। बोले—भोजन कब कराओगे ? इतनी देर हो गयी।

पुजारी लज्जित होता हुआ बोला—अरे भाई ! क्या करूं, भूल हो गयी। आप जरा सुस्ताएं, फिर सपना आये और घेवर बन जाये तो भोजन कराऊंगा।

सपनों के सहारे निमंत्रण देने वाले मनुष्य की क्या स्थिति बनती है, इस सचाई को कौन नहीं जानता ? संसार में महापुरुष वही कहलायेंगे जो सपनों के सहारे को छोड़कर यथार्थ की पावन धरा पर चरण बढ़ाते रहेंगे।

ज्ञानी पुरुषों ने कहा, यह जग स्वप्न समान।
आंखें खुलते ही उसे, नहीं मिला सामान ॥

अनन्त ज्ञान का धनी

एक बहुत बड़ा सेठ था। घर में किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी। हर दृष्टि से संपन्न था, प्रतिष्ठावान था, मतिमान था, सज्जन था, दूरदर्शी था। अचानक वह काल-कवलित हो गया। पति-विरह में व्याकुल होकर सेठानी यमराज को प्यारी हो गयी। घर में अकेला सेठानी का पुत्र रहा। घर की सारी संपत्ति समाप्त हो गयी। घर नहीं। खाने को रोटी नहीं। पहनने को कपड़े नहीं। हाय! कैसे बीतेगी जिन्दगी?

आखिर वह भिखारी बनकर दर-दर घूमने लगा। एक दिन पुराने मित्र से मार्ग में भेंट हुई। उसने उसे पहचान लिया। भिखारी के वेश में देखकर आश्चर्य के आकाश में विहरण करने लगा। उसने बहुत ही सुकोमल शब्दों में पूछा—'यह क्या? तुम वैभवशाली सेठ के सुपुत्र! यह अवस्था कैसे?' उसने कहा—'मित्र! पिताजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् सारी संपत्ति नष्ट हो गयी। मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।'

मित्र बोला—'तुम्हारा कथन बिलकुल असत्य है। अब भी तुम्हारे पास बहुत वैभव है। तुम भिखारी नहीं, धनी हो। तुम्हारे गले में यह क्या है?' उसने कहा—'मित्र! मेरे पिताजी ने मेरे गले में एक तावीज बांधा था। पर इससे क्या?' मित्र बोला—'तू अभी तक इस तावीज के महत्त्व को जानता नहीं है। इसमें बहुत बड़ा रहस्य है। हथौड़ा लाओ। इसको तोड़ो। सही स्थिति का पता लग जायेगा।' तावीज को तोड़ा गया। पहले पीतल की खोल उतर गयी, फिर चांदी की खोल, फिर सोने की खोल दूर होते ही चमकीला अमूल्य हीरा अपनी आभा बिखेरने लगा।

मित्र बोला—'तुम अपने आपको भिखारी कैसे मानते हो? जिसके पास ऐसा कीमती हीरा हो उसे भिखारी कौन कहेगा? तुम्हारे पास लाखों की सम्पदा है, गले में बांधे फिरते हो। कौन कहेगा दरिद्री! तुम वास्तव में धनी हो।' वह बोला—"मित्र! तुम बड़े ज्ञानी हो। तुम्हारे प्रताप से ही आवरण दूर हटा। हीरा प्रकटा। कैसे भूल सकता हूं तुम्हारे अनुपम उपकार को।'

हर व्यक्ति अनन्त ज्ञान का धनी है, फिर भी वह अपने को अज्ञानी मानता है। खुद के पास सब कुछ होते हुए भी अपने आपको जो दरिद्री समझता है, वह अज्ञानी है। आवरण को दूर करने की अपेक्षा है। आत्म-आभा का रूप स्वतः प्रकट हो जायेगा।

मानव चेतनवान है, इसमें ज्ञान अनन्त।
'मुनि कन्हैया' आवरण, करता दूर भवन्त॥

विशाल खजाना

एक वैभवशाली व्यक्ति था। करोड़ों रुपयों की संपत्ति व्यापार में लगी हुई थी। घर में किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी। अशुभ कर्मों के उदय से सारा व्यवसाय चौपट हो गया। व्यापार-धन्धा चलता नहीं था। घर तो बहुत लम्बा-चौड़ा, किन्तु खाने को कुछ भी नहीं मिलता। विवशता आ गयी। भीख मांगने की इच्छा नहीं थी, पर करे क्या ? क्षुधा से संपीड़ित होकर रोटी के लिए भी दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ रहा था। घर-घर भीख मांग रहा था।

मार्ग में एक ज्योतिषी से भेंट हो गयी। ज्योतिषी ने उसकी आकृति, भव्य ललाट तथा चमकीली आंखें देखकर सोचा—यह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है। किस्मत वाला है। फिर भी भीख मांग रहा है। उसने पूछा—भाई ! ऐसा क्यों कर रहे हो ? वह बोला—'मांगना तो नहीं चाहता पर क्या करूं, पापी पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है। बहुत बड़े घराने का हूं। शर्म भी आती है हाथ पसारने में। पर और कोई उपाय भी तो नहीं है।'

ज्योतिषी बोला—'आपकी बात समझ में नहीं आ रही है। चलो, तुम्हारा घर कहां पर है ?' वहां पहुंचे। ज्योतिषी ने अपनी विद्या-शक्ति से अवलोकन किया। पुराने ज्योतिषियों मे एक विशेषता होती थी वे भूगर्भ के भी विशेषज्ञ होते थे। उसने कहा—भाई ! एक हथौड़ा लाओ। एक कमरे के भीतर ले गया। खुदाई करवाई। एक शिला निकली। दूसरी-तीसरी-चौथी निकली। खोदते-खोदते एक सीमा आयी कि इतना विशाल रत्नों का भंडार पड़ा है। इतनी संपत्ति, इतना वैभव देखकर वह बोला—'ज्योतिषी जी ! यह सब आपका ही प्रताप है। आप अगर यहां नही पधारते, मुझे नहीं पूछते, मुझे नहीं सहयोग करते तो जमीन का धन जमीन में ही रह जाता। आपने बड़ी कृपा की। आपके उपकार से मैं कभी भी उप-कृत नही हो सकता। आप जैसे उपकारी पुरुष इस धरातल पर नहीं मिलेंगे। कोटि-कोटि अभिवन्दन।'

इस आत्म-रूपी खजाने में विभिन्न प्रकार की संपत्ति भरी पड़ी है। इसे वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है जो निपुण है, संयमी है। चाबियों के बिना ताला खुल नहीं सकता। अतः चिन्तन करो। तुम्हारे घर में सब-कुछ भरा पड़ा है। विशाल खजाना है। फिर भी आदमी भीख मांग रहा है। आश्चर्य !

> अमित खजाना है भरा, तेरे घर में मित्र।
> फिर भी भिक्षा मांगता, है यह बात विचित्र॥

पांच के पांच सौ

रामलाल नाम का एक सेठ था। स्थान-स्थान पर उसका व्यापार चलता था। थोड़े ही समय में वह अच्छा लखपति बन गया। लेकिन वह लालची और कंजूस था। एक पैसा भी खर्च करना मौत के बराबर समझता था। न ही स्वयं खर्च कर सकता था और न ही दूसरों को खर्च करने देता था। लोग कहते—'सेठ साहब ! धन यहीं का यहीं रह जायेगा। साथ में एक दमड़ी भी नहीं आयेगी। इतनी कंजूसी करना आपको शोभा नहीं देता।' किन्तु सेठ कहां मानने वाला था। खान-पान, रहन-सहन आदि प्रवृत्तियों में भी बड़ी कंजूसी करता था। सेठ ने एक वृक्ष लगाया। वह वृक्ष जब बड़ा हुआ तो उसका आधा हिस्सा मकान के आंगन में तथा आधा हिस्सा सड़क पर आता था।

सेठ ने एक दिन देखा कि एक मजदूर सड़क की तरफ पड़ने वाले वृक्ष के हिस्से की छाया में विश्राम कर रहा है। सेठ ने सोचा इस वृक्ष को मैंने पानी पिलाया, मेरे पानी से ही यह वृक्ष बड़ा हुआ है। अब इसकी छाया में यह मजदूर आराम क्यों कर रहा है? मुफ्त में ही छाया का उपयोग क्यों कर रहा है? सेठ ने मजदूर को लल-कारते हुए कहा—'अरे भैया ! यहां क्या कर रहे हो ?' मजदूर बोला—'सेठ साहब ! काम करता-करता थक गया, अतः विश्राम कर रहा हूं।' सेठ बोला—'मुफ्त में आराम क्यों कर रहे हो ? अपने कुएं से इस पेड़ को पानी मैं पिलाता हूं, श्रम के साथ-साथ इसकी सार-संभाल मैं करता हूं। इसकी छाया में आराम तुम करते हो। यहां विश्राम करने की जरूरत नहीं है। इसकी छाया का मालिक मैं हूं। उठो और यहां से चले जाओ।' मजदूर कुछ सस्मित होकर बोला—'सेठ साहब ! आप इस छाया को बेच क्यों नहीं देते ?' 'क्या तू खरीदेगा ? ला पांच रुपये।' सेठ बोला। मजदूर यह सुनकर बोला—'पांच रुपये मैं दे दूंगा। पर शहर के चार-पांच महानुभावों के सामने ताकि बात पक्की रहे।' आखिर दो-चार महानुभावों के सामने पांच रुपये लेकर सेठ ने छाया मजदूर को बेच दी। अब मजदूर दो-चार साथियों के साथ वहां पर ताश खेलता, गप्पें लड़ाता और बारह बजे के बाद जब छाया सेठ के अन्दर चली जाती तो वह अन्दर बैठने को जिद् करता।

प्रतिदिन की किलकिलाहट देखकर सेठ ने न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया। न्यायाधीश ने मजदूर के हक में फैसला सुनाते हुए कहा—'लोभ में फंसकर पेड़ की छाया बेची, अब खरीदने वाले का हक है वह उसमें बैठे।' मजदूर बोला—'सेठ साहब ! फैसला न्यायसंगत हुआ है। जब तक आप पांच सौ रुपये नहीं देंगे, हम रोजाना यहां आकर ताश खेलेंगे और शोर भी मचाएंगे।' आखिर पांच के बदले पांच सौ रुपये देकर सेठ ने छुटकारा पाया।

जो व्यक्ति लालची होते हैं, उनको सदा-सदा के लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है। लालच का परिणाम दुःखद होता है। अतः हरेक को लालच का परित्याग कर संतोषामृत का पान करना चाहिए।

अति लालच का अन्त में, निश्चित दुष्परिणाम।
दिये पांच के पांच सौ, प्रत्युत दुःख प्रकाम॥

परोपकार का महत्त्व

राजा भीमसेन के तीन पुत्र थे। नृप ने सोचा—तीनों में से कौन-सा लड़का राज्यासन के योग्य है, इसकी परीक्षा किये बिना राज्यभार सौंप देना उचित नहीं है। राजा बड़ा विवेकशील तथा तीक्ष्ण बुद्धि का धनी था। गहराई से सोचा। तीनों में से एक को ही राज्य सिंहासन पर बैठना था, परन्तु अपनी ओर से वह निश्चय नहीं कर पाता था कि कौन-सा पुत्र राज्य करने योग्य है।

परीक्षा हेतु एक दिन राजा ने तीनों राजकुमारों को खीर की तीन थालियां परोसीं और सिंह के समान भयानक कुत्तों को उन पर छोड़ दिया। जोर-जोर से भौंकते हुए कुत्ते राजकुमारों के पास आए और क्षुधा-संग्रस्त थालियों में मुंह डालने लगे।

पहला राजकुमार भय से आक्रान्त होकर आर्त स्वर में चिल्लाने लगा। अपने अंगरक्षकों को सम्बोधित करते हुए बोला, 'तुम देख क्या रहे हो? मैं तो भोजन करने बैठा और ये भयानक कुत्ते मुझ पर टूट पड़े। तुम लोग खड़े-खड़े मुंह ताक रहे हो। क्या यही तुम्हारा विवेक है?'

अब दूसरे राजकुमार की थाली पर ज्यों ही वे कुत्ते भोजनार्थ टूट पड़े, वह राजकुमार हाथ में डंडा लेकर निर्दयी बनकर जोर-जोर से कुत्तों को मारने लगा। इधर-उधर कुत्तों को खिसकाकर वह स्वयं भोजन करने लगा, परन्तु उसने कुत्तों को नहीं खाने दिया।

तीसरा राजकुमार यह सारा दृश्य देखकर मन ही मन सोचने लगा कि अकेले-अकेले खाना इन्सानियत नहीं है। स्वयं का पेट तो सब ही भरते हैं, किन्तु संसार में महान वह होता है जो पर के उपकार के लिए खपता है। अपने स्वार्थ का परित्याग करता है। अतः उसने अकेले न खाकर कुत्तों को भी खिलाया। राजा तीसरे राजकुमार के व्यवहार से बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने गहराई से चिन्तन किया कि वास्तव में यह तीसरा पुत्र ही राज्यासन के योग्य है। शुभ बेला देखकर नृप ने उसे राजपद पर अभिषिक्त कर दिया।

जो व्यक्ति परोपकारी होता है, वह हर क्षेत्र में अपनी उन्नति करता है और

हरेक के लिए स्तवना का पात्र बनता है।

जग में परोपकार का, निश्चित अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, सबको भाता सत्त्व॥

पारस में दुर्गन्ध

एक संन्यासी था। वह बड़ा परोपकारी था। निस्पृही, निष्कंचन था। सरल आत्मा होने के साथ-साथ वह सहजानन्द में रमण करने वाला एक अद्वितीय महा-मानव था। उसकी कीर्ति-गाथा सर्वत्र फैल रही थी। हरेक के प्रति उसका अच्छा व्यवहार था। अपनी कुटिया में बैठा वह भजन करता रहता था। अचानक एक गरीब व्यक्ति वहां आया और हाथ जोड़कर बड़े विनम्र भाव से बोला—'बाबा! मैं गरीब हूं। खाने के लिए मेरे पास भरपेट रोटी नहीं है, पहनने के लिए कपड़े नहीं हैं। कृपया मुझे ऐसा कोई वरदान दीजिए, जिससे मैं अपने परिवार का अच्छी तरह से पालन-पोषण कर सकूं।'

संन्यासी ने कहा—'भैया! मैं तुझे क्या दे सकता हूं? मैं स्वयं अपरिग्रही हूं। निष्कंचन हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है।' वह गरीब पुनः अपनी भावना प्रस्तुत करता हुआ करुण स्वर में बोला—'हे दीनबंधो! मैं तो बहुत बड़ी आशा लेकर आपकी शरण में आया था। आप मुझे निराश कर रहे हैं। मुझे यह भरोसा नहीं था कि खाली हाथ लौटना पड़ेगा। लेकिन जब तक कुछ न कुछ वरदान नहीं मिलेगा, तब तक यहां से नहीं जाऊंगा। आपकी सेवा का आनन्द लेता रहूंगा। गरीब का उद्धार आपके हाथों में है।'

बाबा ने सोचा—यह तो जाने वाला नहीं है। चिंतन किया। उल्लसित भाषा में वह बोला—'तुम जाओ। नदी के किनारे पर पारस का एक टुकड़ा पड़ा है, उसे ले जाओ। मैंने उसे फेंका है। उसमें बहुत बड़ी शक्ति है। उस टुकड़े से लोहा सोना बन जाता है। तेरा सारा दारिद्रय दूर हो जायेगा। तेरी भावना साकार बन जायेगी। तुझे कुछ चिंता नहीं करनी पड़ेगी।'

वह दौड़ा-दौड़ा नदी के किनारे गया। पारस का टुकड़ा उठाकर लाया। बाबा को नमस्कार करता हुआ बोला—'प्रभो! आपकी कृपा से यह पारस लेकर जाता हूं। अवश्य ही मुझे सुख-शांति मिलेगी।' घर की ओर वह चला। कुछ आगे बढ़ा। मन में विभिन्न प्रकार के विकल्पों-संकल्पों की तरंगें उठने लगीं। वापस मुड़कर उन्हीं पैरों संन्यासी के पास आकर बोला—'बाबा! यह लो अपना पारस, मुझे नहीं चाहिए।'

संन्यासी मुसकराहट की भाषा में बोला—'भैया! क्या बात हुई? विचारों

में कैसा परिवर्तन हुआ ? तेरे हृदय में धन के प्रति कितनी लालसा थी। अब धन के स्रोत को ठुकरा रहा है। क्या हो गया चन्द मिनटों में ?' उसने कहा—'बाबा ! मुझे तो वह चीज चाहिए जिसे पाकर आपने पारस को ठुकराया। मुझे लगता है कि पारस से भी बढ़कर आपके पास कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु है, कृपया वही दीजिए।'

संन्यासी ने अन्तर्चेतना को विकसित करने का उद्‌बोधन देते हुए सही दिशा में निर्देशन दिया और कहा—'इस पारस से मुझे दुर्गन्ध आ रही है।'

जिस व्यक्ति की अन्तर्चेतना जागृत हो जाती है, उसकी समस्त कामनाएं तथा लालसाएं अपने आप नष्ट हो जाती हैं। अतः हर व्यक्ति को निःस्पृहत्व की साधना करनी चाहिए।

पारस से आती अमित, निस्पृह की दुर्गन्ध।
बाबा सहजानंद में, करता रमण अमन्द ॥

बुद्धिमान मानव

एक मुसाफिर अपने गांव की ओर जा रहा था। मार्ग में अचानक किसी कवि से भेंट हो गई। वार्तालाप चला। मुसाफिर ने कहा—'हे मनीषि ! मैंने कई विद्वानों के समक्ष कुछ प्रश्न रखे थे। समाधान नहीं मिला। क्या आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं ?'

मनीषी ने कहा—'पथिकराज ! संसार में चिन्तनशील मेधावी बहुत हैं। फिर भी मैं अपनी मति के अनुसार अवश्य ही उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा।'

पथिक ने अपनी स्पष्ट भाषा में प्रश्नों को रखा। प्रश्न तथा उत्तर सबको एक श्लोक में अंकित करते हुए मेधावी बोल पड़ा—

विप्रास्मिन् नगरे महान् वसति कः ? ताल द्रुमाणां फलं।
को दाता ? रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ॥
को दक्षः ? परदार-वित्त हरणे सर्वोऽपि पौरा जनाः।
त्वं किं जीवसि भो सखे ! विषकृमि न्यायेन जीवाम्यहम् ॥

प्रश्न—नगर में सबसे बड़ा कौन है ?

उत्तर—मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा ताड़ वृक्ष होता है।

प्रश्न—दाता कौन है ?

उत्तर—धोबी दाता है। सुबह वस्त्रों को ले जाता है और सायं वस्त्रों को देता है।

प्रश्न—संसार में दक्ष कौन है ?

उत्तर—पर-दारा और पर-धन को लूटने में शहरवासी बड़े दक्ष होते हैं।

प्रश्न—विप्र, तू इस नगर में जीवित कैसे है ?

उत्तर—नीम का कीड़ा नीम में ही खुश रहता है, इसी न्याय से मैं यहां पर निवास करता हूं, जीता हूं।

प्रश्नों का उत्तर सुनकर पथिक बहुत ही प्रमुदित हुआ। बुद्धि-विलक्षणता की प्रशंसा करते हुए उसने कविराज को पुरस्कृत किया।

बुद्धिमान मानव हर क्रिया में सफल होता है, जहां जाता है वहां सत्कार पाता है। सम्मान मिलता है। प्रश्नों का समाधान भी सुचारु रूप से प्राप्त होता है।

बुद्धिमान हर क्षेत्र में, होता सफल महान।
'मुनि कन्हैया' प्रतिकदम, मिलता है सम्मान ॥

प्रज्ञावान की पूजा

बीकानेर के महाराजा सूरतसिंहजी बड़े यशस्वी नृप हुए थे। वे हर क्षेत्र में ईमान को महत्त्व दिया करते थे। आध्यात्मिकता उनके जीवन में टपकती थी। हर सिद्धान्त के अध्येता थे। एक दिन उन्होंने राज्यकवि नारायण सिंह को आमंत्रित किया। राज्य सभा में कविराज उपस्थित हुए, साष्टांग प्रणाम किया, करबद्ध बोले—'राजन् ! आज मुझे किसलिए याद फरमाया ?'

राजा ने कहा—'कविवर ! इन चार प्रश्नों का उत्तर मुझे चाहिए—

पहला प्रश्न—घटती क्या है ?

दूसरा प्रश्न—बढ़ती क्या है ?

तीसरा प्रश्न—वह, जो घटती भी है, बढ़ती भी है ?

चौथा प्रश्न—वह, जो न घटती है, न बढ़ती है ?

सही उत्तर मिलते ही पुरस्कृत करना मेरा कर्तव्य है।'

राज्यकवि ने चिन्तन किया। गहराई से सोचा और बोला—'राजन् ! इन प्रश्नों का उत्तर मैं अपने पद्य में दे रहा हूं, कृपया ध्यान से सुनें—

आयु घटै तृष्णा बढ़े, मन घट-बढ़त हमेश।
भावी घटै न जीव की, सुन नरपति सुरतेश ॥

राजन् ! मेरी बात समझ गये होंगे ? प्रश्नों का उत्तर—

(१) आयु हमेशा घटती ही रहती है।

(२) तृष्णा निरंतर बढ़ती रहती है।

(३) मन घटता है, बढ़ता भी है।

(४) भवितव्यता न घटती है न बढ़ती है।'

कवि नारायण सिंह के उत्तर से राजा बड़ा खुश हुआ। कविराजजी की प्रशंसा करने लगा। विभिन्न प्रकार के पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया।

संसार में विद्वानों की सर्वत्र पूजा होती है। विद्वान जहां जाता है वहां प्रतिष्ठा का पात्र बन जाता है : सत्कार पाता है।

पूजा प्रज्ञावान की, होती है सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' जगत में चमके ज्यों नक्षत्र।।

आत्मा में अनंत शक्ति

महात्मा कबीर साधनाशील योगी थे। उनके सुमधुर भजन आज भी जन-जन के मानस को आकर्षित कर रहे हैं। एक बार पहाड़ी क्षेत्र में वे परिभ्रमण कर रहे थे। अचानक कुछ महिलाओं पर दृष्टि पड़ी, सिर पर पानी के घड़े थे।

उन्होंने महिलाओं से पूछा—'पानी कहां से लाती हो?'

महिलाओं ने कहा—'योगिराज! यहां नजदीक पानी नहीं है, दो-तीन मील से पानी लाना पड़ता है।'

इस बात पर कबीर जी को काफी दुःख हुआ। इतनी दूरी से पानी लाना, कोई मामूली बात नहीं है।

कबीरजी कुछ आगे बढ़े। वहां पर उन्हें पानी का आभास हुआ, गांव वाले लोगों को बुलाकर कहा—'यहां पर नीचे पानी का झरना बह रहा है। पत्थर को हटाओ, पानी की समस्या स्वतः ही दूर हो जायेगी।'

पत्थर को हटाने के लिए गांव वाले जुट गये, क्रमशः गांव वालों को भी पानी का आभास होने लगा। जब सब पत्थरों को हटाया गया और पानी पर आई हुई काई को दूर कर दिया गया तो सुमधुर शीतल सलिल का स्रोत उमड़ने लगा। सभी तृषा शान्त करने, पानी पीने लगे। सबके हृदय-पटल में आनन्द की तरंगें तरंगित होने लगीं, मुक्त कंठ से कबीरजी की कीर्ति की प्रशंसा होने लगी।

कबीरजी अपनी मुस्कराहट की भाषा में कहने लगे—'वर्षों से पानी का स्रोत बह रहा था, किन्तु ज्ञानाभाव के कारण उपलब्धि असंभव थी।'

आत्मा में अनन्त शक्ति का झरना निरंतर बह रहा है, इसे प्राप्त करने के लिए मोहरूपी पर्दे को दूर करने की महती आवश्यकता है। जब तक यह प्रकट नहीं होगा, तब तक आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं होगी।

आत्म-शक्ति पाने लिए, दूर करो सब मोह।
'मुनि कन्हैया' एक दिन, मिटे सकल विद्रोह।।

सूई में क्या वजन

गुरुनानक सुप्रसिद्ध महात्मा थे। वे एक बहुत बड़े वर्चस्वशाली संत थे। एक बार वे तलवंडी से कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने किसी भवन पर सात झंडे लगे हुए देखे। जिज्ञासा जागृत हुई। उन्होंने अपने शिष्यों से पूछते हुए कहा—'यह प्रासाद किसका है? इस पर जो ये सात झंडे लग रहे हैं, इसका क्या कारण है?'

शिष्यों ने करबद्ध होकर कहा—'गुरुदेव! वैभवशाली सेठ की यह कोठी है। जब इसके पास एक लाख की सम्पत्ति अर्जित हो जाती है, तब यह अपने मकान पर एक झंडी लगा देता है। वर्तमान में इसके भवन पर सात झंडियां फहरा रही हैं। प्रतीत होता है कि इसके पास सात लाख रुपयों की सम्पदा है, दिनोंदिन यह अहं के अश्व पर चढ़ता जा रहा है।'

गुरुनानक उनकी कोठी पर पहुंचे। दरवाजे पर खड़े हैं। मालिक को पता लगते ही वह नीचे आया और विनम्र शब्दों में गुरुनानक से प्रार्थना करता हुआ बोला—'आप यहां पर क्यों खड़े हैं? कृपया ऊपर पधारिये।'

गुरुनानक देव ने कहा—'अभी समय नहीं है। काफी दूर जाना है। हमारे पास एक सोने की सूई है। रास्ते में भय है डाकुओं का। अतः इस सूई को आप अपने पास सुरक्षित रख लीजिए। इस सूई को आप हमें वापस अगले जन्म में देवलोक में दे देना।'

सेठ के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा। कोमल भाषा में हाथ जोड़कर बोला—'आप ऐसे कैसे बोल रहे हैं। परलोक में तो मैं तनिक भी साथ नहीं ले जा सकता। सब यहां का यहीं रह जायेगा।'

तब गुरुनानक ने कहा—'जब आप सात लाख की सम्पति को साथ ले जा सकते हैं तो मेरी इस सूई में क्या वजन है? इसे भी साथ ले जाना।'

यह सुनते ही उसे वास्तविक ज्ञान हुआ। अन्तर की आंखें खुलीं। अहं का नाश खत्म हुआ। निवेदन करते हुए कहा—पूज्यवर! आपने मुझे सही रास्ता बताया। मैं नहीं भूल सकता आपके उपकार को।'

जो आता है, वह जाता है, मानव किसी भी पदार्थ को साथ नहीं ले जा सकता। जो खाली हाथ आते हैं वे खाली हाथ जाते हैं।

गुरुनानक की सीख से, घट में हुआ प्रकाश।
अन्तर की आंखें खुलीं, हुआ तिमिर का नाश॥

माया के बाजार में

नगरी का राजा बहुत ही बुद्धिमान था। विवेकशील था। हर कार्य चिन्तनपूर्वक करता था। संतान नहीं होने से ऐसे-वैसे व्यक्ति को राज्य देना नहीं चाहता था। वह किसी विवेकशील और प्रज्ञाशील मानव की खोज में चल पड़ा। आखिर उसनें एक कला सोची, नृप की ओर से राजमहल के सन्निकट भाग में 'मायाबाजार' की व्यवस्था की गई। उस बाजार में इन्द्रियाकर्षक व मन को सम्मोहित करने वाली चीजें रखवा दी गईं। जिससे हर एक मानव विमूढ़ हुए बगैर न रह सके, नरपति ने सारे शहर में घोषणा करवा दी कि मायाबाजार में होता हुआ सातवें दिन सबसे पहले जो व्यक्ति मेरे पास आयेगा उसे मैं राज्य का भार सौंप दूंगा।

मायाबाजार की हर वस्तु का उपयोग हर एक व्यक्ति यथेच्छ कर सकता है। किसी भी प्रकार के शुल्क की अपेक्षा नहीं है। लोग आने लगे, भौतिकता के प्रति सब में सहज आकर्षण होता ही है। मायाबाजार के मायाजाल में फंसने लगे। लोगों ने सोचा। अभी क्या जल्दी है! सातवें दिन चले जायेंगे, राज्य उपलब्धि हो जाएगी। पहले मायाबाजार की वस्तुओं का उपभोग कर लें! मनमोहक पदार्थों में लुब्ध हो गये। भोगों में आसक्ति बढ़ी। स्व-कर्तव्य को भी भूल गये। सातवें दिन राजा के पास पहुंचना है, किसी को भी याद नहीं रहा।

उसी नगर में एक चिन्तनशील व्यक्ति रहता था। उसने सोचा—अगर मैं राज्य का मालिक बन गया तो ये सारी भोग सामग्रियां मुझे सहज ही में मिल सकती हैं। चेतना जागृत हुई, इन्द्रियों का चापल्य मिटा। वह व्यक्ति मायाबाजार होता हुआ अपने निर्णीत स्थल पर जा पहुंचा। राजा ने उसका स्वागत किया। सुकोमल शब्दों में वह बोला—'तुम्हारे जैसा निर्लिप्त और अनासक्त मानव ही राज्य का अधिकारी बन सकता है। यह लो राज्य का नया उपहार।'

संसार मायाबाजार के तुल्य है। राजा के समान आत्मा है। सातवें दिन आत्मा के पास पहुंचने के लिए मायाबाजार के भौतिक अशाश्वत सुखों में नहीं डूबना है। मुग्ध नहीं होना है। अन्तर्मुखी व्यक्ति ही आत्म-निर्देशन में सफल हो सकता है।

मायावी बाजार में, जो रखता आसक्ति।
मिल सकता उसको नहीं, राज्य भार अभिव्यक्ति॥

पुरुषार्थी

एक व्यक्ति बहुत ही पुरुषार्थी था। उद्यमी था। आलस्य को अपना शत्रु समझता था। वह गांव-गांव में घूमता ही रहता था। लोगों को सही मार्ग दिखाना उसका

कार्य था। वह एक गांव में गया। निरीक्षण किया। सब सुखी हैं। आनन्दित हैं। किसी भी प्रकार की वहां कमी नहीं है। पहाड़ के पीछे एक दूसरा गांव था, वहाँ गया। लोगों का जीवन पढ़ा, देखा। सबके चेहरे पर विषाद की रेखा। निराशा की झलक, उसने पूछा— क्या बात है ? इतनी व्यथा क्यों ?'

लोगों ने कहा—'हम सब पानी के अभाव में पीड़ित हैं, व्यथित हैं। खेती सूख रही है, पशु मर रहे हैं।'

उस व्यक्ति ने कहा— 'इस पहाड़ी के पीछे पानी बहुत है। आप सब ऐसा करें कि मैं तो मंत्र पढूंगा, आप सब यंत्रों से पहाड़ को खोदें। अवश्य ही हमें सफलता मिलेगी। वर्षों की दुविधा खत्म हो जाएगी।'

सब काम में जुट गये। मन में बड़ा उत्साह। चेहरे पर आशा की झलक। दृढ़ संकल्प। मंत्रोच्चारण का कार्य चलता ही था। धीरे-धीरे पहाड़ में सुरंग बन गई और वह पानी के किनारे तक पहुंच गई। स्वप्न साकार होने लगा। निर्मल जल का स्रोत बहने लगा। सबकी आकृतियों पर प्रसन्नता की लहर दौड़ने लग गई। सबको मनचाहा पानी मिला। जीवन मिला। मंगलगान की झंकार से सारा गांव झंकृत हो उठा। सबने उस पुरुषार्थी व्यक्ति का स्वागत किया—'आप नहीं आते तो हम पानी के बिना तरसते ही रह जाते। अच्छा योग मिला।'

जो व्यक्ति पुरुषार्थी होता है वह प्रत्येक क्षेत्र में सफल होता है। 'उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः' उद्यम से ही सिद्धि उपलब्ध होती है। इसलिए हर एक को पुरुषार्थ कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।

जीवन में सुखकर सतत, होता है पुरुषार्थ।
'मुनि कन्हैया' उद्यमी, पाता सिद्धि यथार्थ।।

विनय की अपूर्व शक्ति

एक कालीन परिवार था। सबमें बहुत अच्छी एकता थी। संगठन था। घर में अनेकों सदस्य थे। सारा परिवार विनयशील था। आपस में कभी भी तनाव वैम-नस्य नहीं होता था। घर का वातावरण बड़ा शान्त रहता था। सारे नगर मे पारि-वारिक संगठन की अनुपम महिमा थी। अच्छी प्रतिष्ठा थी। एक विज्ञ पत्रकार वहां पर आया। दरवाजे में प्रवेश करते ही एक व्यक्ति से भेंट हुई। पत्रकार ने कहा—'बन्धुवर ! मैं आपके परिवार के विषय में कुछ जानकारी करने के लिए आया हूं कि आपका इतना बड़ा परिवार एक साथ कैसे रहता है ?'

उसने कहा—'आप अन्दर चले जाइये, मेरे पिताजी वहां हैं। पूछ लीजिए। समाधान मिल जायेगा।'

पत्रकार अन्दर गया। पिताजी को नमस्कार किया। उसी प्रश्न को प्रस्तुत करते हुए कहा—'कृपया समाधान दीजिए।'

पिताजी ने कहा—'मेरे पिताजी ऊपर हैं। आप वहां चले जाइए। समाधान अवश्य मिलेगा।' पत्रकार ऊपर पहुंचा। उच्च आसन पर संस्थित महामानव को निवेदन की भाषा में उसने कहा—'बाबाजी ! मेरा छोटा-सा प्रश्न है कि आपका इतना विशाल परिवार सारा एक साथ मे रहता है, बड़ा प्रेम है। इसका क्या रहस्य है ? पत्रकार के नाते मेरी यह छोटी-सी जिज्ञासा है। कृपया शान्त कीजिए।'

बाबाजी ने एक पत्र पर सौ बार 'विनय' व 'सहनशीलता' लिखकर दिया।

पत्रकार ने पूछा—'सौ बार आपने क्यों लिखा ?'

उस वृद्ध ने कहा—'मेरे परिवार में सौ सदस्य हैं इसलिए सौ बार लिखता हूं। सबमें विनय सहिष्णुता है। दरवाजे पर मेरे पौत्र ने कहा—'पिताजी अन्दर हैं, समाधान मिल जायेगा। पिता ने भी सीधा आपको मेरे पास पहुंचा दिया। आप समझ गये होंगे रहस्य को। मेरे परिवार में बड़ों के प्रति इतना विनय है कि वे स्वयं किसी का उत्तर नहीं देते। प्रश्नकर्त्ता को बड़ों के पास भेज देते हैं। परिवार के सभी सदस्यों में सहिष्णुता और विनय के भाव बहुत गहरे भरे हुए हैं। इसका नमूना आपने देख ही लिया। नम्रता और सहिष्णुता के कारण सारे परिवार में एकता है। संप है। प्रेम है। यही सुख का अनुपम साधन है।'

प्रश्न का समाधान सुनकर पत्रकार बड़ा खुश हुआ। हाथ जोड़कर प्रशंसा करते हुए कहा—'हे महामानव ! धन्य है आपकी सूक्ष्म बुद्धि को ! धन्य है आपके धैर्य को ! पुनः पुनः अभिवंदना।'

संसार में विनय और सहिष्णुता ये दोनों बहुत बड़े गुण हैं। इन गुणों से जो व्यक्ति अलंकृत होता है, वह हर क्षेत्र में पूजा और प्रतिष्ठा का पात्र बनता है।

सहनशीलता नम्रता, सद्गुण भव्य प्रधान।
'मुनि कन्हैया' ऐक्य का, है यह हेतु महान॥

गुणग्राही

एक वर्चस्वशाली गुरु थे। उनके दो शिष्य थे। दोनों में परस्पर विवाद खड़ा हो गया। एक शिष्य ने दूसरे शिष्य से कहा—'मैंने गुरुजी की सेवा तुमसे ज्यादा की है। इसलिए मैं तुमसे श्रेष्ठ हूं। महान हूं।' दूसरे शिष्य ने कहा—'तुम जो कह रहे हो, बिलकुल असत्य है। मैंने तुमसे अधिक सेवा की है गुरुदेव की। मेरे पर जो कृपा गुरुवर की है, वह तुम पर नहीं है। इस दृष्टि से मैं सबसे बड़ा हूं। तुम झूठा अहं कर रहे हो।'

आपस में ऐसे वाद-विवाद होने लगा। अपनी-अपनी बात दोनों ने गुरु के समक्ष रखी। गुरु ने सारा वाद-विवाद सुनकर उनसे कहा—'तुम एक दूसरे के गुण लिखकर लाओ।' दोनों अपने-अपने कक्ष में गये। चिन्तन करने लगे। दोनों ने विस्तार से एक-दूसरे के गुणों को लिखना प्रारम्भ किया। आखिर दोनों गुरुजी के पास पहुंचे। गुरु ने पूछा—'क्या लिखकर लाये हो?' दोनों शिष्यों ने अपना-अपना लिखा हुआ भेंट किया। गुरु ने पढ़ा। दोनों में एक-दूसरे के गुणों का वर्णन था। गुरु का दिल प्रमुदित हुआ। मधुर कोमल शब्दों में गुरु ने कहा—'अब तुम दोनों ही श्रेष्ठ हो। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में परिवर्तन आ गया।'

हर इंसान में गुण-अवगुण होते हैं। हमारा दृष्टिकोण गुणों की ओर होना चाहिए। गुणग्राही मानव हमेशा गुणों को झांकता है। जहां अच्छाई होती है, वहां उसकी नजर अपने आप चली जाती है।

गुणग्राही नर जगत में, कहलाता है श्रेष्ठ।
दृष्टि रखो गुण पर सदा, बनना हो यदि ज्येष्ठ॥

भेद-भाव से अवनति

शिष्य और गुरु ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए किसी नगर में पधार रहे थे। मार्ग में नृत्य हो रहा था। ताल, वाद्य, मृदंग आदि की ध्वनि जन-जन को आकर्षित कर रही थी। शिष्य ने गुरु से प्रश्न करते हुए कहा—'गुरुदेव! यह मृदंग 'धिक्तान् धिक्तान्' क्यों कर रहा है? इसके पीछे क्या रहस्य है?'

गुरु ने जिज्ञासा का समाधान देते हुए कहा—'शिष्य! जो व्यक्ति कुरान और पुरान में, राम और रहीम में, वीर और बुद्ध में भेदभाव रखते हैं, मताग्रह में कृत्या-कृत्य को जो भूल जाते हैं, साम्प्रदायिक मोह के कारण जो अन्य सम्प्रदायों को घृणित दृष्टि से निहारते हैं, एक-दूसरे की निन्दा करते हैं, मन-मुटाव रखते हैं, उन सब महानुभावों को यह मृदंग अपनी भाषा में बड़े उच्चस्वर से ललकारता हुआ कह रहा है—

मृदंगोऽवदत् धीर गंभीर घोषैः,
पुराणे कुराने च रामे रहीमे।
यदीयान्तरे वर्त्तते भेदभावः,
धिक्तान् धिक्तान् धिक्तान् धिगेतान्॥

जो मानव भेदभाव रखते हैं उन सबको यह मृदंग धिक्कार देता रहता है। वास्तव में भेद दृष्टि ही समाज को अवनति की ओर ढकेलने वाली होती है। अभेद दृष्टि ही मानव को उन्नति की ओर अग्रसर करने वाली सिद्ध हुई है।

समाधान मिलते ही शिष्य बहुत ही प्रसन्न हुआ और करबद्ध बोला—'गुरुदेव ! धन्य है आपकी बुद्धि को ! धन्य है आपकी पटुता को ! आपकी कल्पना वास्तव में बहुत ही प्रशंसनीय है।'

मृदंग की ललकार से हर एक को शिक्षा लेनी चाहिए। सभी सम्प्रदायों के प्रति भेद-दृष्टि न रखकर अभेद दृष्टि रखने में लाभ है। हित है।

मृदंग की उद्घोषणा, सुन करके साकार।
भेदभाव की दृष्टि का, करना है परिहार।।

अनुभव के साथ विद्वता

काशी में अध्ययन करके पंडित ज्वालाप्रसादजी अपने नगर के लिए रवाना हुए। मार्ग में एक गांव आ गया। वहां पर एक ज्ञानीराम पंडित रहता था। उसने पूछा—'आप कहां से आ रहे हैं ?'

ज्वालाप्रसाद बोला—'मैं काशी से बारह वर्षों तक अध्ययन करके आया हूं।'

वह बोला—'मेरे साथ चर्चा करनी पड़ेगी, अन्यथा आपको जाने नहीं दूंगा। करिए शास्त्रार्थ।' ज्ञानीराम ने कहा—'तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है जी, तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है। दीजिए इस प्रश्न का उत्तर।'

पंडित ज्वालाप्रसाद घबरा गया। उत्तर नहीं आने से उसकी हार हो गयी। सारी पुस्तकें छीन ली गयीं।

वह व्यथितमना, अपने घर पहुंचा। पिताजी को नमस्कार किया। 'पुत्र ! उदासी क्यों ?'

ज्वालाप्रसाद बोला—'पिताजी, शास्त्रार्थ में पराजित हो गया। पुस्तकें भी चली गयीं।'

सारी कहानी सुनायी।

पिता बोला—'पुत्र ! ऐसे अनाड़ी पंडित के साथ मैं चर्चा करूंगा।'

वह चला उस पंडित से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। गांव वाला पंडित बोला—'तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है जी, तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है।'

वह क्रोधारुण होकर दो चांटे लगाकर बोला—'मूर्ख ! बीच के सारे पाठ खा गया, शास्त्रार्थ करना जनता ही नहीं है सुन ! मेरी बात, सबसे पहले खेत होता है।

(१) खेतस खेतस खेता है जी, खेतस-खेतस खेता है।
(२) मेहस-मेहस मेहा है जी, मेहस-मेहस मेहा है।
(३) बीजस-बीजस बीजा है जी, बीजस-बीजस बीजा है।
(४) उगस-उगस उगा है जी, उगस-उगस उगा है।

(५) बेलस-बेलस बेला है जी, बेलस-बेलस बेला है।
(६) फूलस-फूलस फूला है जी, फूलस-फूलस फूला है।
(७) अब तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है जी, तुम्बक-तुम्बक तुम्बा है।

यह सुनते ही वह अवाक् रह गया, सिर झुक गया और लज्जित होकर बोला—'मेरी हार हो गयी, आज तक मुझे हराने वाला कोई नहीं आया, धन्य है आपके बुद्धि नैपुण्य को, धन्य है आपके चातुर्य को !'

सारी पुस्तकें लेकर वह अपने गांव पहुंचा और पुत्र को विजय का कारण बतलाया।

जिस व्यक्ति की बुद्धि अनुपम होती है वह मानव हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है, बुद्धि के साथ-साथ अनुभव भी कामयाब होता है, अनुभव के अभाव में केवल विद्वता काम नहीं आती। विद्वता के साथ अनुभव परम आवश्यक है। राजस्थानी कहावत है—'पढ्योड़े रे सागै कढ्योडो चाहिजे।'

गहरा अनुभव चाहिए, विद्वता के साथ।
'मुनि कन्हैया' सफलता, मिलती हाथों-हाथ ॥

घड़ा कैसे बना ?

घड़े ने कवि से कहा—'मान्यवर ! आज आप मेरी गौरव-गाथा गा रहे हैं। दुनिया मुझे सिर पर रखती है। आपको संभवतः पता नहीं है, मुझे किन-किन कष्टों का सामना करना पड़ा है। सुनिये मेरी कहानी—

सबसे पहले मैंने अपने कुल का परित्याग किया। फिर मुझे गधे पर बिठाया। पीट-पीटकर सीधा किया गया। चाक पर चढ़ा। शीश को काटकर धरा पर रखा गया। शीत और धूप को सहना पड़ा। अवाड़े में रखा गया। फिर मुझे बाहर निकाला गया। मेरे रूप में परिवर्तन हुआ। आकृति निखरी। मुझे खरीदने के लिए ग्राहक आये। मुझे ठोक-ठोककर बजा-बजाकर परीक्षापूर्वक खरीदा गया।

इतने भयंकर-भयंकर कष्टों के सामने भी मैंने अपनी सहनशीलता का परित्याग नहीं किया। सब भूचालों को प्रमुदित मना सहा, कुछ नहीं कहा किसी को। गम खाई। चुप रहा। तब जाकर जन-जन के मस्तक पर चढ़ा। बैठा। यह है मेरी तपस्या का अनुपम फल।'

कवि ने कविता में आंकते हुए लिखा है—

पहले तो हम कुल तज्यो, रासभ हुए सवार।
कूट पीट सीधो कियो, दियो चाक पर डार ॥
शीश काट भूपे धर्यो, सह्यो शीत अरु धूप।
तोक अवाड़े फिर कियो, निकल्यो रूप अनूप ॥

धनी ग्राहक दोनों मिले, लीन्हा ठोक बजाय ।
इतना संकट मैं सह्या, चढ़ा शीश पर आय ।।

जो व्यक्ति कष्टों को चीरकर आगे बढ़ता है, वही महापुरुष बनता है। पूज्य कहलाता है। सहिष्णुता जीवन की अमूल्य सम्पदा है। निधि है। सहनशीलता रखने वाला मानव कभी भी पराजित नहीं हो सकता। हर क्षेत्र में उसकी विजय होती है।

सहिष्णुता के योग से, घड़ा चढ़ा है शीश।
गम खाओ हर समय में, तजकर दिल की टीस ।।

अवसर की मौन

एक बुढ़िया थी। घर में चोर आया। घबराई। अब क्या होगा? दिल धड़कने लगा। श्वास की गति तेज हो गई। बुढ़िया के पास लाखों रुपयों की सम्पदा थी। शोर सुनकर अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे हो गये। लोगों ने पूछा—'बुढ़िया ! कौन है? क्या बात है?'

बुढ़िया बोली—'वीरा ! मुझे क्या पता कौन है? कौन नहीं। ऊपर का राम जानता है।'

उन चोरों में से जो राम नाम का चोर था, वह ऊपर छिपा हुआ था। बुढ़िया की बात सुनकर वह घबराया। उसने मन ही मन सोचा—मेरे नाम का पता बुढ़िया को लग गया, इसलिए यह जोर से बोल रही है, मैं पकड़ा जाऊंगा। उससे रहा नहीं गया, जोर से बोल पड़ा—

'राम की बलाय जाणै, जाणै चौधरी ओटो।
जिणरै खांधै ऊपर जेवडो ने, माथे ऊपर कोठो' ।।

यह तुक्का सुनते ही चौधरी ओटा उधेड़-बुन में पड़ गया। अब तो मैं पकड़ा जाऊंगा। उससे भी रहा नहीं गया। अपनी सुरक्षा हेतु वह भी एक दोहा बोल पड़ा—

'ओटे री बलाय जाणै, जाणै खाती पांचो।
जिण रै खांधे ऊपर बसोलो नै, माथे ऊपर मांचो' ।।

यह सुनते ही सुतार पांचा चमका। उसने सोचा अब तो बिना मौत मरना पड़ेगा। विवेकहीनता की भी सीमा नहीं रही किन्तु मुझे तो अपना बचाव करना चाहिए। उससे भी रहा नहीं गया। गीत गाना प्रारम्भ कर दिया—

'पांचे री बलाय जाणै, जाणै बाणियो जीवो।
जिण रै खाख मांहि पागड़ी, माथे ऊपर दीवो ।।'

इन सबकी बातें सुनकर बुढ़िया ने सोचा यह क्या कुतूहल ! कौन बोल रहे हैं ? परिवार वालों को जगाया गया। आखिर चारों चोर पकड़े गये। हाय ! बोले ही क्यों ? राजा के सामने पेश किये गये। चारों को मत्यु-दण्ड हुआ।

जो व्यक्ति अवसर को देखे बिना बोल पड़ते हैं, उनकी जबान का तनिक भी महत्त्व नहीं है। अन्ततोगत्वा दुःख पाना ही पड़ता है। समय पर मौन रखने से बहुत बड़ा लाभ होता है। 'मौनं स्वार्थ साधकम्'।

अवसर को देखे बिना, बोल रहा जो व्यक्ति।
'मुनि कन्हैया' अन्ततो, निश्चित दुख अभिव्यक्ति ॥

कुत्ते का झूठा अहं

प्रोफसर साहब कॉलेज जा रहे थे। मार्ग मे एक कुत्ता मिला। वह प्रोफेसर साहब को इंगित करता हुआ बोला – 'मैं बड़ा जबरदस्त हूं। शक्तिशाली हूं। मेरे जैसा बलिष्ठ प्राणी संसार में नजर नहीं आ रहा है।'

प्रोफेसर बोला—'आप किस बात मे जबरदस्त हैं ?'

कुत्ता बोला—'मैं दुनिया को भौंकता हूं, लेकिन मुझे कोई नहीं भौंकता है, अतः मैं हर दृष्टि से समर्थ हूं।'

प्रोफेसर ने मुस्कराते हुए कहा—'भैया, कुक्करसिंह ! दुनिया आप जैसी नहीं है, इसलिए दुनिया आपको नहीं भौंकती है। आपको वही भौंकेगा जो आपके सदृश होगा। आप अपनी बहादुरी पर, विजय पर भले ही गर्व करें। किन्तु दुनिया आपको जानती है, आपकी क्या वृत्ति है ? आपका क्या स्वभाव है ?' प्रोफेसर साहब का उत्तर सुनते ही वह कुत्ता हताश हो गया। आशा निराशा में परिणत हो गई। घमण्ड पानी की भांति बह गया।

जो व्यक्ति अपने आपको बड़ा मानते है, अपनी जबान से अपनी श्लाघा व प्रशंसा करते हैं उनका कही भी सम्मान नही होता है। जो व्यक्ति कुछ नहीं चाहता है, उसे सब कुछ मिलता है। जिसमें तनिक भी गुण नही होता और अपने आपको महान समझता है, उसका कथन गगनकुसुम की भांति निष्फल होता है।

कुत्ता अपने गर्व पर रहता मद में मस्त।
सुनकर वार्ता विज्ञ की, पल में बना निरस्त ॥

शिक्षा के योग्य बनो

एक संन्यासी थे। बहुत ही उच्च कोटि का प्रवचन करते थे। एक बार किसी गृहस्थ के घर भिक्षार्थ गये। बहन ने नमस्कार करते हुए कहा—'हे गुरुदेव ! आज आप

मेरे घर पर पधारे हैं। यह आपकी दया भावना का ही परिणाम है। मैं आपक कृपावृष्टि को भूल नहीं सकती। आप मुझे उपदेश दें तो भिक्षा दूं, अन्यथा असंभव है।'

महात्माजी ने बहन की मनःस्थिति का अध्ययन किया। यह बहन उपदेश के योग्य नहीं है। मन में विकार भरे हुए हैं।

महात्माजी बाहर आये। कमंडल को कंकर-मिट्टी से भरकर पुनः घर में आये और बोले—'बहन ! पहले तुम भिक्षा दो उसके पश्चात् मैं तुमको शिक्षा देने का प्रयास करूंगा।'

बहन ने उस दिन खीर मालपुआ बनाये थे। बहन भिक्षा देने लगी। महात्माजी ने अपना कमंडल सामने रखा तो बहन विस्मय में पड़ गई। मिट्टी और कंकड़ देखा। हाथ रुक गया। संन्यासी ने कहा—'बहन ! क्या बात है ? दान देते-देते कैसे रुक गई ?'

उसने कहा—'गुरुराज ! आपके कमंडल में तो मिट्टी भरी हुई है। मेरी खाद्य सामग्री उच्च स्तर की है। स्वादिष्ट पकवान है। कैसे डाल सकती हूं ?'

महात्माजी ने कहा—'बहन ! मेरी बात समझ में आ गई ? जरा गहराई से सोचो। कमंडल में मिट्टी-कंकड़ देखकर खीर डालने में हिचकिचाहट कर रही हो, कुछ चिन्तन करो। तुम्हारा दिमाग अनेकों वर्षों से क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कंकड़-मिट्टी से भरा हुआ है। ऐसों को उपदेश देना, शिक्षा देना, राख में घृत उडेलना है। इसलिए सबसे पहले मानसिक विकारों को दूर कर पवित्र बनो। तभी तुम शिक्षा के योग्य पात्र बन सकती हो, अन्यथा नहीं।'

दूर करो मस्तिष्क से, कंकड़ रूप विकार।
बन जाओगे सहज में, शिक्षा पात्र उदार॥

जैसा संग

एक जंगल में दो तोते रहते थे। दोनों सहोदर थे। दोनों में अच्छा सौहार्द था। एक साथ दोनों पले-पुसे थे। दोनों का स्वभाव बहुत ही समीचीन व शालीन था। दोनों मुक्त विहरण करते हुए आनन्द के पारावार में डुबकियां लगा रहे थे। अचानक वहां डाकू आ गये। एक तोते को लेकर वे दौड़ गये। एक तोते को ऋषि अपने आश्रम में ले गये। एक तोता तो डाकू की कुसंगति से डाकू-सा व्यवहार करने लग गया। कोई भी व्यक्ति उस रास्ते से जाता है, वह तोता बोलता है—'इसे पकड़ो, लूटो।'

एक दिन उसी मार्ग से नगर सम्राट का आगमन हुआ। वह तोता जोर से

बोल पड़ा—'चोर जा रहा है, पकड़ो! लूटो! ऐसा अवसर बार-बार नहीं आयेगा।'

वह दूसरा तोता ऋषियों की देख-रेख में पल रहा है, बड़ा हो रहा है। ऋषियों की भांति शालीन एवं शिष्ट शब्दों का व्यवहार करता है। कोई भी मुसाफिर तथा मेहमान उस मार्ग से आता है तो वह समागत व्यक्तियों का सम्मान एवं सत्कार करता है। उच्च स्वर में पुकारता हुआ अपनी मृदु भाषा में बोलता है—'आओ सा, पधारो सा, भाग्यशाली पुरुषों के घर पर ही मेहमान पधारते हैं। आइए, विराजिये।'

एक दिन उसी मार्ग से राजाजी का आगमन हो गया। राजा ने तोते की कोमल वाणी सुनकर बहुत ही आश्चर्य प्रकट किया। यह क्या बात! उस तोते की भाषा में कर्कशता और इस तोते की भाषा में इतनी कोमलता। यह अन्तर क्यों पड़ा? आखिर राजा ने पूछ ही लिया। तोता अपनी भाषा में स्पष्ट करता हुआ बोला—

मताप्येको पिताप्येको, मम तस्य च पक्षिणः।
अहं मुनिभिरानीतो, सोऽत्रानीतो गवाशनैः॥

—हम दोनों के माता-पिता एक हैं। मुझे मुनिवर ले गये और मेरे उस सहोदर को डाकू ले गए।

गवाशनानां स वचः शृणोति, अहं च राजन्! मुनिपुंगवानां।
प्रत्यक्षमेतद् भवतापि दृष्टा, संसर्गजा-दोष गुणाः भवन्ति॥

—उसने चोरों के शब्द सुने और मैंने मुनिजनों के। आपने देख ही लिया जिसको जैसा योग मिला, वह वैसा ही बन गया। संसर्ग से गुण भी दोष हो जाते हैं।'

हर एक इंसान को संगति का ध्यान रखना चाहिए। जिसको जैसा संग मिलता है, वह वैसा ही बन जाता है।

'मुनि कन्हैया' जगत में, मिलता जैसा संग।
वैसा ही उस मनुज पर, चढ़ जाता है रंग॥

ज्ञान का महत्त्व

एक करोड़पति सेठ था। व्यापार में नुकसान लगा। रहने के लिए केवल एक मकान बचा। मकान की दूसरी मंजिल पर एक वकील परिवार सहित रहता था। वकील की पत्नी के गले में हार देखकर सेठानी ईर्ष्या करने लगी। सेठजी से निवेदन करती हुई बोली—'मुझे हार मंगा दीजिए। जब तक घर में हार नहीं आयेगा, तब तक भोजन नहीं करूंगी। आखिर कुएं में गिरकर मर जाऊंगी।'

सेठ बड़ा चतुर था। चिंतन व मनन करके आखिर उसने पीतल पर सोने का झोल चढ़ाकर सेठानी को दे दिया। सेठानी बहुत ही खुश हुई। हार मिल गया पहनने को।

वहां पर एक किरायेदार रहता था। सेठजी उसे निकालना चाहते थे किन्तु वह निकल ही नहीं रहा था। एक दिन का किस्सा है, किरायेदार की नजर सेठानी के हार पर पड़ी, उसके विचार मलिन हुए। कभी-न-कभी इस हार को चुराकर यहां से भाग जाना है।

सेठानी स्नान-गृह में स्नानार्थ गयी। वहां हार भूल गयी। किरायेदार उस हार को लेकर दौड़ गया। सेठानी ने खोज की परन्तु हार नहीं मिला। सेठानी उदास हो गयी। सेठ खुश हुआ। अच्छा हुआ, कमरे का पांच रुपया मासिक देनेवाला भाग गया। अब कमरे का पचास रुपया मासिक आयेगा। हार तो केवल तीस ही रुपयों का था, मुझे तो लाभ ही हुआ है। लेकिन सेठानी को इसका ज्ञान नहीं था। अज्ञानवश वह चिंतामग्न व चिंतातुर हो विषाद करने लगी। सेठजी प्रसन्न मुद्रा में इसलिए खुश थे कि उनको सबका ज्ञान था।

ज्ञान का महत्त्व सर्वत्र सन्निहित है। ज्ञान बिना अंधेरा है। सम्यक् ज्ञान के माध्यम से मानव अपना चतुर्मुखी विकास कर सकता है।

हर ग्रन्थों में ज्ञान का मिलता अमित महत्त्व।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान बिन, मिले न गहरा तत्त्व ।।

जग की विचित्रता

एक ठाकुर था। उसकी धर्मपत्नी का नाम लीलावती था। दोनों में अच्छा प्रेम था। एक-दूसरे के बिना कोई भी अकेला नहीं रह सकता था। एक दिन ठाकुर साहब ने कहा—"लीला ! मुझे गांव जाना है। तू अच्छी तरह से रहना।'

लीला ने कहा—'पतिदेव ! आपके बिना मेरा मन नहीं लगेगा। नींद भी नहीं आयेगी। खाना भी स्वादिष्ट नहीं लगेगा।'

आखिर ज्यों-त्यों समझाकर वह कमरे में छिप गया और लीला की विचित्र लीला देखने लगा। ठकुरानी ने नौकर से कहा—'ठाकुर गया गांव, मनें नहीं भावै धान' जोर-जोर से ऐसी रट लगाती-लगाती गन्ना चूसने लगी। घी, खिचड़ी और दाल-बाटी का स्वाद भी लेने लगी। मक्की के फुले भी तैयार किये। अच्छी तरह खा-पीकर डांट लगाकर आंगण में बैठी-बैठी फिर जोर से बोली—'ठाकुर गया, गांव, मनें न भावै धान।'

इतने में ही मौका देखकर ठाकुर अचानक कमरे से बाहर आया और बोला—

'लीला ! तेरा अहो भाग्य है, तेरा सुहाग अमर रहना ही था। आज तो मार्ग में एक भयंकर गन्ने जैसा बड़ा सर्प खेत में चल रहा था, मानो खिचड़ी में घृत की धारा बह चली हो। उस सर्प का फण बड़ी-बड़ी बाटी जैसा प्रतीत हो रहा था। उसके शरीर में तन-तनाहट मानो मक्की के फूले सिक रहे हों। भगवान की कृपा से मैं तो बाल-बाल बच गया, अन्यथा तुझे कोने में बैठना ही पड़ता।'

ठकुरानी ठाकुर की बात समझ गयी और पैरों में गिर पड़ी, हाथ जोड़कर बोली—'मुझसे गलती हो गयी।'

ठाकुर बोला—'देख लिया मैंने तेरा दिखावटी प्रेम। केवल नकली बातें, नकली प्यार। कमरे में बैठा-बैठा तेरी लीला निहार रहा था।'

ठकुरानी का सिर लज्जा से झुक गया। जबान बंद हो गयी।

संसार में सच्चा प्रेम निभाने वाले विरले ही मिलेंगे। सब मतलब के साथी हैं। ढोंग है ज्यादा, और असलियत है कम। इस स्वार्थ भरे जगत की विचित्र लीला देखकर अध्यात्म में रमण करना ही मानव का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

स्वार्थ भरे संसार की, लीला देख विचित्र।
'मुनि कन्हैया' धर्म में, करना गमन पवित्र॥

नीति का पक्ष

सेठ सत्यवादी व सज्जन था। उसका पुत्र कुसंग से चोर बन गया। चोरी करने के लिए वह शहर में निरन्तर जाता था। चोर पकड़ा गया। चालाकी से उसने बचने की कोशिश की। राजा के सामने हाजिर किया गया। राजा ने कहा—'यदि इसके पिताजी साक्षी दें तो मैं इसे छोड़ सकता हूं, अन्यथा नहीं।'

पुत्र ने पिताजी को निवेदन की भाषा में कहा—'पितृवर ! क्या आप मुझे मारोगे ?'

पिताजी ने कहा—'बेटा ! पिता कभी नहीं चाहता पुत्र-मृत्यु। तुझे मरवाने वाला मैं नहीं हूं। तुझे तेरा व्यसन मार रहा है। अतः आत्म-निरीक्षण कर। चिन्तन कर।'

पिता के प्रशिक्षण का पुत्र पर बहुत ही असर हुआ। विवेक जागृत हुआ दिल को टटोला। भान हुआ, करबद्ध बोला—'पिताजी ! अब मैं भविष्य में कभी भी चोरी नहीं करूंगा। यमराज के घर से बचाइए। आप मेरे परम उपकारी हैं।' पिता की साक्षी होते ही पुत्र मरता-मरता बच गया।

राजा ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'पिता ऐसा नीतिवान होना चाहिए। पुत्र का सुधार और बिगाड़ पिता पर आधारित है।'

पुत्र समग्र व्यसनों से मुक्त हुआ। सत्यवादी बना, सारे शहर में पिता के साथ-साथ पुत्र की भी बड़ी प्रशंसा होने लगी।

जो व्यक्ति न्याय व नीति का पक्षपाती होता है, उसका हर क्षेत्र में विश्वास बढ़ता है। जनता उसे उच्च दृष्टि से निहारती है। सफलता उसके पीछे-पीछे दौड़ती है। अतः हर व्यक्ति को न्याय का पक्षपाती रहना चाहिए। सत्य बोलने से जो लाभ होता है, वह किसी से भी छिपा हुआ नहीं है।

जग में लेता जो मनुज, न्याय नीति का पक्ष।
उसका गौरव हर समय, बढ़ता है प्रत्यक्ष॥

सत्य की शक्ति

एक व्यापारी था। वह बहुत ही ईमानदार व सत्यनिष्ठ था। नगर में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि नगर में कोई भी व्यापारी आता है—उसका माल यदि नहीं बिकता है तो मैं उसे अवश्य खरीदूंगा।

एक दिन एक व्यापारी आया। उसके पास बहुत माल था। बिक गया, ओघस्या और सुदशा दो पुतलियां थीं। सुदशा तो बिक गयी किन्तु ओघस्या को कोई भी खरीदना नहीं चाहता था।

आखिर वह व्यापारी उस सेठ के पास पहुंचा और बोला—'सेठ साहब! आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हैं। तो यह मेरी पुतली बिक नहीं रही है। कृपया आप खरीदें।'

वह अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था। पुतली खरीदी, घर में उस ओघस्या (फूट) का प्रवेश होते ही लक्ष्मी दौड़ गयी। सत्य भी जाने के लिए तैयार हो गया। सेठ बोला—'हे सत्य! मैंने तेरे लिए सबको छोड़ा, आज तू ही मुझे छोड़कर जा रहा है। यह उचित नहीं है। मुझे भरोसा था कि तू तो मुझे धोखा नहीं देगा।'

सेठजी के तीर सत्य के हृदय में चुभ गये। और सत्य बोला—सेठ साहब! आपकी दृढ़ता और मजबूती देखकर मैं प्रसन्न हूं। आपकी आत्मीयता मुझे आकर्षित कर रही है। अब मैं सान्निध्य छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊंगा।'

सत्य का चिरवास होते ही लक्ष्मी भी दौड़ी-दौड़ी वापस आ गयी। सेठ की अभिलाषा पूर्ण हुई। घर में आनन्द से रहने लगा।

जो व्यक्ति सत्य को नहीं छोड़ता, उसकी विजय सुनिश्चित है। जहां सत्य है, वहां सब कुछ है। सत्य जीवन की निधि है।

हर ग्रन्थों में सत्य की, महिमा है सर्वत्र।
'मुनि कन्हैया' सत्य से, मिलता सौख्य पवित्र॥

संकट में सहायक

फ्रांस देश के एक स्कूल में बहुत से विद्यार्थी अध्ययन करते थे। अध्यापक ने एक दिन छात्रों को प्रशिक्षण देते हुए कहा—'छात्रो ! स्कूल में शान से रहना है। कोई भी यदि बदमाशी करेगा तो सजा दी जायेगी।' फ्रांसिस और एलगिन नाम के दो मित्र वहां पर पढ़ते थे। फ्रांसिस के हाथ से नक्शा फट गया। मास्टर ने पूछा, कोई नहीं बोला। आखिर, मास्टर ने कहा—'सबको बीस-बीस बेंत मारो।'

एलगिन ने सोचा, गलती तो है मित्र की और सजा सबको। यह उचित नहीं, वह जोर से बोला—'मास्टर साहब ! मैं अपराधी हूं। केवल मुझे यह सजा दी जाये, औरों को नहीं।'

जोर-जोर से बेंतें पड़ीं, किन्तु आंखों में आंसू भी नहीं आये—मुस्कराता रहा।

छुट्टी हुई, सब छात्र अपेने-अपने घर जाने लगे। एलगिन ने फ्रांसिस से कहा—'फिर ऐसा काम कभी मत करना।' उसके आंसू आ गये। दोनों की पढ़ाई पूरी हुई। कई वर्षों तक दोनों का मिलन नहीं हुआ। अब फ्रांस में फ्रांसिस सबसे बड़ा जज बना। बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में वर्षगांठ मनायी गयी। उसने अपने मित्र एलगिन को याद किया। मित्र-मिलन कब होगा ?

एक सिपाही ने कहा—'साहब ! एक डाकू को पकड़कर लाया हूं। डाकू को देखते ही वह रो पड़ा। जज साहब ने हथकड़ियां और बेड़ियां खुलवायीं। उसे अपने पास बैठाया। कोर्ट में मुकदमा चला। फ्रासिस ने फैसला देते हुए कहा—'अपराधी ने राज्य का भारी अपराध किया अतः मौत की सजा दी जाती है, लेकिन सात दिन की मोहलत दी जाती है कि बादशाह से छुटकारे की अपील की जाये।'

फ्रांसिस के न्याय पर सब आश्चर्य चकित रह गये। एलगिन भी हंस पड़ा। फ्रांसिस ने बादशाह के समक्ष इस्तीफा पेश किया। बादशाह ने पूछा—'क्या कारण ? किसलिए इस्तीफा दे रहे हो ?' उसने सारा हाल सुनाया, बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ। डाकू की रिहाई का आदेश दे दिया। इधर छह दिन पूर्ण हुए। सातवें दिन डाकू को फांसी के तख्ते पर खड़ा किया गया। बादशाह सहित वह दौड़ा-दौड़ा आया और रिहाई का हुक्म दिया। उस डाकू एलगिन को एक प्रांत का गवर्नर बना दिया। दोनों मित्रों के प्रेम में और अधिक अभिवृद्धि हुई।

मित्र ऐसा होना चाहिए जो कि संकट में भी सहायक हो। सुख-सम्पत्ति में सब साथी होते हैं, किन्तु दुःख-दुविधा में कोई किसी को पूछने वाला नहीं है।

सुख में साथी हैं सभी, नहीं दुःख में साथ।
दुःख में भी जो साथ दे, वही मित्र साक्षात् ॥

समझदार की सजगता

एक गांव में एक बाबा रहता था। सत्संग करता था। भजन भी सुनाता था। भेंट में कुछ रुपये इकट्ठे हो गए। उसने सोचा—रुपये इधर-उधर हो जायेंगे। सुरक्षा की दृष्टि से उसने रुपयों की मोहरें बना लीं। पचीस मोहरें हो गयीं। वह प्रतिदिन तालाब में स्नान करने के लिए जाता। साथ-साथ मोहरों को भी पानी से धोता।

उसी गांव में एक चौधरी रहता था। उसकी भैंस गुम हो गई। खोज करते-करते वह थक गया, किन्तु भैंस नहीं मिली। आखिर वह निराश होकर एक दिन तालाब के पास जो वृक्ष था उस पर चढ़ा। चारों तरफ नजर दौड़ाने लगा मगर भैंस दृष्टिगत नहीं हुई। इधर बाबा निरंतर की भांति तालाब में स्नान हेतु पहुंचा, मोहरों को भी स्नान कराने लगा। चौधरी की दृष्टि मोहरों पर पड़ी। चौधरी के हृदय मे मोहरों को हड़पने की भावना प्रकट हुई। वह पेड़ से नीचे उतरा। बाबा के पाप आया। हाथ जोड़कर निवेदन की भाषा में बोला—'बाबाजी महाराज ! आप कल का भोजन मेरे घर पर करने की कृपा करें।' बाबा की स्वीकृति हुई। बाबा भोजनार्थ पहुंचा। चौधरी ने हलवा बनाया। बाबा बोला—

'सीरो संतानैं सुखदाई, जिणमे दूणी खांड मिलाई।
थोड़ो और पुरस दे भाई, म्हार दांता री कच्चाई॥'

बाबा को फिर हलवा परोसा गया। इतने में चौधरी ने जोर से हल्ला किया—'मेरा मोहरों का बटवा कहां गया ?' जाटनी को कोसते हुए कहा—'तेरे पीहर वाले मेरा बटवा ले गये।'

क्यों, मेरे पीहर वालों पर झूठा आरोप दे रहे हो। मैं आपका तथा बाबा का संभाल लूंगी।'

बाबा ने सोचा आज तो इज्जत मिट्टी में जायेगी। प्रतिष्ठा बचाने के लिए उसने बटवा फेंका। चौधरी ने ले लिया। थोड़ी-बहुत दक्षिणा देकर बाबा को रवाना किया। कुछ ही दिनों पश्चात चौधरी ने बाबाजी से प्रार्थना की—'आप भोजन हेतु मेरे घर पधारें।' बाबा स्मित आनन बोल पड़ा—'भाई चौधरी ! अभी तक साठ मोहरें हुई नहीं हैं, उसके बाद देखेंगे। समझदार व्यक्ति की एक बार स्खलना हो सकती है। बार-बार नहीं। बाबा एक बार चौधरी के चक्कर में फंस गया था, अब नहीं।

स्खलना हो सकती कदा, समझू की इक बार।
'मुनि कन्हैया' वह कभी, हुवै न बारम्बार॥

चोर को सजा

एक चोर था। लड़कियों को चुरा-चुराकर ले आता और गुफा में बन्द कर मार देता। शहर में हाहाकार मचा। राजा के पास फरियाद पहुंची। नरपति ने घोषणा करते हुए कहा—'इस चोर को जो पकड़ेगा, उसे एक हजार रुपये पारितोषिक मिलेगा।' कोतवाल ने घोषणा स्वीकार कर ली। चोर को मालूम पड़ा कि कोतवाल ने मुझे पकड़ने का निश्चय किया है।

एक दिन का किस्सा है कि उस चोर ने नारी का रूप बनाया। विभिन्न प्रकार के जेवर पहनकर अर्ध निशा में घूमने लगा। इधर-उधर कोतवाल भी तो घूम रहा था। संयोग वश दोनों का मिलन हुआ। आभूषणों से सुसज्जित नारी के रम्य रूप को देखकर कोतवाल मोहित हो गया। मन बिगड़ा, कामदेव के बाणों से परास्त होकर धीमे स्वर में बोला—'ठहरो, अभी कहां जा रही हो?' वह धीरे से बोली—'पीहर जा रही हूं।' वह कामान्ध बनकर बोला—'अभी घर चलो, सुबह पहुंचा दूंगा।' कोतवाल उसे घर ले गया। घर मे चोरों को बांधने हेतु खोडा था, उस चोर ने पूछा—'यह क्या है?' कोतवाल ने कहा—'इसमें चोरों के पैर फंसाते हैं।'

उसने अपना पैर रखा, बोला—'पैर तो निकलता है।' कोतवाल ने कहा—'कीली लगानी पड़ती है।' कृपया मुझे बताएं, कैसे होता है?' कोतवाल ने बताया तो खुद का पैर खोडे में फंस गया। निकाल नहीं सका। उस चोर ने कोतवाल का मुंह काला करके दाढ़ी-मूंछ काटकर दौड़ गया। सारे शहर में हवा फैली कि उस चोर ने कोतवाल को ठग लिया और चकमा देकर भाग गया। सभी लोग उस चोर की चतुरता पर बहुत ही आश्चर्य चकित हुए।

राजा ने भिखारी का रूप बनाकर पहरा देना प्रारम्भ कर दिया। आखिर राजा जी के हाथों द्वारा वह चोर पकड़ा गया। फांसी की सजा मिली। मरकर यमराज का अतिथि बना।

जो व्यक्ति पर का बुरा करता है, वह स्वयं का बुरा करता है। जो पर को धोखा देता है, वह स्वयं धोखा खाता है। इसलिए सबका भला करना सीखो।

चोरी कर्ता मनुज का, पग-पग पर नुकसान।
नरकालय में पहुंचता, पाता दुख महान॥

संत-समागम

राजा का पुत्र लाड़ में बिगड़ गया। सातों ही कुव्यसनों ने उसे घेर लिया। गुंडागर्दी व बदमाशी करने में वह हर वक्त उद्यत रहता था। नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों ने

राजा के आगे पुकार रखी—'राजकुमार का स्वभाव शालीन नहीं है। आप इस पर नियंत्रण रखें, अन्यथा बहुत बड़ा अहित हो सकता है।' राजा चिंतित हुआ। व्यथा की रेखा से आकृति में विकृति उत्पन्न हो गई। एक बार वहां मुनि-जनों का समागम हुआ। नरपति सत्संग में पहुंचा और नम्र निवेदन करते हुए कहा—'मुनिवर्य! आप मेरे लड़के का सुधार कर दें तो आपके उपकार को जन्म-जन्म नहीं भूलूंगा।'

दूसरे दिन मित्रों के साथ कुंवर मुनि प्रवर के प्रवचन में पहुंचा, भाषण बहुत ही रुचिकर लगा। दो-चार दिनों में उसकी भावना में परिवर्तन आया। एक दिन मुनिश्री सत्य बोलने से क्या-क्या लाभ है, बतलाया। राजकुमार बहुत ही प्रभावित हुआ। असत्य न बोलने का नियम ले लिया।

साथी आये, बोले—'चलो शराब पियें। खजाने से पैसे लो।' राजकुमार बोला—'मैं झूठ नहीं बोलूंगा।' सब मित्र छोड़कर चले गये। वास्तव में सच्चा मित्र वह होता है—

'पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटी करोति।'
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।'

—जो पापकारी प्रवृत्ति से बचाता है। हितकारी कार्य में जोड़ता है। गुप्त बात को छिपाकर रखता है। गुणों को प्रकट करता है। विपदा में भी छोड़ता नहीं है, सहयोग देता है—सत्पुरुषों ने मित्रों के ये लक्षण बताये हैं।

राजकुमार का सुधार हो गया। सब व्यसनों से मुक्त होकर अध्यात्म में रमण करने लगा। यह है सत्संग का अगम्य प्रभाव। संत समागम से पापी भी धर्मनिष्ठ बन सकता है।

पापी भी धर्मी बना, पाकर संत सुयोग।
'मुनि कन्हैया' झट मिटे, अन्तर के सब रोग॥

श्री कृष्ण का वाक्-चातुर्य

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण महाराज एक बार नदी के तट पर विहरण कर रहे थे। मधुरी-मधुरी स्वर लहरी में बंशी की मधुर रागिनियों का रसास्वादन करने में लीन बन रहे थे। अचानक वहां पर आठों गोपियों का आगमन हुआ। वे विनम्रतापूर्वक बोलीं—'नाथ! हम आज अलग-अलग कुछ प्रश्न लेकर आई हैं, कृपया उत्तर देने की कृपा करें।'

हाथ जोड़कर पहली ने निवेदन की भाषा में कहा—'मुझे गोद में लो।'

बड़े कोमल शब्दों में दूसरी बोली—'हे जीवननाथ ! मुझे फूल दो।'

तीसरी—'प्राणेश ! मुझे कान में मोती पहनाओ।'

चौथी—'मुझे पत्तल दो।'

पांचवीं—'मुझे अग्नि तपाओ।'

छठी—'मुझे पानी पिलाओ।'

सातवीं—'मुझे झरोखे में बैठा दो।'

आठवीं—'आज मेरी शैय्या को पवित्र करो।'

आठों के प्रश्न भिन्न-भिन्न थे। श्रीकृष्ण ने अपने वाक्-चातुर्य से आठों को एक ही शब्द 'वारीना' द्वारा निम्नोक्त उत्तर दिया जो कि सबके समझ में आ गया।

(१) हे गोपिका, 'वारीना' संस्कृत भाषा के नियमानुसार 'र' को 'ल' भी बोल सकते हैं। इस दृष्टि से 'बालीना'—तू बालिका तो है नहीं, गोद में तुझे कैसे लूं ?

(२) 'वारीना' अर्थात् 'वाड़ीना' यहां आसपास कोई वाड़ी, बगीचा दिखाई नहीं दे रहा है, फूल कहां से लाऊं ?

(३) 'वारीना' 'बालीना' बाली जिसमें मोती डालकर पहना जाता है वह है ही नहीं, तो मोती किसमें पहनाऊं ?

(४) 'वारीना' जो पत्तल बनाती है उस कोम को बारी कहा जाता है। जब बारी है ही नहीं तो पत्तल कहां से लाऊं ?

(५) 'वारीना' अर्थात् 'बालीना' राजस्थानी में जलाने को बालना कहते हैं। आग जलाई (बाली) ही नहीं तो तपाऊं कैसे ?

(६) 'वारीना' संस्कृत में 'वारी' को पानी कहते हैं। अभी हमारे पास जल है नहीं तो पानी कैसे पिलाऊं ?

(७) 'वारीना' अर्थात् 'बारी' झरोखा है ही नहीं तो बिठाऊं कैसे ?

(८) 'वारीना' अर्थात् आज तेरी बारी (नम्बर) नहीं है तो कैसे जाऊं शैय्या पर।

श्रीकृष्ण कन्हैया का यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुनकर आठों ही गोपिकाएं बड़ी खुश हुईं। केवल एक शब्द 'वारीना' से अलग-अलग समाधान पाकर गोपियां अपने-अपने स्थान पर लौट गईं।

चातुर कन्हैयाजू पै बाला जुर आई आठ,
कहो जू कन्हैया आज हमको दिलाइये।
गोद[१] ले हो फूल[२] दे हो कान[३] में पहनाओ मोती,
पातल[४] की पातरी, हुतास[५] प्यास[६] लाइये।

ऊंचे से झरोखे* बीच, मोहन ! बिठाओ मोहि,
रती पति की सूरत से बसो सेज** आइये।
'बारीना' उत्तर एक दयो, भेद सभी ने लह्यो,
ऐसी जगलाल ! तेरी जुगति को सराहिए ।।

उत्तर देने की कला भी एक कला होती है। जिसकी बुद्धि विलक्षण होती है वह अपने वाक्-चातुर्य से थोड़े में बहुत कुछ कह देते हैं। महामनीषियों की मेधा का सर्वत्र स्वागत होता है।

बुद्धिमान का बुद्धि से, होता है सम्मान।
'मुनि कन्हैया' कृष्ण का, सुना रहा आख्यान ।।

एकता का महत्त्व

एक वैभवशाली महाजन था। उनका परिवार भी विशाल था। सारा परिवार सेठ की आज्ञा में चलता था। अनुशासन करने की कला भी सेठ में अनुपम थी, कोई भी काम सेठ की आज्ञा के प्रतिकूल नही होता था। सब में सौहार्द प्रशंसनीय था। नगर में श्रेष्ठी की अच्छी प्रतिष्ठा थी। सज्जन थे, गंभीर थे। समय ने पलटा खाया। 'सब दिन होत न एक समान' सब दिन एक समान नही होते हैं। उतार-चढ़ाव आता रहता है। सेठ को भयंकर नुकसान लग जाने से आर्थिक स्थिति डग-मगा गई। परिवार का पालन-पोषण भी कठिन हो गया। फिर भी पारस्परिक प्रेम के कारण अनुभव नहीं हो रहा था। सेठजी सारे परिवार को साथ लेकर परदेश के लिए रवाना हुए। बैल-गाड़ियों से यात्रा करते हुए मार्ग में एक विशाल वट-वृक्ष की छाया में विश्राम लिया। उस जंगल में सरकंडे बहुत उगे हुए थे।

सेठ ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को आदेश देते हुए कहा—'सरकंडों को काटना प्रारम्भ करो।' आज्ञा प्राप्त होते ही सब निःसंकोच काम में जुट गये। सर-कंडों का ढेर जमा हो गया। फिर उन्हें भिगोया गया, फिर उसे कूटकर तार निकालने लगे। कुछ सदस्य रस्सी बनाने में जुटे। वृक्ष के तने में लपेटकर उसमें बंट देने लगे। वृक्ष अधिष्ठित यक्ष प्रकट होकर बोला—'आप लोग यह क्या कर रहे हैं ?' सेठ ने बड़ी चतुरता से कहा—'यक्षराज ! हम सब आपको बांधना चाहते हैं। धनाभाव के कारण दुःखी हैं। अगर आप बन्धन में आना नहीं चाहते हैं तो हमारा दारिद्रय दूर करें।

उनकी एकता से प्रभावित होकर यक्ष बोला —'यहां से जमीन को दस-बारह हाथ खोदें। धन का भण्डार मिलेगा।' उन्होंने वैसा ही किया। करोड़ों की सम्पदा मिली। अपने नगर में आये। दुकानें चलने लगीं। अद्वितीय सम्पन्नता देखकर सेठ

के मित्र ने सारी बातें पूछी। उस मित्र ने भी अपने परिवार को एकत्रित किया। उसी वट वृक्ष के नीचे पहुंचे। उसने पुत्रों को कहा—'सरकंडों को काटकर लाओ।' छोटा पुत्र बोला—'मेरे हाथ में दर्द है। बड़े पुत्र से मंगाइए।' बड़ा पुत्र बोला—'मैं नहीं लाऊंगा और किसी से मंगाइए।' परस्पर तनाव बढ़ा। आखिर वे सरकंडे काटकर लाये। रस्सी गूंथने का कार्य पुत्र-वधूओं को सौंपा। वे देवरानी-जेठानी आपस में लड़ने लगीं। एक-दूसरे का मुंह ताकने लगीं। खींचा-तानी बढ़ी। फिर भी सबको समझाकर ताने में बांधकर सेठजी रस्सी गूंथने लगे। इतने मे यक्ष प्रकट हुआ और बोला—'क्या कर रहे हो?' सेठ बोला—'धनाभाव में हम इस रस्सी से तुझे बांधेंगे।'

यक्ष बोला—'मैं निहार रहा था, तुम्हारे परिवार में एकता नहीं है। फूट है। चले जाओ यहां से। अन्यथा सबके हाथ इस वृक्ष से चिपक जायेंगे।' वे सब बोले—'हम धन लिये बिना नहीं जायेंगे।' यक्ष को रस्सी से बांधने लगे। कुपित यक्ष ने सभी के हाथ वहीं के वहीं चिपका दिये। आखिर अत्यधिक प्रार्थना पर छुटकारा मिला। खेद-खिन्न होते हुए वे सब अपने नगर में चले गये।

जहां एकता है, साम्य है, वहां लक्ष्मी प्रवास करती है। संगठन में जो बल है, वह फूट में नहीं है। संगठित व्यक्ति हर जटिल कार्य में भी सफल होते हैं। संघे शक्तिः कलियुगे'।

फूस बुहारी काढ़ दे, रखकर एको साथ।
'मुनि कन्हैया' फूट में, बिगड़े सगली बात।।

सच्चा साथी : धर्म

बिन्दु और सिन्धु दो मित्र थे। परस्पर अच्छा प्रेम था। हर प्रवृत्ति में साथ रहते थे। बिन्दु धार्मिक प्रवृत्ति का था। प्रतिदिन नित्य नियम करना, प्रवचन सुनना, उसकी दैनिक चर्या बन गई। एक दिन वह सिन्धु से कहने लगा—'मित्र! धर्म किया कर! यही साथ जायेगा और कुछ भी साथ जाने वाला नहीं है। माता-पिता, भाई-बहन, नारी सब मतलब में साथ देने वाले हैं। स्वार्थ के अभाव में कोई किसी को पूछने वाला नहीं है।'

सिन्धु ने कहा—'मित्र बिन्दु! ऐसी बात नहीं है। मेरा सारा परिवार मेरे लिए प्राणों की बलि देने को तैयार है। अभी मुझे धर्माराधना का समय नहीं है।'

पारिवारिक परीक्षा हेतु उसने सिन्धु को श्वास चढ़ाने की प्रक्रिया का प्रशिक्षण दे दिया। एक दिन वह बेहोश होकर सो गया। बड़े-बड़े वैद्यों को बुलाया गया। डाक्टर भी पहुंचे। किसी की भी औषधि काम नहीं कर रही थी। घर में हाहाकार

मचा। सब रोने लगे। आखिर मित्र को बुलाया गया। बिन्दु आया। मित्र की नाड़ी को देखकर वह बोला—'आक्रन्दन, करने की जरूरत नहीं है। मैं ठीक कर दूंगा।' मेहंदी मंगाई। दो सेर दूध औटाकर मंगाया। कमरे में से सबको दूर कर दिया। कमरा बंद करके उसने दूध पर मेहंदी बुरका दी। कमरा खोला। परिवार वाले आये। बिन्दु ने कहा—'मैंने इनका रोग निकालकर प्याले में भर लिया है। अब पन्द्रह-बीस मिनट में यह बिलकुल स्वस्थ हो जायेगा।' मित्र के पिता की ओर संकेत करते हुए कहा—'यह आपके पुत्र का रोग है, इसे आप पीजिए।' वह बोला—'यह कैसे पिया जाये?' माता, भगिनी, ज्येष्ठ बंधु से भी कहा गया। वे भी इन्कार हो गये। आखिर प्राण प्यारी अर्द्धांङ्गिनी को बुलाकर कहा गया। 'आप अपने पति के रोग को पी लीजिए—स्वस्थ हो जाएंगे।' उसने कहा—'मैं नहीं पी सकती। जिन्होंने कर्म बांधे हैं उनको ही भोगने पड़ते हैं, मुझे क्या मतलब…।'

वह सबकी बातें सुन ही रहा था। स्वार्थ भरे संसार की विचित्र लीला पर वह कुंठित-व्यथित हो रहा था। मित्र का इशारा मिलते ही वह उठा और जोर से बोल पड़ा—'संसार में कोई किसी का नहीं है। सब मतलब के साथी हैं। मित्र बिन्दु! तूने जो कहा, बिलकुल सत्य है। अब मैं अपना समय धर्म में ही व्यतीत करूंगा।'

यह है स्वार्थ की कथा। स्वार्थ परायण व दुःख भरे विश्व में किसी को किसी का सहारा नहीं है। कोई किसी का साथी नहीं है। धर्म ही सच्चा साथी है—सुख-दुख हर स्थिति मे सहयोगी है।

स्वार्थ भरे संसार में, स्वजन नहीं है त्राण।
'मुनि कन्हैया' धर्म ही, जन-जन का है प्राण॥

अंतर-रोग

एक करोड़पति सेठ था। उनकी मां खान-पान में बड़ी लोलुप थी। जीभ की चटोरी होने के कारण प्रतिदिन विभिन्न प्रकार का पकवान उड़ाती थी। एक बार वह रोग ग्रस्त हो गई। बड़े-बड़े वैद्य आये। उपचार प्रारंभ हुआ। एक वैद्य ने कटुक चिरायता बतलाया। अन्य किसी ने मिक्श्चर दिया। दवा कड़वी होने के कारण बुढ़िया सेवन नहीं करती थी। सैकड़ों ही वैद्य आये। किसी का भी उपचार कामयाब नहीं हुआ, क्योंकि वह औषधि को इधर-उधर फेंक देती थी। एक दिन बुढ़िया के अनुकूल वैद्य आया। बोला—'मांजी! मैं आपको बिलकुल ठीक कर दूंगा। पन्द्रह दिन बादाम के हलवे में मकरध्वज लेना पड़ेगा। दस बजे गूंद के

लड्डू खा लेना।' बुढ़िया बहुत खुश हुई, मुस्कराती हुई बोली—'आप जैसे बुद्धिशाली वैद्य ही मेरे रोग को शांत कर सकते हैं। धन्य है आपके चातुर्य को। धन्य है आपके अनुभव को। अब मैं अवश्य ही स्वस्थ हो जाऊंगी।'

मन-इच्छित दवा मिलने से बुढ़िया का चित्त अति प्रसन्नता में रमण करने लगा। मानसिक अनुकूलता ही प्रसन्नता व स्वस्थता का लक्षण है। मनोनुकूल सामग्री उपलब्ध होने से असाध्य रोगी भी स्वस्थता का अनुभव करने लग जाते हैं।

मन-इच्छित जब ही मिले, रसयुत खाद्य पदार्थ।
'मुनि कन्हैया,' तब मिटे, अन्तर रोग यथार्थ॥

गुण-अवगुण

दो दार्शनिक थे। दोनों ने अध्ययन एक ही साथ किया। पारस्परिक अभिन्न मित्रता के कारण वे प्रायः प्रतिदिन साथ ही रहते थे। एक-दूसरे की सलाह बिना कोई भी काम नहीं होता था। हर क्रिया-प्रक्रिया में चिंतन चलता ही रहता था। एक दिन दोनों किसी नगर की ओर जा रहे थे। मार्ग मे गुलाब का पौधा देखा। एक ने कहा—'पौधे में फूल कितने सुन्दर हैं! सौरभ से सारा दिशा मण्डल सुर-भित हो रहा है।' उसने गुलाब के पौधे की खूब ही प्रशंसा करते हुए गुण गरिमा का वर्णन किया।

दूसरे दार्शनिक ने झुंझलाहट की भाषा में कहा—'मित्रवर! इस छोटे से पौधे में देखो कितने कांटे हैं? केवल प्रशंसा से क्या? कांटों की चुभन कितनी कष्टप्रद होती है।'

उसी समय एक कवि के मुख से—

'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः बली बलं वेत्ति न वेत्तिनिर्बलः।
पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः, करीच सिंहस्य बलं न मूषकः॥

—गुणवानों की दृष्टि गुणों पर पड़ती है और अवगुणी की दृष्टि अवगुण पर। गुणी गुण को जानता है निर्गुणी नहीं। बलवान ही बल को पहचानता है, निर्बल नहीं। बसंत के गुण को कोयल जानती है, कौवा नहीं। सिंह के बल को हाथी पहचान सकता है मूषक नहीं। गुणवानों की दृष्टि गुणों पर पड़ती है, अवगुणों पर नहीं। अवगुणी की दृष्टि अवगुण पर ही जाती है, गुणों पर नहीं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

गुणवानों की हर समय गुण पर दृष्टि विशेष।
छिद्रान्वेषी देखता, पर के छिद्र हमेश॥

निस्पृही बनो

एक अद्भुत बाबा था। वह बड़ा निस्पृही था। कुटिया में अकेला ही रहता था। अर्ध निशा में ऊपर से आवाज आई।'मैं आती हूं।' बाबा बोला—'तू कौन है?' वह बोली—'मैं लक्ष्मी हूं। आपकी कुटिया में निवास करना चाहती हूं।' बाबा बोला—'मुझे जरूरत नहीं है। मैं त्यागी हूं। लक्ष्मी का क्या करूंगा।' लक्ष्मी बोली—'जो इच्छा करते हैं उनके पास नहीं जाती हूं। जो मुझे पीठ दिखा देते हैं वहां अवश्य जाती हूं।' बाबा बोला—'जैसी आपकी इच्छा।' कुटिया में चारों तरफ स्वर्ण मुद्रा ही मुद्रा हो गई। कोई भी मांगने के लिए आता है, बाबा उसे यथेच्छित मोहरें देने लगा। सारे शहर में बात प्रसारित हो गई कि बाबा के चरणों में तो नव निधि और अष्ट सिद्धि है। अनेकों व्यक्तियों का तांता-सा जुड़ा रहता, मुंह मांगे स्वर्ण मुद्रा मिलने लगी।

बाबा ने सोचा—'बड़ी व्याधि लग गई। जब माला जप करने बैठता हूं तो मांगने वाले तैयार रहते हैं। न खाने का समय मिलता है न ही नींद लेने को। कैसे होगा इस लक्ष्मी से छुटकारा।'

गांव के ठाकुर साहब को कुछ धनराशि की आवश्यकता थी। बाबा से परिचित एक व्यक्ति ने कहा—'ठाकुर साहब! गांव के बाहर एक बाबा रहता है; उसके पास इतना वैभव है कि कभी खूटता ही नहीं। मांगने वालों को खुले हाथ देता है। ज्यों-ज्यों देता है त्यों-त्यों लक्ष्मी बढ़ती रहती है। आप भी किसी कर्मचारी को भेज दीजिए। यथेच्छित स्वर्ण मुद्राएं मिल जायेंगी।' ऐसी बातें सुनते ही ठाकुर साहब आश्चर्य के सागर में डूब गये। उन्होंने विशिष्ट कर्मचारी को प्रेषित करते हुए कहा—'तुम जाओ और बाबाजी से यथेच्छित स्वर्ण मुद्राएं लेकर आओ।'

कुछ ही समय के पश्चात् एक दिन देव वाणी हुई—'बाबा! अब मैं जा रही हूं।' बाबा बोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा। जहां जाना चाहती हो वहां जा सकती हो। क्योंकि तुम्हारा नाम भी चंचला है, एक जगह स्थिर रहने का सवाल ही नहीं है।' लक्ष्मी चली गई। बाबा खुश हुआ। उपाधि मिटी।

सुबह होते ही ठाकुर साहब का कर्मचारी पहुंचा, याचना की। 'महात्माजी! आपके पास सब कुछ है। ठाकुर साहब की अभिलाषा पूर्ण करें।' बाबा बोला—'आप देरी से पहुंचे। कल आते तो कुछ न कुछ मिल जाता।' आखिर ठाकुर साहब भी वहां आये। बाबा ने सारी कहानी सुनाई। ठाकुर साहब ने बाबा को पीटना शुरू किया। बाबा हंसने लगा। ठाकुर साहब ने हंसने का कारण पूछा। बाबा ने लक्ष्मी की सकल कथा सुनाते हुए कहा—'मुझे हंसी इसीलिए आई कि यह लक्ष्मी आती है तब भी उपाधि और जाती है तब भी उपाधि। अतः इसका

नाम दौलत है, दो (लातों) पैरों की मार खानी है तो लक्ष्मी (दौलत) से प्यार करो। लक्ष्मी, निस्पृही मानव के पीछे-पीछे दौड़ती है। जो लक्ष्मी की चाह करता है वहां से वह कोसों दूर चली जाती है अतः लक्ष्मी के दास बनने में लाभ नहीं है। लक्ष्मी को दासी बनाकर रखने में लाभ है।'

दौलत से जो दूर है, मानव वही महान्।
'मुनि कन्हैया' हर कदम, उसका अति सम्मान ॥

दृष्टि का अन्तर

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों ही विनीत थे। गुरु और शिष्य में अच्छा सम्बन्ध था। गुरुदेव ने एक शिष्य से पूछा—'बोलो, जगत कैसा है? तुझे यह जगत कैसा लग रहा है?' शिष्य ने हाथ जोड़कर अवनत शिरसा कहा—'गुरुवर! यह जगत बहुत बुरा है। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है। आप देखें, एक दिन होता है और रातें दो। दो रातों के बीच एक दिन। पहले रात थी। अंधेरा ही अंधेरा। फिर दिन आया। उजाला आया। प्रकाश हुआ। फिर रात आयेगी। अंधेरा छा जाएगा। एक बार उजाला दो बार अंधेरा, अंधेरा अधिक प्रकाश कम। इस जगत का यह अनोखा माया जाल।'

गुरुदेव ने दूसरे शिष्य से भी यही प्रश्न पूछा। उस शिष्य ने गहराई से चिन्तन कर कहा—'पूज्यवर! जगत बहुत अच्छा है। प्रकाश ही प्रकाश है। रात बीती, उजाला हुआ। सर्वत्र प्रकाश फैल गया। प्रकाश आते ही अन्धकार का अवसान हो गया। लोगों का यातायात प्रारंभ हो गया। सबमें स्फूर्ति का अभिसंचार हो गया। प्रातःकाल का समय सबको बड़ा सुहावना लगता है। सुबह का शान्त समय मनमोहक होता है। यह जगत् कितना अच्छा है कि इसमें ऐसा प्रकाश है। मैंने गहराई से देखा—दिन व्यतीत होते ही रात आयी। रात बीती, दिन आया। इस प्रकार दो दिनों के बीच एक रात। इसका हार्द यह है कि प्रकाश अधिक, अन्धकार कम। दो बार प्रकाश आता है तो एक बार अन्धेरा। इस दृष्टि से कह सकता हूं कि यह जगत् बहुत अच्छा है।'

गुरु ने दोनों के उत्तर सुने। सोचा, प्रश्न सदृश था। उत्तर भिन्न-भिन्न। दोनों के सामने दिन और रात सम थी लेकिन दृष्टि का अन्तर होने से एक को प्रकाश अधिक दिखाई दिया, दूसरे को अंधकार। एक ने प्रकाश को अधिक महत्त्व दिया और दूसरा अंधकार के चक्र में फंस गया। यह सब दृष्टिकोण का ही अन्तर है।

जिस व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है, वह उसे उसी रूप में परिणत कर लेता

है। हर एक का चिन्तन सद्-असद् दृष्टि पर आधारित रहता है।

जिसकी जैसी दृष्टि है, उसको वैसा ज्ञान।
दृष्टि-भेद का जगत में, अन्तर मिले महान्॥

कुटिलता का दुष्परिणाम

कच्छ जैसे देश में पानी लाने के लिए गधों का उपयोग किया जाता था। अतः वहां लड़की को दहेज में भी गधे देने की परम्परा थी। सेठजी के लड़की का विवाह हुआ। सेठ ने दहेज में एक गधा भी दिया। लड़की ससुराल गई। नौकर उस गधे पर पानी लाने लगा। वह गधा बड़ा बदमाश था। कहीं-न-कहीं टक्कर लगाकर घड़ों को फोड़ देता था। सेठ ने नौकर से कहा—'यह गधा नालायक है। अतः तांबा अथवा पीतल के बर्तन ले जाओ। फूटने का डर नहीं रहेगा।' नौकर ने वैसा ही किया, लेकिन वह शैतान मार्ग में लेट जाता। पीतल के बर्तनों का नुकसान हो चाहे न हो लेकिन पानी ढुलककर सारा बह जाता था। नौकर तंग आ गया।

आखिर सेठ ने नौकर से कहा—'इस गधे के कान का थोड़ा-सा भाग काट-कर 'बुटकना' बनाकर छोड़ दो।' नौकर ने वैसा ही किया। अब वह स्वतंत्र निरं-कुश होकर तालाब के आस-पास भ्रमण करता है। खाता-पीता है। मौज उड़ाता है। चंद ही दिनों में वह मोटा-ताजा बन गया। एक दिन कुछ बोरे बैलगाड़ी पर व्यापारार्थ कहीं जा रहे थे। मार्ग में विश्राम हेतु उसी तालाब पर रुके। बैलों को भी चरने हेतु खुला छोड़ दिया। दोनों बैल आपस में मामा-भानजा थे। इतने में वहां गधा आ गया। उसने दोनों बैलों को अपनी करतूत व कहानी सुनाते हुए कहा—'तुम भी कुटिलता करो। शैतानी करो। आजादी मिल जायेगी। सुखी बन जाओगे। प्रवंचना की बातें भानजे बैल को रुचिकर नहीं लगीं। किन्तु मामा बैल ने उसके कथनानुसार गति करना स्वीकार कर लिया। भोजनादि से निवृत्त होकर रवाना हुए। अपनी लीला दिखलाते हुए वह कुटिल बैल पसर गया। मालिक ने सोचा हराम होने (मरने) से पहले इसे हलाल कर दिया जाये तो मांस खाने में काम आ जायेगा। छुरा भौंककर उस बैल को मारकर गाड़ी में रख दिया। भार अधिक होने से एक बैल से गाड़ी कैसे चले। उस तंदुरुस्त हृष्ट-पुष्ट गधे को पकड़-कर उन्होंने गाड़ी में जोत लिया। चलने में वह आनाकानी करने लगा तो मालिक ने चाबुक मारने शुरू कर दिये। बड़ी द्रुतगति से दौड़ने लगा। यह सब देखकर भानजे बैल ने व्यंग्य कसते हुए कहा—

'रे व्युत्कर्ण ! दुराचारिन् मातुलो घातितस्त्वया।'
चलसि वायु वेगेन कौटिल्यं न करोषि किम्॥

—ओ दुराचारी बुटकने ! तूने मेरे मामा को मरवा दिया। अब तू वायु वेग से चल रहा है। अब कुटिलता क्यों नहीं करता है ! बुटकने ने उत्तर देते हुए कहा—

कौटिल्यं तत्र कर्त्तव्यं यत्र धर्मं प्रवर्तते।
सार्थवाहो महादुष्टः कण्ठच्छेदं करोति मे ॥

—कुटिलता वहां करनी चाहिए जहां कुछ धर्म का प्रवर्तन हो। काम बनता हो। यह मालिक इतना दुष्ट है कि यदि कुटिलता करूं तो मुझे भी हलाल कर दे।

बुरी संगति का परिणाम कभी भी लाभप्रद नहीं होता है। बुरा व्यक्ति खुद भी दुःख पाता है और दूसरों को भी पीड़ित किये बिना नहीं रहता। अतः सज्जन व्यक्ति बुरे आदमी के संग से हरदम दूर ही रहता है।'

बुरे व्यक्ति के संग से, रहो निरंतर दूर।
'मुनि कन्हैया' फायदा, इसमें है भरपूर ॥

संतों को मत सताओ

कुणाल प्रदेश के भयंकर जंगल में दो मुनि तपस्या कर रहे थे। ध्यान और स्वाध्याय में लीन रहते थे। भीषणतम तप के कारण उन्हें विभिन्न प्रकार की लब्धियां एवं सिद्धियां उत्पन्न हो गयीं। वर्षा काल आया। सर्वत्र वर्षा हुई। लेकिन उस कुणाल प्रदेश में वर्षा नहीं हुई जहां तपस्वी संत तपस्या में संस्थित थे। गायें चराने वाले ग्वाले बड़े चिंतित हो रहे थे। वर्षा के अभाव में गायें क्या चरेंगी ? पालन-पोषण कैसे करेंगे। कुछ शरारती ग्वाले तपस्वी संतों के पास जाकर अकबक बोलने लगे कि इन संतों (मोडों) ने वर्षा को बांध रखा है। वे अनभिज्ञ ग्वाले एक दोहा जोर-जोर से बोलने लगे—

और गांव में मेह बरसे, कुणाल में तरसे।
आ संता रा पातर फोड़े तो, सौ-सौ आंगल मेह बरसे ॥

—अन्य प्रदेशों में अच्छी वर्षा हो रही है—हम कुणालवासी पानी के लिए तरस रहे हैं। इन संतों के पात्तर फोड़ दें तो अवश्य ही सौ-सौ अंगुल वर्षा हो सकती है। वे सभी गुस्से में लाल होकर संतों पर टूट पड़े। मुनियों पर कंकर-पत्थर भी डालने शुरू कर दिये। विभिन्न प्रकार के निंदनीय कष्ट देने लगे। मारपीट करने में भी वे नहीं सकुचाये। तपस्वी संतों के शरीर से शोणित की धारा प्रवाहित होने लगी। इतने हृदय-विदारक कष्टों में भी दोनों ही मुनि क्षमा की सुर-सरिता झूलने लगे। आखिर ! मुनि छद्मस्थ थे। क्षमा की भी सीमा होती है। वे क्रोध से लाल-पीले हो गये और पहले तपस्वी मुनि ने अपनी तपो शक्ति दिखलाते हुए कहा—'वर्षा मेघ ! कुणालायाम्—हे मेघ ! तू कुणाल प्रदेश में बरस।' दूसरे तपस्वी मुनि अपना

तपोबल प्रकट करते हुए कहा—'दिनानिपंचदश च—पन्द्रह दिनों तक बरसते रहना।' पहले मुनि ने फिर घोषणा करते हुए कहा—'धारा सार प्रणालायाम्—द्रुतगति से मूसलाधार पानी बरसो।' पुनः वे मुनि बोल पड़े—'यथा रात्री तथा दिवा—रात और दिन निरालम्ब गति से बरसते ही रहना।'

संतों की वाणी अकाट्य होती है, चारों तरफ से पानी मूसलाधार बरसने लगा। कुछ ही समय के पश्चात् नदियों में बाढ़ आ गयी, तालाबों के बांध टूट गये। सर्वत्र पानी-ही-पानी हो गया। सारे प्रदेश में हा-हाकार मच गया। पन्द्रह दिनों की स्वल्प अवधि में ही कुणाल प्रदेश पानी में विलीन हो गया।

जो मानव संतों को सताते हैं उनका हर दृष्टि से नुकसान ही होता है। एक कवि ने कहा—

संत सताया जात है, नाम ठाम और बंश।
पीपा परतख देख ल्यो, यादव कौरव कंस॥

—मुनि जनों की जो निंदा करता है। दुःख देता है वह सर्प के मुख में हाथ डालता है। पर्वत से अपना सिर फोड़ता है। उसे किसी भी स्थिति में शांति उपलब्ध नहीं हो सकती।

मुनि को देता कष्ट जो, मिलता उसको कष्ट।
'मुनि कन्हैया' लोक में, उक्ति शुभंकर स्पष्ट॥

चन्दन और कीचड़

एक दिन चंदन और कीचड़ का मिलन हो गया। दोनों अपनी-अपनी प्रशंसा के पुल बांधने लगे। चंदन बोला—'भाई कर्दम! मेरी बराबरी तू नहीं कर सकता। मेरी शीतलता से सारा संसार परिचित है। मेरे में इतनी बड़ी शक्ति है कि भयंकर दाह ज्वर की पीड़ा को भी मैं शांत कर सकता हूं। आग में झुलसते हुए मानव के लिए मैं त्राण हूं। रक्षक हूं। मेरे संसेवन से मानव का मानस शीतलता से भर जाता है। मैं बड़ा मूल्यवान् हूं। हर एक व्यक्ति मुझे नहीं खरीद सकता। मेरी मोहकता की महक हर व्यक्ति को आकर्षित करने में सफल हो रही है।'

कीचड़ ने रोष भरी भाषा में कहा—'चंदन! तू आत्म-प्रशंसा करने में बड़ा दक्ष है। केवल अपनी गुण-गाथा गा-गाकर मन-ही-मन फूल रहा है। मेरे में जो वैशिष्ट्य है वह तेरे में नहीं है, मैं सदा मुसकराता रहता हूं।' ऐसे आपस में बात तन गयी। कोई भी झुकने को तैयार नहीं है। आखिर दोनों ने सोचा—ऐसे परस्पर झगड़े से समाधान नहीं मिलेगा। किसी निर्णायक के सामने बहस करना उचित रहेगा। वहां अवश्य ही सही समाधान मिलेगा। आखिर दोनों की सलाह से मेंढक को ही निर्णायक के रूप में स्थापित किया गया।

मेंढक ने दोनों पक्ष की बातें सुनीं। गहराई से सोचकर अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—'चंदन ! तुम चाहे कितनी ही आत्म-श्लाघा करो, किंतु कीचड़ की बराबरी नहीं कर सकते। संसार में सबसे शीतल तत्त्व कीचड़ है।' आखिर मेंढक से अन्य निर्णय की आशा भी क्या की जा सकती थी? रात-दिन कीचड़ में ही आनन्द अनुभूति करने वाला मेंढक बेचारा चंदन के मूल्य का क्या अंकन कर सकता है? कदापि नहीं।

गोबर का कीड़ा गोबर में ही खुश रहता है। जो व्यक्ति जिसके गुणों से अपरिचित होता है वह उसकी प्रशंसा कभी भी नहीं कर सकता। वह उसे घृणा की दृष्टि से निहारता है। अतः हर एक के गुणों की जानकारी रखना प्रत्येक का कर्तव्य होता है।

गुणवानों के सुगुण का, जिसे नहीं है ज्ञान।
'मुनि कन्हैया' वह उसे, देता क्या सम्मान॥

शुक की चतुरता

किसी राजा की रानी पर एक पक्षी ने बींठ कर दी। रानी ने ऊपर झांका तो तोता दिखायी दिया। रानी क्रोधाकुल होकर औंधा मुंह करके लेट गयी। राजा आया, पूछा—'क्या हो गया? ऐसे कैसे सो रही हो?' रानी बोली—'तोते ने मेरे ऊपर बींठ कर दी। कितना बड़ा अपमान। मैं सहन नहीं कर सकती अतः देश में जितने भी तोते हैं, उन सबको मरवा दीजिए अन्यथा मैं मरूंगी।' रानी की बात सुनते ही राजा ने यह आदेश प्रसारित कर दिया कि देश में जितने भी तोते हैं, उन सबको यहां एकत्रित किया जाये। राज्य-कर्मचारियों द्वारा सैकड़ों ही तोतों को राज्यसभा में हाजिर किया गया। राजा ने पूछा—'क्या तुम्हारे में कोई राजा तोता है?' मनुष्यभाषी तोते ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'हां, है। वे एक घंटा बाद आयेंगे।'

कुछ ही प्रतीक्षा के पश्चात् शुकराज पहुंचे। राजा बोला—'शुकराज ! विलम्ब से क्यों आये?' शुकराज ने कहा—'कई तोते झगड़ते हुए और विवाद करते हुए मेरे पास आये और बोले—'दुनिया में नर अधिक हैं? या नारी? इस प्रश्न के समाधान में देरी हो गयी। अब हाजिर हूं।' नृपति के मन में जिज्ञासा जागृत हुई—'शुक ! क्या उत्तर दिया? मुझे भी सुना दो।' शुकराज बोला—'नर कम हैं, नारियां ज्यादा हैं।' राजा बोला—'इसका प्रमाण क्या है?' शुकराज बोला—'कहीं नर कम, नारियां अधिक और कहीं नर अधिक और नारियां कम हैं। किन्तु जो नर होते हुए भी नारियों के इंगित पर चलते हैं, वे वास्तव में नर होते हुए भी नारियों की कोटि में आते हैं, अतः नर कम और नारियां अधिक।'

व्यंग्य भरे उत्तर से राजा का सिर लज्जा से झुक गया। इसने तो मुझे नारी की संज्ञा में अवतरित कर दिया, रानी के कथन से ही तोतों को मरवाने की सोची थी। राजा के पुनः आदेश से सब तोतों को जीवन-दान दे दिया गया। यह सब रानी को ज्ञात होते ही रानी ने राजा को बुलाकर कहा—'तोतों को मृत्यु-दण्ड से मुक्त क्यों कर दिया? यह है आपका दिखावटी प्यार? अन्न और जल लेने का त्याग है।' राजा ने बहुत समझाया, रानी आग्रह पर डटी रही। पहले की भांति तोतों को वापस इकट्ठा किया गया। लकिन शुकराज दो घंटे बाद आया। राजा बोला—'विलम्ब से क्यों आया?'

शुकराज ने कहा—'मेरे सामने तोतों द्वारा एक जटिल प्रश्न आ गया कि मुखद्वार ज्यादा हैं या मलद्वार, इसमें उलझ गया। समाधान देने में काफी समय लगाना पड़ा।' राजा बोला—'अरे! समाधान कैसे दिया?' शुकराज बोला—'मुखद्वार की अपेक्षा मलद्वार ज्यादा हैं। क्योंकि जो मानव वचन देकर बदल जाता है, उसका मुख, मुखद्वार न रहकर मलद्वार बन जाता है।' व्यंग्यपूर्ण उत्तर से राजा लज्जित हो गया। वापस सब तोतों को बन्धन से मुक्त कर दिया और रानी को भी समझा दिया। जिसकी बुद्धि विलक्षण होती है वह हर कार्य में सफल होता है। शुकराज की वाक्-चतुरता से समस्त तोते मरते-मरते बच गये।

शुक बोला मुखद्वार से, ज्यादा हैं मलद्वार।
'मुनि कन्हैया' व्यंग्य से, लज्जित हुआ नृपाल॥

क्रोध को मन्द करो

एक तपस्वी मुनि थे। उनको क्रोध बहुत आता था। गुरुजी उनको समय-समय पर शिक्षा फरमाते थे—शिष्य! क्रोध करने से तपस्या एवं साधना भस्मसात् हो जाती है। तेरे हित के लिए जब कभी शिक्षा देता हूं, तब तू आग की भांति गरम हो जाता है। मुख से अनर्गल बोलता रहता है। यह तेरे लिए शोभास्पद नहीं है। तू स्वयं अन्तर्द्रष्टा बन। क्रोध से कितनी हानि होती है। अतः मेरा बार-बार कहना है कि प्रकृति में परिवर्तन करो।

एक दिन तपस्वी ने गुरुदेव से निवेदन करते हुए कहा—'मुझे आज्ञा दीजिए, मैं तपस्या करना चाहता हूं।' गुरु ने कहा—'पतलीपाड़।' तपस्वी ने सोचा—गुरु की दृष्टि में मैं बहुत ताजा-मोटा हूं। अतः गुरुदेव फरमाते हैं कि 'पतलीपाड़' अर्थात् शरीर को दुर्बल बनाओ। सात दिन का थोकड़ा (उपवास) कर लिया। पारणा करने की इच्छा से वह शिष्य फिर गुरुवर के पास आया और बोला—'पूज्यवर! पारणा करूं या तपस्या चालू रखूं?' गुरु ने कहा—'पतलीपाड़' तपस्वी ने सोचा—गुरु की दृष्टि में अभी तक मोटा-ताजा की कोटि में हूं। फिर मुनि ने

चौदह दिन के उपवास किये। दो-तीन बार पूछने पर गुरुजी ने वही उत्तर दिया। 'पतलीपाड़' मास खमण (तीन दिन के उपवास) पूर्ण हुआ। पारणा के लिए आज्ञा दीजिए। गुरुजी का वही कथन। 'पतलीपाड़' 'पतलीपाड़' यह सुनते ही मुनि की आंखें तन गईं। क्रोधाकुल होकर बोला—'क्या आप मुझे मारना चाहते हैं? इतना दुबला-पतला हो गया फिर भी आप कह रहे हैं पतलीपाड़, पतलीपाड़। क्या पतली पाड़ूं?' अंगुली को तोड़कर गुरु के चरणों में रख दी। फरमाइये और क्या पतली पाड़ूं?

शान्त स्वभावी गुरु ने कहा—'इसीलिए तो कह रहा हूं, पतलीपाड़। मेरे कहने का उद्देश्य शरीर को दुर्बल करने से नहीं है। क्रोध को पतला (मन्द) करो। क्षमाशील बनो। क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची तपस्या है।' शिष्य को सही ज्ञान हुआ।

काषाय, विषय और आहार का त्याग करने से ही सच्चा उपवास होता है। अन्यथा केवल लंघन मात्र है। अतः तप के साथ-साथ क्षमावान बन जाने से स्वर्ण में सुगन्ध वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है।

क्षमा बिना संसार में, तप-जप सब बेकार।
'मुनि कन्हैया' शान्त नर, वसुधा का शृंगार॥

बद-नीति और शुद्ध-नीति

सुरेन्द्र और नरेन्द्र में अच्छी दोस्ती थी। सुरेन्द्र सम्पत्तिशाली सेठ था। नरेन्द्र की स्थिति कमजोर थी। एक दिन की बात है—नरेन्द्र सुरेन्द्र के घर मिलने के लिए आया, कुछ समय ठहरकर वापस चला गया। गेडिया भूल गया। सुरेन्द्र की नीति में विकृति उत्पन्न हो गई। सोचा, नवगांठ का गेडिया कहां मिलता? छिपा लिया। कुछ ही समय बाद नरेन्द्र आया, बोला—'मेरा गेडिया कहां है?' सुरेन्द्र ने कहा—'मित्र! मुझे क्या पता? मैंने तो हाथ नहीं लगाया।' नरेन्द्र बेचारा इधर-उधर देखकर खाली हाथों लौट गया।

बदनीति से सुरेन्द्र का धन धीरे-धीरे जाने लगा। पुत्रवधू बड़ी समझदार चतुर थी। उसने अपने जेवर डब्बे में डालकर पीहर रख दिया। जिस सुरेन्द्र के सामने दस-बीस नौकर खड़े रहते थे, उसकी हालत एकदम बिगड़ गई। रोटी भी एक समस्या बन गई। बड़ी मुश्किल से परिवार का गुजारा करने लगा। चिन्ता से शरीर का सौन्दर्य खत्म हो गया। एक दिन उसके घर जौहरी आया। बातचीत कर चला गया। पीछे हार भूल गया। सुरेन्द्र का दिल साफ हुआ। नीति में परि-वर्तन हुआ। हार वापस लौटा दिया। पर धन को धूल समझने लगा। किस्मत ने

पलटा खाया। पुत्रवधू ने आभूषण लाकर दे दिया। उनसे पालन-पोषण चलने लगा। छोटी-सी दुकान खोली। विश्वास जमने लगा। धीरे-धीरे संपत्ति वापस आने लगी। उस गेडिये पर सोने का पात्र चढ़ाकर नरेन्द्र मित्र को दे दिया और उससे अपनी जीवन-लीला सुनाते हुए कहा—मित्र! शुद्धनीति ही मानव की उन्नति में सहायक सिद्ध होती है।'

बदनीति वाले मनुष्यों का कभी भी भला नहीं हो सकता। कदम-कदम पर उनकी हार होती है। नीति में विशुद्धि का संचार होते ही विजय दौड़-दौड़कर आती है। हर क्षेत्र में विकास होता है।

शुद्ध नीति से मनुज का, होता है उत्थान।
'मुनि कन्हैया' नीति बिन, सबका है अवसान ॥

सम्यग्-ज्ञान

एक व्यापारी ने व्यापार हेतु किसी द्वीप पर पानी की जहाज द्वारा जाने की तैयारी की। वहां पर गौ की नस्ल नहीं होने के कारण व्यापारी ने गौ साथ ली। नगर में पहुंचा। भेंटणा लेकर राजा के पास गया। साथ चांदी का कटोरा भरकर मिसरी से संपूरित दूध भी ले गया। राजा ने पूछा—'यह क्या है धोला-धोला ?' वह बोला—'राजन् ! मैं अपने साथ एक वृक्ष लाया हूं, उसी का यह फल है। इसे आप पी लीजिए। शरीर हृष्ट-पुष्ट बन जायेगा।' राजा ने उस फल का रसास्वादन करते हुए कहा—'आज तक मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसा मधुर फल कभी नहीं खाया।' राजा ने खुश होकर समूचे माल की कर (ड्यूटी) माफ कर दी।'

दूसरे दिन खीर बनाकर लाया। उसमें केसर, इलाइची, पिश्ता आदि डाले हुए थे। राजा के पास पहुंचा।

राजा—'यह क्या है ?'

व्यापारी—'राजन् ! उसी वृक्ष का दूसरा फल है। इसके विभिन्न प्रकार के फल लगते हैं, समय-समय पर भेंट करता रहूंगा। राजा ने आस्वाद लिया, मन की कलियां खिलने लगीं। थोड़ा-सा फल महारानी को भी दिया। वह भी बहुत प्रसन्न हुई। अब वह प्रतिदिन कभी कलाकन्द, कभी रसगुल्ले, छन्ना आदि भेंट करता गया।

एक वर्ष वहां पर रहा। कमाई अच्छी हुई। वापस अपने देश जाने लगा, तो राजा ने कहा—'उस वृक्ष को तो मैं रखूंगा, बड़े स्वादिष्ट फल देने वाला है। कीमत चाहे जितनी ले सकते हो।'

व्यापारी—'मैं आप से क्या कीमत लूं, मुझे आपकी कृपा चाहिए। वृक्ष को

कैसे रखना, खाने के लिए क्या देना सब बतला दिया किन्तु दूध निकालने की विधि नहीं बतलाई।

व्यापारी चल पड़ा। समुद्र के किनारे जहाज में माल लगाने लगा। इधर राजा ने अपने नौकरों को स्वर्ण पात्र देकर कहा—'ध्यान रखना। यह वृक्ष जो भी फल देता है, उसे स्वर्ण पात्र में लेकर मुझे दे देना। नौकरों ने वैसा ही किया। इतने में गाय ने पेशाब किया। गौ-मूत्र लेकर राजा के पास आये, राजा ने चखकर देखा। मुंह कड़वा हो गया। हाय यह क्या? थोड़ी देर बाद गाय ने गोबर किया। नौकर लेकर आये। थोड़ा-सा जीभ पर रखा। जी मचलाने लगा। व्यापारी को धूर्त समझकर उसे वापस बुलवाया गया। राजा बोला— 'सेठ साहब! आप तो मुझे धोखा देकर चले गये। यह देखो वृक्ष का फल। कितना कटु।' व्यापारी हंसने लगा और करबद्ध होकर बोला—'स्वामिन्! वृक्ष तो वही है। फल लेने की विधि से आप अपरिचित हैं।' उसने तत्काल दूध निकालकर बतलाया। राजा ने स्वाद चखा, बड़ा मीठा लगा। राजा अपनी अनभिज्ञता पर पश्चाताप करने लगा।

जब तक सम्यग्-ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती है, तब तक मानव किसी भी प्रक्रिया में सफल नहीं हो पाता। अतः सामाजिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ज्ञाना-राधना की परम अपेक्षा है।

ज्ञान बिना होता नहीं, सही तत्त्व आभास।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान से, होता आत्म विकास॥

सहयोगी मित्र

अरुण राजा का पुत्र था, किरण सेठ का। दोनों में अच्छा प्रेम था। पारस्परिक मित्रता का उन्नयन। राजकुमार अरुण ने पूछा—'साथी किरण! क्या बात है? तेरा शरीर दिनों-दिन कृश क्यों हो रहा है?' किरण करबद्ध होकर बोला—'मित्र! क्या करूं, व्यापार नहीं चलता है। आय के बिना परिवार का भरण-पोषण भी एक समस्या बन गई। ताकड़ी बंद हो गई। तू जानता है, महाजन की ताकड़ी चालू रहने में ही लाभ है। कोई काम हाथ में नहीं है। इसलिए कोई काम मुझे बताओ।'

अरुण ने किरण को घोड़े की लीद उठाकर बाहर डालने का कार्य सौंपा। वह लीद को सूंघकर फिर बाहर डालता है। घोड़ों के प्रचालकों ने पूछा—'लीद सूंघने का क्या मतलब? किसलिए?' किरण ने कहा—'मैं तुम सबकी परीक्षार्थ सूंघ रहा हूं। तुम लोग दाना कम देते हो। सबको पकड़ाऊंगा।' सब घबराये। रुपयों की थैली देकर किरण को खुश कर दिया। समुद्र की लहरें गिनने का दूसरा काम और मिल गया। जहाज चालकों से भी पैसे ऐंठने प्रारंभ कर दिए। कोई नहीं देता है,

तो जहाज को रोक लेता है और कहता है कि लहरें गिनने का काम मुझे सौंपा गया है। ऐसी बातें बना-बनाकर चातुर्य से कमाई करने लगा।

एक दिन मित्र अरुण ने पूछा—'किरण ! कमाई अच्छी हो रही है ?'

मित्र तेरी कृपा से सब अच्छा है, तूने मुझे जो काम सौंपे, उससे अच्छी आय है। तेरे जैसे साथी के प्रताप से मेरा सारा संकट दूर हो गया।'

सच्चा मित्र वही होता है जो तकलीफ में भी सहयोग की भावना रखता है। आपात काल में भी मित्र को मित्र की दृष्टि से निहारता है, उसका हर दृष्टि से गौरव बढ़ता है। सम्मान होता है।

सहयोगी हर समय में, बनता है जो मित्र।
दुनिया में उस मित्र का, गौरव बढ़े पवित्र ॥

सबसे खराब क्या

एक दुःखी व्यक्ति इधर-उधर भटकता हुआ एक संन्यासी के पास आ पहुंचा। हाथ जोड़कर बोला—'महात्माजी ! मैं संसार से ऊब गया। संसार मुझे गरल की भांति कटु लगता है। मुझे निकालिये। संसार-समुद्र से पार लगाइये।' महात्माजी बोले—'मुसाफिर !' सबसे पहले यह निगाह करके आओ कि दुनिया में सबसे खराब चीज क्या है ? उसके पश्चात् मैं तुझे संन्यास दूंगा।' वह मुसाफिर खराब चीज की खोज में चल पड़ा। खोज करते-करते वह थक गया। आखिर वह फिरता-फिरता अशुचि-गृह में पहुंचा। उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगा। नाक पर कपड़ा लगाया, सोचा—सबसे खराब चीज यही है।

गंदगी बोली—'अरे भैया ! तू मुझसे घृणा क्यों कर रहा है, क्यों नाक पर कपड़ा डालकर मुंह बिगाड़ रहा है ? इसमें मेरा दोष तनिक भी नहीं है। यह सब दोष है मानव के शरीर का। मुझे खराब करने वाला मनुष्य ही तो है। मनुष्य के योग से ही मेरा तिरस्कार व अपमान हो रहा है।'

मुसाफिर चौंका। आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह दौड़ा-दौड़ा महात्मा जी के पास पहुंचा। विनय के कोमल शब्दों में बोला—'गुरुदेव ! प्रश्न के समाधान हेतु बहुत घूमा। आखिर उत्तर लेकर आया हूं। छान-बीन करने पर यही तत्त्व मिला—'सबसे खराब मनुष्य का शरीर।' उत्तर सुनकर महात्माजी बहुत खुश हुए और आशीर्वाद देते हुए बोले—'मुसाफिर ! तू ठीक समझा। मुझे सही ज्ञान मिला। अब मुझे संन्यास देने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है।' उसे संन्यास दे दिया गया।

मनुष्य को जब यह ज्ञान हो जाये कि सबसे खराब मेरा शरीर है, तब वह इस

शरीर (चमड़ी) से कभी भी मोहित नहीं होगा। न ही पर-रूप में पागल बनेगा, वास्तव में यह सच्चा ज्ञान ही आत्म-विकास का प्रशस्त सोपान है।

मानव का यह गात्र ही, सबसे बहुत खराब।
ऐसे पावन ज्ञान से, बढ़ती अविरल आब॥

भोज की उदारता

उज्जयिनी नगरी थी। वहां के प्रभावशाली सम्राट् राजा भोज थे। संस्कृत भाषा के विशेषज्ञ थे। दूसरों को दान देने में बड़े उदार-चेता थे, उदारता के विषय में राजा भोज की अनेक घटनायें आज भी प्रचलित हैं। जो कोई भी आता, वह खाली हाथ नही जाता था। मुक्त-हस्त से दान मिलता था।

सचिव ने यह देखकर सोचा कि अगर राजाजी इस प्रकार दान देते रहेंगे तो खजाना शीघ्र ही खाली हो जायेगा। अब कोई ऐसा उपाय सोचूं, राजा दान देने से निवृत्त हो जाएं।

मंत्री ने राजा के शयन-कक्ष पर एक पट लगाना निश्चित किया। उस पर लिखा गया—'आपदर्थे धनं रक्षेत्—आपत्ति के लिए धन को सुरक्षित रखना चाहिए।' पट्ट वहां लगाकर मंत्री चला गया। राजा भोज शयन-कक्ष में सोने के लिए आये। उन्होंने पट्ट पर लिखा हुआ वाक्य पढ़ा और मन में सोचा कि इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। उस वाक्य के नीचे अपनी बुद्धि से एक वाक्य लिया—'श्रीमतामापदः कुतः—संपत्तिशीली व्यक्तियों के लिए आपत्ति कहां है?'

दूसरे दिन का सूर्य उदय हुआ। मंत्री महलों में पहुंचा। अपने वाक्य के नीचे उसी पट्ट पर एक नया वाक्य पढ़ने को मिला। हृदय में दुःख का पार नहीं रहा। यह क्या? चिन्तन किया। आखिर उसने एक वाक्य उसके नीचे फिर लिख दिया—'कदाचिद् रुष्यति दैवः—कभी भाग्य भी रुष्ट हो जाता है।' यह जीवन समुद्र की भांति विशाल है। उतार-चढ़ाव आता रहता है। 'सब दिन होत न एक समान—सबके दिन समान नहीं होते हैं।'

संध्या के समय जब राजा वहां पहुंचा, पट्ट पर अंकित वाक्य को पढ़ा। उसी समय प्रश्न का समाधान देते हुए पट्ट पर लिख डाला—'संचितमपि नश्यति—इकट्ठा किया हुआ धन भी नहीं रहता। तीसरे दिन मंत्री पहुंचा। उस वाक्य को पढ़ा मंत्री समझ गया कि राजा के व्यवहार में अन्तर आने वाला नहीं है। राजा भोज संपत्ति से उन्नत थे तो मन की उदारता भी बहुत थी।

उदारता के अभाव में कोई भी किसी को कुछ भी नहीं दे सकता। कंजूस व्यक्ति नहीं खाता है, न ही देता है। धन किसी के साथ जाने वाला नहीं है।

रिक्त हाथ आये हो रिक्त हाथ जाओगे।

संचित धन भी साथ में, नहीं चलेगा तार।
'मुनि कन्हैया' भोज की, सुनो कथा सुखकार ।।

गम से लाभ

बादशाह ने बीरबल से पूछा—'ये साहूकार लोग क्या खाते हैं? कितने हृष्ट-पुष्ट रहते हैं।' बीरबल बोला—'जहांपनाह! ये लोग जो खाते हैं, वह आप नहीं खा सकते।' बादशाह—'बीरबल! बताओ तो सही क्या खाते हैं?' बीरबल—'अवसर आने पर बताऊंगा।' एक दिन बादशाह और बीरबल हाथी के हौदे पर शहर में भ्रमणार्थ निकल पड़े। बाजार में पहुंचे। इधर सेठ की दुकान पर भीखमंगों की जमात मांगने के लिए आई। एक आने की याचना की। सेठ बोला—'एक पैसा दूंगा।' याचकों ने कहा—'एक आना लिये बिना नहीं जायेंगे।' सेठ ने मन ही मन सोचा, बादशाह की सवारी आ रही है। ये मगजपच्ची कर रहे हैं। यह लो एक आना।

याचक—'अब हम नहीं लेंगे एक आना। दो आना लेकर जायेंगे।' बीरबल ने बादशाह को सेठ की दुकान का संकेत किया। कुछ ही समय के पश्चात् सेठ दो आना देने लगा।

याचक—'आपने हमारा अमूल्य समय कितना नष्ट कर दिया। अब हम दो आना नहीं, चार आना लेंगे।' सेठ ने देखा बादशाह बहुत निकट आ गये हैं। ये पागल बेवकूफ दुकान से हट नहीं रहे हैं। इसी खींचातानी व उधेड़बुन में सेठ खिन्न हो गया। कैसे इनसे छुटकारा मिलेगा। आखिर मांगते-मांगते वे एक रुपया तक पहुंच गये। सेठ बड़ा क्षुब्ध हुआ। विवशता से उनको एक रुपया देना पड़ा। मांगने वाले एक रुपया लेकर रवाना होते-होते सेठ के बदन पर थप्पड़ मारकर भाग गये। सेठ की पगड़ी नीचे गिर पड़ी। बादशाह बिलकुल नजदीक पहुंच गये। सेठ झट अपनी पगड़ी बांधकर दुकान पर बैठ गया। आकृति पर तनिक भी विषाद की रेखा नहीं। वही मुस्कराहट, वही उल्लास की लहर मानो कुछ अघटित घटना घटी ही नहीं। बीरबल सब निहार ही रहा था।

बादशाह की सवारी आगे बढ़ रही थी। बीरबल बड़ी विनम्रता से बोला—'गरीब निवाज! देखा आपने अनूठा तांडव। मांगने वाले रुपया भी ले गये और सेठ के थप्पड़ भी जमा गये। सेठजी का इतना अपमान होते हुए भी उन्होंने गुस्सा नहीं किया। कितनी खामोशी रखी। दुकान पर ज्यों के त्यों रोब से प्रफुल्लितमना बैठे हैं। इस प्रकार ये साहूकार लोग गम खाते हैं। उसी का फलित है कि ये लोग

शारीरिक दृष्टि से पुष्ट व ताजे-मोटे रहते हैं। क्या ऐसा गम आप रख सकते हैं ?"
बादशाह बोला—'बीरबल ! ऐसा गम मैं नहीं रख सकता। तनिक अपमान पर भी मुझे क्रोध आ जाता है। इसी कारण दुबला-पतला रहता हूं।'

जो व्यक्ति गम खाते हैं। खामोशी रखते हैं, वह मानव हर क्षेत्र में सफल होता है। उसकी सर्वत्र पूजा होती है, प्रतिष्ठा बढ़ती है। 'मौनेन कलहो नास्ति—मौन (गम) से पारस्परिक तनाव वैमनस्य व कलह अपने आप समाप्त हो जाता है।'

गम रखने से मनुज को मिलता लाभ महान।
'मुनि कन्हैया' जगत में मौन सौख्य की खान॥

स्मरण से मरण

चार मित्र धन कमाने के लिए परदेश जा रहे थे। मार्ग में किसी एक गांव में ठहरे। वहां होटल आदि की व्यवस्था भी नहीं। केवल एक बहन के घर पर यात्रियों के लिए भोजन की व्यवस्था थी। वह उचित धन राशि लेती थी। चारों मित्रों ने वहीं पर भोजन किया। चारों ने अच्छे रुपये दिये। बहन बहुत खुश हुई, बहन ने कहा—'थके-मांदे अभी कहां जाओगे। रात-भर यहीं पर विश्राम करो।' चारों सो गये, ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। गहरी नींद आ गई। जल्दी उठकर, ज्योंही तीन बजे, जाने लगे। बहन ने सोचा—ये व्यक्ति बड़े सज्जन हैं। इनको दही का मठा बनाकर पिला दूं। दही मथा और मठा तैयार हो गया। चारों पीकर वहां से चल पड़े। सूर्य उदय हुआ। बहन की दृष्टि मठे पर पड़ी। मठे का कुछ विकृत रूप देखकर उसने गहराई से देखा तो मठे के बर्तन में सर्प के कुछ अवयव मिले। वह चौंकी। आज बड़ा अनर्थ हो गया। बिलौने में सांप को मथ लिया। पुनः पछताने लगी। इधर चारों यात्री आगे बढ़ते गये। उन पर सर्प के जहर का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। किसी बड़े शहर में कपड़े का व्यापार किया। भाग्य ने भी सहारा दिया, चन्द ही समय में अच्छी धनराशि एकत्रित कर ली। बारह वर्ष की यात्रा संपन्न कर वे चारों ही साथी देश आने के लिए रवाना हुए। मार्ग में वही गांव आया, जहां 'दही का मठा' पीकर चले थे। उसी बहन के घर पहुंचे। चारों बोले—'बहन जी ! हमको पहचानती हो ?' वह बोली – 'यहां भोजनार्थी अनेकों आते रहते हैं। किस-किसको पहचानूं।' उन्होंने कहा—'हम मठा पीकर गये थे, याद करो तुम।'

मठे की बात सुनते ही वह एकदम चौंकी। आनन्द सरिता में डूबने लगी। भगवान की कृपा से बहुत अच्छा हुआ। मैं तो चिंतित थी। आज मैं चिन्ता मुक्त हुई। अच्छी कृपा की, आप लोग पुनः यहां पधारे। चारों बोले—'चौंकने की क्या

बात है ? बहन !' उसने कहा—'नहीं-नहीं, कोई खास बात नहीं है ? मेरी अच्छी किस्मत थी, आप वहां सकुशल पहुंच गये।' उनके हृदय में जिज्ञासा फिर प्रबल हो उठी—'ऐसी क्या घटना घटी ? बताओ तो सही ?'

आखिर वह करुणामृत वाणी मे बोली—'सज्जनो, क्या बताऊं, बात बताने जैसी नहीं है। असावधानी के कारण बहुत बड़ा अनर्थ हो गया। दही का मठा पीकर आप लोग गये थे। मैंने पीछे से उस बर्तन को निहारा तो ऐसा आभास हुआ कि दही के साथ-साथ सर्प भी बिलोया गया। इस बात को बारह वर्ष हो गये। आप सबको सानन्द देखकर दिल फूल रहा है।' यह सुनते ही चारों के आश्चर्य का पार नही रहा और सारे शरीर में जहर व्याप्त हो गया। स्मृति मात्र से चारों के प्राण पखेरू उड़ गये।

विस्मृति की स्मृति से मानव के मानस में विकृति उत्पन्न हो जाती है। अतः भुक्त भोगों को भी याद नहीं करना चाहिए।

भुक्त भोग के स्मरण से होता है नुकसान।
केवल विष स्मृति से, चारों का अवसान।।

आपके पुत्र कितने ?

सेठ ज्ञानचंदजी बहुत बड़े व्यापारी थे। घर में लाखों की संपदा थी। गहरे थे। समझदार थे। तत्त्वज्ञ थे। नस-नस में धार्मिकता की पुट थी। उनके चार पुत्र थे। तीन लड़कों का विवाह हो गया था। तत्रस्थ अन्य एक सेठ मामचंद अपनी पुत्री के सम्बन्ध के लिए व्याकुल था। वर की खोज करता-करता वह ज्ञानचंद की दुकान पर चला गया। उसने पहला प्रश्न पूछा—'आपकी उम्र क्या है ?

वह बोला—'मेरी आयु तीस साल की है' यह सुनते ही मामचंद के हृदय में आश्चर्य का पार न रहा।

फिर उसने दूसरा प्रश्न पूछा—'आपके पास वैभव कितना है ?'

ज्ञानचंद—'मेरे पास तीस हजार की संपत्ति है।' फिर वह संशय में पड़ गया। दुकान में लाखों का कपड़ा है। फिर भी यह उत्तर ! और तीसरा प्रश्न पूछा गया—'आपके पुत्र कितने हैं ?' उसने कहा—'मेरे डेढ़ पुत्र हैं।'

मामचंद बोला—'आपके उत्तर से मुझे संतोष नहीं हो रहा है। आप वृद्ध दिखाई दे रहे हैं। आपने कहा तीस वर्ष का हूं। कैसे जंचे ?' ज्ञानचंद ने कहा—'तीस वर्ष मेरे धर्म-ध्यान में व्यतीत हुए हैं। इस दृष्टि से मैं तीस वर्ष का हूं। अन्य सब वर्षों को मैं बेकार समझता हूं। अपने हाथों से मैंने जो सुपात्र दान दिया है। उसे मैं सच्ची सम्पत्ति मानता हूं। सुपात्र दान में तीस हजार की सम्पत्ति ही काम

आई है, इस दृष्टि से मैंने इतनी ही बतलाई है। डेढ़ पुत्र की बात भी यथार्थ है। आप मेरे बड़े पुत्र के पास जाकर कह दीजिए पिताजी बुला रहे हैं। फिर इसका उत्तर दूंगा।'

मामचंद चला। पुत्र के पास पहुंचा, बोला—'आपको आपके पिताजी बुला रहे हैं।' वह लड़का क्रोधाकुल होकर बोला—'पिताजी क्यों बुला रहे हैं? पिताजी जीवित हैं या मर गये? यदि मर गये हों तो दाह-संस्कार आप ही कर लेते। मेरे रंग में भंग क्यों किया? कितना सुन्दर नृत्य चल रहा है! मुझे टाइम नहीं है पिताजी के पास जाने का।'

मामचंद वापस लौटा। ज्ञानचंद को समग्र कहानी से अवगत किया। ज्ञानचंद ने कहा—'बोलिए, इस लड़के के सामने एक एका लगाऊं या शून्य।' मामचंद ने कहा—'ऐसा पुत्र होना या न होना बराबर है। इसके आगे शून्य लगा दो। ज्ञानचंद के कथनानुसार वह दूसरे, तीसरे और चौथे पुत्र के पास पहुंचा, दूसरे पुत्र ने कहा—'पिताजी मुझे क्यों बुला रहे हैं? पिताजी दीवार या छत के नीचे दब गये क्या? यदि दब गये हों तो आप ही निकाल लेते, यहां आकर समय को व्यर्थ क्यों गंवाया?' तीसरे पुत्र का उत्तर था—'आप कह दीजिए पिताजी को, मैं कुछ ही समय पश्चात् आ रहा हूं।' किन्तु खेल में वह इतना लीन हो रहा था कि पिताजी के पास जाना भूल गया। चौथा पुत्र हजामत करा रहा था। पिता का आदेश सुनते ही बीच में ही वह उठा और पिता के पास जाकर बोला—'हाजिर हूं आपकी सेवा में। फरमाइए मेरे लायक काम।'

पिता ने कहा—'बेटा! ऐसे ही बुलाया था। कोई खास काम नहीं है। चले जाओ बंगले पर।'

ज्ञानचंद ने मामचंद से कहा—'अब लगाइये जोड़। पहले और दूसरे के शून्य। तीसरे के आधा और चौथे के एक। इस दृष्टि से मेरे डेढ़ पुत्र हैं।' मामचंद के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हुआ और उसने अपनी पुत्री का विवाह उनके लघु पुत्र से कर दिया।'

शारीरिक बनावट की दृष्टि से मानव-मानव सब एक हैं। विवेक-बुद्धि-विनय आदि क्रिया-प्रक्रिया के आधार पर बहुत बड़ा अन्तर पाया जाता है। किसी कवि ने कहा—

चरण नयन कर नासिका, सब जन के इक ठौर।
कहना सुनना समझना, चतुरन का कुछ और॥

संसार में विनय और नम्रता की विशेषता है। जो विनयी होता है। सर्वत्र उसकी पूजा होती है। वास्तव में विनीत पुत्र वही होता है जो माता पिता की आज्ञा के अनुसार वर्ति करता है। 'विणओ मूल धम्मो।' विनय धर्म का मूल है।

महावीर प्रभु ने कहा—विनय धर्म का मूल।
'मुनि कन्हैया' विनय से, बनते सब अनुकूल ॥

विनय से विजय

एक दिन सरित्पति समुद्र ने कहा—'हे वेत्रवती नदी ! मैं समस्त नदियों के मधुर व्यवहार से बहुत संतुष्ट हूं। सभी सरिताएं उपहारस्वरूप कुछ न कुछ लाकर मुझे देती हैं। तू ऐसी अविनीत कंजूस है कि अभी तक कुछ भी लाकर तूने नहीं दिया। त्रास है तेरी बुद्धि पर। पीड़ित हूं तेरे रूक्ष व्यवहार से। मुझे कदापि ऐसा विश्वास नहीं था कि मेरे साथ तेरी ऐसी कठोरता रहेगी।'

वेत्रवती नदी ने मुस्कराहट की भाषा में कहा—'हे मेरे प्राणनाथ ! कृपया आप बताइये तो सही कि मेरा अपराध क्या है ?'

समुद्र ने आक्रोश की भाषा में उच्च स्वर से कहा—'वेत्रवती ! तेरे तीर पर बेंत के बहुत झाड़ हैं। परन्तु तूने आज तक एक भी बेंत का टुकड़ा लाकर मुझे नहीं दिया। सभी नदियां मुझे सम्मान देती हैं, तू सब वस्तुएं अपने पास रखती है जबकि सभी वस्तुओं पर मेरा अधिकार है।'

सागर की बातें सुनकर वेत्रवती नदी ने कहा—'हे स्वामिन् ! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। जब मैं वेगपूर्वक आती हूं, तब सारे बेंत के झाड़ नीचे झुक-कर पृथ्वी के साथ लग जाते हैं। जब मेरा प्रवाह कम हो जाता है, तब वे फिर ज्यों-के-त्यों खड़े हो जाते हैं। इससे मैं एक भी बेंत तोड़ नहीं पाती, अब आप ही बताइए क्या करूं ?'

पारावार ने कहा—हे सरिते ! तेरा कथन अक्षरशः सत्य है। वास्तव में विनय और नम्रता में बहुत बड़ी शक्ति निहित है। जो झुकना जानता है, वह कभी पराजित नहीं हो सकता। पानी के प्रबल प्रवाह के सामने बेंत विनयावनत होकर अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने में सफल होती है।'

संसार में विनय और नम्रता, शक्तिशाली महान् गुण हैं। जिसमें यह सद्गुण होता है उसकी सर्वत्र विजय होती है।

झुककर सारे बेंत तरु, बचा रहे निज प्राण।
'मुनि कन्हैया' फल सके, विनयवान इन्सान ॥

होनहार बलवान

एक सेठ था। व्यापारार्थ समुद्र की जहाज द्वारा चल पड़ा। जहाज समुद्र के किनारे पर ठहरी। वह सेठ नीचे उतरा और तट पर घूमने लगा। वहां पर एक झोंपड़ी

पड़ी थी। उसे उठाकर देखा तो उसमें निम्नोक्त श्लोक लिखा हुआ मिला—

"जम्मो कलिंग देशे, पाणि-गहण अंग देश मज्झम्मि।
मरणं समुद्दतीरे, अज्जो किं-किं भविस्सइ"॥

—अर्थात् कलिंग देश में जन्म हुआ। अंग देश में विवाह हुआ। समुद्र के तीर पर मरण हुआ। अब भी क्या-क्या होना और बाकी है, यह नहीं कहा जा सकता।

यह श्लोक पढ़कर वह सेठ विस्मय में झूलने लगा, अब फिर क्या अवशिष्ट है। उसने खोपड़ी उठाकर अपने सूटकेश में रख ली और जहाज में चढ़ गया। लगभग बारह वर्ष तक विदेश में व्यापार करके लाखों रुपये अर्जित कर देश के लिए रवाना हुआ। प्रतिदिन सूटकेश खोलकर खोपड़ी देख लेता है। वापस ताला लगा देता है। नगर में पहुंचा। परिजनों से मिला। सबके दिल में आनन्द की तरंगें तरंगित होने लगीं। स्वर्ण व हीरों के विभिन्न विभूषण सेठानी को देते हुए सेठ ने कहा—'यह बारह वर्षों की कमाई है, सुरक्षित रखना।' सूटकेश को गुप्त रखा। नहीं खोला, सेठानी ने सोचा—'इसको खोल नहीं रहे हैं। इसमें अमूल्य निधि है। अतः मेरे से गुप्त रख रहे हैं।' सेठ भोजन करने से पहले प्रतिदिन उस खोपड़ी को देख लेता है। अभी तक जैसी वह थी, वह खोपड़ी उसी रूप में है—तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

एक दिन की बात है कि सेठजी सूटकेश में ताला देना भूल गये। दुकान चले गये, सेठानी ऊपर पहुंची, सूटकेश खोला। खोपड़ी देखी, सेठानी के दिल में विविध प्रकार के विकल्प-संकल्प उत्पन्न हुए। ऐसा लगता है, सेठजी ने विदेश में किसी नारी से प्रेम किया है। वह मर गयी है किन्तु प्रेम में विह्वल बनकर उसकी खोपड़ी साथ लाये हैं। प्रतिदिन इसके दर्शन किये बिना भोजन भी नहीं करते। इस दृष्टि से मेरी सौत की खोपड़ी है। इस अनुचित कार्य की सजा भी अनुचित होनी चाहिए। उसके टुकड़े-टुकड़े कर आटे जैसी बनाकर उसकी कढ़ी बनायी। सेठ जी खाना खाने आये। खाद्य सामग्री के साथ-साथ कढ़ी भी परोसी गयी। सेठ ने कहा—'कढ़ी बड़ी स्वादिष्ट है।'

सेठानी बोली—'आपके रहस्य का मुझे पता लग गया। इस कढ़ी में आपकी प्रेमिका है। उसकी खोपड़ी को पीसकर कढ़ी में मिला दी है।' यह बात सुनते ही सेठ दंग रह गया। सोचा सूटकेश खुला रह गया। ऊपर गया, सम्हाला, खोपड़ी नहीं थी। सेठ ने मन-ही-मन सोचा, 'अज्जो किं किं भविस्सई' आज यह उक्ति सार्थक हो गयी। जो होनहार अवशिष्ट था, वह भी हो गया।

संसार में होनहार बड़ी बलवान् होती है, जो लिखा हुआ होता है वह होकर ही रहता है। 'यद्भाव्यं तद् भविष्यति—जो होना है वह होकर ही रहता है।'

होनहार के सामने, होती सबकी हार।
'मुनि कन्हैया' जो लिखा, नहीं टले साकार॥

विवेकहीनता

मियांजी ने कहा—'बीवी ! चोरी के लिए जा रहा हूं। क्या लाऊं ?' बीवी ने कहा—'भैंस लानी है। दूध, दही, छाछ की बड़ी सुविधा हो जाएगी।' मियांजी बोले—'बैल लाऊंगा, खेती में काम आयेगा।' आखिर परस्पर झगड़ा हुआ। वह क्रुद्ध होकर बोला—'अच्छा, जा रहा हूं। जैसा अवसर होगा, वैसा ही कर लूंगा। भैंस और बैल दोनों का अपने-अपने स्थान में अलग-अलग महत्त्व है।' मियां जी चल पड़े। समय काफी हुआ। सूर्य समुद्र में डूब गया। फिर भी मियांजी अपना कार्य पूर्ण कर घर नहीं पहुंचे। बीवी उनकी प्रतीक्षा करती-करती थक गयी। वह जोर से बोल पड़ी—'उग्यो चांद हुयो उजालो, अबहुं न आयो चोरी वालो।'

पुनः-पुनः इस गीत की पुनरावृत्ति हो ही रही थी, इतने में मियांजी आ टपके। जोर से बोले—'आयो ऊभो फल सो खोल।' वह बोली—'भैंस लाया के बेला बोल।'

'नहीं भैंस, नहीं बैल, सुथण गयी गधै रे गेल।'

बीवी गुस्से में लाल-पीली हो गयी। विवेकहीन होकर बोली—

'हाय निपुता, बठै रह्या दो जूता।
हाय तनैं रोऊं, लोटो ल्याय पग धोऊं।'

मियांजी ने अपनी कहानी सुनाते हुए कहा—'बीवी, क्या बताऊं, भैंस और बैल तो मिले नहीं। काफी यत्न किया, किन्तु तकदीर में लिखे बिना एक दमड़ी भी नहीं मिल सकती। मैं आ रहा था; गांव के बाहर मुझे एक गधा मिला। उसे पकड़कर सूथण से बांधकर ला रहा था। अचानक वह भाग गया। सूथण भी मेरी ले गया। उसके पीछे-पीछे दौड़ा। दृष्टि चूकने पर पैर अशुचि से भर गया। पानी का लोटा ला, पैरों को साफ करना है।'

जिस व्यक्ति के विवेक नहीं होता, वह हर दृष्टि से अपमानित और तिरस्कृत होता है। विवेकहीनता ही दुःख का हेतु है। स्वयं में बुद्धि नहीं, उपज नहीं, दूसरों का कहना माने नहीं, उसे मियांजी की भांति दुःख पाना ही पड़ता है।

नहीं बुद्धि शालीनता, बिलकुल नहीं विवेक।
'मुनि कन्हैया' वह मनुज, पाता दुख अतिरेक॥

ज्ञान से विकास

एक बुद्धिमान राजा था। उसे विलक्षण मंत्री की आवश्यकता थी, खोज करने लगा। राज-दरबार में ज्ञानसिंह नाम का एक ठाकुर आया, उसकी परीक्षा लेने के

लिए नृप ने कहा— 'ठाकुर साहब ! यह स्वर्ण का डिब्बा ले जाइए, मेरे मित्र को दे आइए।'

ठाकुर रवाना हुआ। मित्र महीपति के पास पहुंचा, बद्धांजलि नमस्कार किया। मखमली वस्त्र से ढका हुआ स्वर्ण का डिब्बा श्रीचरणों में रखता हुआ बोला—'यह लीजिए, आपके अनन्य साथी भूपति का अनुपम अमूल्य उपहार।'

राजा ने डिब्बा खोला। राख देखकर राजा लाल-पीला हो गया, अधरावलि मे कम्पन बढ़ा। जोर से बोला—'यह क्या उपहार? राख लगाकर क्या बाबा बनना है?'

ज्ञानसिंह ने अपनी बुद्धि से उत्तर देते हुए कहा—'राजन् ! गुस्सा मत कीजिए। अभी वहां एक बहुत बड़ा यज्ञ कराया गया था, उसमें नव करोड़ की धनराशि खर्च हुई थी। उस यज्ञ की यह शुभ राख है, इसका प्रभाव है कि जिसके खजाने में यह राख रहेगी, उसका खजाना कभी खाली नहीं होगा।'

यह बात सुनते ही राजा खुश हो गया। राख का थोड़ा-थोड़ा वितरण किया। राजा ने ज्ञानसिंह को पुरस्कृत किया और मित्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

ज्ञानसिंह चला, नगर में पहुंचा, सारा हाल सुनाया। उसकी बुद्धि-विलक्षणता पर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ। ज्ञानसिंह को मंत्री-पद से विभूषित किया गया। राज्य की सार-संभाल करने की सारी जिम्मेदारी दी गयी।

जो बुद्धि और चतुराई से उत्तर देता है, उसकी हर दृष्टि से उन्नति होती है। विकास होता है।

बुद्धिमान का हर कदम, होता अमित विकास।
'मुनि कन्हैया' ज्ञान बिन, होता नहीं प्रकाश॥

अविनीत शिष्य

एक चेला था। वह बड़ा अहंकारी, आलसी एवं लड़ाकू था। गुरु के सामने अंट-संट अनर्गल बोलने में तो वह तनिक भी नहीं सकुचाता था। गुरु-आज्ञा पर जरा भी ध्यान नहीं रखता था। अपनी मनमानी करता था। जिस बात को पकड़ लेता उसको कभी भी छोड़ता नहीं था। निजी दुराग्रह पर डटा रहता था। हर प्रश्न का उत्तर वंचनापूर्वक देता था। गुरुजी ऐसे उद्दंड एवं अविनीत शिष्य से तंग आ गये। गुरुजी बड़े सरल एवं शान्त स्वभावी थे। करें तो क्या करें? जो जैसा होता है, उसको ज्यों-त्यों करके निभाना ही पड़ता है।

एक दिन की बात है गुरु और शिष्य दोनों कमरे में शयन कर रहे थे। अचा-नक वर्षा होने लगी। गुरु ने शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहा—'चेला ! बाहर

जो दीपक जल रहा है, उसे बुझाना मैं भूल गया। तुम उठो और दीपक बुझा दो।' चेला बड़ा आलसी था। वह जोर से कर्कश वाणी में बोला—'पूज्यवर! आप अपने मुंह को कपड़े से ढांक लें, आपके खातिर तो दीपक बुझ ही गया।'

गुरुजी बड़े फक्कड़ थे। सोचा इस आलसी को एक बार उठाना जरूर है। उन्होंने कहा—'शिष्य! देखकर आओ, वर्षा हो रही है क्या? 'शिष्य ने कुबुद्धि चलायी और कुत्ते को तू-तू कर बुलाया। कुत्ते पर बूंदें देखकर बोला—'गुरुवर! अभी वर्षा हो रही है।' गुरुजी उसकी वक्रबुद्धि पर चकित थे। उनके दिल में थी, चेले को एक बार अवश्य उठायें। गुरुजी ने चेले को संबोधित करते हुए कहा—'शिष्य! उपाश्रय का दरवाजा खुला रह गया। उसे बन्द कर दो।' शिष्य ने सोचा—'गुरुजी तो मुझे ही काम सम्हलाते हैं। स्वयं तो कुछ भी नहीं करते हैं। बैठे-बैठे हुकम देते रहते हैं।' वह रोषभरी वाणी में बोल पड़ा—'गुरुजी! दो काम तो मैंने कर दिये, यह छोटा-सा एक काम तो आप ही कर लीजिए।' यों कह-कर मुंह ढांककर सो गया, किन्तु उठा नहीं। अविनीत शिष्य की उच्छृंखलता पर गुरुजी हैरान रह गये। आखिर उन्होंने उस अविनीत शिष्य को अपने संघ से अलग कर दिया।

अविनीत एवं उद्दंड शिष्य का कभी भी विकास नहीं हो सकता, विनय धर्म का मूल माना जाता है। जीवन के हर पहलू में विनय परम अपेक्षित है। अविनीत को कभी भी ज्ञान नहीं देना चाहिए।

दुनिया में अविनीत का, होता नहीं विकास।
'मुनि कन्हैया' विनय ही, सद्‌गुण का आवास।।

नयसार

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में 'महावप्र' नाम की विजय। तत्रस्थ 'जयती नगरी' में शत्रुमर्दन राजा राज्य करता था। उसी राज्य में पृथ्वी-प्रतिष्ठान नाम का एक ग्राम था। वहां पर 'नयसार' नाम का श्रद्धाशील धार्मिक व्यक्ति रहता था। वह सरल स्वभावी एवं मिष्टभाषी होने के साथ-साथ लोकप्रिय भी था। मद्य, मांस, जुआ आदि दुर्व्यसनों से वह बिलकुल मुक्त था। भवन-निर्माण हेतु बड़े-बड़े काष्ठ लेने के लिए वह कई गाड़ियां लेकर भयंकर जंगल में गया। गर्मी बढ़ने लगी। भूख और तृषा से वह व्याकुल हो गया। साथ में आए हुए सभी व्यक्ति एक विशाल वृक्ष की छाया में एकत्रित होकर भोजन करने की तैयारी करने लगे। नयसार ने सोचा—कोई अतिथि आ जाये तो आतिथ्य-सत्कार करने के पश्चात् ही भोजन करें।

अचानक वहां पर कुछ मुनि आ गये। वे पद-यात्रा, भूख, तृषा व गर्मी की थकान के कारण काफी क्षुब्ध थे। मुनियों के दर्शन पाकर नयसार रोमांचित हो उठा। अपने आपको धन्य समझने लगा। उसने मुनिजनों को नमस्कार करते हुए पूछा—मुनिप्रवर! इस भयावह अरण्य में आपका आगमन कैसे हुआ? यहां तो बड़े-बड़े योद्धा-गण भी आते हुए कतराते हैं।

मुनि-अग्रज ने कहा—हम किसी अन्य संघ के साथ विहार कर रहे थे। किसी गांव में भिक्षार्थ गए हुए थे। वापस आए तो देखा कि संघ वहां नहीं है। मन में सोचा। हिम्मत रखना हमारा परम धर्म है। हमने प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग भूलकर चलते-चलते यहां पहुंच गये।

नयसार बोला—महाराज! उस संघ के सभी लोग बड़े निर्दयी थे। मुनिजनों के साथ ऐसा विश्वासघात करना काफी लज्जास्पद है। किन्तु मेरा अहो-भाग्य है कि ऐसे विकराल जंगल में भी आपके दर्शन हुए। कृपया वृक्ष की छांह में विश्राम कीजिए और मुझे आहार-पानी के लाभ से लाभान्वित करें। भोजनादि कार्य से निवृत होने के पश्चात् मुनि-श्रेष्ठ ने नयसार को प्रतिबोध देते हुए मानव-जीवन के महत्त्व पर प्रकाश डाला। नयसार के साथ चलकर मुनियों को नगर का मार्ग बताया और पुनः उद्बोधन की प्रार्थना की। मुनिप्रवर के प्रताप से उसे सम्यक्त्व का लाभ मिला।

नयसार के विचारों में परिवर्तन आया। धार्मिक अनुष्ठान में विशेष रुचि रखने लगा। तत्त्व की जानकारी करने के लिए अपने जीवन का अधिकतम समय लगाने लगा। अन्त में महामन्त्र का स्मरण करता हुआ कालधर्म को प्राप्त कर वह प्रथम स्वर्ग में एक पल्योपम की स्थिति वाला देव बन गया।

रखकर के सद्भावना, गया स्वर्ग नयसार।
प्राप्त किया मुनि संग से, सम्यक् बोध उदार॥

जाति का मद

इसी भरत क्षेत्र में 'विनीता' नाम की नगरी में आदीश्वरनाथ भगवान के सुपुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे। नयसार का जीव प्रथम देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर सम्राट भरत के अंगज के रूप में उत्पन्न हुआ। बालक के शरीर से मरीचि (किरणें) निकल रही थीं। इसलिए परिवार वालों ने उसका नाम 'मरीचि' रख दिया।

भगवान ऋषभनाथ का पदार्पण 'विनीता' नगरी में हुआ। मरीचि भी अपने परिवारवालों के साथ समवसरण में प्रभु को वन्दन करने के लिए आया। भगवान

की वाणी सुनकर वह दीक्षित हो गया। वर्षों तक संयम का पालन किया। भयंकर परीषह उत्पन्न होने के कारण मुनि मरीचि का मन साधुत्व से विचलित हो गया। मुनि लिंग का त्याग करके त्रिदंडी संन्यास धारण कर लिया। वेश की भिन्नता देखकर लोग पूछते—आपने यह परिवर्तन क्यों किया ?

मरीचि बोला—मैं श्रमण धर्म के नियमों का सम्यक् पालन नहीं कर सकता, अतः मुझको परिवर्तन करना पड़ा।

मरीचि धर्म-दलाली करने में सिद्धहस्त था। लोगों को तत्त्व बताकर भगवान ऋषभनाथ की शरण ले जाता और दीक्षा दिलवाता था। विहार में भगवान के साथ-साथ ही वह रहने लगा।

बहुत समय बीत जाने के पश्चात् भरत चक्रवर्ती ने पूछा—भगवन ! क्या इस सभा में कोई ऐसा व्यक्ति है जो भविष्य में तीर्थंकर होगा ?

भगवान ने कहा—भरत ! तुम्हारा पुत्र मरीचि इस अवसर्पिणी काल में 'महावीर' नाम का चौबीसवां तीर्थंकर होगा और पोतनपुर में त्रिपृष्ठ नाम का प्रथम वासुदेव तथा महाविदेह की 'मोका' नगरी में प्रिय-मित्र नामक चक्रवर्ती होगा।

भरत चक्रवर्ती मरीचि के पास पहुंचे और बोले—भगवान ने तुम्हारा भविष्य शुभ बतलाया है। भरतेश्वर का सारा संवाद सुनते ही मरीचि के हृदय में आनन्द की तरंगें तरंगित होने लगीं। ताली पीट-पीटकर वह नाचने लगा और बाढ़ स्वर से अहं की भाषा में बोलने लगा—इस संसार में मेरे-जैसा भाग्यशाली कोई नहीं है। मेरे पिता इस युग के प्रथम चक्रवर्ती हैं। मेरे पितामह प्रथम तीर्थंकर हैं। मैं प्रथम वासुदेव बनूंगा। चक्रवर्ती की सम्पदा भी मुझे मिलेगी। अन्त में पितामह जैसा अन्तिम भगवान बनकर साध्य को प्राप्त करूंगा। मेरा कुल कितना उत्तम है ? मेरे कुल जैसा उच्चकुल किसी का नहीं है। सब मेरे सामने तुच्छ हैं। हीन हैं। दीन हैं। मुझे अब किसी की भी परवाह नहीं है।

इस प्रकार वह अहंकार के महासागर में डुबकियां लेता हुआ भुजास्फोट करता हुआ जाति के मद में अपने आपको भूल गया। अभिमान के शिखर पर चढ़े हुए 'मरीचि ने 'नीच-गोत्र' का बन्ध कर लिया।

मद मत करना जाति का, मद से अति नुकसान।
बांधा पुत्र मरीचि ने, नीच गोत्र का स्थान।

मरीचि द्वारा नया पंथ

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ भगवान का निर्वाण होने के पश्चात् वह मरीचि साधुओं के साथ विहरण करने लगा। कुछ ही समय के पश्चात्

मरीचि व्याधि-ग्रस्त हुआ। उसके चित्त में विचार उत्पन्न हुआ कि व्याधिमुक्त होते ही मैं एक शिष्य बनाऊंगा, जिससे समय पर सेवा-सुश्रूषा हो सके। शिष्य की खोज में वह इधर-उधर भटकने लगा। 'कपिल' नाम का एक कुल-पुत्र मिला। मरीचि ने कपिल को जैन-दर्शन के विषय में विस्तार से बताते हुए अपने धर्म की ओर आकर्षित किया। उसके हृदय में दीक्षित होने की भावना जागृत हुई। उसने मरीचि से पूछा—अर्हत् धर्म उत्तम है, तो आप उसका पालन क्यों नहीं करते ?

मरीचि ने कहा—मैं उस धर्म का पालन नहीं कर सकता। कपिल ने पूछा—क्या आपके मन में धर्म के लिए स्थान नहीं है ? स्वार्थ भावना से परिलिप्त मरीचि ने कहा—जिनेश्वरदेव के मार्ग में धर्म है और मेरे मार्ग में भी धर्म है।

कपिल मरीचि का शिष्य बन गया। मिथ्या उपदेश व असत्य प्ररूपणा के कारण मरीचि ने कोटि-कोटि सागरोपम परिमाण कर्म उपार्जन कर लिये। पाप की आलोचना किये बिना ही अनशनपूर्वक मरीचि आयु पूर्ण कर ब्रह्म देव लोक में उत्पन्न हुआ। उसके शिष्य कपिल ने भी आसूर्य आदि कई शिष्य किये और अपने मत को 'सांख्य' नाम से घोषित कर दिया। अपने मत का प्रचार करते हुए आगे बढ़े। तब से यह सांख्य मत इस धरातल पर प्रचलित हो गया।

मरीचि का जीव ब्रह्म देवलोक से च्यवकर कोल्लास ग्राम में कौशिक नाम का ब्राह्मण हुआ। विषय, काम, हिंसा, असत्य, लोभ आदि पापकारी प्रवृत्ति में प्रवृत्त रहता हुआ वह त्रिदंडी हुआ। संसार-सागर में भ्रमण करता-करता फिर वह 'स्थाणु' ग्राम में 'पुष्पमित्र' नामक ब्राह्मण हुआ। वहां भी वह त्रिदंडी हुआ। आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां च्यवकर चैत्य नामक स्थान में 'अग्न्युद्योत' नाम का द्विज हुआ। वहां की आयु पूर्ण कर ईशान देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां से च्यवकर 'मन्दिर' नाम के सन्निवेश में छप्पन लाख पूर्व की आयु वाला 'अग्नि-भूत' विप्र हुआ। वहां से सनत्कुमार देवलोक में गया। वहां से श्वेताम्बिका नगरी में 'भारद्वाज' नामक द्विज हुआ। वहां की आयु समाप्त कर 'माहेन्द्र-कल्प' में उत्पन्न हुआ। वहां से राजगृह में स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। वहां त्रिदंडी प्रव्रज्या ग्रहण कर चौंतीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर ब्रह्म देवलोक में गया। वहां से च्यवकर अनेक भवों में भटका और कई प्रकार के भव किये।

कर्मों के संयोग से, भटक रहा है व्यक्ति।
फिर भी मनुज न छोड़ता, विषय से अनुरक्ति ॥

त्रिपृष्ठ वासुदेव

दक्षिण भारत में पोतनपुर नाम का एक विशाल सुरम्य नगर था। वहां पर 'रिपु-प्रतिशत्रु' नाम का अधिपति था। उनकी पटरानी मृगावती की कुक्षि में मरीचि का जीव भ्रमण करता-करता आ जाता है। मृगावती देवी ने सात महास्वप्न देखे—केसरी सिंह, लक्ष्मी देवी, सूर्य, कुंभ, समुद्र, रत्नों का ढेर और निर्धूम अग्नि।

इन स्वप्नों का फल बतलाते हुए पाठकों ने कहा—देवी के गर्भ में ऐसा जीव आया है कि भविष्य में 'वासुदेव' पद को प्राप्त कर तीन खण्ड का नायक बनेगा। यह समाचार वायु की भांति सारे शहर में फैल गया। यथा-समय पुत्र का जन्म हुआ। जन्मोत्सव बड़े ठाट-बाट से मनाया गया। द्वितीया के चन्द्रमा की भांति वह बढ़ता ही गया। बालक की पीठ पर तीन बांस का चिह्न देखकर 'त्रिपृष्ठ' नाम से सब पुकारने लगे। बाल्यावस्था समाप्त होने पर तरुणावस्था में परिवर्तित हुआ। विवाह हुआ। राज्याभिषेक हुआ। त्रिपृष्ठ वासुदेव ३२००० रानियों के साथ भोग भोगता हुआ अपनी जिन्दगी का आस्वाद लेने लगा। महारानी स्वयंप्रभा से 'श्री विजय' और 'विजय' नाम के दो पुत्र हुए। बहुत वर्ष बीत जाने के पश्चात् वासुदेव के पास कुछ गायक आये और करबद्ध होकर बड़े विनम्र शब्दों में बोले—महाराज! हम आपको कुछ संगीत सुनाना चाहते हैं।

वे गायन-कला में बड़े दक्ष थे। हर एक के मन को आकर्षित करने की उनमें अद्वितीय कला थी। वासुदेव की आज्ञानुसार उन्होंने विभिन्न प्रकार के मधुर संगीत सुनाकर वासुदेव को मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया। उन संगीतज्ञों से प्रभावित होकर वासुदेव अपनी संगीत मण्डली में उन सबको नियोजित कर समय-समय पर संगीत का रसास्वादन लेते रहते थे। एकदा वासुदेव उन गीत विशेषज्ञों के सुरीले, सरस व चित्ताकर्षक संगीतों में मस्त होकर शय्या में सो रहे थे। बड़ी तन्मयता से सुनते-सुनते मुग्ध बन रहे थे। उन्होंने शय्या-पाल को आदेश देते हुए कहा कि 'मुझे नींद आये तब संगीत बन्द करवा देना।' इसी आदेश के साथ-साथ कुछ ही देर में वासुदेव को नींद आ गई किन्तु शय्यापाल ने संगीत बन्द नहीं करवाया। अपितु वह संगीत के रस में इतना बेसुध हो गया कि बन्द करवाना ही भूल गया। संगीत का कार्यक्रम रातभर उसी गति से चलता रहा। पश्चिम रात्रि में जब वासुदेव की आंखें खुलीं तो आश्चर्य का पार नहीं रहा। अरे! यह क्या? अभी तक गायक मण्डली का कार्यक्रम ज्यों का त्यों चल रहा है। क्या बात है? शय्यापाल को बुलाकर पूछा—अरे मूर्ख! मुझे नींद आने के बाद संगीत मण्डली को बन्द क्यों नहीं किया? मेरी आज्ञा का पालन क्यों नहीं हुआ? सच बोलो। अन्यथा सजा मिलेगी।

शय्यापाल सकपकाता हुआ बोला—महाराज! क्या निवेदन करूं, मैं स्वयं

इनके सरस संगीतों व सुमधुर स्वर-लहरी में इतना उलझ गया कि रात बीत जाने का भी भान नहीं रहा। ऐसी गायक मण्डली का योग भाग्य से ही मिलता है।

शय्यापाल की बातें सुनते ही वासुदेव के हृदय में क्रोधानल की चिनगारियां उछलने लगीं। आकृति बदल गई। अधरों में कम्पन बढ़ने लगा। सभा में शय्यापाल को आमंत्रित कर अनुचरों को आदेश दिया गया कि 'इस संगीतप्रिय शय्यापाल के कानों में उबलता हुआ रांगा भर दो। इसने आज्ञा का उल्लंघन किया है। रागरागिनियों में मुग्ध होकर इसने अपने कर्तव्य को भी विस्मृत कर दिया। धिक्कार है इसके जीवन को। संगीत मण्डली को रात भर नहीं छोड़ा और स्वयं राग में रंजित हो गया।'

वासुदेव की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता है? वे शय्यापाल को पकड़कर एकान्त अटवी में ले गये और उसके कानों में उबलता हुआ रांगा भर दिया। वह असह्य पीड़ा को भोगता हुआ त्राहि-त्राहि करता हुआ काल-धर्म को प्राप्त हुआ। क्रूरतम परिणामों के कारण वासुदेव ने गाढ़ व तीव्र कर्म उपार्जन कर लिये।

महा आरम्भ, महा परिग्रह, विषयासक्ति, राज्यमूर्च्छा आदि दुष्ट अध्यवसाय से नरक का आयु बांधकर चौरासी लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर सातवीं नरक का प्रवासी बन गया है।

त्रिपृष्ठ वासुदेव (मरीचि का जीव) सातवीं नरक का आयु पूर्ण कर केसरीसिंह हुआ। वह फिर मृत्यु पाकर चौथी नरक में गया। ऐसे त्रियंच और मनुष्य आदि गतियों में भटकता हुआ जन्म-मरण करता रहा। कर्मों का उपार्जन सहज है। कर्मों का भोग कठिन होता है।

कर्मोपार्जन सहज है, कठिन-कठिनतम भोग।
वासुदेव भव में भमे, कर्मों के संयोग॥

पुण्योदय का फल

मरीचि का जीव विभिन्न भवों में भटकता हुआ शुभ कर्मों के योग से पूर्व महाविदेह की मूका नगरी में उत्पन्न हुआ। नगरी के सम्राट का नाम था धनंजय और महारानी का नाम था धारिणी। उन्होंने चौदह स्वप्न देखे। शुभ वेला में जन्म हुआ। बालक का नाम 'प्रियमित्र' रखा दिया। सम्राट धनंजय के मानस में वैराग्य अंकुर प्रस्फुटित हुआ। अपने पुत्र को राज्य-भार सौंपकर दीक्षित हो गया। प्रियमित्र नरेश न्यायनिष्ठ और लोकप्रिय था। चौदह महारत्न उत्पन्न हुए। छह खण्ड साधकर वह प्रामाणिकता पूर्वक सुचारु रूप से राज्य का संचालन करने लगा।

राजकीय सुयोग्य व्यवस्था होने के कारण चक्रवर्ती प्रियमित्र की विजय-पताका समस्त धरातल पर लहराने लगी। पूर्व अर्जित पुण्य कर्म के उदय से हर क्षेत्र में चतुर्मुखी विकास होने लगा। वह जहां भी गया वहां उसे आशातीत सफलता मिली। जन-जन के दिल को जीतने वाला नरेश सबके लिए श्रद्धापात्र बन गया।

मूका नगरी के बाहर उद्यान में पोट्टिल नाम के आचार्य पधारे। हजारों-हजारों लोग गुरुवर का उपदेश सुनने के लिए धर्म-सभा में पहुंचे। चक्रवर्ती प्रियमित्र भी अपने परिवारवालों को साथ लेकर वन्दन करने के लिए आये। आचार्यवर का पीयूष भरा संदेश सुनकर चक्रवर्ती के हृदय-पटल में संसार में विरक्ति की भावना जागृत हो गई। पुत्र को राज्याभिषेक करके वे दीक्षित हो गए। उन्होंने कोटि वर्ष तक प्रचण्ड तप किया। चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य भोगकर महाशुक्र नामक देवलोक के सेवार्थ विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए।

विषय सुखों को त्यागकर, जो तजता संसार।
'मुनि कन्हैया' हर जगह, उसकी जय-जयकार॥

तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध

प्रियमित्र चक्रवर्ती का जीव महाशुक्र देवलोक से च्यवकर भरत-क्षेत्र की छत्रा नगरी में जितशत्रु राजा की भद्रा रानी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'नन्दन' दिया गया। वह बड़ा हुआ। हर दृष्टि से योग्य बना। जितशत्रु राजा अपने प्रिय पुत्र नन्दन को राज्य सौंपकर प्रव्रजित हो गए। नन्दन नृप हर क्षेत्र में निष्णात बुद्धि का धनी था। राज्य संचालन व्यवस्था में भी कुशल था। प्रशासन के प्रत्येक विभाग में न्याय-नीति को महत्त्व देता था। प्रजा पर अच्छा प्रभाव था। भूप की सुयश सौरभ से सारा देश सुरभित था। इन्द्र के समान राज्य-संपदा का उपभोग करता हुआ आगे बढ़ने लगा। अंत में सांसारिक ऐश्वर्य से विरक्त होकर पोट्टिलाचार्य के पास आकर प्रव्रज्या के प्रशस्त पथ को स्वीकार कर लिया। महीने-महीने की घोर तपस्या करते हुए निर्दोष संयम व शुभ अध्यवसाय से अपनी आत्मा को उज्ज्वल करने लगे। ज्ञान, दर्शन व चरित्र की सम्यक् आराधना करते हुए शुद्ध परिणामों की उत्कृष्टता से मुनिश्रेष्ठ ने तीर्थंकर नाम-कर्म का बन्ध किया।

आयु की स्वल्पता जानकर मुनिराज ने संयम की आलोचना-प्रत्यालोचना प्रारम्भ की। अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म की शरण ले आत्मा में लीन हो गए। पूर्वकृत दुष्कर्मों की निन्दा सभी जीव-जन्तुओं से हार्दिक क्षमा-याचना, नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करते हुए अनशन स्वीकार कर लिया। साठ

दिन तक अनशन व्रत का पालन कर पच्चीस लाख वर्ष की आयु पूर्ण कर नंदन मुनि 'प्राणत' नाम के दसवें देवलोक के पुष्पोत्तर विमान की उपपात शय्या में उत्पन्न हुए। अन्तर्मुहूर्त में ही वे महान वैभव सम्पन्न देव हो गए।

देवलोक की आभा छटा देखकर वे आश्चर्य के सागर में डूब गये। सोचा—अरे ! मैं कहां आ गया ? यह देव विमान ऋद्धि सम्पदा कैसे प्राप्त हुई ? उन्होंने अवधि ज्ञान से अपना पूर्व भव और अपनी साधना देखी। यह सब तपस्या का सुफल है। जिन धर्म का अनुपम प्रभाव है। धर्म की आराधना से ही मुझे यह देव सम्पदा प्राप्त हुई है।

नन्दन देव संगीत सुनने में लीन हो गए। वहां के यथायोग्य भोग भोगने लगे। उनकी स्थिति बीस सागरोपम प्रमाण थी। देव सम्बन्धी आयु पूर्ण होने के छह महीने पूर्व अन्य देवों की कान्ति म्लान हो जाती है। शक्ति क्षीण हो जाती है और खेद खिन्न बन जाते हैं। परन्तु नन्दन देव विशेष सुशोभित होने लगे। शारीरिक कांति दुगुनी हो गई। क्योंकि तीर्थंकर होने वाली आत्मा उत्कृष्ट पुण्यात्मा होती है। उन्हें तनिक भी क्लान्त नहीं होना पड़ता। यह सब तीर्थंकरों की असाधारण अविरल विशेषताएं होती हैं।

तीर्थंकर वर गोत्र का, शुभ कर्मों से बन्ध।
नन्दन मुनि का मिट गया, भव-भव का सब द्वन्द्व॥

देवानन्दा की कुक्षि में

इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे का अधिकांश भाग सम्पन्न हो चुका था। केवल पिचहत्तर वर्ष, नौ मास और पन्द्रह दिन अवशेष रहे थे। इस जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत-क्षेत्र में 'दक्षिण ब्राह्मण कुण्ड' नाम का ग्राम था। उसमें कोडालस गोत्रीय 'ऋषभदत्त' नाम का प्रतिष्ठान व नीतिवान ब्राह्मण प्रवास करता था। वेद-वेदांग, पुराण आदि अनेक शास्त्रों का वह विशिष्ट विज्ञाता था। श्रमणोपासक श्रावक था। जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों का वेत्ता था। उसकी धर्मपत्नी जालन्धरायण गोत्रीय देवानन्दा सुन्दर सुलक्षणी एवं लज्जावती थी। वह जैन धर्म के प्रति श्रद्धा-वान थी। जिनेश्वर देव की उपासिका होने के साथ-साथ अच्छी तत्त्वज्ञा एवं पाप-भीरु महिला थी।

नन्दन देव दसवें देवलोक से आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को हस्तोत्तरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र में च्यवकर देव भव के तीन ज्ञान सहित देवानन्दा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। देवानन्दा ब्राह्मणी ने तीर्थंकर के योग्य चौदह महास्वप्न देखे। देवानन्दा उठीं और अपने पति के चरणों में सभक्ति निवेदन करती हुई बोली—मुझे ऐसे उत्कृष्टतम

चौदह स्वप्न आये हैं। पंडित ऋषभदत्त ने चिंतनपूर्वक कहा—प्रिये! तू बड़ी भाग्यवती नारी है। इन स्वप्नों से ऐसा लगता है कि तुम्हारी कुक्षि में एक त्रिलोक-पूज्य महान् विशिष्ट आत्मा का आगमन हुआ है। ऐसे अवतारी पुरुष के उत्पन्न होने से हम, हमारा कुल धन्य होगा। हम हर दृष्टि से धन्य बन जाएंगे। अब कदम-कदम पर जय-विजय की बांसुरी बजती रहेगी।

पुण्यवान के जन्म से, होता अति उल्लास।
'मुनि कन्हैया' पुन्य से, होता परम विकास॥

संहरण और स्थापन

गर्भ की सुरक्षा करती हुई देवानन्दा आनन्द के मानसरोवर में डुबकियां लगाती हुई समय को सार्थक बना रही थी। बयालीस रात-दिन पूर्ण होने के पश्चात् प्रथम देवलोक के इन्द्र का आसन कंपित हुआ। उन्होंने देखा इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में आये हैं। मन-ही-मन चिन्तन चला। भगवान का जन्म तो क्षत्रिय कुल मे ही होता है। याचक कुल में नहीं होता। मरीचि के भव में कुलमद से बंधे हुए कर्म अब उदय में आए हैं। उसी का परिणाम है कि भगवान को याचक कुल मे आना पड़ा। अब मेरा कर्तव्य है कि इस गर्भपिण्ड का संहरण करके किसी योग्य माता की कुक्षि में स्थापित करूं। अन्वेषण करते-करते पता चला कि क्षत्रियनगरकुंड नगर के अधिपति सिद्धार्थ नृप की महारानी त्रिशलादेवी हर दृष्टि से योग्य महिला हैं। त्रिशला देवी भी इस समय गर्भवती हैं। शक्रेन्द्र ने अपने सेनापति हरिण-गमेषी देव को आदेश दिया कि देवानन्दा से गर्भ को बड़ी चतुराई से संहरण करके त्रिशलादेवी की कुक्षि में स्थापित करो व उसके गर्भ को देवानन्दा की कुक्षि में रख दो।

आश्विन कृष्णा त्रयोदशी को हस्तोत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्र में हरिण-गमेषी देव उत्तर-वैक्रिय कर देवानन्दा और परिवार को अवस्वापिनी निद्रा में लीन कर दिया। भगवान को अपने हाथों में ग्रहण किया और क्षत्रियकुंड के राजभवन में आया। महारानी त्रिशलादेवी को निद्रालीन कर अशुभ पुद्गलों को हटाया। शुभ पुद्गलों का प्रवेश कराके भगवान को स्थापित कर दिया। इसके बाद त्रिशला जी के गर्भ को लेकर देवानन्दा की कुक्षि में रख दिया। हरिण-गमेषी देव ने अपना कार्य पूर्ण कर स्वस्थान की ओर प्रस्थान कर दिया।

अवधि ज्ञान के माध्यम से भगवान सब कुछ जान ही रहे थे। देवानन्दा के गर्भ में आने के पश्चात् भगवान जान गये कि मेरा देवलोक से च्यवन होकर मनुष्य गति में आगमन हो गया है। च्यवमान समय भगवान नहीं जान सकते क्योंकि वह

सूक्ष्म समय होता है, जो छद्मस्थ व्यक्तियों के लिए अज्ञेय है। गर्भ संहरण के पूर्व भी भगवान जानते थे कि मेरा यहां से संहरण होगा।

पूर्व भवार्जित कर्म का, निश्चित है परिणाम।
कर्मों के संयोग से, पाते दुःख तमाम॥

नया आनन्द : नया फल

देवानन्दा को स्वप्न आया कि चौदह स्वप्नों का त्रिशलादेवी हरण कर रही है। वह घबराकर उठी। रुदन करने लगी। शोक में विह्वल बन गयी। मेरी अलौकिक निधि मेरे से छीन ली गयी। क्या करूं? कोई उपाय नहीं। 'पूर्व-संचित कर्मों का भोग भोगना पड़ता है।' त्राहि-त्राहि करती हुई अपनी तकदीर को कोसने लगी।

त्रिशलादेवी ने ज्योंही चौदह महास्वप्न देखे त्योंही रोमांचित हो गई। प्रसन्नता का पार न रहा। उठी और सिद्धार्थ के शयन-भवन में आकर मधुर व सूक्ष्म स्वर में बोलने लगी—'महाराज! मुझे चौदह स्वप्न आये हैं।' एक-एक स्वप्न की गरिमा व्यक्त करते हुए नृपति ने कहा—'देवानुप्रिये! तुम्हारे ये स्वप्न वास्तव में बहुत ही उच्च स्तर के स्वप्न कहलाते हैं। ये सारे के सारे स्वप्न श्रेयस्कर हैं, मंगलकारी हैं।

'लगता है इन स्वप्नों के प्रताप से भाग्यशाली महान पुत्र की प्राप्ति तो होगी ही, इसके साथ-साथ अन्य लाभ भी होगा। हमारा पुत्र योग्यवय प्राप्त कर महान् राज्याधिपति होगा। कुल को चमकाने वाला होगा। सूर्य के समान तेजस्वी होगा।'

स्वप्नों का फल प्रशस्त श्रवण कर महारानी बहुत ही प्रसन्न हुई। हाथ जोड़कर बड़े विनम्र शब्दों में बोली—'पतिदेव! आपका कथन अक्षरशः सत्य है।' यों कहकर शयनागार में शय्यारूढ़ होकर चिन्तन करने लगी। अब निद्रा लेना उचित नहीं। ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय व धर्म-जागरण आदि सद्‌विचारों में लीन होना ही श्रेयस्कर है।

सिद्धार्थ नरेश ने राज्यसभा में पहुंचते ही स्वप्नविदों को आमंत्रित किया। महारानी के स्वप्नों को सुनाते हुए नृप ने कहा—इनका फल क्या है? परस्पर विचार-विनिमय कर स्वप्न-वेत्ता बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में बोले—

'महाराज! स्वप्नशास्त्र में बहत्तर शुभ स्वप्नों का उल्लेख है, जिसमें से बयालीस स्वप्न तो सामान्य हैं और तीस महा-स्वप्न हैं। उन तीस महास्वप्नों में से चौदह स्वप्न महारानी ने देखे हैं। आप बड़े भाग्यशाली हैं। इन महास्वप्नों के योग से आपके राज्य में समस्त दृष्टियों से अतीव लाभ होगा। सर्वत्र आपकी कीर्ति-ध्वजा लहरायेगी। गर्भकाल सम्पन्न होते ही अद्वितीय पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। वह

कुलाधार व कुल दीपक होगा। यौवन वय प्राप्त होने पर वह प्रबल पराक्रमी महावीर होगा। चक्रवर्ती सम्राट् अथवा धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर होकर जैन-धर्म की प्रभावना करेगा। महास्वप्नों का फल सुनकर सिद्धार्थ बांसों उछलने लगे। अपने आपको कृतपुण्य समझते हुए स्वप्नवेत्ता को प्रतिदान देकर सम्मानपूर्वक विदा किया।

स्वप्नों का फल श्रवण कर, हर्षित अति सिद्धार्थ।
पुत्ररत्न की प्राप्ति से, जीवन होगा सार्थ॥

माता का मोह

महारानी त्रिशला गर्भ का सम्यक् पालन-पोषण करती हुई अपने आपको धन्य समझने लगी। एक दिन गर्भस्थ महावीर ने सोचा—मेरे हलन-चलन से माता को कष्ट होता होगा, इस दृष्टि से वे निश्चल हो गए। उनकी निश्चलता से माता के हृदय में दुःख का ज्वार उभर आया – अरे ! यह क्या ? मेरा गर्भ निश्चल क्यों हुआ ? क्या किसी ने हरण कर लिया अथवा गल गया ? चिन्ता-चिन्ता में वह उदास बन गयी। राग-रंग, मंगल वाद्य बन्द कर दिये गये। मन ही मन पश्चात्ताप करने लगी—हाय, मेरे जैसी हतभागिनी महिला कोई नहीं है। ऐसे पुरुषोत्तम पुत्र की माता बनने का स्वप्न निष्फल हो गया। मृत्यु से भी अधिक असह्य वेदना का अनुभव करने लगी। आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। सारे घर में शोक का वातावरण छा गया।

गर्भस्थ भगवान ने अपने अवधिज्ञान से निश्चलता का परिणाम देखा। सोचा, मेरी निश्चलता के कारण माताजी तो शोक-विह्वल हो गयी हैं।

सर्वत्र उदासीनता के काले बादल मंडरा गये हैं। तत्क्षण भगवान ने अपनी अंगुली हिलाई। माता त्रिशला का हृदय प्रसन्नता के सागर में डूबने लगा। आकृति पर मुस्कराहट की आभा बिखरने लगी। घर का वातावरण हर्ष में परिणत होने लगा। पुनः मंगल वाद्य बजने लगे। चारों तरफ जय-जय की ध्वनि गूंजने लगी।

गर्भस्थ भगवान ने सोचा—मेरे प्रति माता-पिता का प्रगाढ़ मोह है। मैं किसी भी स्थिति में इनसे अलग नहीं रह सकता। अतः मैं यह अभिग्रह करता हूं कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, दीक्षा नहीं लूंगा। माता के मोह ने भगवान महावीर जैसे अवतारी पुरुष को भी संकल्प करवा दिया। यह मोह कर्म का प्राबल्य ही जन-जन को भटकाने वाला होता है। जब तक जीव में मोह कर्म रहेगा तब तक साध्य की सिद्धि साकार नहीं हो सकती।

मोह कर्म जंजीर से, जकड़ित प्रभु गर्भस्थ।
कर्म काट कर अन्त में, बने वीर आत्मस्थ॥

वीर जन्मोत्सव

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी का स्वर्णिम दिन जन-जन के लिए आनन्दकर सिद्ध हुआ। अर्धरात्रि का समय था। सभी ग्रह उच्च स्थान पर आते ही त्रिशला महारानी की कुक्षि से पुत्र रत्न की उपलब्धि हुई। चारों तरफ खुशियों का पार नहीं रहा। भयंकर अंधकार में भी प्रकाश की आभा बिखरने लगी। असह्य वेदना से संपीड़ित नारकीय जीव क्षणिक सुख का अनुभव करने लगे। ६४ इन्द्रों व अन्य देवी-देवताओं द्वारा भगवान का जन्मोत्सव प्रारम्भ हुआ। मेरु पर्वत की 'अति पांडुकवला' नाम की शिला पर शकेन्द्र भगवान महावीर को अपनी गोद में लेकर बैठ जाते हैं और देवों ने पाषाण-भेदक जलधारा के माध्यम से भगवान को स्नान कराना प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र के दिल में सन्देह उत्पन्न हुआ कि प्रभु का कोमलतम शरीर विस्फोटक सलिल धारा को कैसे सहन कर सकेगा? इन्द्र के संशय का अवधिज्ञान द्वारा पता लगते ही प्रभु ने अपने बाएं पांव के अंगूठे से मेरु शिला को दबाया। मेरु पर्वत कांपने लगा। पृथ्वी में कम्पन का वेग बढ़ा। समुद्र उबलने लगा। प्रभु के अनन्त बल से परिचित होते ही प्रभु से क्षमा-याचना करने लगा और बोला—भगवन्! मेरे हृदय में आपके प्रति जो संशय हुआ वह दूर हो गया है क्योंकि आप तो अनन्त बली हैं। अवनत होकर प्रभु की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। जन्मोत्सव सम्पन्न होते ही देवेन्द्र ने प्रभु को माता के पास लाकर सुला दिया और माता की अवस्वापिनी निद्रा को दूर कर सुरालय की ओर प्रस्थान कर दिया।

पुत्र-जन्मोत्सव पर सम्राट सिद्धार्थ द्वारा स्थान-स्थान पर गायन व वादन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। नाटक व खेल के साथ-साथ अन्य सुख-सुविधाओं का भी निर्देश दिया गया। चारों तरफ मंगल ही मंगल। सारे शहर का पवित्रतम वातावरण। विभिन्न प्रकार के भोजन बनाकर स्वजन-परिजनों को आमंत्रित कर सबको सम्मानित किया गया।

जब बालक गर्भ में आया तब से धन-धान्य, वैभव-सम्पदा, मान सम्मान एवं राज्य में हर दृष्टि से अभिवृद्धि हुई। इसलिए इसका नाम 'वर्धमान' रखना प्रियंकर लगा। भयंकर उपसर्गों व परीषहों को धैर्यपूर्वक सहन करने के कारण देवों ने उनका नाम रख दिया था 'महावीर'।

भगवान के ज्येष्ठ भ्राता का नाम था नन्दीवर्धन एवं बहन का नाम था सुदर्शना। उनकी पत्नी का नाम था यशोदा एवं पुत्री का नाम था प्रियदर्शना। भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणोपासक थे। धर्म के प्रति उनके मानस में अच्छी श्रद्धा थी।

महावीर के जन्म से, सबके दिल में हर्ष।
नृप घर में हर दृष्टि से, वृद्धि हुई उत्कर्ष।

देव-परीक्षा में उत्तीर्ण

एकदा महावीर अपने समवयस्क मित्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए उद्यान में गये और 'सकुली' नामक खेल खेलने लगे। शक्रेन्द्र ने देव-सभा में महावीर की प्रशंसा करते हुए कहा—भरत क्षेत्र में आठ वर्षीय शिशु बालक महावीर ऐसे धीर-वीर और साहसी हैं कि देव-दानव भी उन्हें परास्त नहीं कर सकते। बड़े पराक्रमी अनंत बली हैं। तत्रस्थ सभी देव इन्द्र का कथन सुनकर बहुत ही प्रभावित हुए, प्रसन्न हुए। किन्तु एक देव ने उपहास करते हुए कहा—मैं जाता हूं और उसे विचलित कर आता हूं। परीक्षा करने के लिए वह उद्यान में पहुंचा। उस समय बालकों में वृक्ष को स्पर्श करने की होड़ लगी हुई थी। वह मिथ्यात्वी देवता जहरीले सर्प का रूप बनाकर मृत्युलोक में आया। वहां पहुंच वृक्ष के तने पर लिपट गया। फुफकार करता हुआ फन फैलाना प्रारम्भ कर दिया। नन्हें-नन्हें बालक क्रीड़ा करने में व्यस्त थे। अचानक उस भीषण विषधर को देखते ही शिशु मंडली दौड़ने लगी। महावीर को अनंतबली होने के कारण भय कहां सताने वाला था। अपने सहचरों को धैर्य बंधाते हुए कहा— साथियो! घबराने की जरूरत नही है। हिम्मत रखो। सब अच्छा होगा। अब महावीर उस सर्प के पास पहुंचे, और उसे रस्सी के समान पकड़कर आकाश में उछाल दिया। महावीर की अभयता और साहसिकता को देखकर सारे समवयस्क विस्मित हुए और मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

सभी साथियों में वृक्ष पर चढ़ने की स्पर्धा जागृत हुई। परस्पर एक शर्त हुई कि विजयी राजपुत्र पराजित की पीठ पर सवार होकर निर्धारित स्थान पर पहुंचे। वह देवता राजपुत्र का रूप बनाकर उस खेल में सम्मिलित हो गया। सबके देखते-देखते महावीर सबसे पहले वृक्ष के अग्र भाग पर पहुंच गये और अन्य राजकुमार बीच में ही रह गये। पराजित देव सबसे नीचे रहा। विजयी महावीर उन निरस्त कुमारों की पीठ पर सवार हो गये। अन्त में देव की बारी आयी। वह देव हाथ-पांव पृथ्वी पर टिकाकर घोड़े जैसा हो गया। महावीर उसकी पीठ पर चढ़कर बैठ गये। देवता ने वैक्रिय द्वारा अपना रूप बढ़ाया। वह बढ़ता ही गया। एक महान् पर्वत से भी ऊंचा। उसके सारे अवयव विकराल एवं भयप्रद दिखने लगे। मुंह पाताल जैसा एक महान् गड्ढा, लपलपाती जिह्वा, मस्तक के बाल पीले और कीले जैसे खड़े हो गये उसके दांत करौत के दांतों के समान तेज, आंखें अंगारों से भरी हुई सिगड़ी के समान आज्वल्यमान। नासिका के छेद पर्वत की गुफा के तुल्य सबको दिखने लगे। उसकी भृकुटि सर्पिणी के समान टेढ़ी-मेढ़ी थी। ऐसा भीषणतम रूप निहार कर महावीर अपने अवधिज्ञान द्वारा समझ गए कि वास्तव में यह मानव नहीं हैं, देवता है। मेरी परीक्षा हेतु यहां आया है। उन्होंने उसकी पीठ पर मुष्टि से प्रहार किया। देव का बढ़ा हुआ रूप छोटा-सा बन

गया। देव ने सोचा—इन्द्र ने जो बात कही थी, वह बिल्कुल सत्य है। वास्तव में महावीर अनंतबली हैं। इनको कोई भी पराजित नहीं कर सकता। उसने भगवान महावीर से क्षमा-याचना करते हुए कहा—आज मेरा सारा संशय दूर हो गया है। चरणों में शत-शत अभिवन्दना। अब मैं अपने स्थान पर जाता हूं।

देव परीक्षा में हुए, महावीर उत्तीर्ण।
हुआ मुष्टि के योग से, सुर का अहम् विदीर्ण॥

स्वयं बुद्ध

माता-पिता ने सोचा कि महावीर को अध्ययन हेतु किसी विद्यालय में प्रेषित करना उचित रहेगा, क्योंकि अब यह नव वर्ष का होने वाला है। किसी कलाचार्य के पास पढ़ने हेतु भेजा गया। उस समय सौधर्म इन्द्र का आसन प्रकंपित हुआ। इन्द्र ने सोचा—कुमार महावीर के माता-पिता अपने आत्मज के अमित ज्ञान से अपरिचित प्रतीत हो रहे हैं, अतः इनको व्याकरणाचार्य के पास पढ़ने हेतु भेजा गया है। तीन ज्ञान का धनी अवतारी पुरुष (परमेश्वर) इस अल्पज्ञ व तुच्छमति के स्वामी कलाचार्य के पास क्या अध्ययन करेगा। महावीर तो शिष्य नहीं, स्वयं गुरु बनने योग्य महापुरुष हैं। जिनेश्वर भगवान का तो कोई गुरु होता ही नहीं है। मैं वहां जाऊं और कलाचार्य को समझाऊं कि इस अवतारी पुरुष को तू क्या पढ़ायेगा ?

इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण किया। विद्यालय में आकर ज्योंही वह बैठा, त्योंही महावीर पढ़ाई करने के लिए विद्यालय में पहुंचे। इन्द्र ने महावीर का स्वागत किया। अध्यापक के आसन पर उनको बैठाकर गुण-गाथा गाने लगा। तत्रस्थ अध्यापकों के मानस में आश्चर्य का पार नहीं रहा—यह महा-मानव कौन है ? अध्यापक की कुर्सी पर आकर कैसे बैठ गया ? इन्द्र ने महावीर के चरणों में वन्दन करते हुए पूछा—भगवन् ! व्याकरण सम्बन्धी मेरे ये कुछ जटिल प्रश्न हैं, कृपया उत्तर फरमाने का कष्ट करें। महावीर ने तत्काल उन सभी प्रश्नों का उत्तर बहुत ही सरल भाषा में दे दिया। उपाध्याय ने मन ही मन सोचा—अरे ! यह महावीर तो कोई दिव्य आत्मा है। ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुष संसार में विरले ही मिलते हैं। मुक्त-कंठ से सब उनकी प्रशंसा करने लगे।

देवेन्द्र ने उपाध्याय से कहा—हे विद्याचार्य ! आप इनकी लघु-अवस्था पर ध्यान न दें। ये ज्ञान के महासागर हैं। इसी जन्म में परमात्मा-परमेश्वर बनने वाले हैं। इनकी सेवा व परिचर्या करना हम सब का कर्तव्य है।

विद्याचार्य अवनत शिरसा वंदन करने लगा। प्रभु ने इन्द्र के प्रश्नों के जो

उत्तर दिये उससे उन्होंने व्याकरण की रचना करके उसे 'ऐन्द्र व्याकरण' के नाम से प्रचारित किया। कुछ ही समय के पश्चात् इन्द्र ने देवलोक की ओर प्रस्थान किया। विद्याचार्य महावीर को साथ लेकर सम्राट् सिद्धार्थ की राज्य-सभा में पहुंचे। कर-बद्ध होकर निवेदन की भाषा में कहा — महाराज ! आपके पुत्र को मैं क्या पढ़ाऊं ? इनकी बुद्धि, विलक्षणता व ज्ञान-परायणता के आगे मेरी बुद्धि तो बिल्कुल तुच्छ है। इन्हें किसी प्रकार की विद्या सिखाने की आवश्यकता नहीं है। ये स्वयं बुद्ध हैं। उपाध्याय की बातें सुनकर राजा सिद्धार्थ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मन ही मन में चिन्तन करने लगा — मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे पुत्र रत्न व कुलदीपक की उपलब्धि हुई। आगे जाकर निश्चित ही यह मेरे कुल पर कलश चढ़ाने वाला होगा।

पुरुष रत्न श्री वीर प्रभु, सिद्धार्थ कुल हंस।
तेजस्वी दिनकर सदृश, विद्वद्गण-अवतंस ॥

संसार से निर्लिप्त

राजकुमार महावीर तरुण अवस्था में परिवर्तित हुए। उनकी रूप-संपदा से आकर्षित कौन नहीं होता था ? चारों तरफ हवा फैलते ही कई राजाओं के मन में भावना जागृत हुई कि राजकुमार महावीर अपना दामाद बन जाये तो हर दृष्टि से हमारी मनोकामना पूर्ण हो सकती है। यौवन वय में संसारी लोगों की इन्द्रियां उन्मत्त हो ही जाती हैं। किन्तु भगवान महावीर संसार की दृष्टि से बिल्कुल निर्लिप्त एवं विषय-वासना की दृष्टि से बिलकुल निर्विकार थे। विवाह करने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। वे भौतिक सुखों व काम-भोगों को जहरीले विषधर की भांति प्राणविध्वंसक समझते थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में उनकी बड़ी अभिरुचि थी।

एकदा राजा समरवीर का मंत्रिमंडल राजकुमारी यशोदा का विवाह महावीर से करने हेतु सम्राट् सिद्धार्थ की राज्य-सभा में उपस्थित हुआ। अपनी कामना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा — महाराज, हम राजकुमारी यशोदा का महावीर से संबंध करने के लिए आये हैं।

सम्राट सिद्धार्थ ने समागत अतिथियों का सत्कार करते हुए कहा — आपका कथन अक्षरशः सत्य है, उपयुक्त समय है, और मैं चाहता हूं कि महावीर का विवाह जल्दी से जल्दी हो जाये। किन्तु निर्विकार महावीर पाणिग्रहण हेतु स्वीकार नहीं हो रहा है। फिर भी प्रयास करूंगा। नृप ने महावीर के मित्रों को बुलाकर उन्हें सारी स्थिति से अवगत किया। महावीर से आग्रह करते हुए मित्रों ने कहा — आपकी विषय-विरक्तता से हम सभी परिचित हैं, फिर भी लौकिक दृष्टि से कुछ चिन्तन करना परम अपेक्षित है। माता-पिता के इंगित को समझना भी बहुत

आवश्यक है। विवाह करने की अनिच्छा होते हुए भी आपको स्वीकृत हो जाना चाहिए जिससे हम भी प्रसन्न होंगे व आपके माता-पिता के मानस में भी आनन्द का प्रवाह बहेगा।

महावीर ने कहा—मित्रो ! ऐसे अनर्गल शब्दों का व्यवहार करना श्रेयस्कर नहीं है। सारा संसार वैषयिक सुखों में लीन है। इनकी उपलब्धि के लिए सब भटकते रहते हैं। किन्तु विषयों के प्रति मेरी अभिरुचि नहीं है। मेरे सारे प्रयोग संसार-विरक्ति के हैं। माता-पिता के मोह के कारण ही दीक्षित नहीं हो रहा हूं। अब आप लोग वृथा आलाप क्यों···

अचानक माता त्रिशला का आगमन। महावीर द्वारा अभिवन्दना। मातेश्वरी को सिंहासन पर बैठाकर सहसा आने का प्रयोजन पूछा।

मातेश्वरी ने अपने मधुर शब्दों में कहा— पुत्र ! तुम्हारे जैसे परम विनीत, प्रतिभा-सम्पन्न, सुयोग्य पुत्र की संप्राप्ति से हम धन्य हैं ! हमारा वंश धन्य है ! सारा संसार ही धन्य-धन्य का अनुभव कर रहा है। किन्तु तुम्हारी सांसारिक उदासीनता देखकर हम सब व्यथित हैं। पीड़ित हैं। विवाह करने की स्वीकृति देकर हम सबको आह्लादित करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। प्रिय आत्मज ! तुम स्वभाव से ही विरक्त हो। काम-भोगों का परित्याग कर निर्ग्रन्थ बनना चाहते हो, फिर भी कुछ अनुकम्पा करो। मेरा तो साग्रह एक ही कहना है कि तुम विवाह करके मेरी मनोकामना को साकार करो।

'महावीर' माता के आग्रह को कैसे टाल सकते थे ? उन्होंने अवधिज्ञान से अपने भविष्य को जाना, देखा। अभी तक भोगावली कर्म मेरे अवशेष हैं। उनका भोग अनिवार्य है। विवाह की स्वीकृति मिलते ही माता-पिता के मानस-सरोवर से आह्लाद का फव्वारा छूटने लगा। मंगल-बेला, मंगल घड़ी में राजकुमारी यशोदा के साथ महावीर की शादी हो गयी। यथासमय एक पुत्री का जन्म हुआ। उसका नाम प्रियदर्शना रखा गया।

मोह कर्म के योग से, होता वीर विवाह।
पूर्ण हुई यों सहज ही, माता-पिता की चाह॥

नन्दीवर्धन आग्रह

गर्भकाल में महावीर ने प्रतिज्ञा ग्रहण की थी कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं दीक्षा नहीं लूंगा। इसी संकल्प के कारण दीक्षित होने में देर लगी। माता-पिता का स्वर्गवास होने पर वे धर्म-साधना व आध्यात्मिक उपासना में एकाग्रता से जुट गये। भगवान ने अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्धन को निवेदन की भाषा

में कहा—बन्धुवर ! संसार असार है। जन्म-मरण की ज्वाला से सब भस्म हो रहे हैं। जो जन्म लेता है, वह मरता भी है। अतः माता-पिता के वियोग पर आर्त-ध्यान करना कर्म-बंधन का हेतु है। अपने आपको स्वस्थ एवं मस्त रखना हम सबका कर्तव्य है। महावीर की वाणी का असर नन्दीवर्धन पर पड़ा। वह शोक-विहीन होकर बोला—मंत्रियो ! भाई वर्धमान को बुलाइए और मंगल मुहूर्त देख-कर उसका राज्याभिषेक कर दीजिए।

वर्धमान ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा—हे ज्येष्ठ सहोदर ! संसार से मुझे ग्लानि हो रही है। राज्य-संचालन व भोग-विलास में रुचि नहीं है। ज्येष्ठ भ्राता पिता के तुल्य होता है। मैं तो दीक्षित होना चाहता हूं। कृपया आप मुझे अनुमति दीजिए।

नन्दीवर्धन ने बड़े ही संतुलित शब्दों में कहा—बन्धुवर ! अभी तो माता-पिता का स्वर्गवास हुआ है और तुम प्रव्रजित होने की सोच रहे हो, एक दुःख को तो भूल ही नहीं सका, दूसरे दुःख से पीड़ित बन जाऊंगा। अभी मैं संयम ग्रहण की आज्ञा नहीं दूंगा। मैं जानता हूं कि तुम संसार से पराङ्मुख हो। मोह-ममता से मुक्त तुम्हारी आत्मा वास्तव में परम पवित्र है। किन्तु हम सब निर्मोही नहीं हैं। अतः अभी दीक्षा नहीं लेने देंगे।

ज्येष्ठ बन्धु की गद्‌गद वाणी सुनकर वर्धमान ने आत्मीय भाषा में कहा—भ्रातृवर ! आप स्वयं विवेकशील व विज्ञ हैं। मोह बढ़ाना दुःख का निदान है। मोह घटाना हर दृष्टि से लाभप्रद है। जीवन का अमूल्य समय जो व्यतीत हो रहा है, उसे सफल बनाना बुद्धिमत्ता है। जैन शास्त्रों में अनंत अनुपम सुखों की प्राप्ति में मानव भव की विशेष उपयोगिता मानी गई है। मनुष्य गति के अतिरिक्त अन्य गति से मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः आप मुझे संयम की स्वीकृति प्रदान करें।

नन्दीवर्धन ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा—भाई वर्धमान ! अभी मैं आज्ञा नहीं दूंगा। कम-से-कम दो वर्ष और प्रतीक्षा करो। दो वर्ष के बाद निर्ग्रन्थ बनकर, आत्म-साधना कर, कर्मों को क्षय करके साध्य को प्राप्त करना यही मेरी मांग है। माता-पिता के लिए इतने लम्बे समय तक गृहवास में प्रवास किया। क्या बड़े भाई के लिए दो वर्ष भी नहीं दोगे? इस आग्रह को मानकर अवश्य ही तुम मेरी भावना को साकार करोगे।

वर्धमान ने सोचा—ज्येष्ठ बन्धु के आग्रह को टालना मेरे लिए उचित नहीं, और दो वर्ष का समय गृहवास में बिताना पड़ेगा, क्योंकि अभी तक कर्मों का भोग अवशेष है। उन्होंने अवधिज्ञान से ऐसा समझकर भ्राता का कहना मानते हुए कुछ अभिग्रह किया कि मैं गृहवास में रहता हुआ भी ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

सचित जल का सेवन नहीं करूंगा। पापकारी प्रवृत्तियों से बचता रहूंगा। रात्रि-भोजन नहीं करूंगा। ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग करता हुआ आत्मा में रमण करूंगा।

नन्दीवर्धन कथन पर, दिया वीर ने ध्यान।
घर में रहकर भी रहे, आत्म-मुखी अम्लान ॥

वीर-निष्क्रमण

गृहवास में रहते-रहते कुछ समय बीता। वर्षीदान की परम्परा प्रत्येक तीर्थंकर को निभानी पड़ती है। भगवान महावीर ने भी वर्षीदान देना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन प्रातःकाल एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष में तीन अरब, अठासी करोड़, अस्सी लाख सोने के सिक्कों का दान किया। यह सारा धन देवों द्वारा भण्डार में रखा जाता है। ज्योंही दो वर्ष की अवधि पूर्ण हो रही थी त्योंही लोकान्तिक देवों ने नमस्कार करते हुए श्री वर्धमान को निवेदन की भाषा में कहा—हे तीर्थंकर देव ! धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन कर जन-जन का कल्याण करें और मोक्ष के मार्ग का पथ प्रशस्त करने की कृपा करावें।

दो वर्ष का काल सम्पन्न होते ही नन्दीवर्धन की आकृति पर विषाद की रेखा अंकित हो जाती है। अब वर्धमान घर में रहने वाला नहीं है। ज्येष्ठ बन्धु के आदेशानुसार महाभिनिष्क्रमण महोत्सव प्रारम्भ हुआ। चारों प्रकार के देव भी अपनी वैभव-सम्पदा लेकर वहां पहुंचे। शक्रेन्द्र ने अपने वैक्रिय बल से एक विशाल स्वर्ण-मणि एवं रत्न-जड़ित देवछन्दक (मण्डप के बीच) सिंहासन बनाया। उस पर भगवान को बैठाकर शतपाक एवं सहस्रपाक तेल से मर्दन आदि का कार्य प्रारम्भ किया। स्नान आदि का कार्य सम्पन्न होते ही मूल्यवान वस्त्र व कटि-सूत्र आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनाए। चन्द्रप्रभा नामक शिविका का निर्माण किया। शिविका के मध्य में रत्न-जड़ित सिंहासन पर भगवान को बैठाया। प्रभुवर के पास दोनों तरफ शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र खड़े रहकर चामर डुलाने लगे। विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे। अभिनिष्क्रमण यात्रा आगे बढ़ी। जय-जय के उद्घोषों से आकाश-धरा एक होने लगे। जनता, देव, देवेन्द्रों ने भगवान की मंगल कामना करते हुए कहा—हे भगवान ! आपकी जय हो। आपका कल्याण हो। आपकी साधना सफल हो। केवलज्ञान-रूपी आलोक से समस्त जीवन विश्व को आलोकित करें। क्षत्रिय-कुंड नगर में बड़े ठाट-बाट से निष्क्रमण यात्रा चलने लगी। उस समय नगर की चहल-पहल जन-जन के लिए दर्शनीय बन रही थी। हजारों-हजारों लोगों का अभिनंदन स्वीकृत करते हुए भगवान महावीर शत-खंड उद्यान में

पहुंचे।

प्रभुवर का अभिनिष्क्रमण, हुआ बड़े उत्साह।
मोक्ष प्राप्त कर जय वरो, सबकी मंगल चाह॥

भीषण उपसर्ग

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी का मंगल दिवस। विजय मुहूर्त। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। शिविका से उतरकर अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर संस्थित हुए। चारों तरफ मंगल वाद्य बज ही रहे थे। लुंचनादि क्रिया से निवृत्त होकर बेले के तप में सिद्ध भगवान को नमस्कार कर बाढ़ स्वर में प्रतिज्ञा करते हुए महावीर ने कहा —'सव्वं मे अकरणिज्जं पावं'—मेरे लिए सभी पाप अकरणीय हैं। सामायिक चरित्र अंगीकार करते ही मनः पर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया।

दीक्षा ग्रहण करते ही भगवान ने अभिग्रह करते हुए कहा—आज से बारह वर्ष पर्यन्त मैं मेरे शरीर की सार-सम्भाल नहीं करता हुआ विहरण करूंगा। देव, मनुष्य व तिर्यंच द्वारा जो भी उपसर्ग आयेंगे, उन्हें सहर्ष सहन करूंगा। ऐसा अभिग्रह करके भगवान ने वहां से विहार किया। पारिवारिक तथा अन्य लोगों ने विदाई दी। जब तक आखों से ओझल नहीं हुए, तब तक सब लोग निहार ही रहे थे। आखिर सबने अपने-अपने घर की ओर प्रस्थान किया। भगवान आगे बढ़े। विहरण करते-करते 'कुर्मार' ग्राम पधारे। ध्यानावस्था में आरूढ़ होकर वे आत्मा में रमण करने लगे।

इसी ग्राम के बाहर सूखे हुए ठूंठ के समान निश्चल होकर ध्यान में लीन हो गये। उस समय एक किसान अपने बैलों को चरने के लिए जंगल में छोड़कर गो-दोहन हेतु गांव में चला गया। बैल चरते-चरते जंगल में भटक गये। किसान लौट-कर वापस वहां आया। बैलों को वहां नहीं देखने पर उसने भगवान से पूछा—'मेरे बैल यहां पर चर रहे थे, अब कहां हैं?' भगवान ध्यानस्थ थे। अपने आप में लीन थे। उस किसान ने बैलों की खोज की। नहीं मिले। मन में दुःख का पार नहीं रहा। सुबह होते ही जब वह पुनः भगवान के पास आया तो बैल वहां पर देखे। किसान ने सोचा—मेरे बैल इसी ठग ने छिपा दिए हैं। यह वास्तव में बहुत बड़ा लुटाक है। क्रोधाकुल होकर भगवान को मारने के लिए उद्यत हुआ।

शक्रेन्द्र का आसन प्रकंपित हुआ। भगवाल के चरणों में उपस्थित हो वन्दन किया। ग्वाले की धृष्टता देखकर शक्रेन्द्र ने कहा—'अरे पापी! यह क्या कर रहा है? राज्य सम्पदा को छोड़कर ये संयमी बने हैं। ऐसे उत्तम महापुरुष, एक अव-तारी, क्या तेरे बैल चुरायेंगे? धिक्कार है तेरे जीवन को, महामूर्ख! किसी पर

असत्य आरोप देना घोर पाप है। ऐसे महापुरुषों का गुणोत्कीर्तन करना मेरा कर्तव्य है। भविष्य में ऐसा अपराध मत करना।'

देवेन्द्र ने प्रभु चरणों में निवेदन करते हुए कहा—भगवन्, आपने बारह वर्षीय अभिग्रह किया है। लगता है समय-समय पर विभिन्न प्रकार के उपसर्ग उत्पन्न होंगे, इसलिए अब मैं आपकी सेवा में ही रहना चाहता हूं।

भगवान महावीर ने कहा—हे देवराज ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। अरि-हन्त किसी दूसरे का सहयोग लेने की कामना नहीं रखते। वे अपने पुरुषार्थ से ही कर्मों का अवसान कर लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

दूसरे दिन भगवान का विहार हुआ, 'कोल्लाक' गांव में पधारे। वहां पर 'बहुल' ब्राह्मण के घर पर बेले के तप का पारण हुआ। देवों ने 'अहोदानम्-अहोदानम्' का उद्घोष कर पारणे की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और पांच-दिव्यों की वर्षा करते हुए पात्र-दान का गुण कीर्तन किया।

भगवान की आकर्षक आकृति एवं यौवनवय के विशिष्ट रूप-सौंदर्य से मोहित होकर युवतियां अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग देती हुई बोली—इस तरुणा-वस्था में संयम ग्रहण करना बुद्धिमत्ता नहीं है। संन्यास के लिए वृद्धावस्था ही श्रेयस्कर कहलाती है। आप स्वयं विज्ञाता हैं, अधिक क्या कहें ?

दीक्षित होते ही अमित, भीषणतम उपसर्ग।
सकल परीषह सहन कर, पायेंगे अपवर्ग॥

कठोर तप के धनी महावीर

महावीर शीत उष्ण, डंस-मच्छर, लाभ-अलाभ, निन्दा-स्तुति आदि अनेकों परीषहों को सहन करते हुए ग्रामोग्राम विहरण करने लगे। मार्ग में जब कभी बालक मिल जाते, तो वे भी अज्ञानवश गालियां देते और कभी-कभी पत्थर व लकड़ी आदि से भी मारने को तैयार हो जाते। फिर भी भगवान अपनी समता का परित्याग नहीं करते। गृहस्थों से न सम्पर्क, न ही वार्तालाप। वे तो अपनी ध्यान-क्रिया में ही निमग्न रहते थे। निर्जन झोंपड़ियों में, पानी पिलाने में प्याऊ में, सूने घर में, हाट के बरामदे में, लोहार व कुम्भकार की शाला में, उद्यान में, वृक्ष की छाया आदि में एकाग्र होकर ध्यान करने लग जाते।

प्रव्रजित होने के पश्चात् भगवान सदैव जागृत रहे। जन-शून्य स्थानों में रहते तो सर्प, बिच्छू, पशुओं और गिद्धादि पक्षियों द्वारा विभिन्न प्रकार के उपसर्ग होने पर भी वे मेरु की भांति निश्चल, निष्कंपित होकर आत्म-साधना में रमण करने लग जाते फिर भी ग्राम आरक्षक भगवान को ठग व डाकू समझकर मारपीट करने में निर्लज्ज बन जाते।

मनुष्य व तिर्यंच सम्बन्धी भयंकर व असह्य उपसर्ग भी उत्पन्न होते। फिर भी सब कष्टों को सहनशील बनकर सह लेते, यह भगवान की अविरल विशेषता कहलाती है। उन्होंने अपने ज्ञान से देखा कि मेरे भोगावली कर्म अभी तक बहुत अवशिष्ट हैं। उनका यहां निर्जरण असम्भव प्रतीत हो रहा है। कर्म निर्जरण हेतु लाट देश की 'वज्र भूमि' और 'शुभ्र भूमि' के क्षेत्र अनुकूल हैं। चिंतन को साकार रूप देते हुए भगवान उधर ही पधारे। वहां के अनार्य लोग अजीब पुरुष देखकर क्रोध में भभक उठते। मारते-पीटते और शिकारी कुत्तों को छोड़कर कटवाते। उस क्षेत्र में विचरने वाले शाक्यादि साधु भी उन हिंसक क्रूर कुत्तों से बचने के लिए लाठियां रखते थे। किन्तु साम्ययोगी भगवान महावीर शरीर की तनिक भी सार-सम्भाल नहीं करते थे। उनके पास न ही लाठी थी, न ही कोई अस्त्र-शस्त्र थे।

भगवान को कोई लकड़ी से मारता, कोई मुष्टि-प्रहार करता, तो कोई भाले की नोंक को शरीर में घोंपकर छेद कर देता। विभिन्न प्रकार के प्रहार होने पर शरीर में असह्य वेदना होती थी। फिर भी उनके उपचार के लिए कोई भी प्रयास नहीं करते थे। शीतकाल व उष्णकाल के दारुण परीषहों को सहन करने में महाबली थे। तपस्या के पारणों में आठ महीने तक भगवान ने रूक्ष अन्न तथा उड़द के बाकले ठंडे ही ग्रहण किये। महीने-महीने, दो-दो महीने, छह-छह महीने की घोर तपस्याएं करते अपने लक्ष्य की ओर निर्भयतापूर्वक द्रुतगति से बढ़ रहे थे। जैसा-तैसा भी नीरस आहार मिलता, उसे शांत भाव से ग्रहण कर लेते और कषाय, विषय, आसक्ति आदि दुष्प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर शुभध्यान में ही लीन हो जाते थे।

घोर तपस्या के धनी, महावीर भगवान।
निर्भयतापूर्वक बढ़े, सह-सह कष्ट महान्॥

शूलपाणि यक्ष

भगवान महावीर किसी यक्षायतन के मन्दिर में ध्यान कर रहे थे। एक दिन इन्द्र-शर्मा पुजारी ने भगवान से कहा—'महात्मन्! अब आपको यहां पर नहीं रहना चाहिए। यह देव बड़ा क्रूर है, हिंसक है। जो व्यक्ति रात भर रहता है उसे जीवन से हाथ धोना पड़ता है।' प्रभुवर ध्यानस्थ थे। पुजारी अपने घर की ओर चला गया। यक्ष आया। उसने सोचा—यह व्यक्ति जो ध्यानस्थ खड़ा है वास्तव में बड़ा अहंकारी प्रतीत हो रहा है। इसका गर्व दूर करना मेरा कर्तव्य है।

व्यन्तर ने अपना विकराल रूप बनाकर अट्टहास करना प्रारम्भ कर दिया। चारों दिशाओं में भयंकर व प्रचंड हास्य ध्वनि होने लगी, मानो आकाश टूटने की तैयारी कर रहा हो। ग्रह, नक्षत्र आदि टूटकर नीचे आने के लिए प्रयास कर

रहे हों। कल्पान्त-काल की भयावह घोष से ग्रामीण जनता कांप उठी। लोगों ने सोचा—यह यक्ष ही किसी व्यक्ति पर क्रोधाकुल हो रहा है। यक्ष के उपसर्ग से भगवान कब विचलित होने वाले थे? ज्यों के त्यों आत्मस्थ बने हुए थे।

प्रथम प्रयोग खाली जाने के कारण यक्ष ने एक विशाल हाथी का रूप बनाकर भगवान को रौंदना प्रारम्भ कर दिया। अपने लंबे दांतों द्वारा अत्यन्त वेदना देने में उन्मत्त बन गया। फिर एक जहरीले सर्प का रूप धारण कर कष्ट देने लग गया। भगवान के शरीर को लपेटकर कसा और मस्तक, नेत्र, नासिका आदि अवयवों को डंसना प्रारम्भ कर दिया। तथापि महावीर अडिग रहे। विचलित कर ही कौन सकता था? यक्ष थक गया। उसने सोचा—यह कोई महान् पवित्र आत्मा है।

भगवद् सेवा में लगे शक्रेन्द्र ने शूलपाणि यक्ष को ललकारते हुए कहा— हे अधमात्मन्! इसी अवसर्पिणी काल के ये अन्तिम (चौबीसवें) तीर्थंकर होने वाले हैं। इनकी सेवा करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। इनके अपरिमित अविनय से तूने भारी पाप का अर्जन किया है। भगवान तो अपने आप में लीन हैं। शान्त हैं। किसी के भी प्रति द्वेष भावना नहीं है। सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखते हैं। तू अगर अपना कल्याण चाहता है तो प्रभु से क्षमा मांगकर भक्ति कर, सेवा कर, जिससे तुझे सम्यक्त्वबोध की उपलब्धि होगी।

शूलपाणि यक्ष ने भगवान की शरण में जाकर बड़ी विनम्रता की भाषा में कहा—हे पुरुषोत्तम! हे अनाथों के नाथ! मैं आपकी शरण में हूं। कृपया मुझे ऐसा दिशा-दर्शन दें कि मैं भी आत्मोत्थान कर सकूं। भगवद्-उद्बोधन से तथा पूर्व-कृत पापों के पश्चाताप से शूलपाणि यक्ष सम्यक्त्वी बन गया।

यक्ष शूलपाणि बना, सम्यक्त्वी सुखकार।
प्रभु उद्बोधन से हुआ, पापी का उद्धार॥

पाखंडी अच्छन्दक

भगवद्-दीक्षाकाल का एक वर्ष परिपूर्ण होने वाला था। ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए प्रभु 'मोराक' ग्राम के बाहर एक दिव्य उद्यान में ठहरे। एकाग्र व निश्चल होकर ध्यान के उच्च शिखर पर आरूढ़ हो गये। उसी ग्राम में 'अच्छन्दक' नाम का एक द्वेषी पाखंडी रहता था। वह मन्त्र-तन्त्र बताकर लोगों को आकर्षित कर लेता था। हजारों व्यक्ति उसके अनुयायी बन गये थे। उसकी आजीविका का आधार था पाखंड और दम्भपूर्ण व्यवहार। उसके पाखण्ड की पोल खोलने के लिए सिद्धार्थ नाम के व्यन्तर ने कुछ प्रयोग किये।

एक ग्वाला कहीं से आ रहा था। सिद्धार्थ ने उसे बुलाया। प्रच्छन्न रहकर बोला—तू बैल चराने घर से निकला। मार्ग में तूने सांप देखा। गत-रात्रि तू स्वप्न में रह-रहकर खूब रोया था। बोल, ये बातें सत्य हैं? ग्वाले के दिल में आश्चर्य का पार नहीं रहा—सभी बातें सत्य हैं, इसको पता कैसे लगा? उसने गांव में प्रचार किया कि बगीचे में बहुत बड़े महात्मा ध्यान कर रहे हैं। वे भूत-भविष्य के ज्ञाता हैं। मेरी सभी गुप्त बातें उन्होंने यथार्थ बता दीं। अनेक लोग वहां गये और अपनी-अपनी गुप्त बातें पूछने लगे। एक व्यक्ति ने पूछा—महात्मन्! यहां पर 'अच्छन्दक' नाम का एक ज्योतिषी है। वह त्रिकालज्ञ है। सिद्धार्थ ने कहा—वह धूर्त है। सबको ठगता है।

'अच्छन्दक' को इस बात का पता लगते ही वह क्रोधित होकर बोला—वह ढोंगी है। मैं उसकी पोल खोल दूंगा। अनेक व्यक्तियों के साथ वह बगीचे की ओर चला। 'अच्छन्दक' ने घास का तिनका अपने दोनों हाथों की अंगुलियों में इस प्रकार पकड़ा कि जिससे तिनके का एक सिरा एक हाथ की अंगुली में दबा और दूसरा सिरा दूसरे हाथ की अंगुली में। तेज स्वर में सबसे पूछा—यह तिनका मैं तोड़ूंगा या नहीं?

देव ने प्रच्छन्न होकर कहा—तू इस तृण को नहीं तोड़ सकेगा। अच्छन्दक ने उसे तोडने के लिए अंगुलियों से दबाया। देव-शक्ति से तिनके के दोनों सिरे शूल की तरह उसकी अंगुलियों में घुस गये। रक्त झरने लगा। सब लोग हंसने लगे। उसका सारा प्रभाव नष्ट हो गया।

सिद्धार्थ व्यन्तर ने कहा—यह चोर है। तत्क्षण कई उदाहरण प्रस्तुत किए गए, सब सही निकले—उसने फिर कहा—यह व्यभिचारी है। इसकी पत्नी सब कुछ बता देगी। लोग वहां पहुंचे। पति-पत्नी में कुछ ही दिनों पूर्व लड़ाई हुई थी। दोनों में परस्पर गाली-गलौज होने लगा। वह अर्धांगिनी रुक-रुककर रो रही थी। लोगों ने सहृदयता से रुदन का कारण पूछा, तो उसने गद्‌गद् स्वर में कहा—यह दुष्ट अपनी बहन के साथ कुकर्म करता है। मनोभेद के कारण परस्पर में मार-पीट की नौबत आ गई।

अच्छन्दक की पोल खुलते ही लोग उससे घृणा करने लगे। सबसे तिरस्कृत व धिक्कृत अच्छन्दक ने भगवान को नमस्कार करते हुए कहा—'भगवन्! आपके योग से ही मैं तिरस्कृत हुआ हूं। जब तक आप यहां पर रहेंगे, तब तक मैं पद-दलित व तिरस्कृत ही रहूंगा। आप अन्यत्र कहीं पर पधार जायेंगे तब ही मेरी दूकान चल पायेगी।' भगवान को अपने अभिग्रह का स्मरण हुआ। अप्रीतिकर स्थान को छोड़ने के लिए भगवान ने वहां से विहार कर दिया।

अच्छन्दक का खुल गया, सहसा अब पाखण्ड।
लगे घृणा करने सभी हुआ विरोध प्रचंड॥

चण्डकौशिक पूर्वभव

भगवान् महावीर श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहरण कर रहे थे। कुछ शुभ-चिन्तकों ने कहा—भगवन् ! आपको इस मार्ग से नहीं जाना है क्योंकि आगे कन-खल नाम का आश्रम है, वहां पर एक भयंकर विषधर रहता है। उसके विष का इतना भय है कि पशु-पक्षी भी वहां नहीं जाते। अतः आप किसी अन्य मार्ग से पधार जाइए। भगवान ने अपने ज्ञान से सर्प का भूत, भविष्य और वर्तमान देखा। यह चण्डकौशिक सर्प पूर्वभव में एक तपस्वी गुरु थे। पंचमी समिति से वापस आते समय मार्ग में गुरुजी के पैरों तले अनजान में एक मेढकी दब गयी। कुछ ही समय के बाद वह मर गई। साथ चलते हुए शिष्य ने बड़े विनय भाव से कहा—महा-राज ! प्रायश्चित कर लीजिए। संध्या में प्रतिक्रमण करते समय शिष्य ने दो-तीन बार टोका, कहा—आर्यदेव ! मेढकी मारने का प्रायश्चित कर लीजिए। गुरुजी क्रोध मे व्याकुल हो उठे। शिष्य को मारने के लिए दौड़े। उपाश्रय में अंधेरा होने के कारण वे एक खम्भे से टकराये। उनका मस्तक फट गया। कोप की उग्रता से वे विराधक बन गये। ज्योतिषी देवता बने। वहां का आयुष्य पूर्ण कर कनखल के आश्रम में पांच सौ तपस्वियों के कुलपति की पत्नी के गर्भ से 'कौशिक' नाम का पुत्र हुआ। अधिक गुस्सैल होने के कारण आगे चलकर वह 'चण्डकौशिक' नाम से प्रसिद्ध हो गया।

पिता का देहान्त हुआ। चण्डकौशिक कुलपति बना। अपने आश्रम पर तथा वनखण्ड पर अति मूर्च्छा भाव होने से वह किसी को आने नहीं देता। पत्र, पुष्प, फल को तोड़कर अगर कोई ले जाने की कोशिश करता तो उसे मारने हेतु वह चण्डकौशिक उनके पीछे दौड़ता वह दिन-रात आश्रम की सुरक्षा में सजग रहता था। उसके कठोरतम व्यवहार से सभी तपस्वी आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रह गया।

श्वेताम्बिका के कई राजकुमार क्रीड़ा करने हेतु चल पड़े। भ्रमण करते-करते इसी उद्यान में पहुंच गये। सुरभित पुष्पों को तोड़ने लगे। चण्डकौशिक को पता लगा। वह आगबबूला हो गया। हाथ में तलवार उठाकर उन्हें मारने दौड़ा। सभी राजकुमार दौड़कर कहीं छिप गये। अंधाधुंध भागता हुआ वह कौशिक गर्त में गिर पड़ा। उसका वह तीक्ष्ण धार वाला फरसा उसी के मस्तक को फाड़ बैठा। वहीं मृत्यु पाकर उसी आश्रम में दृष्टि विषमय सर्प हुआ। विषैली बनी हुई दृष्टि से वह जिसे देखता, वह मरघट पर पहुंच जाता। उसके भयावह आतंक से सारा वन जनशून्य और पशु-पक्षियों से रहित हो गया। उस मार्ग से सारा यातायात ठप्प हो गया।

चण्डकौशिक सर्प को प्रतिबोध देने के लिए भगवान उसी मार्ग से चले। उसी आश्रम में पहुंचकर ध्यानस्थ हो गये। कुछ समय व्यतीत होने पर वह सर्प इधर-उधर भटकता हुआ वहां पहुंचा। अचानक उसकी दृष्टि महावीर पर पड़ी। विष फुफकारता हुआ क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगा। उल्कापात के समान दृष्टि ज्वाला का प्रभाव भगवान पर कब पड़ने वाला था? उसका यह अमोघ आक्रमण व्यर्थ हो जाने से अपनी रक्त-वर्णी जिह्वा लपलपाता हुआ आया और पैरों को पुनः-पुनः डंसने लगा। भगवान के शरीर पर विष का किंचित् भी प्रभाव नहीं हुआ। डंक के स्थान से गो-क्षीरधारा निकलने लगी। सर्प निस्तेज बन गया। विचारों में मोड़ आया। प्रभु की सौम्य आकृति पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गई। क्रोध शांत हुआ। भगवान ने उद्‌बोध देते हुए कहा—'चण्डकौशिक! 'बुज्झ-बुज्झ'(समझ-समझ)।' भगवद् वाणी पर चिन्तन करते-करते उसे जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपना पूर्वभव देखा। अनशन करने का संकल्प किया। 'मेरी विषैली नजर से किसी जीव का अनिष्ट न हो'—ऐसा चिन्तन कर वह अपना मुंह बांबी में और सारा शरीर बाहर रखकर समता से रहने लगा।

कुछ ग्वाले वृक्ष की ओट में खड़े-खड़े देख ही रहे थे कि सर्पराज के कोप से महात्मा कैसे बचते हैं? जब उन्होंने भगवान को सुरक्षित व सर्प को सुस्थिर देखा तो वे निकट आकर सर्प को लकड़ी से हिलाने लगे। देखा सर्प का उपद्रव समाप्त हो गया है। गांव में आकर सबको सूचित किया गया। लोग आने लगे। मार्ग चालू हो गया। स्त्रियां झुण्डों में आने लगीं। सर्प के शरीर पर घृत चढ़ाने लगीं। घृत की सौरभ से चींटियां आकर नागराज के तन को छेदने लगीं। सभी कष्टों को समता पूर्वक सहन करता हुआ चण्डकौशिक पन्द्रह दिन का अनशन कर सहस्रार कल्प में देवता हुआ।

मुनि जीवन की साधना, सारी हुई विनष्ट।
देव चण्डकौशिक हुआ, समता रखकर स्पष्ट॥

प्रभु-प्रताप

भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उत्तर वाचाल ग्राम में पधारे। अर्ध-मासिक तप के पारणे के लिए भगवान ने नागसेन के घर को पावन किया। उसने वन्दना की। भक्ति व श्रद्धापूर्वक क्षीर-दान देकर पारणा करवाया। देवों ने पंच दिव्यों की वृष्टि कर नागसेन के दान की प्रशंसा की। वहां से सुरभिपुर की ओर विहार हुआ। मार्ग में गंगा महानदी आ गयी। (यहां ग्रन्थकार नाव में बैठकर नदी पार करने का उल्लेख करते हैं, किंतु आगमों में इसका उल्लेख नहीं है।) वे

(भगवान) सुद्ध दंत नामक नाविक की नौका में विराजे। नौका आगे बढ़ी। किनारे पर स्थित वृक्ष पर एक उल्लू बैठा था। वह जोर-जोर से कुछ बोल रहा था। उसकी बोली सुनकर क्षेमिल नाम के शकुन शास्त्री ने बड़ी गम्भीरता से कहा— 'सब सावधान हो जाइए। भयंकर विपदा आने वाली है। सुख से नदी को पार करना कठिन है। तभी बच सकते हैं यदि किसी आध्यात्मिक योगी का सहारा मिल जाये। अथवा हम पर उनकी कृपा हो।'

शकुनवेत्ता की बात सुनकर नौका में बैठे हुए सभी लोग भयभीत हो गये। सबके मन में व्याकुलता छा गयी। नौका अत्यधिक जल में चल ही रही थी। उस समय 'सुदृष्ट' नामक नागकुमार जाति के देव ने अपने ज्ञान से निहारा कि मेरा पूर्वभव का शत्रु महावीर नदी पार करने हेतु नौका में बैठा है। वैर-भावना जागृत हुई। उसने भयंकर उपद्रव प्रारम्भ कर दिये। ऐसा प्रलयंकर अंधड़ चलाया कि बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़कर गिरने लगे। पर्वत की श्रेणियां प्रकंपित होने लगीं। गंगा नदी की लहरें उछलने लगीं। नौका डगमगाने लगी। पाल फट गया। नाविक दिशाभ्रांत होकर अपना मार्ग भूल गया।

सभी यात्री मृत्यु के भय से आकुल-व्याकुल हो उठे। इस भयावह संकट से बचने के लिए सब अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। भगवान आत्मस्थ होकर नौका के एक कोने में विराज रहे थे। इस विध्वंसक उपद्रव से वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। भगवान के पावन प्रभाव से कंबल और सम्बल नाम के दो देव वहां उपस्थित हुए। एक देव ने 'सुदृष्ट' को ललकार कर परास्त कर दिया। दूसरे देव ने नौका को तट पर ले जाकर रख दिया। वन्दना व सत्कार करते हुए दोनों ही देव मुक्तकंठ से भगवान की स्तवना करने लगे। नौका के यात्रियों ने भी प्रभु-प्रशंसा करते हुए कहा—'हे महापुरुष! आपके प्रताप से ही हमें जीवनदान मिला है। भगवान महावीर नौका से उतरकर आगे बढ़े।

भगवद्-पुण्य प्रताप से, संकट टला समस्त।
'मुनि कन्हैया' हो गया, दुश्मन देव निरस्त॥

भ्रम-दूर

एकदा भगवान का विहार हो रहा था। सूक्ष्म धूलि पर भगवान के चरण अंकित हो गए। पुष्य नामक एक विद्वान सामुद्रिक शास्त्र का प्रज्ञाता कहीं जा रहा था। उसने भगवान के चरणचिह्न को देखकर सोचा—ये कोई महापुरुष हैं। इनकी चरण रेखा से ऐसा प्रतीत होता है कि ये चक्रवर्ती सम्राट होने वाले हैं। परन्तु ये अकेले हैं। इधर से गये हैं। मैं उनसे मिलूं। अकेले क्यों? संकट की वेला में सह-

योग करना मेरा परम कर्तव्य है। उनकी सेवा का सुयोग्य मिल जाये तो मैं अपने-आपको धन्य समझूंगा। ऐसा सोचकर चरण-चिह्नों को देख-देखकर वह आगे बढ़ने लगा। भगवान स्थूणाक ग्राम के बाहर एक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न हो रहे थे। उस पुरुष ने भगवान को वन्दना की। भगवान के वक्षःस्थल पर श्री वत्स अंकित था, मस्तक पर मुकुट का चिह्न, दोनों भुजाओं पर चक्र, भुजाएं घुटनों तक लम्बी नागिन के समान आदि अनेक चिह्न भगवान के शरीर पर देख-कर उसे बड़ा विस्मय हुआ। ऐसे लोकोत्तम लक्षण होते हुए भी यह तो भिक्षुक है। भिखारी के रूप में भ्रमण कर रहा है। मेरा विद्याशास्त्र मिथ्या हो गया। शास्त्र के निर्माता भी प्रवंचक जैसे प्रतीत हो रहे हैं। वह चिन्ता ही चिन्ता में निमग्न हो रहा था। अचानक शक्रेन्द्र का आसन प्रकंपित हुआ। भगवान की सेवा में स्थित पुरुष को भी अपने अवधि-ज्ञान से निहारा और झट वहां आया। भगवद्-स्तुति के साथ-साथ बड़े विनय से वन्दना करने लगा। शक्रेन्द्र ने भविष्य वेत्ता को उपालम्भ की भाषा में कहा—

'हे मूढ़ात्मन् ! तूने अध्ययन किया है किन्तु तेरा अध्ययन अधूरा है। उत्तम लक्षण क्या केवल सांसारिक सम्राटों व चक्रवर्ती के ही होते हैं? धर्म-तीर्थंकर व धर्म-चक्रवर्ती के नहीं होते क्या? ये भगवान महावीर हैं। बड़े-बड़े भूपालों व देवेन्द्रों के भी ये पूजनीय कहलाते हैं। ये राज्य संपदा को छोड़कर परिव्रजित हुए हैं। इनके त्याग, तप, जप व ध्यान के सामने सारा संसार नतमस्तक है। शास्त्रीय ज्ञान सारा सत्य है। लेकिन तूने गहराई से चिन्तन नहीं किया।' उसको इच्छित दान देकर शक्रेन्द्र भगवान को वन्दन-नमस्कार कर स्व-स्थान पर चला गया।

शास्त्रवेत्ता का हुआ, सारा ही भ्रम दूर।
विज्ञ पुष्प को इन्द्र ने, दिया दान भरपूर॥

संगम का रोष

विहरण करते-करते भगवान 'पेढ़ाल' ग्राम में पधारे। वहां म्लेच्छ लोग बहुत रहते थे। गांव के बाहर उद्यान में तेले का तप ग्रहण कर एक रात्रि को महाभिक्षु प्रतिमा अंगीकार कर भगवान ध्यानस्थ हो गये। सुधर्मा सभा में शक्रेन्द्र अपने परिवार सहित बैठा था। उस समय देवेन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान को पोलास उद्यान में ध्यानस्थ देखा। अवनत शिरसा बद्धांजलि भगवद्-स्तुति करते हुए देवेन्द्र ने कहा—देव-देवियो! इस समय मानव लोक के दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र के पेढ़ाल गांव के पोलास उद्यान में भगवान ठहरे हुए हैं। वे मेरु पर्वत की भांति निश्चल एवं अडिग होकर ध्यान-मग्न खड़े हैं। वे इतने सुदृढ़ हैं कि कोई भी यक्ष, राक्षस,

देव, दानव, मानव आदि उन्हें विचलित नहीं कर सकता। ऐसे महापुरुष की जितनी भी गौरव-गाथा गायी जाये, कम है।

इन्द्र का कथन सुनकर देवसभा के सभी सदस्य बहुत ही प्रमुदित हुए। सब की आकृति पर मुस्कराहट की रेखा। देवों ने एक ही स्वर में कहा—हे स्वामिन्! आप जो फरमा रहे हैं वह बिलकुल सत्य है। तथ्य है। वास्तव में महापुरुष कहलाने का अधिकार उन्हीं को है, जो अनुकूल और प्रतिकूल परिषहों को देखकर विचलित नहीं होते।

एक मिथ्यात्वी देवता उस सभा में बैठा था। उसका नाम था संगम। उससे रहा नहीं गया। वह जोर से बोला पड़ा—हे स्वामिन्! सुनिये मेरे उद्‌गार। आपने जो बात कही उस पर मेरा विश्वास नहीं है। आप तो कभी-कभी अति प्रशंसा करने लग जाते हैं। औचित्य की मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखते। क्या औदारिक शरीर वाले मनुष्य इतना साहस व धैर्य रख सकते हैं? कदापि नहीं रख सकते। देवशक्ति के सामने कोई भी मानव अडिग नहीं रह सकता। आप सुर-इन्द्र होकर भी हाड़-मांस के घृणित पुतले की अनुपम प्रशंसा कर रहे हैं, बड़ा आश्चर्य है!

इन्द्र ने प्रत्युत्तर की भाषा में बाढ़ स्वर में कहा—'हे संगम! किसी की असत्य आलोचना करना वृथा है। मैंने जो कहा है उसमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है। वे अनंत बली हैं। उनकी शक्ति के सामने देवता की शक्ति नगण्य है। मेरु पर्वत को भी वे अपने अंगूठे से हिला सकते हैं। ऐसे देवाधिदेव पुरुषोत्तम की अवहेलना करना श्रेयस्कर नहीं है।' संगम ने आक्रोश भरे शब्दों में कहा—हे देवेन्द्र! आपके कथन में सचाई कितनी है, इस साधु में कितना बल है, मैं मनुष्य लोक में जाकर उसकी परीक्षा करूंगा।

क्रोधावेश में आकर वह देवसभा को छोड़कर वहां से चल दिया। इन्द्र ने देखा। सोचा। अब इस अधम पापी को पता लग जायेगा कि भगवान की शक्ति कितनी है? इसे कहने में व रोकने में तनिक भी लाभ नहीं है।

वीर प्रशंसा श्रवण कर, संगम दिल में रोष।
तीर्थंकर बल सामने, मिट जायेगा जोश॥

संगम के उपसर्ग

क्रोधांध संगम ने कुछ भी नहीं सोचा। भयंकर रूप बनाकर भगवान को विचलित करने हेतु वह वहां पर आ पहुंचा। भगवान को ध्यानस्थ देखकर वह आग-बबूला हो गया और असह्य उपसर्ग देने के लिए दिग्मूढ़ बन गया। उसने धूलि वर्षा प्रारम्भ की। भगवान के सारे अवयव धूलि से ढंक गये। आंखों व नासिका में रेत भर गई।

चारों तरफ वज्र-मुखी चींटियां फैला दीं। उन्होंने वज्रमुख से भगवान के शरीर में छेद प्रारम्भ कर दिया। उस देव ने अपने वैक्रिय शरीर द्वारा बिच्छू और सर्प ही सर्प कर दिए, जो भगवान के शरीर को डंसने-काटने लगे। लेकिन भगवान कहां विचलित होने वाले थे। इसी प्रकार भयंकर पिशाच का रूप धारण किया। हाथी-हथिनी एवं उन्मत्त सिंहनी को उपस्थित कर उन्हें विचलित करने का प्रयास किया। हाथी ने अपनी सूंड से भगवान को आकाश में उछाल दिया। फिर भी वे ध्यान से विचलित नहीं हुए।

अब संगम भगवान के पिताश्री सिद्धार्थ का रूप बनाकर आया और मधुर स्वर में बोला—'हे पुत्र! यह कष्टप्रद साधना कैसे कर रहे हो? तेरा शरीर पुष्प की भांति सुकोमल है। ऐसे तनु रत्न से ऐसी घोर साधना करना क्या बुद्धिमत्ता है? मैं वृद्ध हूं। क्या मेरी सेवा करना तेरा कर्तव्य नहीं है? कुछ ही समय के पश्चात माता आक्रंदन करती हुई भगवान से प्रार्थना करने लगी—'हे आत्मज! मैं तुझे दीक्षा नहीं दूंगी। विचारों को मोड़ देना तेरा कर्तव्य है। संसार में रहकर मेरी सेवा करो। जीवन को सफल बनाओ। इसी में भला है।' किन्तु भगवान पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। संगम की आशा पर निराशा का पानी फिर गया। विभिन्न प्रकार के भीषणतम उपसर्गों के आगे वह पवित्र आत्मा कब डिगने वाली थी।

संगम हताश हो गया। मन-ही-मन चिन्तन करने लगा—इन्द्र ने जो प्रशंसा की थी वह वास्तव में सत्य है। तथ्य है। मैंने एक रात्रि में इनको अनुकूल-प्रतिकूल बीस उपसर्ग दिये। फिर भी ये ज्यों-के-त्यों ध्यानस्थ रहे। वास्तव में ये अनंत बली हैं। अब मैं इन्द्र की सभा में कैसे जाऊं। कैसे इन्द्र को अपना मुंह दिखाऊं? मैं हंसी का पात्र बन गया। सभी देवता मेरी ओर अंगुली उठायेंगे। अब एक बार परीक्षा और कर लूं।

भगवान तोसली ग्राम में पधारे। उद्यान में ध्यानस्थ होकर खड़े हुए ही थे। संगम ने साधु का रूप बनाया। सेंध लगाकर चोरियां करनी प्रारम्भ कर दीं। लोगों ने तो पकड़कर मारना प्रारम्भ कर दिया। वह साधु बोला—मुझे क्यों मारते हो? मैं बिल्कुल निर्दोष हूं। मैं तो अपने गुरुदेव के आदेशानुसार ही चोरी करता हूं। लोगों ने कहा—कहां है तेरा गुरु? उसने कहा—उद्यान में ध्यान कर रहे हैं।

लोग उद्यान में पहुंचे और भगवान को पकड़कर रस्सियों से बांधा। गांव में ले जाने लगे। उस समय महाभूतल नामक ऐन्द्रजालिक ने भगवान को पहचान लिया। उसके द्वारा लोगों को भगवान का परिचय मिलते ही बन्धनमुक्त कर दिया गया। क्षमा-याचना की। नकली साधु की खोज की गई, किन्तु वह अन्तर्धान हो गया। इस तरह उपसर्ग देते-देते छह महीने पूरे हो गये। फिर भी वह निष्फल

रहा। आखिर हार कर संगम भगवान के श्रीचरणों में वन्दन-नमस्कार कर बोला—भगवन्! धन्य है आपकी निश्चलता। मैंने आपको छह मास पर्यन्त भयंकर असह्य उपसर्ग दिया। फिर भी आप मेरु पर्वत की भांति निष्कम्प रहे। अब मैं आपसे पुनः-पुनः क्षमा-याचना करता हूं।

संगम ने संकट दिये, एक रात्रि में बीस।
सहे शान्ति से वीर ने, विजय हुई इक्कीस॥

संगम को धिक्कार

संगम के उपसर्गों को देखकर इन्द्र और सभा के अन्य सदस्य बैठे-बैठे चिन्ता करने लगे। इन्द्र ने अपने मन में सोचा—इन सब उपसर्गों का कारण मैं हूं। यदि मैं सभा में भगवान की प्रशंसा नहीं करता तो संगम विकराल निर्दयी क्यों बनता? क्यों प्रभु को इन भयंकर कष्टों से संपीड़ित होना पड़ता?

संगम अपनी पराजय स्वीकार कर अपमानित-सा होकर देवलोक पहुंचा। सभा में उपस्थित देखकर इन्द्र ने मार्मिक शब्दों में कहा—देवगण! यह संगम महापापी है। इसके अपराध को हम भूल नहीं सकते। यह देवसभा में रहने योग्य नहीं है। होने वाले तीर्थंकर देव को इसने असह्य उपसर्ग दिए हैं। इसे नीचता की कोटि में गिने बगैर नहीं रह सकते। ऐसे अधम को किसी भी प्रकार का प्रश्रय देना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है, इसलिए इसे सभा से बहिष्कृत कर देना चाहिए।

देव सभा के सभी सदस्यों ने एक स्वर से कहा—हे देवराज! आपका चिन्तन अक्षरशः सत्य है। सबका समर्थन संप्राप्त होते ही इन्द्र ने अपने बाएं पांव से संगम पर प्रहार किया और देव सैनिकों ने उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। देवी-देवताओं ने संगम को ललकारते हुए कहा, 'हे अधमात्मन्! धिक्कार है तेरे जीवन को! भगवान महावीर जैसे अवतारी पुरुष को इतने उपसर्ग देकर क्या तू सुखी बनेगा? कदापि नहीं।' अपशब्दों व गालियों द्वारा उसका अतीव अपमान हुआ। देवलोक से निष्कासित संगम अपने विमान में बैठकर मेरु पर्वत की चूलिका पर गया। उसी को अपना प्रवास-स्थल मानकर वह वहीं पर रहने लग गया।

सुरपति द्वारा अति मिला, संगम को धिक्कार।
देवों से हो तिरस्कृत, तजा सुरालय द्वार॥

जीर्ण की भावना

विशाला नाम की नगरी हरेक के लिए बड़ी सुहावनी थी। लाखों का वहां व्यापार चलता था। अनेकों श्रावक वहां निवास करते थे। वहां पर जिनदत्त नामक एक विशिष्ट श्रावक रहता था। जिन धर्म के प्रति बड़ा श्रद्धावान था। साधु सन्तों का सच्चा दास था। अशुभ कर्मों के उदय से धन सम्पत्ति का नाश होने पर वह जीर्ण (जर्जर) सेठ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। किसी कार्यवश वह उद्यान में गया। वहां पर ध्यानस्थ भगवान को देखा। वन्दन-अभिवन्दन करते हुए उसने स्तवना प्रारम्भ की। मन ही मन में चिन्तन जागृत हुआ कि आज भगवान का उपवास है, कल ये मेरे घर पधारें और सुपात्र दान देने का योग मिल जाये तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा। ऐसे स्वर्णिम-सूर्य का उदय कब होगा?

अब वह भगवान को वन्दन करने के लिए जाता है और प्रतिदिन भिक्षार्थ निवेदन करता है। प्रतीक्षा करते-करते (भावना भाते-भाते) बहुत समय बीत गया, किन्तु भगवान का पदार्पण नहीं हुआ क्योंकि चातुर्मासीय तप कर रहे थे। आखिर चातुर्मास सम्पन्न हुआ। भगवान पारणा लेने के लिए गतिमान बने।

उसी नगर में नवीन नाम का एक सेठ रहता था। ऐश्वर्य व वैभव सम्पन्न होने के साथ-साथ वह जैन धर्म का विरोधी था। मिथ्यात्वी था। भगवान भ्रमण करते-करते उस नवीन सेठ के घर पर भिक्षा-हेतु पधारे। सेठ ने अपनी दासी को सूचित करते हुए कहा—इस भिक्षुक को दान देना पड़ेगा। दान देना। दान लेते ही वह रवाना हो जाये, ऐसा प्रयास करना। एक काष्ठपात्र में उबले हुए कुल्माष लेकर दासी आयी और भगवान को बहिराये। पारणा होते ही देवों ने पंचदिव्यों की वृष्टि की। सर्वत्र दान की प्रशंसा होने लगी। राजा नवीन सेठ के घर पहुंचे। नवीन सेठ के भाग्य की प्रशंसा करते हुए उसे पुनः-पुनः धन्यवाद देने लगे।

जीर्ण सेठ भगवान की भावना लिये-लिये (भाता-भाता) अपने आपमें रमण करने लगा। जब उसके कानों से दुदुंभि का घोष टकराया तो वह मन ही मन सोचने लगा—पारणा हो गया। मेरे जैसे हतभागी को ऐसा सुअवसर कब मिलने वाला था? भगवान मेरे घर पर पधारेंगे, हाथ से दान दूंगा—मन की मन में ही रह गई। आशा पर निराशा का पानी फिर आया। धिक्कार है मेरे जीवन को!

जीर्ण सेठ की भावना, हुई न पूरी लेश।
दान न किंचित् दे सका, करत दुःख विशेष॥

भावना का महत्त्व

भगवान का तो वहां से विहार हो गया। उसी उद्यान में भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के एक केवली पधारे। हजारों-हजारों लोग उनकी वन्दन करने के लिए उद्यान में पहुंचे। उपदेश हुआ। सबने अपने कानों को पवित्र किया। नगरी के सम्राट् ने बड़े विनय भाव से पूछा—भगवन् ! इस नगरी में विशेष पुण्योपार्जन करने वाला कौन है ?

भगवान ने उत्तर की भाषा में कहा—जीर्ण श्रेष्ठी महान् पुण्यशाली है, भाग्यशाली है। ऐसे शुभकर्मी जीव संसार में विरले ही होंगे।

नगर-नरेश ने कहा—हे भगवन् ! जीर्ण श्रेष्ठी ने तो भगवान को दान भी नही दिया और न ही कोई पुण्योपार्जन का कार्य किया। तो फिर वह पुण्यशाली कैसे हो गया ? नवीन सेठ ने भगवान को दान देकर महान् कार्य किया। देवों ने उसके घर पर पांच प्रकार की दिव्य वस्तुओं की वर्षा की। आकाश में दुदुंभि बजने लगी। सुर, नर, इन्द्र, नरेन्द्र सबके द्वारा उस सेठ की प्रशंसा की गई। चारों तरफ जय-जयकार की ध्वनि से धरा गूंजने लगी। नवीन सेठ से जीर्ण सेठ अधिक पुण्यशाली कैसे हो गया ? बात समझ में नहीं आ रही है। हम सबके संशय को दूर करने की कृपा करें।

केवली भगवान् ने सबका संदेह दूर करते हुए कहा—नवीन सेठ के घर पर भगवान ने भिक्षा दान ग्रहण किया। भगवान् की दीर्घ तपस्या का पारणा हुआ। इसलिए देवों ने वर्षा की। सर्वत्र नवीन सेठ की प्रशंसा हुई। लेकिन सेठ का दान केवल द्रव्यदान था। दान देने में उपेक्षा भाव होने के कारण जितना लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिला। पारणा कराने में सेठ निमित्त अवश्य बना, किन्तु जीर्ण सेठ की भावना बहुत ही उत्तम थी। आहारदान की उच्च भावना से पुण्योपार्जन कर उसने बारहवें देवलोक का आयुष्य बांध लिया है। समृद्धिशाली देव होगा। हर दृष्टि से उसे लाभ मिला। यदि देव दुदुंभि कुछ समय और नहीं बजती तो उसकी भावना बढ़ती ही रहती। विक्षेप नहीं होता तो उसकी आत्मा केवलज्ञानमय बन जाती। केवली भगवान का उत्तर सुनकर सभी लोगों के हृदय में आश्चर्य का पार नहीं रहा।

जीर्ण सेठ ने भाव से, किया आत्मकल्याण।
'मुनि कन्हैया' भाव बिन, कौन करे निर्माण॥

गोशालक

पिता मंखली ने पुत्र का जन्म गोशाला में होने के कारण उसका नाम 'गोशालक' रखा। भगवान राजगृह पधारे। विजय-गाथा पति के घर पर मासखमण का पारणा हुआ। देवों द्वारा रत्न आदि की वर्षा हुई। यह सब देखकर गोशालक ने कहा—भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य हैं। मैं आपका शिष्य हूं। किन्तु भगवान नहीं बोले और तन्तुवाय शाला में पधारकर मासखमण प्रारम्भ कर दिया। आनंद गाथापति के घर पर पारणा हुआ। गोशालक चित्रपट दिखाकर अपना धन्धा करता था।

एक दिन भगवान के ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उसने भगवान से पूछा—भगवन ! आज सर्वत्र कार्तिक महोत्सव हो रहा है। इसलिए सब घरों में मिष्टान्न बनेगा। बताइये, मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा ?

भगवान की ओर से सिद्धार्थ व्यन्तर ने उत्तर देते हुए कहा—आज तुझे खट्टा कोद्रव और कुर मिलेगा, दक्षिणा में एक खोटा रुप्यक प्राप्त होगा।

गोशालक प्रातःकाल से ही भिक्षा के लिए भटकने लगा। भिक्षा का योग नहीं मिला। अन्त में एक सेवक द्वारा खट्टे कोद्रव व कुर मिले। क्षुधा-संपीड़ित गोशालक ने खाये। एक खोटा रुप्यक दक्षिणा में प्राप्त हुआ। इस घटना के आधार पर गोशालक ने यह निर्णय किया कि पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। जो होना है वह होकर ही रहता है। मिष्टान्न-प्राप्ति के लिए इतना प्रयत्न किया, फिर भी मुझे मिष्टान्न नहीं मिला क्योंकि मेरे भाग्य में लिखा हुआ नहीं था। गुरुदेव ने जो फरमाया है, वही सत्य है। अब मुझे गुरु के अनुरूप बन जाना चाहिए। उसने झट अपने मस्तक के बालों को कटवाया। भगवान के पास पहुंचा। हाथ जोड़कर निवेदन की भाषा में कहा—भगवन् ! मैं आपका शिष्य बनने के लिए आया हूं। आप मुझे शिष्यत्व की स्वीकृति प्रदान करें।

गोशालक श्रमण तो बना लेकिन उसकी कुपात्रता कब मिटने वाली थी। भगवान तो मौन थे। भूख-तृषा से संपीड़ित गोशालक भिक्षा के लिए गांव में पहुंचा। भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यों ने उसे विचित्र वस्त्रों के संधारक साधु को देखा। आश्चर्य का पार नहीं रहा। परस्पर कुछ प्रश्नोत्तर हुए। भगवान विहरण करते हुए सिद्धार्थ ग्राम में पधारे। गोशालक ने भगवान से पूछा—क्या यह तिल का पौधा फलेगा ? भगवान ने उत्तर में कहा—हे गोशालक ! यह तिल का पौधा फलेगा। सात फलों के जीव मरकर इसकी एक फली में तिल के सात दाने होंगे।

वह गोशालक भगवान् की वाणी को सत्य नहीं मानता था। वह भगवान के पीछे-पीछे चलता हुआ रुक गया। इस पौधे को मिट्टी सहित मूल से उखाड़कर फेंक दिया। फिर भगवान के साथ हो गया। उस समय वृष्टि होने के कारण

पौधा गाय के खुर से दब गया। मिट्टी और पानी का योग मिलने से पौधे का पोषण व संरक्षण हो गया। उसकी एक फली में सात दाने के रूप में हुए। क्योंकि भगवद्वाणी असत्य कब होने वाली थी।

भगवान कूर्म ग्राम पधारे। संन्यासी वैशिकायन की यूकाएं उठाकर मस्तक पर रखते हुए देखकर व्यंग्य कसते हुए गोशालक ने कहा—तुम साधु हो या जूओं के शय्यातर? पुनः-पुनः उसे कुरेदने लगा। आखिर वह शान्त रह नहीं सका। क्रोधित होकर उसने गोशालक को भस्म करने के लिए तेजोलेश्या छोड़ी। भगवान छद्मस्थ थे। मोहानुकम्पी बनकर उन्होंने शीतल तेजोलेश्या का प्रयोग किया। गोशालक मरता-मरता बच गया। लेकिन दुष्ट अपनी दुष्टता का परित्याग नहीं करते। आगे जाकर वह अविनीत गोशालक भगवान से पृथक् होकर भगवान के विरुद्ध प्रचार करने लगा।

> नहीं छोड़ता दुष्टता, गोशालक अविनीत।
> वीर-धर्म द्रोही बना, तजकर मार्ग पुनीत॥

कानों में कीलें

ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए भगवान महावीर षणमानी ग्राम पधारे और ग्राम के बाहर उद्यान में ध्यान करने लगे। वासुदेव के भव में भगवान ने जिस शय्यापाल के कानों में उबलता हुआ शीशा डलवाया था, उस भव के जो कर्म संचित थे वे उदय में आये। उस शय्यापाल का जीव भ्रमण करता-करता मनुष्य भव में उत्पन्न होता है। उसी गांव में वह गोपालक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। एक दिन का किस्सा कि वही गोपालक अपने बैलों को भगवान के पास चरते हुए छोड़कर गायों को दुहने के लिए चला गया। वापस आया। बैलों को नहीं देखकर वह तड़ककर भगवान से पूछने लगा—मेरे बैल कहां पर हैं? मैं यहां छोड़कर गया था।

भगवान तो ध्यान में लीन थे। आत्म-साधना ही उनका लक्ष्य था। मौन में उत्तर कैसे दे सकते थे? ग्वाले के हृदय में क्रोध का पार नहीं रहा। आंखों से शोणित की धारा प्रवाहित होने लगी। अनर्गल शब्दों में जोर से बोलने लगा—अरे पापी! अरे अधम! बोलता क्यों नहीं? क्या तु बधिर है। सुना-अनसुना कर रहा है। बोल! अरे बोल! मेरे बैल कहां छिपाये हैं? भगवान अपनी साधना में इतने लीन थे कि उन्हें कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। उन्हें निरुत्तर देखकर उसने आगबबूला होकर तीक्ष्ण सलाई भगवान के दोनों कानों में ठोक दी। भगवान को असह्य वेदना सहन करनी पड़ी। फिर भी वे अपने ध्यान में मेरु पर्वत की भांति अकम्पित थे।

वहां से विहार कर भगवान अपापा नगरी में पधारे। पारणा लेने के लिए भ्रमण करते-करते सिद्धार्थ व्यापारी के घर आ पहुंचे। वहां पर उनका मित्र खरक नाम का वैद्य बैठा था। उसकी दृष्टि भगवान के आनन पर पड़ी। उसने अपने मित्र सिद्धार्थ से कहा—मित्र, लगता है इन महापुरुष के शरीर में कहीं न कहीं असाता के आसार दिखाई दे रहे हैं। सिद्धार्थ ने कहा—तुम अच्छी तरह से अवलोकन करो कि शल्य कहां पर लगा हुआ है। वैद्य खरक ने बड़ी सूक्ष्मता से निरीक्षण कर गम्भीर मुद्रा में कहा—किसी दुष्ट पापी ने भगवान के कानों में कीलें ठोक दी हैं।

भगवान तो वहां से विहार कर आगे बढ़ने लगे। सिद्धार्थ ने कहा—मित्र खरक! नीच बहुत देखे किन्तु ऐसे नीच देखने में नहीं आये। हाय! वह मनुष्य था या कोई राक्षस। नीचता की हद होती है। ऐसे अकृत्य कार्य में निःशंकित होकर गतिशील होना बहुत बड़ी नृशंसता है। मित्र! अब अन्य बातें छोड़कर कीलें निकालकर भगवान की पीड़ा मिटे ऐसा प्रयास होना चाहिए।

सिद्धार्थ और वैद्य तेल पात्र कुछ औषधि लेकर घर से चले। भगवान की खोज करते-करते वे दोनों उद्यान में पहुंचे। भगवान ध्यानस्थ होकर आत्मा में लीन बन रहे थे। खरक वैद्य ने भगवान के शरीर पर तेल का खूब मर्दन किया, जिससे शरीर के सांधे ढीले हो गए। संडासे से कीलों के सिरे पकड़कर एक साथ खींचे, रक्त के साथ दोनों कीलें निकल गईं। भगवान को शान्ति मिली, उस अधम ग्वाले ने सातवें नरक का आयुष्य बांध लिया।

महावीर के कर्ण में, कील ठोक दी उग्र।
[1]उसने सप्तम नरक का, बांधा आयु तीव्र॥

तपस्या

भगवान महावीर ने छद्मस्थ अवस्था में निम्न तपस्या कर संसार के सम्मुख एक नया उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत किया।

छः मासिक तप १, चातुर्मासिक तप २, मासिक तप ६, मासखमण १२, अर्द्धमासिक ७२, त्रिमासिक २, डेढ़ मासिक २, ढाई-मासिक २, भद्र-महाभद्र और सर्वतो भद्र प्रतिमा पांच दिन कम छः मासिक तप अभिग्रह युक्त १, तेले १२, बेले २२८, अन्तिम रात्रि में कायोत्सर्ग युक्त भिक्षु प्रतिमा कुल पारणे २४८ हुए। भगवान की यह सारी तपस्या जल रहित अर्थात् चौविहार कहलाती है।

---

१. ग्वाले ने।

केवलज्ञान : केवलदर्शन

नगरी से विहार कर जृंभक गाँव पधारे। उसी गाँव के पास ऋजुबालिका नदी थी। नदी के उत्तर तट पर श्यामाक नामक गृहस्थ का सुन्दर खेत था। तटस्थ शालवृक्ष के नीचे बेले की तपस्या में उत्कृष्ट आसन में आतापना लेने लगे। वैसाख शुक्ला दशमी का स्वर्णिम दिवस। चतुर्थ प्रहर। हस्तोत्तर नक्षत्र। विजय मुहूर्त। शुक्ल ध्यान में प्रभु का प्रवेश। क्षपक श्रेणी में आरूढ़। चारों घाती कर्मों का अवसान। केवलज्ञान व केवलदर्शन उपलब्धि। केवल महोत्सव के लिए इन्द्र आदि का आगमन। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने संक्षेप में धर्म देशना द्वारा उद्बोधन दिया।

प्रथम देशना के अवसर पर कोई भी मनुष्य नहीं था। इसलिए भगवान की वह देशना खाली हो गई। यह आश्चर्य भरी अभूतपूर्व घटना थी। क्योंकि तीर्थंकर भगवान की प्रथम देशना कभी भी व्यर्थ नहीं जाती। किन्तु भगवान महावीर की देशना खाली गई।

ग्यारह गणधर

सोमिल ब्राह्मण द्वारा 'अपापा' पुरी में महायज्ञ का विराट आयोजन हुआ। इस यज्ञ को सफल बनाने हेतु वेदों के विशेष विज्ञाता ग्यारह प्रकाण्ड विद्वानों को आमंत्रित किया गया। वे सभी धुरंधर मेधावी थे। अपने-अपने सैकड़ों शिष्यों को साथ लेकर उस यज्ञ में उपस्थित हुए। बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में महायज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की महिमा चारों तरफ फैलने लगी।

भगवान महावीर का उसी ग्राम में पदार्पण हुआ। देवों द्वारा समवशरण की रचना हुई। भगवान की पीयूष भरी देशना सुनने के लिए देवताओं का आगमन प्रारम्भ हुआ। देवों को आते देखकर सर्व ज्येष्ठ उपाध्याय इन्द्रभूति ने अपने साथी पंडितों से कहा—प्रबुद्धो! हमारे यज्ञ की कीर्ति अद्वितीय है। इसके प्रभाव से देवगण भी आकर्षित होकर आ रहे हैं। बहुत ही प्रसन्नता का विषय है।

किन्तु जब यज्ञ-मंडप को लांघकर देवों के विमान बड़ी द्रुत गति से आगे जाने लगे तो इन्द्रभूति के हृदय में क्रोधानल प्रज्वलित होने लगा। बड़ी गर्व की भाषा में बोलने लगा—इस संसार में मनुष्य तो अज्ञ हो सकते हैं, किन्तु देवगण ज्ञानी होते हुए भी अज्ञता का परिचय दे रहे हैं। ये सब कहाँ जा रहे हैं? इतने में लोगों की आवाज उनके कानों में टकराने लगी कि "महासेन उद्यान में भगवान महावीर सर्वज्ञ देव पधारे हुए हैं। ये देव उन्हें वन्दन-नमस्कार करने के लिए जा

रहे हैं'। क्या इस संसार में मेरे से बढ़कर कोई ज्ञानी सर्वज्ञ है। ये देवता उस मायावी के मायाजाल में कैसे फंस रहे हैं। लगता है वह पाखंडी है। उसके पाखंड को अब दूर करने के लिए शीघ्र ही मेरे लिए वहां जाना अत्यावश्यक है।

इन्द्रभूति

अभिमान के हाथी पर आरूढ़ होकर इन्द्रभूति अपने पांच सौ शिष्यों के परिवार के साथ महासेन उपवन में पहुंचा। भगवान महावीर ने उसे संबोधित करते हुए कहा—इन्द्रभूति गौतम ! तुम आये !

इन्द्रभूति ने सोचा—मेरा नाम, मेरा गोत्र इसने कैसे जाना ? पुनः चिन्तन चला। ओह ! मुझे कौन नहीं जानता, मैं सारे संसार में प्रसिद्ध हूं। मुझे प्रसन्न करने के लिए मेरा नाम लेकर संबोधित कर रहा है। यदि मेरे मन के गुप्त संदेह को जान ले तो मैं समझूंगा कि ये निश्चित ही सर्वज्ञ है। भगवान ने फिर कहा—हे गौतम ! तुम्हारे मन में जीव के अस्तित्व के विषय में संशय है कि जीव है या नहीं ?

इन्द्रभूति—हां, यही संशय है। इसको दूर कर सकते हैं ?

भगवान—तुम्हें जो यह संशय है यह संशय करने वाला आत्मा ही है। आत्मा के बिना शरीर को संशय नहीं होता इसलिए आत्मा तुम्हारे ही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है, वह संशय ज्ञान है और ज्ञान जीव है। जब आत्मा प्रत्यक्ष से सिद्ध है तो दूसरे अनुमान आदि प्रमाणों से सिद्ध करने की जरूरत नहीं है।

इन्द्रभूति—क्या और किसी तरह आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होती ?

भगवान—क्यों नहीं ? अवश्य होती है। 'मैं कहता हूं, मैंने किया था, मैं करूंगा' इत्यादि तीन काल सम्बन्धी 'मैं' प्रत्यय होता है। यह मैं कौन है ? वही है आत्मा। यदि आत्मा के बिना 'मैं' प्रत्यय होता तो मेज, कुर्सी, कलम, दवात—इन सबके भी होता। लेकिन उन्हें ऐसा ज्ञान नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि 'मैं' शब्द से आत्मा का ही बोध होता है और वह प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि आत्मा नहीं हो तो 'मैं हूं या नहीं' इस प्रकार का संशय कैसे उत्पन्न हो ? क्योंकि संशय उसी का होता है जिसका अस्तित्व हो।

इन्द्रभूति—भगवन् ! आपने जो कहा वह ठीक नहीं है। 'मैं' हूं, यह अनुभव तो शरीर में होता है। इसलिए शरीर से अलग आत्मा नहीं मानना चाहिए।

भगवान—शरीर तो जड़ है। यदि शरीर के अन्दर ही 'मैं' का अनुभव होता हो तो शव में भी 'मैं हूं' ऐसा ज्ञान होना चाहिए। मगर शव को 'मैं हूं' ऐसा ज्ञान नहीं होता, इसलिए यही मानना पड़ेगा कि शरीर से भिन्न किसी दूसरे को ही 'मैं हूं' यह अनुभव होता है। बस, वही शरीर से भिन्न ज्ञाता आत्मा है।

इन्द्रभूति—घट-पटादि की भांति जीव प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। इसलिए

आकाशकुसुम की भांति जीव का अभाव है।

भगवान—यह तुम्हारी विचारधारा न्यायसंगत नहीं है। यदि जीव है ही नहीं तो यज्ञादि अभिमान करने की क्या जरूरत है? इसके स्वर्ग, सुख रूप फल जीव बिना कौन भोगेगा? अतः जीव के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि जीव शब्द से जीव की सिद्धि हो जाती है, वाच्य के बिना वाचक नहीं होता, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भगवद्-वाणी का अचूक प्रभाव पड़ा। इन्द्रभूति गौतम के विचारों में परिवर्तन आया। भगवान की सर्वज्ञता पर अटूट विश्वास हुआ। हृदयस्थ सन्देह का निवारण होते ही बद्धांजलि वंदन करता हुआ बड़ी विनम्रता से बोला—भगवन्! मैं अहंकार के उपवन में विहरण कर रहा था। मेरे घट में अंधकार का गहरा आवरण छाया हुआ था। अपने आपको बड़ा शक्तिशाली मानता था। मुझे मेरी विद्वता पर बड़ा अहं था। लेकिन आपके अलौकिक व्यक्तित्व के आगे मेरा नशा चूर हो गया। हे अतिशय सम्पन्न दिव्य मूर्ते! धन्य है आज का दिन। धन्य है आज का स्वर्णिम सुनहला सुन्दर अवसर। आपके शुभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मेरी शंका का समाधान हुआ। मुझे दीक्षित कर मेरी भावना को साकार बनाएं। अवश्य ही मेरा कल्याण होगा।

इन्द्रभूति अपने पांच सौ छात्रों के साथ प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ श्रमण बन गये। आगे जाकर ये ही इन्द्रभूति भगवान के प्रथम गणधर हुए।

अग्निभूति

इन्द्रभूति के सहोदर भाई अग्निभूति ने सुना कि इन्द्रभूति तो भगवान महावीर के पास दीक्षित हो गया। उसे बड़ा खेद हुआ। मानसतल में क्रोधानल की चिनगारियां उछलने लगीं—उस मायावी ने मेरे बन्धव को अपने जाल में कैसे फंसा लिया? बड़ा आश्चर्य है। मेरा भाई तीनों लोक में किसी से भी पराजित होने वाला नहीं था। उस तुच्छ श्रमण ने मेरे भाई को हरा दिया। लगता है उसने छलनापूर्वक उसे भुलावे में डाल दिया है, इससे उसके चिन्तन में परिवर्तन हुआ है। कौन जाने क्या घटना घटी है?

वीर! वहां पर जाऊं और वापस लेकर आऊं। उस अहंकारी श्रमण की पोल खोलकर सारे संसार के सामने रखूं। संभव है, इन्द्रभूति को श्रमण ने किसी प्रकार जीत लिया हो, किन्तु मुझे परास्त करने में वे कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

ऐसे अनेक संकल्पों-विकल्पों के उन्मुक्त आकाश में विहरण करता हुआ अग्निभूति अपने पांच सौ शिष्यों के साथ भगवान महावीर के समवसरण में उपस्थित हुआ। भगवान ने उनके नाम व गोत्र का उल्लेख करते हुए कहा—हे

अग्निभूत गौतम ! तुम आ गये ?

अपना नाम व गोत्र सुनते ही अग्निभूति के चित्त में आश्चर्य का पार न रहा। मेरे नाम व गोत्र को इन्होंने कैसे जाना ? वह अपनी अहंकार की भाषा में सोचने लगा—अरे अग्निभूति ! तू सारे संसार में प्रसिद्ध है। तुम्हें कौन नहीं जानता ? मैं इन्हें सर्वज्ञ तो तभी समझूं जब ये मेरे सन्देह को स्पष्ट बतला दें। यों सोच ही रहा था, इतने में भगवान ने कहा—हे अग्निभूति गौतम ! तुम्हारे मन में सन्देह है कि कर्म है या नहीं ?

हे आयुष्मान् ! तुम ऐसा सन्देह मत करो। क्योंकि मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से कर्मों को जानता हूं और तुम भी अनुमान से जान सकते हो—जैसे संसार में कोई प्राणी सुख भोगता है, कोई दुःख। इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। क्योंकि वे सुख-दुःख कार्य हैं। जो-जो कार्य होते हैं उनका कारण अवश्य होता है। जैसे—अंकुर कार्य का कारण बीज है।

अग्निभूति—यदि आप कर्मों को प्रत्यक्ष जानते हैं तो मैं क्यों नही जान सकता ?

भगवान—हे अग्निभूते ! यह तुम्हारा कथन प्रशस्त नहीं है। जो वस्तु एक के लिए प्रत्यक्ष है, वह दूसरे के लिए प्रत्यक्ष हो, यह कोई नियम नहीं है। जैसे—सिंह, हंस आदि जीव सब लोगों के लिए प्रत्यक्ष नहीं है, फिर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका अस्तित्व नहीं है। उनके अस्तित्व को हर व्यक्ति मानते हैं। जैसे तुम्हारा संशय मेरे लिए प्रत्यक्ष है, दूसरों के लिए प्रत्यक्ष नहीं है। इसी प्रकार कर्म भी मेरे लिए प्रत्यक्ष है, तुम्हारे लिए नहीं।

दूसरी बात यह है कि छद्मस्थ के लिए कर्म चक्षु-ग्राह्य नहीं है, इससे कर्म का अभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि चतुःस्पर्शी कर्म पुद्गल इन्द्रियों के विषय नहीं हो सकते। छद्मस्थ व्यक्ति भी जीव की विचित्रता व विभिन्नता देखकर अनुमान से कर्म के अस्तित्व को जान सकते हैं। कोई जीव सुखी है, कोई जीव दुःखी है। कोई मनुष्य है, कोई पशु-पक्षी है। यह सब विविधता किसी कारण बिना नहीं हो सकती है, और वह कारण है कर्म।

अग्निभूति—अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्म का संबंध कैसे होता है ?

भगवान—यह भी चिन्तनीय नहीं है, क्योंकि संसारी आत्मा कर्म की अपेक्षा कथंचित मूर्त ही है। मूर्त आत्मा के साथ में मूर्त कर्मों का सम्बन्ध होना असंगत नहीं है।

अग्निभूति—रूपी कर्म का अरूपी आत्मा पर उपघात और अनुग्रह कैसे हो सकता है ? जसे अरूपी आकाश को रूपी चंदनादि से अथवा अग्नि की ज्वाला से सुख-दुःख नहीं हो सकता, इसी प्रकार रूपी कर्म अरूपी आत्मा के लिए सुख-दुःख

का कारण नहीं बन सकता।

भगवान—जैसे ज्ञान, जिज्ञासा, धारणा, स्मृति आदि अरूपी जीव के गुणों का रूपी मदिरापान, विष आदि से उपघात होता है तथा दूध, घृत आदि औषधि से अनुग्रह होता है, इसी प्रकार यहां भी समझ लेना चाहिए।

अग्निभूति का हृदयस्थ सन्देह दूर होते ही वे भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गये। उनके साथ उनके पांच सौ शिष्य भी प्रव्रजित हुए। जय-जय के उद्घोषों से गगन धरातल गूंजने लगे। आगे जाकर अग्निभूति भगवान के दूसरे गणधर हुए।

वायुभूति

इन्द्रभूति और अग्निभूति दोनों ही निर्ग्रन्थ श्रमण बन गए, वायुभूति ने यह समाचार सुनकर सोचा—दोनों ही बन्धुओं को दीक्षा देने वाला अवश्य ही कोई महान तेजस्वी शक्तिशाली सर्वज्ञ होना चाहिए। मैं भी वहां जाऊं। मेरे हृदय में जो शंका है, उसे दूर करूं।

वायुभूति भगवान के समवशरण में पहुंचा। साथ में पांच सौ शिष्य थे। वहां का अपूर्व शान्तिमय वातावरण देखकर वह बहुत ही प्रभावित हुआ।

भगवान ने कहा—हे आयुष्मान वायुभूति! तुम्हारे मन में कुछ संशय है। तुम और शरीर को एक ही मानते हो, दोनों का अलग-अलग अस्तित्व स्वीकार नहीं करते हो। तुम्हारी मान्यता है कि जैसे जल में बुलबुला प्रकट होकर पुनः उसी मे विलय हो जाता है, वैसे शरीर से चेतना प्रकट होती है और उसी मे पुनः विलीन हो जाती है। शरीर से भिन्न जीव का अस्तित्व तुम स्वीकार नहीं करते हो। किन्तु तुम्हारी यह विचारधारा न्याय पूर्ण नहीं है। एक दृष्टि से जीव को प्रत्यक्ष भी मान सकते हैं क्योंकि इच्छा, आकांक्षा आदि गुण प्रत्यक्ष हैं। इच्छा लालसा जीव में ही होती है, जड़ शरीर में नहीं। जीव में संवेदना होती है, अनुभव होता है, वह अनुभव शरीर नहीं कर सकता। जीव शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है। किसी इन्द्रिय को कष्ट होने पर भी उसके द्वारा अनुभूत विषय की स्मृति होती है। इन्द्रियों के सिवाय आत्मा अगर अलग नहीं हो तो इन्द्रियों के द्वारा अनुभूत विषय की स्मृति कौन करेगा? इन्द्रियों का विषय वर्तमान ही है, भूत की स्मृति करने की क्षमता उनमें नहीं है।

भगवान महावीर का न्यायपूर्वक उत्तर व रहस्यमयी सन्देहनाशक वाणी सुनकर वायुभूति भगवान के प्रति अवनत हो गया और बोला—'प्रभो, मैं आपके चरणों में सर्वथा समर्पित हूं। मेरे मानसिक सन्देह को दूर करने वाले आप ही हैं।' आखिर वायुभूति अपने पांच सौ शिष्यों सहित दीक्षित हो जाते हैं। आगे जाकर ये वायुभूति तीसरे गणधर बन जाते हैं।

व्यक्त

व्यक्त ने मन ही मन सोचा—वास्तव में ये महावीर सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हैं क्योंकि बिना शक्ति व बिना विद्वता के वे तीनों बन्धव कभी भी उनके पास में दीक्षित नहीं होते। इस स्वर्णिम समय का मुझे भी लाभ लेना चाहिए। मैं भी वहां जाऊं और संशय को दूर करूं। वे भी अपने पांच सौ शिष्यों के साथ भगवान के समवशरण में पहुंचे।

भगवान ने कहा—हे व्यक्त! तुम तो सर्वत्र शून्य ही देखते हो। तुम्हें तो पृथिव्यादि पांच भूत भी मान्य नहीं हैं। मेरी दृष्टि से तुम्हारी यह विचारधारा उचित नहीं है, क्योंकि जिनका अभाव ही है, अस्तित्व ही नहीं है—सब शून्य ही है तो फिर संशय किस बात का? संसार में किसी का सद्भाव है ही नहीं तो संशय होगा ही नहीं। संशय होगा तो सत् वस्तु के विषय में ही होगा। जैसे दूर से खंभे को देखकर यह संशय होता है कि यह खंभा है या मनुष्य है? क्योंकि इन दोनों का अस्तित्व है, इसलिए संशय होता है।

आकाश-कुसुम व शश-शृंग का अभाव होने पर भी जो संशय होता है, वह तो समवाय निषेध है। आकाश के कुसुम भले न हों किन्तु आकाश व कुसुम, इन दोनों का अस्तित्व तो है ही, इसलिए इन दोनों के विषय में संशय होता है।

भगवान की विचारधारा से 'व्यक्त' बहुत ही प्रभावित हुआ। संशय दूर होते ही उसने निवेदन की भाषा में कहा—भगवान्! मैं आपकी सर्वज्ञता के सामने नत-मस्तक हूं। भाग्योदय! आप जैसे महापुरुषों का योग भी किस्मत के अभाव में मिल नहीं सकता। कृपया अब विलम्ब नहीं करें। मुझे भी संयम-दान प्रदान कर कृतार्थ करें। आखिर व्यक्त अपने पांच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। ये आगे आकर भगवान् के चौथे गणधर के रूप में नियोजित हुए।

सुधर्मा

सुधर्मा भी अपने सन्देह को दूर करने हेतु पांच सौ शिष्यों की सम्पदा साथ लेकर भगवान् महावीर के समवशरण में पहुंचे। भगवान ने कहा हे सुधर्मा! तुम्हारी मान्यता है कि जीव की अवस्था परभव में भी एक-सी रहती है, जो इस भव में पुरुष है, वह आगे के भव में भी पुरुष ही होगा, क्योंकि कारण के अनुरूप ही कार्य होगा। चने के बीज से चना ही उत्पन्न होता है, गेहूं आदि नहीं। तुम्हारा यह सिद्धांत मेरी दृष्टि से उचित नहीं है। मानव क्षमा, सत्य, संतोष आदि सद्गुणों से मनुष्य आयु का उपार्जन करता है किन्तु जो नर, माया, असत्य, लोभ आदि पापों का आचरण करता है, वह भी मनुष्य ही हो, ऐसा नहीं हो सकता। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसी के अनुरूप उसकी गति होती है।

भगवान महावीर की वाणी सुनते ही सुधर्मा का संशय दूर हुआ। प्रभु के चरणों में अवनत होकर दीक्षार्थ प्रार्थना की। आखिर अपने पांच सौ शिष्यों के साथ वे दीक्षित हो जाते हैं। आगे जाकर पांचवें गणधर सुधर्मा स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

मंडितपुत्र

मंडितपुत्र साढ़े तीन सौ छात्रों सहित भगवान महावीर के पास पहुंचे। भगवान ने कहा—हे मंडितपुत्र ! बन्धन और मुक्ति के विषय में तुम सशंकित हो ? यह शंका श्रेयस्कर नहीं है। बन्धन और मुक्ति आत्मा की होती है। मिथ्यात्व, प्रमाद, कषाय आदि दुष्प्रवृत्ति से कर्मों का बन्धन होता है। उन्हीं बंधनों के कारण जीव नरकादि गतियों में जाता है। ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप आदि सद्गुणों से उन्हीं बंधनों को हटाकर जीव मुक्त बन जाता है। यद्यपि जीव और कर्म का संबंध प्रवाह रूप से अनादि है, फिर भी अनादि संबंधित धातु और मिट्टी अग्नि के द्वारा पृथक् हो जाती है। वैसे ही जीव और कर्म का संबंध रत्नत्रय से अलग हो जाता है।

मंडितपुत्र की शंका का समाधान संप्राप्त होते ही अपने शिष्यों सहित भगवान महावीर के पास दीक्षित हो जाते हैं। और वे ही छठे गणधर के रूप में प्रसिद्ध हुए।

मौर्यपुत्र

मौर्यपुत्र भी अपने साढ़े तीन सौ छात्रों के साथ भगवान महावीर के समवशरण में उपस्थित हुए।

भगवान ने कहा—हे मौर्यपुत्र ! तुम्हें देवों के अस्तित्व में संदेह है किन्तु यह सन्देह अधिक नहीं टिक सकता। देव इस सभा में उपस्थित हैं। साक्षात आंखों से देख सकते हो। पहले तुमने देवों को कभी नहीं देखा। इसका एक कारण यह है कि मनुष्य लोक की दुर्गन्ध बाधक है, दूसरा कारण यह है देवता पांचों इन्द्रियों की विलासिता में इतने मुग्ध रहते हैं कि वे प्रायः देवलोक से यहां आते ही नहीं हैं। इससे अभाव मानना न्यायसंगत नहीं है। अरिहन्त आदि के प्रभाव व तेज से मनुष्यलोक में भी देवों का आगमन होता है।

मौर्यपुत्र समझ गये और अपने साढ़े तीन सौ छात्रों के साथ संयम ग्रहण कर सातवें गणधर बने।

अकंपित

अकंपित भी अपनी शिष्य संपदा लेकर वहां पर पहुंचा। भगवान ने कहा—हे अकंपित ! तुम नरक गति नहीं मानते हो। किन्तु नरक गति भी है। सर्वज्ञ केवलज्ञानी उसे अपने ज्ञान के माध्यम से देखते हैं। नरक के जीव तो यहां पर आ नहीं सकते क्योंकि वे पराधीन हैं। मनुष्य नरकालय तक पहुंच नहीं सकते। अतः नरक

के विषय में शंकाशील रहना उचित नहीं है।

अकंपित भी अपने तीन सौ शिष्यों के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर आठवें गणधर बने।

अचलभ्राता

अचलभ्राता पंडित भी अपनी शिष्य मंडली को साथ लेकर समवशरण में आ पहुंचे। भगवान ने कहा—हे अचलभ्राता ! तुम्हारे दिल में पुण्य-पाप के विषय में संशय है। पुण्य-पाप का फल तो संसारी जीव भोगते रहते हैं। दीर्घ आयुष्य, उत्तम वंश, वैभव, रूप, मानव जन्म—भौतिक सुख-सुविधा आदि ये सब पुण्य के फल साक्षात दिखाई दे रहे हैं। इन सबके विपरीत जो फल मिलता है वह सब पाप का ही फल मानना चाहिए। इसलिए पुण्य-पाप के विषय में संदेह करना निरीह भूल है।

संदेह दूर होते ही अचलभ्राता अपने तीन सौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए। नवें गणधर बने।

मेतार्य

मेतार्य भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ। भगवान ने कहा—हे मेतार्य ! परलोक को नहीं मानते हो तुम, देह विलय के साथ ही जीव को भी नष्ट होना मानते हो, यह मान्यता उचित नही है क्योंकि आत्मा एक सद्द्रव्य है। सद्द्रव्य का कभी नाश नहीं होता इसलिए मरने के बाद भी आत्मा का अस्तित्व विद्यमान रहता है। और वह आत्मा कृत कर्मों को भोगने के लिए नया शरीर धारण करती है। जाति-स्मरण आदि ज्ञान से पूर्व भव की स्मृति होती है।

मेतार्य का संशय दूर हुआ। अपने तीन सौ छात्रों के साथ वे दीक्षित हुए। आगे जाकर मेतार्य दसवें गणधर बने।

प्रभास

प्रभासजी भी अपनी शिष्य-मंडली लेकर भगवान के पास आये। भगवान ने कहा—हे प्रभास ! तुम्हें मोक्ष में संदेह है। यह संदेह भी उचित नहीं है। केवल-ज्ञानी के लिए मोक्ष प्रत्यक्ष है। समस्त कर्मों को क्षय कर जीव लोक के अग्रभाव में पहुंच जाता है, वही मोक्ष है। मुक्ति है।

प्रभास जी का संशय दूर हुआ। अपने तीन सौ शिष्यों के साथ वे दीक्षित हुए। ग्यारहवें गणधर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ग्यारह महान विद्वान पंडितों की विचारधारा परिवर्तित होते ही प्रतिबोध पाकर अपने छात्र-समूह के साथ दीक्षित बने और भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य व तेजस्वी गणधर हुए।

चार तीर्थ की स्थापना हुई। भगवान ने चन्दना की प्रमुखता में अनेक महि-लाओं को दीक्षित किया। 'उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य' रूप त्रिपदी सुनकर भगवान के ग्यारह प्रमुख शिष्य श्रुत के ज्ञाता हो गए। भगवद्‌वाणी का आश्रय लेकर आचारांगादि द्वादशांग श्रुत की रचना की।

भगवान के प्रमुख गणधर तो इन्द्रभूति थे। भगवद्-निर्वाण के पश्चात वे केवलज्ञानी होने वाले थे और अन्य गणधर भगवान के निर्वाण से पहले ही मुक्त बनने वाले थे। इस दृष्टि से धर्म शासन-संचालन का उत्तरदायित्व पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी को सौंपा गया। इसी दृष्टि से भगवान ने गण की अनुज्ञा इन्ही को दी। साध्वियों की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रवर्तिनी पद पर आर्या चन्दनबाला को स्थापित किया।

नौ गणधर मुक्त

(१) अग्निभूति, (२) वायुभूति, (३) व्यक्त, (४) मंडितपुत्र, (५) मौर्य पुत्र, (६) अकम्पित, (७) अचलभ्राता, (८) मेतार्य, (९) प्रभास। भगवान महावीर के ये नव गणधर मुक्ति प्राप्त कर चुके थे। इन्द्रभूति और सुधर्मा स्वामी, ये दो गणधर शेष रहे थे।

केवलज्ञान लुप्त

सुधर्मा स्वामी ने बड़ी विनम्र भाषा में भगवान महावीर से प्रश्न करते हुए पूछा—भगवन्! केवलज्ञान उपलब्धि कब तक होती रहेगी? किसके पश्चात यह उज्ज्वल ज्योति बुझ जायेगी?

भगवान ने प्रत्युत्तर की भाषा में कहा—हे सुधर्मा! तुम्हारा शिष्य जम्बू अन्तिम केवली होगा। उसके पश्चात इस अवसर्पिणी काल में इस भरत क्षेत्र में किसी को भी केवलज्ञान की उपलब्धि नहीं होगी। उसी समय से परम अवधि-ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारक शरीर, क्षपक श्रेणी, उपशम श्रेणी, जिन कल्प, परिहार विशुद्ध चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र और मोक्ष-प्राप्ति में दस बोल विच्छेद हो जायेंगे।

स्वप्न और फल

भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास अपापापुरी में था। हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा (लेखनशाला) में भगवान विराज रहे थे। चारों तरफ धर्म का शान्त

वातावरण था। राजा हस्तिपाल को एक रात्रि में आठ स्वप्न आये। वह भगवान के चरणों में उपस्थित हुआ। हाथ जोड़कर उसने बड़े विनय भाव से निवेदन करते हुए कहा—प्रभो ! (१) हाथी, (२) बन्दर, (३) क्षीर वृक्ष, (४) काक पक्षी, (५) सिंह, (६) कमल, (७) बीज, (८) कुंभ—इन आठ स्वप्नों का फल जानना चाहता हूं। कृपया आप फरमायें।

भगवान ने इन आठ स्वप्नों का फल बतलाते हुए कहा—प्रथम स्वप्न में तुमने हाथी देखा। इसका फल यह है कि भविष्य में आने वाले 'दुषम' नामक पांचवें आरे में श्रावक समाज अपनी स्वल्प संपदा में लुब्ध बन जायेगा। आत्महित का विवेक भूलकर वह हाथी के समान गृहस्थ जीवन मे ही रचा रहेगा। यदि दुःखी जीवन से ऊबकर कोई दीक्षा ग्रहण करेगा तो कुसंगति के कारण संयम छोड़ देगा। निष्ठापूर्वक संयम का पालन करने वाले तो विरले ही होंगे।

बन्दर के स्वप्न का फल यह है कि संघ के नायक आचार्य भी चंचल प्रकृति के हो गे। स्वयं शिथिल होते हुए भी दूसरों को शिक्षा देंगे। चरित्र का लग्नपूर्वक निर्दोष रीति से पालन करेंगे और धर्म का यथार्थ प्रतिपादन करेंगे। धर्म-साधना में तत्पर तो कोई विरले ही होंगे। हे राजन् ! भविष्य में निर्ग्रन्थ प्रवचन से अनजान और उत्थापक लोग विशेष होंगे।

क्षीर वृक्ष के स्वप्न का फल—समृद्ध एवं दान करने की रुचि वाले श्रावकों को श्रमण-लिंगी ठग अपने चंगुल में पकड़े रखेंगे। उत्तम सुविहित मुनियों के विहार आदि में वे वेशधारी कुशीलियें बाधक होकर उपद्रव करेंगे। क्षीर वृक्ष के समान श्रावकों को कुसाधुओं की संगति करने से वे शिथिलाचारी रोकेंगे।

कौवा देखा—इस स्वप्न का फल यह है कि संयम धर्म एवं संघ की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले धृष्ट-स्वभावी बहुत होंगे। वे अन्य स्वछन्दियों का सहयोग लेकर धार्मिकों से विपरीत आचरण करते हुए धर्म का लोप और अधर्म का प्रचार करेंगे।

शरीर में उत्पन्न कीड़ों से दुर्बल एवं दुःखी बने हुए सिंह के स्वप्न का फल—सिंह वन का राजा है। अन्य पशु उससे भयभीत रहते हैं। परन्तु वह किसी से नहीं डरता। किंतु अपने शरीर में उत्पन्न कीड़े से ही वह जर्जर एवं दुःखी हो रहा है। इसी प्रकार जिन-धर्म सर्वोपरि है। इसके सिद्धान्त अन्य से बाधित नहीं हो सकते। किन्तु इसी में उत्पन्न दुराचारी द्रव्य लिंगी कीड़े ही इस पवित्र धर्म को क्षत-विक्षत करेंगे।

कमल के स्वप्न का फल—कमल का उचित स्थान सरोवर है। कमलाकार में उत्पन्न सुन्दर पुष्प विद्रूप हो, उससे दुर्गन्ध निकले तो वह कुत्सित होता है। इसी प्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न मनुष्य धार्मिक होना चाहिए। परन्तु भविष्य में प्रायः

ऐसा नहीं होगा। बहुत से कुसंगति में पड़कर धर्म-शून्य होंगे। कुछ धर्मी होंगे तो उनका स्थिर रहना कठिन होगा। किन्तु उकरडी पर कमल खिलने के समान कोई हीन कुलोत्पन्न मनुष्य भी धर्मी होगा परन्तु वह कुल-हीनता के कारण उपेक्षणीय होगा।

बीज स्वप्न का फल—उत्तम बीज को ऊसर भूमि में और सड़े हुए बीज को उपजाऊ भूमि में बोने वाला किसान विवेक-हीन होता है। इसी प्रकार विवेक-विकल श्रावक कुपात्र को रुचिपूर्वक दान देंगे और सुपात्र की अवहेलना करेंगे।

कुंभ-स्वप्न का फल—जल संभृत और कमल पुष्पों से आच्छादित कुंभ एक ओर उपेक्षित पड़े रहने के समान क्षमादि उत्तम गुणों से परिपूर्ण महात्मा विरले एवं बहुजन उपेक्षित से रहेंगे और मलपूरित कुंभ के समान दुराचारी वेशधारी सर्वत्र दिखाई देंगे। वे कुशीलिये शुद्धाचारी मुनियों की निन्दा करेंगे और उन्हें समय-समय पर कष्ट भी पहुंचाते रहेंगे। वेश से दुराचारी और सदाचारी समान दिखाई देने के कारण जन-साधारण दोनों को समान मानेंगे।

सब पागल, हम भी पागल

पृथ्वीपुर नाम का विशाल नगर था। वहां पर पूर्ण नाम का राजा राज्य करता था। उसका मन्त्री था 'सुबुद्धि'। वह हर दृष्टि से योग्य। बुद्धि विलक्षण। हर क्षेत्र में दक्ष। भविष्यवेत्ता विद्वान का राज्यसभा में आगमन। उसने बड़ी विनम्रता से मन्त्री को संबोधित करते हुए कहा—मन्त्रीवर! एक छोटा-सा निवेदन। एक मास पश्चात् वर्षा होगी। उसका पानी जो व्यक्ति पीयेगा, वह पागल (विकल-मति) बन जायेगा। कुछ समय निकल जाने के पश्चात् जब दूसरी बार वर्षा होगी उसका जल पीकर पुनः वे मूल अवस्था में परिणत हो जायेंगे।

मन्त्री ने राजा को निवेदन की भाषा में सारी अवगति दी। नृप ने सारे शहर में घोषणा करवा दी कि एक मास के पश्चात् वर्षा होगी, उसका जल पीने वाले व्यक्ति बावले बन जायेंगे। इसलिए सभी लोग अपने घरों में जल का संचय कर लें और उस वर्षा के पानी को कोई न पिए।

लोगों ने काफी पानी भरा। राजा और मन्त्री ने तो पर्याप्त पानी का संग्रह कर लिया। वर्षा हुई। लोगों ने सोचा—यह पानी पीने योग्य नहीं है। कुछ समय बाद जब संचित पानी समाप्त हो गया तो विवश होकर लोगों को पानी पीना पड़ा। पानी पीने वाले सभी विक्षिप्त हो गये। अंट-संट बोलने लगे। नाच-कूदकर विभिन्न कुचेष्टाएं करने लगे। राजा और मन्त्री के पास जल पर्याप्त होने के कारण वे इस पागलपन के रोग से दूर ही रहे किन्तु अन्य अधिकारी, कर्मचारी और सैनिक आदि सभी बावले होकर नृत्य करने लगे। अधिकारियों व नागरिकों

ने सोचा यह राजा और मन्त्री हमारी क्रिया-प्रक्रिया-प्रवृत्ति आदि से बिलकुल भिन्न हैं। विपरीत हैं। इसलिए ये दोनों बुद्धिहीन, विक्षिप्त, अयोग्य हो गये हैं। अब ये राज्य-संचालन-व्यवस्था में कभी भी सफल नहीं हो सकते। इसलिए इन दोनों को हटाकर अपने में से किसी योग्य व्यक्ति को राज्य का भार संभला देना चाहिए। किसी एक को राजा। किसी एक को मन्त्री। मन्त्री को यह सब पता लगते ही उसने राजा से कहा—महाराज ! अब हमें भी इनके जैसा पागल बनना पड़ेगा अन्यथा इन लोगों से बच नहीं सकेंगे, ये हमें दुःखी कर देंगे।

राजा ने सोचा—मन्त्री का कथन अक्षरशः सत्य है। राजा और मन्त्री बावलेपन का ढोंग करते हुए उनके साथ नाच-कूद करने लगे। अंट-संट अनर्गल शब्दावली का प्रयोग करने लगे। उनका राज्य और मन्त्री पद बच गया। कालान्तर में शुभ समय। मंगल घटी। शुभ मुहूर्त। अनहद वर्षा हुई। सभी उस जल को पीकर स्वस्थ बने और पूर्ववत् सारा व्यवहार प्रारम्भ हो गया।

हे हस्तिपाल ! पंचम काल में कोई गीतार्थ होंगे। वे भी धर्म के सत्य स्वरूप को जानते हुए भविष्य में अनुकूलता की आशा रखते हुए भी, लिंगधारी दुराचारियों से दबते हुए मिलकर रहेंगे।

पंचम काल का स्वरूप सुनते ही राजा हस्तिपाल के हृदय मे वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ। संयम स्वीकार कर कर्मों को काटकर वह नृप मुक्त हो गया।

दुःखद पंचम काल का, सुनकर सही स्वरूप।
हस्तिपाल दीक्षित हुआ, पाने को निज रूप ॥

जन्म राशि पर भस्म ग्रह

भगवान महावीर का निर्वाण समय बहुत ही नजदीक। प्रथम देवलोक के शक्रेन्द्र ने बड़े विनयपूर्वक निवेदन करते हुए कहा—भगवन् ! आपकी जन्म राशि पर दो हजार वर्षों का जो भस्म ग्रह बैठा है उसका फल क्या है ?

महावीर ने कहा—शक्रेन्द्र ! भस्म ग्रह बैठने के पश्चात् दो हजार वर्ष तक श्रमण निर्ग्रन्थों की समय-समय पूजा नही होगी। शक्रेन्द्र ने कहा—प्रभो ! एक घड़ी आयुष्य इधर-उधर कर दीजिए। यह क्रूर ग्रह जब तक नहीं हटे, उतना आयुष्य बढ़ा दें। ग्रहों के कुप्रभाव से सारा समाज बच जायेगा। जन-जन में प्रसन्नता की लहर दौड़ जायेगी।

भगवान महावीर ने कहा—शक्रेन्द्र ! आयु को घटाने और बढ़ाने में असमर्थ हूं। धर्म शासन की सुरक्षा की दृष्टि से तुम्हारा चिन्तन प्रशस्त है। तुम्हारे हृदय में धर्मसंघ के प्रति जो सद्भावना है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। आयु बढ़ाने की

शक्ति किसी में नहीं है। धर्म-तीर्थ की क्षति अवश्यंभावी है। दो हजार वर्ष निकलने के पश्चात् समय-समय पर पूजा होगी।

कहा इन्द्र ने वीर से, करो भस्म ग्रह दूर।
कष्ट कटे, सुख-शान्ति का बहे स्रोत भरपूर॥

भगवद् निर्वाण

भगवान महावीर का अन्तिम चातुर्मास। पावापुरी का अनुपम सौभाग्य। चातुर्मास का चौथा मास। सातवां पक्ष निकट। मोह कर्म के कारण गणधर गौतम स्वामी का भगवान के प्रति अत्यधिक स्नेह। प्रगाढ़ राग। भगवान ने सोचा—गौतम को अधिक पीड़ा न हो। शोक-विह्वल न बने। स्नेह-बन्धन टूटने में निमित्त हो सके। इसे यहां रखना उचित नहीं है। आखिर भगवद्-आज्ञा अनुसार इन्द्रभूति गौतम निकट के गांव में 'देव शर्मा ब्राह्मण' को प्रतिबोध देने के लिए चले जाते हैं।

गौतम स्वामी ने उसको विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा समझाते हुए भगवान महावीर के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। देव शर्मा श्रावक बना। गौतम स्वामी की पुन:-पुन: भक्ति करने लगा। गौतम ने रात्रि का प्रवास वहीं पर किया।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या का पावन दिन। काशी देश के मल्लवी वंश के नौराजा और कौशल देश के लिच्छवि वंश के नवराजाओं ने वहीं पर पौषध किये। भगवान ने अपनी अन्तिम देशना पुण्यफल विपाक के पचपन अध्ययनों का और पापफल-विपाक के पचपन अध्ययनों का तथा उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनों का उद्बोधन दिया। शिक्षा मिली। अमृतमय वाणी से सबके चेहरे पुलकित हो उठे।

भगवान पर्यंकासन से विराजे। तीनों योगों का निरोध हुआ। पांच लघु अक्षर (अ इ उ ऋ ऌ) का उच्चारण हो उतने समय तक शैलेशी अवस्था में रहकर शेष चार अघाती कर्मों का क्षय कर स्वाति नक्षत्र के योग में दृढ़भक्ति की तपस्या में मुक्त हो गये। केवलज्ञान रूपी सूर्य के अस्त हो जाने से सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त हो गया। काशी-कौशल देश के अठारह राजाओं ने सोचा कि संसार में भाव उद्योत तो समाप्त। अब द्रव्य दीप जलाकर द्रव्य उद्योत करना हमारा कर्तव्य है।

भगवान का निर्वाण महोत्सव करने हेतु चारों ही प्रकार के देव उपस्थित हुए। शक्रेन्द्र ने भगवान के पार्थिव शरीर को शिविका में रखा। अन्य इन्द्रों ने शिविका उठाई। देवों द्वारा दाह-संस्कार आदि समस्त क्रियाएं सम्पन्न हुईं।

उत्तमोत्तम नक्षत्र में, महावीर-निर्वाण।
उत्सव हित सुर आ रहे, हुआ प्रकाश महान्॥

गौतम शोक

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान निर्वाण के समाचार सुने। हृदय में दुःख का पार न रहा। वे शोक-संतप्त होकर उपालम्भ की भाषा में बोले—हे भगवन्! निर्वाण के समय मुझे दूर क्यों भेजा? मैं इतने वर्षों तक आपकी सेवा में रहा और आखिरी समय में आपने यह क्या किया? क्या मैं आपको रोकता था? आपको मोक्ष पधारना था, अवश्य ही पधारते। मैं आपको कभी भी हाथ पकड़कर नहीं रखता था। मेरे जैसा हतभागी कोई नहीं है। वे धन्य हैं जो अन्त समय तक आपकी परिचर्या में रहे। मोह कर्म के प्राबल्य से इन्द्रभूति गौतम भगवान को कोसने लगे। उलाहना सुनाते-सुनाते अपने रूप को भूल गये।

कुछ ही समय के पश्चात् विचारों ने मोड़ लिया। मन ही मन में सोचने लगे—अरे इन्द्रभूति! किस पर मोह कर रहा है? वीतरात प्रभु के साथ ममत्व रखना श्रेयस्कर नहीं है। राग-द्वेष संसार का हेतु है। किसी के भी प्रति जब तक राग-मोह रहेगा तब तक हमारी साधना फलवान नहीं बन सकती। मोह भंग करने के लिए ही भगवान ने मुझे दूर भेजा। वास्तव में मेरा हित सोचा। नही भूल सकता प्रभु के उपकार को। वीतराग प्रभु पर ममत्व रखना, मेरी निरीह भूल है।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में प्रवेश किया। मोहावरण हटा। शुभ परिणामों की श्रेणी पर चढ़े। घाती कर्मों को क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो गये। आखिर समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष में पधार गये। पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी भगवान के उत्तराधिकारी आचार्य हुए।

चातुर्मास व शिष्य-सम्पदा

भगवान का प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में। चम्पा और पृष्ठ चम्पा में तीन चातुर्मास। वैशाली और वाणिज्य ग्राम में बारह। राजगृह और नालन्दा में चौदह। मिथिला में छह। भद्रिका में दो। आलंभिका में एक। श्रावस्ती में एक। वज्रभूमि में एक। पावापुरी में एक चातुर्मास अन्तिम।

गणधर ११, केवलज्ञानी ९००, मनः पर्यवज्ञानी ५००, अवधि ज्ञानी १३००, चौदह पूर्वधर ३००, वादी ४००, वैक्रियलब्धिधारी ७००, अनुत्तरोपपातिक ८००, साधु १४०००, साध्वियां ३६०००, श्रावक १५९०००, श्राविकाएं ३१८०००, भगवान के धर्म शासन में ७०० साधुओं और १४०० साध्वियों ने मुक्ति प्राप्त की।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ३० वर्ष तक गृहवासी, बारह वर्ष से अधिक छद्मस्थ साधु अवस्था में और कुछ कम तीस वर्ष केवलज्ञानी तीर्थंकर रहे। इस

प्रकार श्रमण पर्याय कुल ४२ वर्ष पालकर, कुल आयु बहत्तर वर्ष की पूर्ण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

उत्तरवर्ती संघ-परम्परा

भगवान के निर्वाण के पश्चात् सुधर्मा स्वामी और जम्बू स्वामी—ये दो आचार्य केवली हुए। प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय, भद्रबाहु और स्थूल-भद्र—ये छह 'श्रुतकेवली' हुए।

(१) महागिरि (२) सुहस्ती (३) गुण सुन्दर (४) कालकाचार्य (५) स्कन्दि-लाचार्य (६) रेवतिमित्र (७) मंगु (८) धर्म (९) चन्द्र गुप्त (१०) आर्य व्रज—ये दस पूर्वधर हुए।

जेसलमेर के भण्डार में से मिली लूंको मुंहतो की पुस्तक के आधार पर—(१) सुधर्मा स्वामी (२) जम्बू स्वामी (३) प्रभव स्वामी (४) सिज्जांभव स्वामी (५) यशोभद्र स्वामी (६) सम्भूत विजय स्वामी (७) भद्रबाहु स्वामी (८) स्थूल भद्र स्वामी (९) महागीरी स्वामी (१०) विमल स्वामी (११) सुपरि बुद्ध स्वामी (१२) इन्द्र दीन स्वामी (१३) आर्यदीनू स्वामी (१४) आर्य भद्र स्वामी (१५) वसुदेव स्वामी (१६) आर्यरोह स्वामी (१७) भद्रगुप्त स्वामी (१८) आर्यवर स्वामी (१९) धणगीरी स्वामी (२०) वसुभूत स्वामी (२१) आर्य भद्र स्वामी (२२) आर्य लक्षण स्वामी (२३) आर्य नक्षत्र स्वामी (२४) नाग श्रीनाथ स्वामी (२५) जेहिलदि स्वामी (२६) सठी अणगार स्वामी (२७) देवढ़ी खमा समण। इन २७ पाटों का नाम सूत्रों में उल्लिखित है।

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! आपके पश्चात् कितने वर्षों तक धर्म-मार्ग चलेगा ?

भगवान ने कहा—गौतम ! पांचवें आरे के २१ हजार वर्षों तक मेरा तीर्थ चलेगा। 'अमर कोष' के तृतीय कांड में तीर्थ का अर्थ सूत्र है। भगवती सम-वायांग, रायप्रसेणी, उत्तराध्ययन की टीका में भी तीर्थ शब्द का अर्थ प्रवचन है। इस दृष्टि से सूत्र रूप तीर्थ २१ हजार वर्षों तक चलेगा। किसी समय चतुर्विध संघ के आधार तथा किसी समय शिथिलाचारी के आधार पर रहेगा।

पांचवें आरे के अन्तिम समय तक चार तीर्थ रहेंगे—(१) दुफ्फस नाम का साधु, (२) फाल्गुनी साध्वी, (३) नागल श्रावक, (४) सत्य श्री श्राविका। श्रावण वदी १ के दिन पांचवां आरा लगा। आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन उतरेगा, सूत्र में ऐसा मिलता है। निर्वाण के पश्चात् प्रातः समय गौतम स्वामी को केवल-ज्ञान हुआ।

दिगम्बर मत

भगवान महावीर के ६०९ वर्ष के पश्चात् दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ, ऐसी मान्यता है। एक बुटकना नाम का साधु था। वह गुरु से बढ़कर भी अपने आप को विशेष ज्ञानी समझता था। अहम् के उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ वह सबको निम्न समझता था। उसके पास बहुत ही मूल्यवान एक पछेवड़ी थी, उस पर ममत्व होने के कारण उसे वह अन्दर ही अन्दर रखता था, कभी भी काम में नहीं लेता था। कई वर्ष व्यतीत हो गये। ममत्व की भावना दिनों-दिन बढ़ती ही गई।

एक दिन वह गोचरी गया हुआ था। गुरु ने सोचा—क्या करना चाहिए? यह चेला पछेवडी को काम में नहीं लेता है। ममत्व रखता है। आखिर गहराई से चिन्तन कर गुरु ने उस पछेवड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर संतों को दे दिए। वह गोचरी से वापस आया। पता लगते ही उसके हृदय में क्रोध की चिनगारियां उछलने लगीं। गुरु के प्रति द्वेष उबलने लगा। सोचा—कपड़ा रखने वाले मुनि अपनी साधना में कभी भी सफल नहीं हो सकते। क्योंकि वस्त्रों पर ममत्व (मूर्च्छा भाव) आये बगैर नहीं रहता। अतः इस संघ में रहना उचित नहीं है। अलग होकर वस्त्रों का परिहार कर साधना करना श्रेयस्कर है।

चिन्तन क्रियान्वित हुआ। कपड़ों का परित्याग कर नग्न हुआ। संघ से अलग होकर साधना करने लगा। उस मुनि ने अपनी बहन 'पालका' को भी नग्न होने के लिए प्रेरित किया। बन्धव मुनि के संकेत को वह कैसे टाल सकती थी? उसने कपड़ों का परित्याग किया, वह नग्न बनी। लोगों में अपवाद होने लगा। मुख-मुख पर निन्दा। जैन समाज की निन्दा। घृणा।

अपरिमित अपवाद सुनकर मुनिवर ने चिन्तन कर अपनी बहन को लाल कपड़े पहना दिए। बाईजी के नाम से उसे प्रसिद्ध कर दिया। स्त्री कपड़े पहने बिना रह नहीं सकती, इस दृष्टि से 'स्त्री को मोक्ष नहीं', यह बात वायु की भांति सर्वत्र फैल गई। शास्त्रों का नया निर्माण हुआ। वस्त्र रखने वाले को मोक्ष नहीं मिल सकता, ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार होने लगा। लोग उन साधुओं को दिगम्बर कहकर पुकारने लगे। आगे जाकर धीरे-धीरे वहां से दिगम्बर मत के नाम से प्रचारित हो गया।

एक बुटकने साधु ने, किया वस्त्र-परिहार।
चला दिगम्बर मत तदा, उस दिन से साकार॥

कई गच्छ

बारह वर्ष तक काल पड़ा। कई प्रकार के मत निकले। भिखारियों को दूर करने की दृष्टि से कई साधु हाथ में डंडा रखना प्रारम्भ कर देते हैं। कई पैसे रखने लग जाते हैं। कई चेला-चेली खरीदने में दक्ष बन जाते हैं। कई जाति के नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर के नाम से कई गच्छ प्रचलित हो जाते हैं।

चैत्यवासी

भगवान महावीर के ८८२ वर्ष के पश्चात् चैत्यवासी मत चला। प्रतिमा-पूजा की स्थापना हुई। कई संतों ने सोचा—लोग अपने पास नहीं आते हैं। भगवान की प्रतिमा पर अवश्य ही श्रद्धा जागृत होगी। धर्म-शासन की अच्छी प्रभावना होगी। जगह-जगह पर मंदिर व उपाश्रय बनने लगे। अलग-अलग विचारधारा होने से अलग-अलग गच्छ व सम्प्रदायों की बाढ़ आने लगी। हिंसा में धर्म की पुट देने लगे। धर्म के नाम पर अनेक कार्य होने लगे।

शास्त्रों में हिंसा को हर दृष्टि से हेय माना गया है। हिंसा से कभी भी धर्म नही हो सकता। जहां हिंसा है, वहां पाप है, अधर्म है।

शास्त्र लिपिबद्ध

भगवान महावीर के ९८० वर्ष के पश्चात् शास्त्रों को लिपिबद्ध करने की भावना कैसे जागृत हुई, इसका भी बहुत बड़ा रहस्य है।

एकदा देवर्द्धीगणी सूंठ के खण्ड को कान में रखकर भूल गये। कुछ ही समय के पश्चात् संध्या समय में उन्हें याद आया—अरे, आज तो गलती हो गई। मन ही मन चिन्तन चला। अब तो कुछ नयी परिकल्पना करनी चाहिए। देवर्द्धीगणी ने कहा—पहले जैसी अब स्मरण शक्ति नही है। इतने दिन तो आगम कंठस्थ थे, अब भविष्य में कंठस्थ रहना कठिन प्रतीत होता है। इस दृष्टि से उन्होने सूत्रों को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। आचारांग का नवमाध्ययन 'महाप्रज्ञा' किसी दृष्टि से लिख नहीं सके। उससे वह अभी भी उपलब्ध नहीं है। शास्त्र लिपिबद्ध होने से कई वर्षों तक मार्ग शुद्ध चला। फिर काल पड़ा। शास्त्रों को भंडार में रख दिया। अपनी-अपनी इच्छानुसार चलने लगे। स्वयं बुद्धि से शास्त्रों का नया निर्माण कर विभिन्न प्रकार की प्ररूपणा करने लगे—पुस्तक पूजा, प्रतिमा पूजा, गौतम पड़गो, स्वामी वच्छल करना, झर झरला तेला, चूंदड़ी चोला, खीर पंचोला करला आदि-आदि। एक हजार वर्ष तक पर्वधारी रहे।

पुनमिया गच्छ

भगवान महावीर के १६१६ वर्ष के पश्चात् पुनमिया गच्छ का प्रारम्भ होने में एक विशेष घटना घटित हुई थी। एकदा एक मुनिवर किसी के घर पर गोचरी गये। बहन ने निवेदन भाव से पूछा—महाराज, आज क्या तिथि है?

महाराज ने 'न आव देखा, न ताव,' बिना चिन्तन किए वे जोर से बोल पड़े—आज पूर्णिमा है।

बहन ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—महाराज! अभी तो कृष्ण पक्ष चल रहा है। पूर्णिमा कैसे होगी?

मुनिवर स्थान पर पहुंचे। गुरुदेव के चरणों में नमस्कार करते हुए उसने पूछा—गुरुदेव! आज क्या तिथि है?

गुरु ने कहा—शिष्य! आज अमावस्या है। शिष्य बोला—गुरुदेव! मैं तो उस बहन को पूनम कहकर आया हूं। अब अगर वापस जाकर कहूंगा तो मेरा कितना बड़ा अपमान होगा। साथ-साथ आपका भी। हे गुरुवर! अब आप ही मेरा सम्मान रखेंगे, ऐसा विश्वास है।

गुरु ने गंभीरता से कहा—शिष्य! चिन्ता की क्या जरूरत है? बहन को जाकर कह दो कि आज पूनम है। रात्रि में चन्द्रमा देख लेना।

गुरु बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने अपने विद्या-बल से सोने के थाल को आकाश में चढ़ा दिया, जिससे चन्द्रमा का आभास होने लगा। चन्द्रमा को देखकर बहन के हृदय में विश्वास हो गया कि वस्तुतः आज पूर्णिमा है। तब से यह पुनमिया गच्छ चल पड़ा। इसी प्रकार खतरगच्छ आदि अनेक गच्छ प्रचलित हुए।

लूंको मुंहतो

अनेक वर्षों के पश्चात् 'लूंको मुंहतो' नामक एक विशिष्ट श्रावक हुआ। वह जिन प्ररूपित धर्म के प्रति गहरा श्रद्धावान था। तत्त्व का ज्ञाता था। गंभीर चिंतनशील था। एकदा वह उपाश्रय में संतों के पास पहुंचा। उन्होंने कहा—श्रावकजी! पुस्तकें भण्डार में पड़ी-पड़ी सड़ रही हैं। उदई खाने लग गई है। शास्त्रों के पन्ने फट रहे हैं। ये सब शास्त्र काम आने वाले हैं। इनकी सुरक्षा करना श्रावकों का कर्तव्य है। इन पन्नों की यदि प्रतिलिपि करा ली जाये तो जिन शासन का बहुत बड़ा उपकार होगा, लाभ होगा।

लूंकोजी ने सोचा—यह सुझाव बहुत ही सुन्दर है, उचित है। ऐसे उत्तम कार्य में विलम्ब नहीं होना चाहिए। लूंकोजी वहां गये और बोले—इस कार्य के लिए मैं हरदम तैयार हूं। तब उन तथाकथित संतों ने केवल दसवैकालिक सूत्र की

प्रति लिखने के लिए दी। लूंकोजी ने दसवैकालिक सूत्र का आद्योपान्त अध्ययन किया। साधुओं को आचार की जानकारी मिली। ५२ अनाचार और ४२ दोष टालकर आहार लेने की विधि बताई गई। यदि किसी भी दोष का सेवन किया जाये तो उसे साधु न माना जाये। साधुओं के जो लक्षण बताये गये हैं उन सबको पढ़कर वे बहुत ही हर्षित हुए। वर्तमान में जो साधु हैं, वे इन नियमों का खंडन कर रहे हैं। हिंसा में धर्म की पुट लगाकर जन-साधारण को भ्रमित बना रहे हैं। वास्तव में वे जिन-शासन की अवहेलना कर रहे हैं।

लूंकोजी ने गहराई से चिन्तन किया। यदि मैं इन साधुओं से कुछ कहूंगा अथवा शिथिलाचार के विषय में चर्चा करूंगा तो शास्त्रों की प्रतियां मिलनी मुश्किल हो जायेंगी। अत: अभी मौन में ही लाभ है। शास्त्रों की प्रतिलिपि बन जाने से भविष्य में बड़ा उपकार होगा। जैन धर्म की प्रभावना होगी। साधुओं के नियमों व उपनियमों की जानकारी मिलेगी। भगवान के प्ररूपित मार्ग का प्रचार होगा। इस दृष्टि को नजर रखते हुए उन्होंने शास्त्रों की दो-दो प्रति लिखने का आदेश दिया—एक प्रति उन सन्तों के पास चली जाती और एक प्रति स्वयं अपने पास रख लेते।

लूंकोजी अपने घर पर सूत्रों का प्रवचन करने लगे। धीरे-धीरे प्रवचन सुनने-हेतु काफी लोगों का आवागमन प्रारम्भ हो गया। सूत्रों की सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों का प्रचार होने लगा। शास्त्र-श्रवण से जन-जन के विचारों में परिवर्तन प्रारंभ हुआ। कई व्यक्तियों के हृदय में वैराग्य-अंकुर प्रस्फुटित हुए। दसवैकालिक सूत्र के विशेष विश्लेषण से लोगों को साध्वाचार की अवगति मिलने लगी।

लूंका सम्प्रदाय

वि० संवत् १५३१ में लूंका सम्प्रदाय का प्रारम्भ। सूत्रों के आधार पर सही-सही प्ररूपणा का प्रचार। लूंकोजी द्वारा उद्बोधित ४५ व्यक्तियों ने संयम ग्रहण किया। जैन शासन की अच्छी प्रभावना होने लगी। एक दिन लूंकोजी ने उन सब मुनिवरों से पूछा—लोग पूछेंगे कि आप कौन से सम्प्रदाय के हैं? क्या उत्तर दोगे?

वे सभी संत गण बोले—मुंहतोजी! हम लोगों पर आपकी बहुत मेहरबानी। हमें जो शुद्ध धर्म मिला है। प्रशस्त पथ मिला है—यह सब आपकी कृपा का ही फलित है। हम आपका ही नाम बतायेंगे।

वहां से वे साधु 'लूंका' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जो यती आदि के विशेष श्रावक थे, वे लोग भी धीरे-धीरे उनके अनुयायी बनने लगे। सबसे श्रावक (भाणजी) ने संयम ग्रहण किया। लूंको मुंहता का यह पहला परम शिष्य

हो गया। क्रमशः और भी कई मुनि बने। विभिन्न प्रकार के दोषों का सेवन करने लगे। मर्यादाओं का खंडन भी होने लगा।

१७०६ में लवजी ऋषि

वि० सम्वत् १७०६ मे लवजी साहू ने लूंका सम्प्रदाय में वज्रजगजी के पास में दीक्षा ली। शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया। दो वर्षों तक गुरु से चर्चा चलती रही। दसवैकालिक सूत्र छठे अध्ययन के विषय में वार्तालाप चला—गुरुदेव! सूत्रों में साधु का जो आचार बताया गया है, उसके अनुसार हमारी गति नहीं है।

गुरु ने कहा—शिष्य! तुम्हारा कथन अक्षरशः सत्य है, किन्तु यह पांचवां आरा है। इस समय में इतने कठोर नियमों का पालन असंभव है।

लवजी ऋषि—गुरुवर! भगवान का मार्ग २१ हजार वर्षों तक चलेगा, इस वाक्य में संशय का काम नहीं है। इसलिए शास्त्रोक्त विधि के अनुसार संयम का पालन कीजिए, हम आपके साथ हैं।

फिर भी गुरु ने स्वीकार नहीं किया।

लवजी, शोबजी, सेवाजी—इन तीनों ने सम्प्रदाय को छोड़कर नयी दीक्षा ग्रहण की। शुद्ध जगह गिरे हुए मकानों (ढ़ढ़ो) में ठहरने लगे। इस दृष्टि से लोगों ने उनका नाम 'ढूढ़िया' रख दिया। अनेक लोगों को सही दिशा-दर्शन देने लगे। लोग अनुयायी बने। कई लवजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। साधु-साध्वियों का परिवार बढ़ने लगा। हरदासजी, कालूजी, गिरधरजी आदि कई प्रमुख साधु हुए। वज्रअंगजी से जो अलग हुए, उनके नाम हैं—(१) लवजी, (२) अगरपालजी, (३) धर्मदासजी, (४) धनोजी, (५) बुधुरजी। बुधुरजी के पाट रुघनाथजी, रुघनाथजी के शिष्य भीखणजी स्वामी हुए।

द्रव्य-दीक्षा व भाव-दीक्षा

मरुधर देश में कंटालिया नगर। ओसवाल वंश। जाति सकलेचा। पिता बल्लूजी, माता दीपांजी। माता ने सिंह का स्वप्न देखा, जिससे वि० सम्वत् १७८३ में होनहार बालक भिक्षु का जन्म हुआ। वे क्रमशः बड़े हुए। शादी हुई। मन में वैराग्य भावना प्रबल होने से शीलव्रत स्वीकार कर लिया। दोनों ने अभिग्रह किया कि जब तक अपने को चारित्र नहीं आता है तब तक एकान्तर तप करना है। कुछ ही समय के पश्चात् पत्नी का स्वर्गवास हो गया। विवाह के लिए अनेक रिश्ते आये, फिर भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। भोगों को छोड़कर माताजी को

१००० रुपये नगद सौंपकर १८०८ में २५ वर्षों की अवस्था में रुघनाथजी के पास दीक्षा ली। शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया। साधुओं के आचार पर विशेष ध्यान रखते थे। बड़े नीतिवान थे। गुरु के पास बड़े विनय से रहते थे। राजनगर (मेवाड़) के लोग सिद्धान्त के जानकार थे। उनको संशय हुआ कि आजकल ये साधु आधाकर्मी आहार लेते हैं। नितपिंड भी नहीं छोड़ते हैं। स्थानक में उतरते हैं। आचार में शिथिलता आ गई है। इस दृष्टि से उन्होंने साधुओं को वन्दना करनी छोड़ दी। आचार्य रुघनाथजी को यह पता लगते ही उन्हें समझाने के लिए 'भीखणजी' को भेजा गया। परम्परागत उन्होंने वही उत्तर दिया तब वहां के श्रावकों ने कहा—महाराज ! आपको वैरागी समझकर वन्दना करते हैं। किन्तु हमारी शंका अभी तक नहीं मिटी है। रात्रि में भिक्षु स्वामी भयंकर ज्वर से पीड़ित हो गये। उन्होंने सोचा – अभी अगर मृत्यु आ जाये तो गुरु क्या काम आयेंगे ? ज्वर यदि उतर जाये तो सुबह होते ही कह दूंगा कि श्रावको ! तुम सच्चे, हम झूठे। शास्त्रानुसार संयम का पालन करूंगा। लोगों को उपरोक्त निजी भाव बताते हुए संयमपथ पर अग्रसर हुए। सभी सूत्रों का दो-दो बार मन्थन किया। चातुर्मास सम्पन्न हुआ। गुरु के पास पहुंचे। परस्पर काफी चिन्तन चला। गुरु से निवेदन करते हुए कहा—गुरुवर ! मैं आपसे अलग होकर कोई भी मत निकालना नहीं चाहता। आप मेरे गुरु हैं, मैं आपका शिष्य हूं। किन्तु साधुओं के नियमों का अक्षरशः पालन करना होगा, अन्यथा मैं तो अपनी आत्मा का कल्याण करूंगा। इस प्रकार गुरु को बहुत कहा गया, समझाया गया किन्तु गुरु ने एक भी स्वीकार नहीं की। आखिर भिक्षु स्वामी १३ सन्तों से अलग हुए।

(१) थिरपालजी, (२) फतेचन्दजी, (३) भीखणजी स्वामी, (४) टोकरजी, (५) हरनाथजी, (६) भारमलजी आदि बगड़ी (मारवाड़) में चैत्र सुदी ९ को ये तेरह सन्त अलग होकर जैतसिंहजी की छत्रियों में ठहरे। वि० सम्वत् १८१६ आषाढ़ सुदी १५ केलवे में भाव-दीक्षा ग्रहण की।

